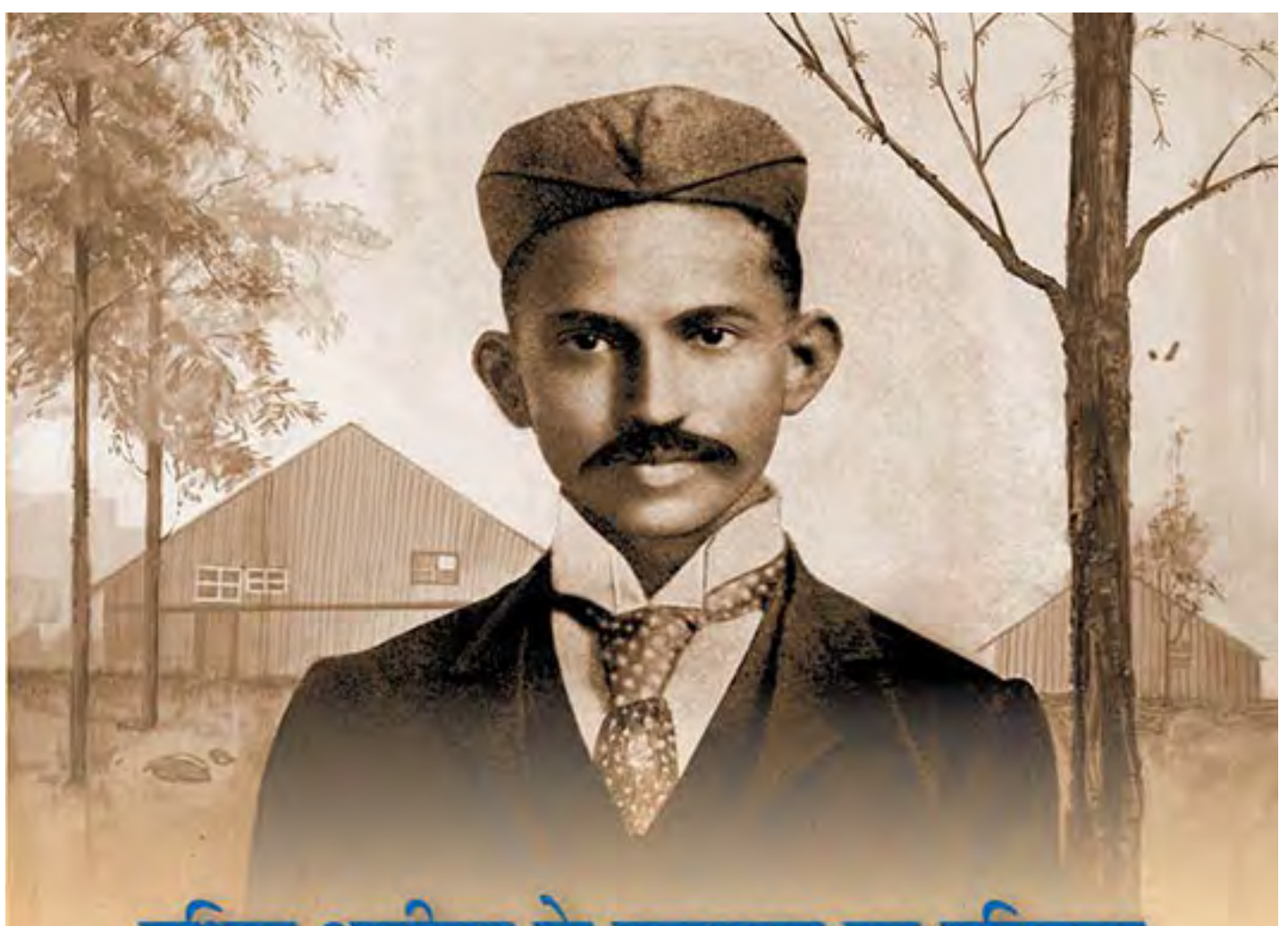

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास

गांधीजी

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास

गांधीजी

अनुवादक

सोमेश्वर पुरोहित

पहली आवृत्ति, प्रति २,०००, अगस्त १९६८

मुद्रक और प्रकाशक

विवेक जितेन्द्र देसाई

नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – ३८० ०१४

फोन: 079-27540635, 27542634

E-mail: sales@navajivantrust.org | Website: www.navajivantrust.org

प्रकाशक का निवेदन

गांधीजी की *आत्मकथा* के बाद जिसका नंबर आता है ऐसी उनकी दूसरी पुस्तक है दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का यह महत्वपूर्ण इतिहास | यह इतिहास उन्होंने *आत्मकथा* की तरह मूल गुजराती में ही लिखा था | इस ग्रन्थ का केवल इतना ही महत्त्व नहीं है | इसमें गांधीजी के चरित्र-निर्माण के सबसे महत्त्वपूर्ण समय का तथा सत्याग्रह की उनकी शोध के समय का इतिहास भी स्वयं उन्हीं की लेखनी से लिखा हुआ मिलता है | जब कभी गांधीजी के जीवन में अपनी आत्मा की गहराई में उतर कर सोचने-समझने का अवसर आता था, तब वे अकसर दक्षिण अफ्रीका के अपने जीवन-काल की बातों और वहाँ के अनुभवों का स्मरण करते थे | इस ग्रन्थ में इतना महत्त्वपूर्ण इतिहास भरा हुआ है | यह इतिहास, *आत्मकथा* की तरह ही, *नवजीवन* में साप्ताहिक माला के रूप में छपा था और बाद में पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया था |

श्री वालजीभाई देसाई ने इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद किया है | यह अनुवाद करते समय उन्होंने *इंडियन ओपीनियन* की पुरानी फाइलें देखकर इस इतिहास को कितनी ही तफसीलों की जाँच की थी और ऐसा करते समय उन्हें मूल में जहाँ-जहाँ संशोधन या परिवर्धन करना ज़रूरी लगा वहाँ-वहाँ अंग्रेजी अनुवाद में उन्होंने कर लिया था | यह अंग्रेजी अनुवाद गांधीजी स्वयं देख गये थे | उसमें किये गये सभी संशोधन या परिवर्धन इस हिन्दी अनुवाद में भी यथास्थान कर दीये गये हैं |

इस इतिहास की विशेष महत्त्वपूर्ण तारीखें अंत में यदि दी जाए तो अभ्यासियों के लिए वे उपयोगी सिद्ध होंगी, ऐसा समझ कर वे तारीखें अंत में परिशिष्ट –१ में दी गई हैं |

दूसरी एक बात की ओर पाठकों का ध्यान खींचना हमें ज़रूरी लगता है | स्व. श्री रावजीभाई मणिभाई पटेल इस सत्याग्रह की लड़ाई के एक सैनिक थे | उन्होंने उस समय के अपने संस्मरण *गांधीजी की साधना* नामक पुस्तक में लिखे है | उसकी प्रस्तावना में उन्होंने एक बात का उल्लेख किया है | वह इस पुस्तक के पृष्ट ३१७-१८ पर छपी उस घटना से सम्बन्ध रखती है, जिसमें बताया गया है कि पूज्य कस्तूरबा दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की लड़ाई में कैसे शरीक हुई थीं | अपनी उपर्युक्त पुस्तक की प्रस्तावना में श्रीरावजीभाई ने इस प्रकार लिखा है:

> "इस नई आवृत्ति में पूज्य बा के अवसान के बाद एक प्रश्न खड़ा हुआ है, जिसके सम्बन्ध में स्पष्टता करना ज़रूरी है |
>
> "दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की अंतिम लड़ाई में पू. बा सम्मिलित हों इसके लिए बापूजी ने जो प्रयत्न किया था, उसका वर्णन मैंने अपनी पुस्तक के 'शुभ आरंभ' नामक प्रकरण में किया है | इसी प्रकरण के सम्बन्ध में थोड़ी स्पष्टता यहाँ करना ज़रूरी है | *दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास* में बापूजी

ने इस बारेमें कुछ अलग ढंग से लिखा है | वे लिखते हैं कि सत्याग्रह की लड़ाई में जब स्त्रियों को शामिल करने की बात सोची गई तब मैंने सबसे पहले श्री छगनलाल गांधी की पत्नी काशीबहन और श्री मगनलाल गांधी की पत्नी संतोकबहन से बात की और उन्हें तैयार किया; उसके बाद बा उसमें शामिल हुई | परन्तु अपनी पुस्तक *गांधीजी की साधना* के प्रकरण पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने से पहले मैनें बापूजी के सामने पढ़े, उस समय बापूजी की स्मृति की एक भूल की ओर उनका ध्यान खिंचा और अपनी पुस्तक के प्रकरण में वर्णित घटना के सही होने का उन्हें विश्वास दिलाया | बापूजी भी गहरे सोच में पड़ गये | उन्होंने बाकी साक्षी के आधार पर इस विषय में कोई निर्णय करना ठीक समझा | बा को बुलाकर बापूजी ने हमारी दोनों की बात उनके सामने रखी | बाने कहा कि, 'रावजीभाई की सारी बात सच है वह समूची घटना मुझे इतनी स्पष्ट याद है, मानो कल सवेरे ही घटी हो |' इस पर बापूजी ने कहा, तब तो मेरी भूल हुई है | *दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह* की नई आवृत्ति में यह भूल सुधारनी होगी |"

पाठक देखेंगे कि श्री रावजीभाई ने इस प्रसंग के विषय में अपनी *गांधीजी की साधना* नामक पुस्तक के 'शुभ आरंभ' प्रकरण में जो कुछ लिखा है, वह गांधीजी द्वारा *दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास* में लिखी गई बात से भिन्न है | श्री रावजीभाई के उस प्रकरण का सम्बन्धित भाग इस ग्रन्थ के अंत में परिशिष्ट –२ में उद्धृत किया गया है | उसके आधार पर इस ग्रन्थ की नई आवृत्ति में सुधार कर लेने की बात गांधीजी ने सोची थीं | परन्तु उनके जीवन-काल में वह संभव नहीं हुआ | इसलिए इस निवेदन में उसका उल्लेख करके ही हमने सन्तोष माना है | पाठकों से हमारी विनती है कि इस ग्रन्थ में उपर्युक्त घटना का वर्णन पढ़ते समय वे श्री रावजीभाई का उससे सम्बन्धित चित्रण भी परिशिष्ट –२ में पढ़ें |

गांधीजी के जीवन-कार्य तथा सत्याग्रह की शोध की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व रखने वाले इस ग्रन्थ को हिन्दी में प्रकाशित करते हुए हमें आनन्द हो रहा है | आशा है, विद्यालयों और महाविद्यालयों में तथा सामान्य पाठकों में भी इसका हार्दिक स्वागत होगा और केवल साहित्यिक दृष्टि से भी इस मौलिक इतिहास-ग्रन्थ का आदर होगा |

१५-१-१९६८

प्रास्ताविक

१

दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों की सत्याग्रह की लड़ाई आठ वर्ष तक चली | 'सत्याग्रह' शब्द की शोध उसी लड़ाई के सिलसिले में हुई और उसी लड़ाई के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया था | बहुत समय से मेरी यह इच्छा थी कि उस लड़ाई का इतिहास मैं अपने हाथ से लिखूँ | उसकी कुछ बातें तो केवल मैं ही लिख सकता हूँ | कौनसी बात किस हेतु से की गई थी, यह तो उस लड़ाई का संचालन करने वाला ही जान सकता है | और राजनीतिक क्षेत्र में यह प्रयोग बड़े पैमाने पर दक्षिण अफ्रीका में पहला ही हुआ था; इसलिए उस सत्याग्रह के सिद्धान्त के विकास के बारेमें लोग जानें, यह किसी भी समय आवश्यक माना जाएगा |

परन्तु इस समय तो हिन्दुस्तान में सत्याग्रह का विशाल क्षेत्र है | हिन्दुस्तान में वीरमगाम की जकात की छोटी सी लड़ाई से सत्याग्रह का अनिवार्य क्रम आरंभ हुआ है |

वीरमगाम की जकात की लड़ाई का निमित था वढ़वाण का एक साधु-चरित परोपकारी दरजी मोतीलाल विलायत से लौट कर मैं १९१५ में काठियावाड़ (सौराष्ट्र) जा रहा था | रेल के तीसरे दरजे में बैठा था | वढ़वाण स्टेशन पर यह दरजी अपनी छोटीसी टुकड़ी के साथ मेरे पास आया था | वीरमगाम की थोड़ी बात करके उसने मुझसे कहा:

"आप इस दुःख का कोई उपाय करें | काठियावाड़ में आपने जन्म लिया है-यहाँ आप उसे सफल बनायें|" उसकी आँखों में दृढ़ता और करुना दोनों थीं |

मैंने पूछा: "आप लोग जेल जाने को तैयार हैं !"

तुरन्त उत्तर मिला: हम फाँसी पर चढ़ने को भी तैयार हैं !"

मैंने कहा: "मेरे लिए तो आपका सिर्फ जेल जाना ही काफ़ी है | लेकिन देखना, विश्वासघात न हो |"

मोतीलाल ने कहा: "यह तो अनुभव ही बतायेगा |"

मैं राजकोट पहुँचा | वहाँ इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी हासिल की | सरकार के साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया | बगसरा वगैरा स्थानों पर मैंने जो भाषण दीये, उनमें वीरमगाम की जकात के बारेमें आवश्यक होने पर लोगों को सत्याग्रह करने के लिए तैयार रहने की सूचना मैंने की | सरकार की वफादार खुफिया पुलिस ने मेरे इन भाषणों को सरकारी दफ़्तर तक पहुँचा दिया | पहुँचाने वाले व्यक्ति ने सरकार की सेवा के साथ अनजाने ही राष्ट्र

की भी सेवा की | अन्त में लॉर्ड चेम्सफोर्ड के साथ इस सम्बन्ध में मेरी चर्चा हुई और उन्होंने अपना दिया हुआ वचन पाला | मैं जानता हूँ कि दूसरों ने भी इस विषय में प्रयत्न किया | परन्तु मेरा यह दृढ़ मत है कि इसमें से सत्याग्रह शुरू होने की संभावना को देख कर ही वीरमगाम की जकात रद की गई |

वीरमगाम की जकात की लड़ाई के बाद गिरमिट का कानून (इंडियन इमिग्रेशन एक्ट) आता है | इस कानून को रद कराने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये थे | इस लड़ाई के सम्बन्ध में अच्छा खासा सार्वजनिक आन्दोलन चला था | बम्बई में हुई सभा में गिरमिट की प्रथा बन्द करने की अन्तिम तारीख ३१ मई, १९१७ निश्चित की गई थी | यह तारीख कैसे निश्चित हुई, इसका इतिहास यहाँ नहीं दिया जा सकता | गिरमिट कानून की लड़ाई के सम्बन्ध में वाइसरॉय के पास पहला डेप्युटेशन (शिष्ट-मंडल) महिलाओं का गया था | उसमें मुख्य प्रयास किसका था, यह तो बताना ही होगा | वह प्रयास चिरस्मरणीया बहन जाईजी पिटीट का था | उस लड़ाई में भी केवल सत्याग्रह की तैयारी से ही विजय मिल गई | परन्तु यह भेद याद रखने जैसा है कि इस लड़ाई के बारेमें सार्वजनिक आन्दोलन की ज़रुरत पड़ी थी | गिरमिट प्रथा को रद करने की बात वीरमगाम की जकात रद करने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण थी | रौलट एक्ट के बाद भूलें करने में लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने कोई कसर नहीं रखी | इसके बावजूद मुझे आज भी ऐसा लगता है कि वे एक सयाने और समझदार वाइसरॉय थे | सिविल सर्विस के स्थायी अधिकारियों के पंजे से आखिर तक भला कौन सा वाइसरॉय बच सका है ?

तीसरी लड़ाई चम्पारण की थी | उसका विस्मृत इतिहास राजेन्द्रबाबू ने लिखा है | उसके लिए सत्याग्रह करना पड़ा, केवल तैयारी काफ़ी साबित नहीं हुई | परन्तु विरोधी पक्ष का स्वार्थ कितना बड़ा था ? यह बात उल्लेखनीय है कि उस सत्याग्रह में चम्पारण के लोगों ने खूब शान्ति रखी | इसका साक्षी मैं हूँ कि सारे ही नेताओं ने मन से, वचन से और काया से संपूर्ण शान्ति रखी | यही कारण है कि चम्पारण की यह सदियों पुरानी बुराई छह मास में दूर हो गई |

चौथी लड़ाई थी अहमदाबाद के मिल-मजदूरों की | उसका इतिहास गुजरात न जानें तो दूसरा कौन जानेगा ? उस लड़ाई में मजदूरों ने कितनी शान्ति रखी ? नेताओं के बारेमें तो मैं भला क्या कहूँ ? फिर भी उस विजय को मैंने दोषयुक्त माना है; क्योंकि मजदूरों की टेक की रक्षा के लिए मैंने जो उपवास किया, वह मिल-मालिकों पर दबाव डालने वाला था | उनके और मेरे बीच जो स्नेह था, उसके कारण मेरे उपवास का असर मिल-मालिकों पर पड़े बिना रह ही नहीं सकता था | ऐसा होते हुए भी उस लड़ाई की सीख तो स्पष्ट है | मजदूर शांति से अपनी टेक पर डटे रहते, तो उनकी विजय अवश्य होती और वे मिल-मालिकों का मन जीत लेते | लेकिन वे मालिकों का मन नहीं जीत सके, क्योंकि वे मन, वचन, काया से निर्दोष-शांत रहे, ऐसा नहीं कहा जा सकता | पर इस लड़ाई में वे काया से शांत रहे, यह भी बहुत बड़ी बात मानी जाएगी |

पाँचवीं लड़ाई खेड़ा की थी | उसमें सारे नेताओं ने शुद्ध सत्य की रक्षा की, ऐसा तो मैं नहीं कह सकता | शांति की रक्षा ज़रूर हुई | किसानों की शांति कुछ हद तक अहमदाबाद के मजदूरों की तरह केवल कायिक शांति ही थी | उससे केवल मान और प्रतिष्ठा की रक्षा हुई | लोगों में भारी जागृति पैदा हुई | परन्तु खेड़ा ने पूरी तरह शांति का पाठ नहीं सीखा था; और अहमदाबाद के मजदूर शांति के शुद्ध स्वरूप को समझे नहीं थे | इससे रौलट एक्ट के सत्याग्रह के समय लोगों को कष्ट उठाना पड़ा, मुझे अपनी हिमालय जैसी बड़ी भूल स्वीकार करनी पड़ी और उपवास करना तथा दूसरों से करवाना पड़ा |

छठी लड़ाई थी रौलट एक्ट की | उसमें हमारे भीतर के दोष बाहर उभर आये | परन्तु हमारा मूल आधार सच्चा था | सारे ही दोष हमने स्वीकार किये; उनके लिए प्रयाश्चित्त भी किया | रौलट एक्ट का अमल कभी नहीं हो सका और अन्त में वह काला कानून रद भी कर दिया गया | इस लड़ाई ने हमें बहुत बड़ा सबक सिखाया |

सातवीं लड़ाई थी खिलाफत की, पंजाब के अत्याचारों की और स्वराज्य प्राप्त करने की | यह लड़ाई आज भी चल रही है | मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इसमें एक भी सत्याग्रही यदि अन्त तक डटा रहे, तो हमारी विजय निश्चित है |

परन्तु आज जो लड़ाई चल रही है, वह तो महाभारत के जैसी है | इसकी तैयारी अनिच्छा से कैसे हुई, इस बात का क्रम मैं ऊपर बता चुका हूँ | वीरमगाम की जकात की लड़ाई के समय मुझे इस बात का पता नहीं था कि दूसरी लड़ाइयाँ भी आगे चल कर मुझे लड़नी होंगी | और वीरमगाम की लड़ाई के बारेमें भी दक्षिण अफ्रीका में मैं कुछ नहीं जानता था | सत्याग्रह की खूबी यही है | वह स्वयं हमारे पास चला आता है; हमें उसे खोजने नहीं जाना पड़ता | यह गुण सत्याग्रह के सिद्धान्त में ही निहित है | जिसमें कुछ गुप्त नहीं है, जिसमें कोई चालाकी की बात नहीं है और जिसमें असत्य तो हो ही नहीं सकता, ऐसा धर्मयुद्ध अनायास ही आता है; और धर्मी (धर्म-परायण) मनुष्य उसके लिए सदा तैयार ही रहता है | जिस युद्ध की योजना पहले से करनी पड़े, वह धर्मयुद्ध नहीं है | धर्मयुद्ध की योजना करने वाला और उसे चलाने वाला ईश्वर है | वह युद्ध ईश्वर के नाम पर ही चल सकता है और जब सत्याग्रही के सारे आधार ढीले पड़ जाते हैं, वह सर्वथा निर्बल हो जाता है और उसके चारों ओर घोर अन्धकार फैल जाता है, तभी ईश्वर उसकी सहायता करता है | मनुष्य जब राजकण से भी अपने को नीचा मानता है तभी ईश्वर उसकी सहायता करता है | निर्बल को ही राम बल देता है |

इस सत्य का अनुभव तो अभी हमें होना बाकी है | इसलिए मैं मानता हूँ कि दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास हमारे लिए सहायक सिद्ध होगा |

पाठक देखेंगे कि वर्तमान लड़ाई में आज तक हमें जो-जो अनुभव हुए हैं, उनसे मिलते-जुलते अनुभव दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में हुए थे | दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास हमें यह भी बतायेगा कि अभी तक

हमारी इस लड़ाई में निराशा का एक भी कारण पैदा नहीं हुआ है | विजय प्राप्त करने के लिए इतना ही आवश्यक है कि हम अपनी योजना पर दृढ़ता से डटे रहें |

यह प्रस्तावना मैं जूहू में लिख रहा हूँ | इस इतिहास के प्रथम ३. प्रकरण मैंने यरवडा जेल में लिखे थे | मैं बोलता गया था और भाई इन्दुलाल याज्ञिक लिखते गये थे | बाकी रहे प्रकरण मैं आगे लिखने की आशा रखता हूँ | जेल में मेरे पास आधारों के लिए कोई सन्दर्भ-ग्रन्थ नहीं थे | यहाँ भी मैं ऐसी पुस्तकें एकत्र करने की इच्छा नहीं रखता | ब्योरेवार विस्तृत इतिहास लिखने का न तो मेरे पास समय है, न इसके लिए मुझमें उत्साह या इच्छा है | यह इतिहास लिखने में मेरा उद्देश्य इतना ही है कि हमारी वर्तमान लड़ाई में यह सहायक सिद्ध हो और कोई फुरसत वाला साहित्य-विलासी दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का ब्योरेवार इतिहास लिखे, तो उसके कार्य में मेरा यह प्रयत्न मार्गदर्शक बन सके | यद्यपि यह पुस्तक मैं बिना किसी आधार के लिख रहा हूँ, फिर भी मेरी विनती है कि कोई पाठक यह न समझे कि इसमें एक भी घटना अनिश्चित है या एक भी स्थान पर अतिशयोक्ति है |

जूहू, बुधवार,
सं, १९८०, फागुन वदी १३,
२ अप्रैल, १९२४

२

पाठक यह जानते हैं कि उपवास के कारण और अन्य कारणों से मैं दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास आगे लिख नहीं पाया था | *नवजीवन* के इस अंक से मैं फिर यह इतिहास लिखना आरम्भ करता हूँ | आशा है कि अब मैं इसे बिना किसी विघ्न-बाधा के पूरा कर सकूँगा |

इस इतिहास के स्मरणों से मैं देखता हूँ कि हमारी आज की स्थिति में ऐसी एक भी बात नहीं है, जिसका छोटे पैमाने पर मुझे दक्षिण अफ्रीका में अनुभव न हुआ हो | सत्याग्रह के आरम्भ में यही उत्साह, यही एकता और यही आग्रह वहाँ देखने को मिला था; मध्य में यही निराशा, यही अरुचि और यही आपसी झगड़े और ईर्ष्या-द्वेष; और फिर भी मुट्ठीभर लोगों में अविचल श्रद्धा, दृढ़ता, त्याग और सहिष्णुता के दर्शन होते थे | ऐसी ही अनेक प्रकार की सोची-अनसोची मुसीबतें वहाँ भी सामने आई थीं | हिन्दुस्तान की लड़ाई का अन्तिम काल अभी बाकी है | उस अन्तिम काल में मैं यहाँ भी वही स्थिति देखने की आशा रखता हूँ, जिसका अनुभव मैं दक्षिण अफ्रीका में कर चुका हूँ | दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई का अन्तिम काल पाठक अब आगे देखेंगे | उसमें यह बताया जाएगा कि किस प्रकार हमें बिन-माँगी मदद मिल गई, कैसे हिन्दुस्तानी लोगों में अनायास उत्साह आ गया और अन्त में हिन्दुस्तानियों की संपूर्ण विजय उस लड़ाई में कैसे हुई |

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जैसा दक्षिण अफ्रीका में हुआ था वैसा ही यहाँ भी होगा; क्योंकि तपस्या पर, सत्य पर, अहिंसा पर मेरी अटल और अविचल श्रद्धा है | मेरा अक्षरश: यह विश्वास है कि सत्य का पालन करने वाले मनुष्य के सामने सारे जगत की सम्पत्ति आकर खड़ी हो जाती है और वह ईश्वर का साक्षात्कार करता है | अहिंसा के निकट वैरभाव नहीं रह सकता – इस वचन को भी मैं अक्षरश: सत्य मानता हूँ | मैं इस सूत्र का उपासक हूँ कि जो लोग दुःख सहन करते हैं, उनके लिए इस दुनिया में कुछ भी असम्भव नहीं है | कितने ही सेवकों में मैं इन तीनों बातों का सुमेल और समन्वय सधा हुआ देखता हूँ | उनकी साधना कभी निष्फल हो ही नहीं सकती, ऐसा मेरा निरपवाद अनुभव है |

लेकिन कोई कहेगा कि दक्षिण अफ्रीका में मिली सम्पूर्ण विजय का अर्थ तो इतना ही है कि हिन्दुस्तानी वहाँ जैसे थे वैसे ही रह गये | ऐसा कहने वाला व्यक्ति अज्ञानी कहा जाएगा | अगर दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह की लड़ाई न लड़ी गई होती | तो आज न केवल दक्षिण अफ्रीका से बल्कि सारे ब्रिटिश उपनिवेशों से हिन्दुस्तानियों के पैर उखड़ जाते और उनकी खोज-खबर लेने वाला भी कोई न होता | लेकिन यह उत्तर पर्याप्त या संतोषकारक नहीं माना जाएगा | यह तर्क भी किया जा सकता है कि यदि सत्याग्रह न किया गया होता और यथासंभव समझाइश से काम लेकर संतोष मान लिया गया होता, तो आज जो स्थिति हिन्दुस्तानियों की दक्षिण अफ्रीका में है वह न हुई होती | यद्यपि इस तर्क में कोई सार नहीं है, फिर भी जहाँ केवल तर्कों और अनुमानों के ही प्रयोग हों, वहाँ यह कहना कठिन होता है कि किसके तर्क अथवा किसके अनुमान उत्तम हैं | अनुमान लगाने का सबको अधिकार है | परन्तु जिसका उत्तर न दिया जा सके ऐसी बात तो यह है कि जिस शस्त्र से जो वस्तु प्राप्त की जाती है, उसी शस्त्र से उस वस्तु की रक्षा की जा सकती है |

'काबे[१] अर्जुन लूंटियो वही धनुष वही बाण |'

जिस अर्जुन ने शिवजी को पराजित किया, जिसने कौरवों का सारा मद उतार दिया, वही अर्जुन जब कृष्णरूपी सारथि से रहित हो गया तब वह लुटेरों की एक टोली को अपने गांडीव धनुष से हरा नहीं सका ! यही बात दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों पर भी चरितार्थ होती है | अभी भी वे संग्राम में जूझ रहे हैं | परन्तु जिस सत्याग्रह के बल पर वे विजयी हुए थे, उस शस्त्र को यदि वे खो बैठे हों, तो अंत में बाजी हार जायेंगे | सत्याग्रह उनका सारथि था; और वही सारथि लड़ाई में उनकी सहायता कर सकता है |

नवजीवन, ५-७-१९२५ **मो. क. गांधी**

---

१. लुटेरों ने

अनुक्रमणिका

प्रकाशक का निवेदन

प्रास्ताविक

प्रथम खंड

१. भूगोल

२. इतिहास

३. दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों का आगमन

४. मुसीबतों का सिंहावलोकन – १

५. मुसीबतों का सिंहावलोकन – २

६. हिन्दुस्तानियों ने क्या किया ?

७. हिन्दुस्तानियों ने क्या किया ? (क्रमश:)

८. हिन्दुस्तानियों ने क्या किया ? (क्रमश:) इंग्लैंड में कार्य

९. बोअर-युद्ध

१०. युद्ध के बाद

११. सज्जनता का बदला: खूनी कानून

१२. सत्याग्रह का जन्म

१३. सत्याग्रह बनाम 'पैसिव रेज़िस्टेन्स'

१४. इंग्लैंड में प्रतिनिधि-मंडल

१५. वक्र राजनीति अथवा क्षणिक हर्ष

१६. अहमद मुहम्मद काछलिया

१७. पहली फूट

१८. प्रथम सत्याग्रही क़ैदी

१९. *इंडियन ओपीनियन*

२०. गिरफ़्तारियों का ताँता

२१. पहला समझौता

२२. समझौते का विरोध और मुझ पर हमला

२३. गोरे सहायक

२४. भीतर की और ज़्यादा मुसीबतें

द्वितीय खण्ड

१. जनरल स्मट्स का विश्वासघात (?)
२. लड़ाई की पुनरावृत्ति
३. ऐच्छिक परवानों की होली
४. कौम पर नई बात उठाने का आक्षेप
५. सोराबजी शापुरजी अडाजणिया
६. सेठ दाऊद मुहम्मद आदि का लड़ाई में प्रवेश
७. देश-निकाला
८. दूसरा प्रतिनिधि-मंडल
९. टॉल्स्टॉय फार्म – १
१०. टॉल्स्टॉय फार्म – २
११. टॉल्स्टॉय फार्म – ३
१२. गोखले की यात्रा – १
१३. गोखले की यात्रा – २
१४. वचन-भंग
१५. जब विवाह विवाह नहीं माना गया
१६. स्त्रियाँ जेल में
१७. मजदूरों का प्रवाह
१८. मालिकों से मुलाकात और उसके बाद
१९. ट्रान्सवाल में प्रवेश – १
२०. ट्रान्सवाल में प्रवेश – २
२१. सभी लोग जेल में
२२. कसौटी
२३. अन्त का आरंभ
२४. प्राथमिक समझौता
२५. पत्रों का आदान-प्रदान

२६. लड़ाई का अन्त

उपसंहार

परिशिष्ट – १ : सत्याग्रह की लड़ाई के इतिहास की मुख्य तारीखें और घटनायें

परिशिष्ट – २ : पूर्ति

सूची

चित्रसूचि

* लड़ाई की शुरुआत में
* फिनिक्सवासी
* टॉल्स्टॉय फार्म के पहले निवासी
* विचाराधीन
* गोखलेजी
* ट्रान्सवाल की कूच
* लड़ाई के अंत में
* इंग्लैंड जाने से पहले
* आफ्रिका से बिदा होते

नकशा

हिंदुस्तान के व्यापार मार्ग

ब्रिटिश साउथ आफ्रिका

प्रथम खंड

१. भूगोल

अफ्रीका संसार के बड़े से बड़े महाद्वीपों में से एक है | हिन्दुस्तान भी एक महाद्वीप के जैसा देश माना जाता है | परन्तु अफ्रीका के भूभाग में से केवल क्षेत्रफल की दृष्टि से चार या पाँच, हिन्दुस्तान बन सकते हैं | दक्षिण अफ्रीका अफ्रीका के ठेठ दक्षिण विभाग में स्थित है | हिन्दुस्तान के समान अफ्रीका भी एक प्रायद्वीप ही है | इसलिए दक्षिण अफ्रीका का बड़ा भाग समुद्र से घिरा हुआ है | अफ्रीका के बारेमें सामान्यत: यह माना जाता है कि वहाँ ज़्यादा से ज़्यादा गरमी पड़ती है; और एक दृष्टि से यह बात सच है | भूमध्य-रेखा अफ्रीका के मध्य से होकर जाती है और इस रेखा के आसपास के देशों में पड़ने वाली गरमी की कल्पना हिन्दुस्तान के लोगों को नहीं आ सकती | ठेठ हिन्दुस्तान के दक्षिण में जिस गरमी का अनुभव हम करते हैं, उससे हमें भूमध्य-रेखा के आसपास के प्रदेशों की गरमी की थोड़ी कल्पना हो सकती है | परन्तु दक्षिण अफ्रीका में ऐसा कुछ नहीं है, क्योंकि वह भूभाग भूमध्य-रेखा से बहुत दूर है | उसके बहुत बड़े भाग की आबहवा इतनी सुन्दर और ऐसी समशीतोष्ण है कि वहाँ यूरोप की जातियाँ आराम से रह-बस सकती हैं, जब कि हिन्दुस्तान में बसना उनके लिए लगभग असंभव है | फिर, दक्षिण अफ्रीका में तिब्बत अथवा काश्मीर जैसे बड़े ऊँचे प्रदेश तो हैं, परन्तु वे तिब्बत अथवा काश्मीर की तरह दस से चौदह हजार फुट ऊँचे नहीं हैं | इसलिए वहाँ की आबवहा सूखी और सहन हो सके इतनी ठंडी रहती है | यही कारण है कि दक्षिण अफ्रीका के कुछ भाग क्षय से पीड़ित रोगियों के लिए अति उत्तम माने जाते हैं | ऐसे भागों में से एक भाग दक्षिण अफ्रीका की सुवर्णपुरी जोहानिसबर्ग है | ज़मीन के जिस टुकड़े पर जोहानिसबर्ग शहर बसा हुआ है, वह आज से ५० वर्ष पहले बिलकुल वीरान और सूखे घास वाला प्रदेश था | परन्तु जब वहाँ सोने की खदानों की खोज हुई तब मानो जादू के प्रताप से टपाटप घर बाँधे जाने लगे; और आज तो वहाँ असंख्य विशाल सुशोभित प्रासाद खड़े हो गये हैं | वहाँ के धनी लोगों ने स्वयं पैसा खर्च करके दक्षिण अफ्रीका के उपजाऊ भागों से और यूरोप से भी, एक-एक पेड़ के पन्द्रह-पन्द्रह रूपये देकर, पेड मँगाये हैं और वहाँ लगाये हैं | पिछला इतिहास न जानने वाले यात्री को आज वहाँ जाने पर ऐसा ही लगेगा कि ये पेड़ उस शहर में जमानों से चले आ रहे होंगे |

दक्षिण अफ्रीका के सारे विभागों का वर्णन मैं यहाँ नहीं देना चाहता | जिन विभागों का हमारे विषय के साथ सम्बन्ध है, उन्हीं का थोड़ा वर्णन मैं यहाँ देता हूँ | दक्षिण अफ्रीका में दो हुकूमतें हैं : (१) ब्रिटिश, और (२) पुर्तगाली | पुर्तगाली भाग डेलागोआ बे कहा जाता है | हिन्दुस्तान से जाने वाले जहाजों के लिए वह दक्षिण अफ्रीका का पहला बन्दरगाह कहा जाएगा | वहाँ से दक्षिण की ओर आगे बढ़े तो पहला ब्रिटिश उपनिवेश नेटाल आता है |

उसका बन्दरगाह पोर्ट नेटाल कहलाता है | परन्तु हम उसे डरबन के नाम से जानते हैं और दक्षिण अफ्रीका में भी सामान्यत: वह इसी नाम से जाना जाता है | वह नेटाल का सबसे बड़ा शहर है | पीटर-मेरित्सबर्ग नेटाल की राजधानी है | वह डरबन से अन्दर के भाग में लगभग ६० मील के अन्तर पर समुद्र की सतह से लगभग दो हजार फुट की ऊँचाई पर बसी हुई है | डरबन की आबहवा कुछ हद तक बम्बई की आबवहा से मिलती-जुलती मानी जाएगी | बम्बई की अपेक्षा वहाँ की हवा में ठंडक ज़रूर कुछ अधिक है | नेटाल को छोड़ कर आगे जाने पर ट्रान्सवाल आता है | ट्रान्सवाल की धरती आज दुनिया को अधिक से अधिक सोना देती है | कुछ ही वर्ष पूर्व वहाँ हीरे की खदानें भी मिली हैं, जिनमें से एक में संसार का सबसे बड़ा हीरा निकला है | संसार के इस सबसे बड़े हीरे का नाम खदान के मालिक क्लीनन के नाम पर रखा गया है | यह क्लीनन हीरा कहा जाता है | इस हीरे का वजन ३००० कैरेट अर्थात् १(१/३) एवोर्डुपोइज पौंड है, जब कि कोहिनूर हीरे का आज का वजन लगभग १०० कैरेट है और रूस के ताज के हीरे 'ऑलेंफ' का वजन लगभग २०० कैरेट है |

यद्यपि जोहानिसबर्ग सुवर्णपुरी है और हीरों की खदानें भी उसके निकट में ही है, फिर भी वह ट्रान्सवाल की राजधानी नहीं है | ट्रान्सवाल की राजधानी है प्रिटोरिया | वह जोहानिसबर्ग से ३६ मील दूर है और उसमें मुख्यत: शासक और राजनीतिक लोग तथा उनसे सम्बन्धित लोग ही रहते हैं | इस कारण से प्रिटोरिया का वातावरण तुलना में शान्त कहा जाएगा, जब कि जोहानिसबर्ग का वातावरण अतिशय अशान्त माना जाएगा | जिस प्रकार हिन्दुस्तान के किसी छोटे से गाँव से या कहिये कि छोटे से शहर से बम्बई पहुँचते ही वहाँ की दौड़धूप, धांधली और अशान्ति से आदमी घबरा उठता है, उसी प्रकार प्रिटोरिया से जाने वाला आदमी जोहानिसबर्ग के दृश्य से घबरा उठता है | जोहानिसबर्ग के नागरिक चलते नहीं परन्तु दौड़ते-से मालूम होते हैं, ऐसा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी | किसी के पास किसी की ओर देखने जितना भी समय नहीं होता; सब कोई इसी विचार में डूबे हुए मालूम होते हैं कि कम से कम समय में ज़्यादा से ज़्यादा धन कैसे कमाया जा सकता है ! ट्रान्सवाल को छोड़ कर यदि अधिक भीतरी प्रदेश में ही पश्चिम की ओर हम जायें, तो ऑरेंज फ्री स्टेट अथवा ऑरेंजिया का उपनिवेश आता है | उसकी राजधानी का नाम ब्लूमफोंटीन है | वह अत्यन्त शान्त और छोटासा शहर है | ऑरेंजिया में ट्रान्सवाल की तरह सोने और हीरे की खदानें नहीं हैं | उस उपनिवेश में थोड़े घंटों की रेलयात्र करने के बाद ही हम केप कॉलोनी की सीमा पर पहुँच जाते हैं | केप कॉलोनी दक्षिण अफ्रीका का सबसे बड़ा उपनिवेश है | उसकी राजधानी केप टाउन के नाम से पुकारी जाती है, जो केप कॉलोनी का सबसे बड़ा बन्दरगाह है | वह कैप ऑफ गुड होप ('शुभ आशा का अन्तरीप') नामक अन्तरीप पर स्थित है | उसका यह नाम पुर्तगाल के राजा जॉन ने रखा था, क्योंकि वास्को डी गामा द्वारा उसकी खोज होने पर राजा के मन में यह आशा बंधी थी कि अब उसकी प्रजा हिन्दुस्तान पहुँचने का एक नया और अधिक सरल मार्ग प्राप्त कर सकेगी | हिन्दुस्तान उस युग के समुद्री अभियानों का चरम लक्ष्य माना जाता था |

ये चार मुख्य ब्रिटिश उपनिवेश हैं | इनके सिवा ब्रिटिश हुकूमत के 'संरक्षण' में कुछ ऐसे प्रदेश हैं, जहाँ दक्षिण अफ्रीका के-यूरोपियनों के आगमन से पहले के – मूल निवासी रहते हैं |

दक्षिण अफ्रीका का मुख्य उद्योग खेती ही माना जाएगा | खेती के लिए वह देश उत्तम है | उसके कुछ भाग तो अत्यन्त उपजाऊ और सुन्दर हैं | अनाजों में अधिक से अधिक मात्रा में और आसानी से पकने वाला अनाज मकई है; और मकई दक्षिण अफ्रीका के हबशी लोगों का मुख्य आहार है | कुछ भागों में गेहूँ भी पैदा होता है | फलों के लिए तो दक्षिण अफ्रीका बड़ा विख्यात है | नेटाल में अनेक जाति के और बहुत सुन्दर तथा सरस केले, पपीते और अनन्नास पकते हैं और वह भी इतनी बहुतायत से कि गरीब से गरीब आदमी को भी वे मिल सकते हैं | नेटाल में और अन्य उपनिवेशों में नारंगी, संतरे, 'पीच' (आडू) और 'एप्रिकोट' (जरदालू) इतनी बड़ी मात्रा में पैदा होते हैं की हजारों लोग मामूली-सी मेहनत करें तो भी गाँवों में वे ब**ग़ैर** पैसे के ये फल पा सकते हैं | केप कॉलोनी तो अंगूरों की और 'पल्म' (एक जाति का बड़ा बेर) की ही भूमि है | वहाँ के जैसे सरस अंगूर दूसरे उपनिवेशों में शायद ही होते हो | मौसम में उनकी क़ीमत इतनी कम होती है कि गरीब आदमी भी भरपेट अंगूर खा सकता है | और यह तो कभी हो ही नहीं सकता कि जहाँ-जहाँ हिन्दुस्तानियों की आबादी हो वहाँ आम के पेड़ न हों | हिन्दुस्तानियों ने दक्षिण अफ्रीका में आम के पेड़ लगाये | इसका नतीजा यह है कि आज वहाँ काफ़ी मात्रा में आम भी खाने को मिल सकते हैं | उनकी कुछ जातियाँ ज़रूर बम्बई की हाफुस-पायरी जैसी जातियों से होड़ लगा सकती हैं | साग-भाजी भी उस उपजाऊ भूमि में खूब पैदा होती है; और ऐसा कहा जा सकता है कि शौकीन हिन्दुस्तानियों ने वहाँ लगभग सभी तरह की साग-भाजी पैदा की है |

पशु भी वहाँ काफ़ी संख्या में हैं, ऐसा कहा जा सकता है | वहाँ के गाय-बैल हिन्दुस्तान के गाय-बैलों से ज़्यादा कद्दावर और ज़्यादा ताकतवर होते हैं | गौरक्षा का दावा करने वाले हिन्दुस्तान में असंख्य गायों और बैलों को हिन्दुस्तान के लोगों की तरह ही दुबले-पतले और कमजोर देखकर मैं लज्जित हुआ हूँ और मेरा हृदय अनेक बार रोया है | दक्षिण अफ्रीका में मैंने कभी दुर्बल गायें या बैल देखे हों ऐसा मुझे याद नहीं है, यद्यपि मैं सारे भागों में लगभग अपनी आँखें खुली रखकर घूमा हूँ |

कुदरत ने दूसरी कई देनें तो इस भूमि को दी ही हैं, परन्तु सृष्टि-सौन्दर्य से इस भूमि को सुशोभित करने में भी उसने कोई कमी नहीं रखी है | डरबन का दृश्य बहुत सुन्दर माना जाता है | परन्तु केप कॉलोनी उससे कहीं अधिक सुन्दर है | केप टाउन 'टेबल माउन्टेन' नामक न तो अधिक नीचे और न अधिक ऊँचे पहाड़ की तलेटी में बसा हुआ है | दक्षिण अफ्रीका को पूजने वाली एक विदुषी महिला उस पहाड़ के विषय में लिखी अपनी कविता में कहती है कि जिस अलौकिकता का अनुभव मैंने टेबल माउन्टेन में किया है वैसा अन्य किसी पहाड़ में मैंने अनुभव नहीं किया | इस कथन में अतिशयोक्ति हो सकती है | मैं मानता हूँ कि इसमें अतिशयोक्ति है |

परन्तु उस विदुषी महिला की एक बात मेरे गले उतर गई है | वह कहती है कि टेबल माउन्टेन केप टाउन के निवासियों के मित्र का काम करता है | बहुत ऊँचा न होने के कारण वह पहाड़ भयंकर नहीं लगता | लोगों को दूर से ही उसका पूजन नहीं करना पड़ता, बल्कि वे पहाड़ पर ही मकान बनवाकर वहाँ रहते हैं; और ठीक समुद्र-तट पर होने के कारण समुद्र अपने स्वच्छ जल से उसका पाद-पूजन करता है तथा उसका चरणामृत पीता है | बालक और बूढ़े, स्त्रियाँ और पुरुष सब निर्भय हो कर लगभग सारे पहाड़ में घूम सकते हैं और हजारों नागरिकों की आवाजों से सारा का सारा पहाड़ प्रतिदिन गूँज उठता है | विशाल वृक्ष और सुगंधित तथा रंग-बिरंगे फूल समूचे पहाड़ को इतना अधिक सँवार और सजा देते हैं कि मनुष्य को उसकी सुषमा और शोभा देखने और उसमें घुमने से कभी तृप्ति ही नहीं होती |

दक्षिण अफ्रीका में इतनी बड़ी नदियाँ नहीं हैं जिनकी तुलना हमारी गंगा-यमुना के साथ की जा सके | जो थोड़ी नदियाँ वहाँ हैं, वे हमारे यहाँ की नदियों की तुलना में छोटी हैं | उस देश में अनेक स्थानों पर नदियों का पानी पहुँचता ही नहीं | ऊँचे प्रदेशों में नदियों से नहरें भी कैसे ले जाई जाएँ ? और जहाँ समुद्र जैसी विशाल नदियाँ न हों वहाँ नहरें हो भी कैसे सकती हैं ? दक्षिण अफ्रीका में जहाँ-जहाँ पानी की कुदरती तंगी है वहाँ पाताल-कुएँ खोदे जाते हैं और उनमें से खेतों की सिंचाई की जा सके इतना पानी पवन-चक्कियों और भाफ के इंजिनों द्वारा खींचा जाता है | खेती को वहाँ की सरकार की ओर से काफ़ी मदद मिलती है | किसानों के सलाह देने और उनका मार्गदर्शन करने के लिए सरकार अपने कृषिशास्त्रियों को उनके पास भेजती है | अनेक स्थानों पर सरकार किसानों के लाभ के लिए खेती के विविध प्रयोग करती है | वह नमूने के फार्म चलाती है, किसानों को अच्छे पशुओं और अच्छे बीज की सुविधा देती है, बहुत ही थोड़ी क़ीमत में पाताल-कुएँ खुदवा देती है और किस्तों में उसका मूल्य चुकाने की सुविधा किसानों को देती है | इसी प्रकार सरकार खेतों के आसपास लोहे के कंटीले तारों की बाड़ भी करा देती है |

दक्षिण अफ्रीका भूमध्य-रेखा के दक्षिण में है और हिन्दुस्तान उस रेखा के उत्तर में है, इसलिए वहाँ का समूचा वातावरण – जलवायु हिन्दुस्तानियों को उलटा मालूम होता है | वहाँ की ऋतुएँ भी हिन्दुस्तान से उलटी होती हैं | उदाहरण के लिए, हमारे देश में जब गरमी का मौसम होता है तब वहाँ सरदी का मौसम रहता है | बरसात का कोई निश्चित नियम वहाँ है, ऐसा नहीं कहा जा सकता | किसी भी समय बरसात वहाँ गिर सकती है | सामान्यत: २० इंच से अधिक बरसात वहाँ नहीं होती |

२. इतिहास

अफ्रीका के भूगोल पर दृष्टिपात करते हुए पहले प्रकरण में हमने जिन भौगोलिक विभागों की संक्षिप्त चर्चा की, वे प्राचीन काल से चले आ रहे हैं ऐसा पाठक न मान लें | अत्यन्त प्राचीन काल में दक्षिण अफ्रीका के निवासी कौन लोग रहे होंगे, यह निश्चित रूप से पता नहीं लगाया जा सका है | यूरोपियन लोग दक्षिण अफ्रीका में आकर बसे उस समय वहाँ हबशी रहते थे | ऐसा माना जाता है कि अमेरिका में जिस समय गुलामी के अत्याचार का बोलबाला था, उस समय अमेरिका से भागकर कुछ हबशी दक्षिण अफ्रीका में आकर बस गये थे | वे लोग अलग-अलग जातियों के नाम से पहचाने जाते हैं – जैसे, जूलू, स्वाज़ी, बसूटो, बेकवाना आदि | उनकी भाषायें भी अलग अलग हैं | ये हबशी ही दक्षिण अफ्रीका के मूल निवासी माने जाते हैं | परन्तु दक्षिण अफ्रीका इतना बड़ा देश है कि आज हबशियों की जितनी आबादी वहाँ है उससे बीस या तीस गुनी आबादी उसमें आसानी से समा सकती है | रेल द्वारा डरबन से केप टाउन जाने के लिए लगभग १८०० मील की यात्रा करनी होती है | समुद्री मार्ग से भी दोनों के बीच का अंतर १००० मील से कम नहीं है | पहले प्रकरण में बताये गये चार उपनिवेशों का कुल क्षेत्रफल ४७३००० वर्गमील है |

इस विशाल भूभाग में हबशियों की आबादी १९१४ में लगभग ५० लाख और गोरों की आबादी लगभग १३ लाख थी | जूलू जाति के लोग हबशियों में ज़्यादा से ज़्यादा कद्दावर और सुन्दर कहे जा सकते हैं | 'सुन्दर' विशेषण का उपयोग मैंने हबशियों के बारेमें जान-बूझकर किया है | गोरी चमड़ी और नुकीली नाक को हम सुन्दरता का लक्षण मानते हैं | यदि इस अन्धविश्वास को हम घड़ी भर एक ओर रख दें, तो हमें ऐसा नहीं लगेगा कि जूलू को गढ़ने में ब्रह्मा ने कोई कसर रहने दी है | स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ऊँचे और ऊँचाई के अनुपात में विशाल छाती वाले होते हैं | उनके संपूर्ण शरीर के स्नायु सुव्यवस्थित और बहुत बलवान होते हैं | उनकी पिंडलियाँ और भुजायें माँसल और सदा गोलाकार ही दिखाई देती हैं | कोई, स्त्री या पुरुष झुक कर या कूबड़ निकाल कर शायद ही चलता देखा जाता है | उनके होठ ज़रूर बड़े और मोटे होते हैं; परन्तु वे सारे शरीर के आकार के अनुपात में होते हैं, इसलिए मैं तो नहीं कहूँगा कि वे जरा भी बेडौल लगते हैं | आँखें उनकी गोल और तेजस्वी होती हैं | नाक चपटी और बड़े मुँह पर शोभा दे इतनी बड़ी होती है और उनके सिर के घुंघराले बाल उनकी सीसम जैसी काली और चमकीली चमड़ी पर बड़े सुशोभित हो उठते हैं | अगर हम किसी जूलू से पूछें कि दक्षिण अफ्रीका में बसने वाली जातियों में सबसे सुन्दर वह किसे मानता है, तो वह अपनी जाति के लिए ही ऐसा दावा करेगा | और उसके इस दावे को मैं जरा भी अनुचित नहीं मानूँगा | आज यूरोप में सैन्डो और दूसरे पहलवान अपने शागिर्दों की भुजाओं, हाथ आदि अवयवों के विकास के लिए जो प्रयत्न करते हैं, वैसा कोई प्रयत्न किये बिना कुदरती रूप में ही इस जाति के अवयव मजबूत और सुडौल दिखाई देते हैं | भूमध्य-रेखा के नजदीक रहने वाली जातियों की

चमड़ी काली ही हो, यह कुदरत का नियम है | और कुदरत जो-जो आकार गढ़ती है उसमें सौन्दर्य ही होता है ऐसा हम यदि मानें, तो सौन्दर्य के विषय में हमारे संकुचित और एकदेशीय विचारों से हम मुक्त हो जाएँगे | इतना ही नहीं, परन्तु हिन्दुस्तान में हमें अपनी ही चमड़ी थोड़ी काली होने पर जो अनुचित लज्जा और घृणा मालूम होती है, उससे भी हम मुक्त हो जाएँगे |

ये हबशी घास-मिट्टी के बने गोल कूबों (झोंपड़ियों) में रहते हैं | हर कूबे की एक ही गोल दीवाल होती है और उसके ऊपर घास का छप्पर होता है | इस छप्पर का आधार कूबे के भीतर खड़े एक खम्भे पर होता है | कूबे का एक नीचा दरवाजा होता है, जिसमें झुक कर ही जाया जा सकता है | यही दरवाजा कूबे में हवा के आने-जाने का साधन होता है | उसमें किवाड़ शायद ही कहीं होते हैं | हमारी तरह वे लोग भी दीवाल को और कूबे की फर्श को मिट्टी और लीद या गोबर से लीपते हैं | ऐसा माना जाता है कि वे लोग कोई भी चौकोन चीज नहीं बना सकते | उन्होंने अपनी आँखों को केवल गोल चीजें देखने और बनाने की ही तालीम दी है | कुदरत रेखागणित की सीधी लकीरें और सीधी आकृतियाँ बनाती नहीं देखी जाती | और कुदरत के इन निर्दोष बालकों का ज्ञान कुदरत के उनके अनुभव पर आधार रखता है |

मिट्टी के इस महल में साज-सामान भी उसके अनुरूप ही होता है | यूरोपीय सभ्यता ने दक्षिण अफ्रीका में प्रवेश किया उससे पहले तो वहाँ के हबशी लोग पहनने-ओढ़ने और सोने-बैठने के लिए चमड़े का ही उपयोग करते थे | कुरसी, टेबल, संदूक वगैरा चीजें रखने जितनी जगह भी उस महल में नहीं होती थी; और आज भी ये चीजें उसमें नहीं होती, ऐसा बहुत हद तक कहा जा सकता है | अब उन्होंने घर में कम्बलों का उपयोग शुरू किया है | ब्रिटिश सत्ता की स्थापना से पहले हबशी स्त्री-पुरुष दोनों लगभग नग्न अवस्था में ही घूमते-फिरते थे | आज भी गाँवों में बहुत लोग इसी अवस्था में रहते हैं | वे अपने गुप्त भागों के एक चमड़े से ढंक लेते हैं | कुछ लोग तो इतना भी नहीं करते | परन्तु इसका अर्थ कोई पाठक यह न करे कि इस कारण से वे लोग अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रख सकते | जहाँ बहुत बड़ा समुदाय किसी रिवाज के वश होकर चलता हो वहाँ दूसरे समुदाय को वह रिवाज अनुचित लगे, तो भी यह बिलकुल संभव है कि पहले समुदाय की दृष्टि में अपने रिवाज में कोई दोष न हो | इन हबशियों को एक-दूसरे की ओर देखते रहने की फुरसत ही नहीं होती | शुकदेवजी जब नग्न अवस्था में स्नान कर रही स्त्रियों के बीच होकर निकल गये तब न तो स्वयं उनके मन में कोई विकार उत्पन्न हुआ और न उन निर्दोष स्त्रियों को किसी प्रकार का क्षोभ हुआ अथवा लज्जित होने जैसा कुछ लगा, ऐसा भागवतकार कहते हैं | और इस वर्णन में मुझे कुछ भी अलौकिक नहीं लगता | हिन्दुस्तान में आज ऐसे अवसर पर हम में से कोई मनुष्य इतनी स्वच्छता और निर्विकारता का अनुभव नहीं कर सकता, यह कोई मनुष्य-जाति की पवित्रता के प्रयत्न की मर्यादा का नहीं बताता, परन्तु हमारे अपने दुर्भाग्य और पतन को ही बताता है | हम लोग इन हबशियों को जो जंगली मानते हैं वह हमारे अभिमान के कारण | वास्तव में हम मानते हैं वैसे जंगली वे नहीं है |

ये हबशी जब शहर में आते है तब उनकी स्त्रियों के लिए यह नियम बना हुआ है कि छाती से घुटनों तक का भाग उन्हें ढांकना ही चाहिए | इस नियम के कारण इन स्त्रियों को इच्छा न होने पर भी ऐसा वस्त्र अपने शरीर पर लपेटना पड़ता है | इसके फलस्वरूप दक्षिण अफ्रीका में इस नाप के कपड़े की खूब खपत होती है और वैसी लाखों चादरें या कमलिया यूरोप से हर साल वहाँ आती हैं | पुरुषों के लिए कमर से घुटनों तक का भाग ढांकना अनिवार्य है, इसलिए उन्होंने तो यूरोप के उतरे हुए कपड़े पहनने का रिवाज अपना लिया है | जो लोग ऐसा नहीं करते वे नाड़े वाला जांघिया पहनते हैं | ये सब कपड़े यूरोप से ही वहाँ आते हैं |

इन हबशियों का मुख्य आहार मकई है | मिलने पर वे मांस भी खाते हैं | सौभाग्य से वे लोग मिर्च-मसालों से बिलकुल अनजान हैं | उनके भोजन में मसाला डाला गया हो अथवा हलदी का रंग भी आ गया हो, तो वे नाक सिकोड़ेंगे; और जो लोग पूरे जंगली कहे जाते हैं, वे तो ऐसे खाने को छुएँगे भी नहीं | साबित उबाली हुई मकई के साथ थोड़ा नमक मिला कर एक बार में एक पौंड मकई खा जाना किसी साधारण जूलू के लिए जरा भी आश्चर्य की बात नहीं है | वे लोग मकई का आटा पीसते हैं, उसे पानी में उबालते है और उसकी लपसी बनाकर खाने में संतोष मानते हैं | जब कभी मांस मिल जाता है तब उसे कच्चा या पका – उबाला हुआ या आग पर भुना हुआ – केवल नमक के साथ वे लोग खा जाते हैं | चाहे जिस प्राणी का मांस खाने में उन्हें कोई हिचक नहीं होती |

उनकी भाषाओं के नाम जातियों के नाम पर ही होते हैं | लेखन-कला उनमें गोरों ने ही आरंभ की है | हबशी वर्णमाला या ककहरे जैसी कोई जीच नहीं है | अब हबशी भाषाओं में बाइबल आदि पुस्तकें रोमन लिपि में छपी गई हैं | जूलू भाषा अत्यन्त मधुर और मीठी है | उसके अधिकतर शब्दों के अंत में 'आ' का उच्चार होता है | इसकी वजह से भाषा का नाद कानों को मुलायम और मधुर लगता हैं | उसके शब्दों में अर्थ और काव्य दोनों होते हैं, ऐसा मैंने पढ़ा है और सुना है | जिन थोड़े से शब्दों का मुझे अनायास ज्ञान प्राप्त हुआ है, उनके आधार पर भाषा-विषयक उपर्युक्त मत मुझे उचित मालूम हुआ है | शहरों और उपनिवेशों के जो यूरोपियन नाम मैंने दिये हैं, उन सबके मधुर और काव्यमय हबशी नाम तो हैं ही | ये नाम याद न होने से मैं यहाँ नहीं दे सका हूँ |

ईसाई पादरियों के मतानुसार हबशियों का कोई धर्म ही नहीं था, और आज भी नहीं है | परन्तु यदि हम धर्म का विस्तृत और विशाल अर्थ करें तो यह कहा जा सकता है कि हबशी ऐसी अलौकिक शक्ति को अवश्य मानते और पूजते हैं, जिसे वे समझ नहीं सकते | इस शक्ति से वे लोग डरते भी हैं | उन्हें इस सत्य का भी अस्पष्ट भान है कि शरीर के नाश के साथ मनुष्य का सर्वथा नाश नहीं हो जाता | यदि हम नीति को धर्म का आधार मानें, तो नीति में विश्वास रखने वाले होने के कारण हबशियों को धार्मिक भी माना जा सकता है | सच और झूठ का उन्हें पूरा-पूरा भान है | अपनी स्वाभाविक अवस्था में वे लोग सत्य का जितना पालन करते हैं उतना गोरे या हम लोग

करते हैं या नहीं यह शंकास्पद है | उनके मन्दिर या मन्दिर जैसे कोई स्थान नहीं होते | अन्य प्रजाओं और जातियों की तरह उन लोगों में भी अनेक प्रकार के अंध विश्वास देखने में आते हैं |

पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि शरीर की ताकत में संसार की किसी भी जाति से घटिया न ठहरने वाली यह जाति सचमुच इतनी डरपोक है कि किसी गोरे बालक को देखकर भी डर जाती है | अगर कोई आदमी हबशी के सामने पिस्तोल का नीशाना बांधे, तो या तो वह भाग जाएगा या इतना मूढ़ हो जाएगा कि उसमें भागने की भी ताकत नहीं रह जाएगी | इसका कारण तो है ही | मुट्ठीभर गोरे आकर इतनी बड़ी और जंगली जाति को वश में कर सके हैं, इसमें कोई जादू अवश्य होना चाहिए ऐसा उनके मन में बैठ गया है | वे लोग भाले और तीर-कमान का उपयोग तो अच्छी तरह जानते थे | परन्तु ये हथियार उनसे छीन लिए गये हैं | और बन्दूक न तो किसी दिन उन्होंने देखी और न कभी चलाई | यह बात उनकी समझ में ही नहीं आती कि जिस बन्दूक को न तो दियासलाई दिखानी होती, न हाथ की अंगुली चलाने के सिवा दूसरी कोई गति करनी पड़ती, उसकी छोटी सी नली से एकाएक आवाज कैसे निकलती है, आग कैसे भड़क उठती हैं और गोली के लगते ही पल भर में आदमी के प्राण कैसे उड़ जाते हैं ! इसलिए हबशी बन्दूक चलाने वाले आदमी के डर से हमेशा घबराया हुआ रहता है | उसने और उसके बापदादों ने इस बात का अनुभव किया है कि बन्दूक की इन गोलियों ने अनेकों निराधार और निर्दोष हबशियों के प्राण लिए हैं | परन्तु उनमें से अधिकतर लोग आज भी इसका कारण नहीं जानते |

इस जाति में धीरे-धीरे 'सभ्यता' का प्रवेश हो रहा है | एक ओर भले पादरी अपनी बुद्धि और समझ के अनुसार ईसा मसीह का सन्देश उन लोगों के पास पहुँचाते हैं | वे हबशियों के लिए स्कूल खोलते हैं और उन्हें सामान्य अक्षर-ज्ञान देते हैं | उनके प्रयत्न से कुछ चरित्रवान हबशी भी तैयार हुए हैं | लेकिन बहुत से हबशी, जो आज तक अक्षर-ज्ञान की कमी के कारण और सभ्यता के परिचय के अभाव में अनेक प्रकार की अनीतियों से मुक्त थे, आज ढोंगी और पाखंडी भी बन गये हैं | सभ्यता के संपर्क में आये हुए हबशियों में से शायद ही कोई शराब की बुराई से बचा हो | और जब उनके शक्तिशाली शरीर में शराब का प्रवेश होता है तब वे पूरे पागल बन जाते हैं और न करने जैसा सब कुछ कर डालते हैं | सभ्यता के बढ़ने के साथ आवश्यकताओं का बढ़ना उतना ही निश्चित है जितना दो और दो मिलकर चार होना | हबशियों की आवश्यकतायें बढाने के लिए कहिये अथवा उन्हें श्रम का मूल्य सिखाने के लिए कहिये, प्रत्येक हबशी पर मुंड-कर (पॉल-टैक्स) और झोंपड़ी-कर (कूबा-कर) लगाया गया है | यह कर यदि उन पर न लगाया जाय तो अपने खेतों में रहने वाली यह जाति ज़मीन के भीतर सैकड़ों गज गहरी खदानों में सोना या हीरे निकालने के लिए न उतरे | और यदि खदानों के लिए हबशियों की मेहनत का लाभ न मिले, तो सोना या हीरे पृथ्वी के गर्भ में ही पड़े रहें | इसी तरह यदि उन पर ऐसा कर न लगाया जाय, तो यूरोपियनों को दक्षिण अफ्रीका में नौकर मिलने कठिन हो जाएँ | इसका नतीजा यह हुआ है कि खदानों में काम करने वाले हजारों हबशियों को अन्य रोगों के साथ एक प्रकार का क्षयरोग भी हो जाता है, जिसे 'माइनर्स

थाइसिस' कहा जाता है | यह रोग प्राण-घातक होता है | उसके पंजे में फंसने के बाद कुछ ही लोग उबर पाते हैं | ऐसे हजारों आदमी अपने बाल-बच्चों से दूर खदानों में एक साथ रहें, तो उस स्थिति में वे संयम का कितना पालन कर सकते हैं, यह पाठक आसानी से सोच सकते हैं | इसके फलस्वरूप जो रोग (उपदंश आदि) फैलते हैं, उनके शिकार भी ये लोग हो जाते हैं | दक्षिण अफ्रीका के विचारशील गोरे भी इस गंभीर प्रश्न पर विचार करने लगे हैं | उनमें से कुछ लोग अवश्य यह मानते हैं कि सभ्यता का प्रभाव इस जाति पर सब मिलाकर अच्छा पड़ा है, ऐसा दावा शायद ही किया जा सके | परन्तु सभ्यता का बुरा प्रभाव तो इस जाति पर हर आदमी देख सकता है |

जिस महान देश में ऐसी निर्दोष जाति रहती थी वहाँ आज से लगभग ४०० वर्ष पहले डच लोगों ने अपनी छावनी डाली | वे लोग गुलाम तो रखते ही थे | कुछ डच अपने जावा उपनिवेश से मलायी गुलामों को लेकर दक्षिण अफ्रीका के उस भाग में पहुँचे, जिसे हम केप कॉलोनी के नाम से जानते हैं | ये मलायी लोग मुसलमान हैं | उनमें डच लोगों का रक्त है और इसी प्रकार डच लोगों के कुछ गुण भी हैं | वे अलग-अलग तो सारे दक्षिण अफ्रीका में फैले दिखाई देते हैं, परन्तु उनका मुख्य केन्द्र केप टाउन ही माना जाएगा | आज उनमें से कुछ मलायी गोरों की नौकरी करते हैं और दूसरे स्वतंत्र धन्धा करते हैं | मलायी स्त्रियाँ बड़ी उद्यमी और होशियार होती हैं | उनका रहन-सहन अधिकतर साफ-सुथरा देखा जाता है | स्त्रियाँ धोबी का और सिलाई का काम बहुत अच्छा कर सकती हैं | पुरुष कोई छोटा-मोटा व्यापार करते हैं | बहुतेरे इक्का या तांगा चलाकर अपना गुजर करते हैं | कुछ लोगों ने उच्च अंग्रेजी शिक्षण भी लिया है | उनमें से एक डॉ. अब्दुल रहमान केप टाउन में मशहूर हैं | वे केप टाउन की पुरानी धारासभा में भी पहुँच सके थे | नये संविधान के अनुसार मुख्य धारासभा में जाने का यह अधिकार छीन लिया गया है |

डच लोगों का थोड़ा वर्णन करते-करते बीच में मलायी लोगों का वर्णन भी प्रसंगवश आ गया | लेकिन अब हम यह देखें कि डच लोग कैसे आगे बड़े | डच जितने बहादुर लड़वैये थे और हैं, उतने ही कुशल किसान भी थे और आज भी हैं | उन्होंने देखा कि उनके आसपास का देश खेती के लिए बहुत अच्छा है | उन्होंने यह भी देखा कि वहाँ के मूल निवासी साल में थोड़े ही समय काम करके आसानी से अपना निर्वाह कर सकते हैं | उन्होंने सोचा इन लोगों से मेहनत क्यों न कराई जाय ? डच लोगों के पास उनकी अपनी कला थी, बन्दूक थी और वे यह भी जानते थे कि दूसरे प्राणियों की तरह मनुष्यों को कैसे वश में किया जा सकता है | उनकी मान्यता यह थी कि ऐसा करने में उनका धर्म बिलकुल बाधक नहीं होता | इसलिए अपने कार्य के औचित्य के बारेमें जरा भी शंकाशील हुए बिना उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के हबशियों की मेहनत से खेती वगैरा काम शुरू कर दिये |

जिस प्रकार डच लोग दुनिया में अपना विस्तार करने के लिए अच्छे-अच्छे प्रदेश खोज रहे थे, उसी प्रकार अंग्रेज भी खोज रहे थे | धीरे-धीरे अंग्रेज भी दक्षिण अफ्रीका में आये | अंग्रेज और डच चचेरे भाई तो थे ही | दोनों के स्वभाव एक से, दोनों के लोभ भी एक से | जब एक ही कुम्हार के बनाये हुए बरतन एक जगह इकट्ठे होते हैं तब उनमें से कुछ टकरा कर फूटते ही है | इसी प्रकार ये दोनों जातियाँ काने पाँव फैलाते-फैलाते और धीरे-धीरे हबशियों को वश में करते-करते आपस में टकरा गई | दोनों के बीच झगड़े हुए, युद्ध भी हुए | मजूबा की पहाड़ी पर अंग्रेजों की हार भी हुई | यह मजूबा का घाव अंग्रेजों के मन में बना रहा, जिसने पक कर एक फोड़े का रूप ले लिया; और यह फोड़ा उस जग-प्रसिद्ध बोअर-युद्ध में फूटा, जो सन् १८९९ से १९०२ तक चला | और जब जनरल क्रोन्जे को लॉर्ड रॉबर्ट्स ने हरा दिया तब उन्होंने महारानी विक्टोरिया को तार किया : 'मजूबा का बदला हमने ले लिया |' परन्तु जब (बोअर-युद्ध से पूर्व) इन दोनों के बीच पहली मुठभेड़ हुई तब डचों में से बहुतेरे लोग अंग्रेजों की नाममात्र की सत्ता भी स्वीकार करने को तैयार नहीं थे; इसलिए वे दक्षिण अफ्रीका के भीतरी प्रदेशों में चले गये | इसके फलस्वरूप ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट का जन्म हुआ |

ये ही डच लोग दक्षिण अफ्रीका में 'बोअर' के नाम से पुकारे जाने लगे | बालक जिस तरह अपनी माँ से चिपटा रहता है वैसे ही अपनी भाषा से चिपटे रह कर बोअरों ने उसे सुरक्षित रखा है | हमारी स्वतंत्रता का हमारी भाषा के साथ अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है, यह बात उनकी रग-रग में समा गई है | इस भाषा ने ऐसा नया रूप धारण कर लिया है, जो वहाँ के लोगों के लिए सुविधाजनक हो | बोअर लोग हॉलैण्ड के साथ अपना निकट सम्बन्ध नहीं रख पाये, इसलिए वे संस्कृत से निकलने वाली प्राकृत भाषाओं की तरह मूल डच से निकलने वाली अपभ्रंश डच भाषा बोलने लगे | परन्तु अब वे अपने बालकों पर अनावश्यक बोझ नहीं डालना चाहते, इसलिए इस प्राकृत बोली को ही उन्होंने स्थायी रूप दे दिया है; और वह 'टाल' के नाम से जानी जाती है | उसी भाषा में वहाँ की पुस्तकें लिखी जाती हैं | बालकों को शिक्षा उसी भाषा में दी जाती है और धारासभा में बोअर सदस्य अपने भाषण भी 'टाल' भाषा में ही देते हैं | यूनियन की रचना के बाद समूचे दक्षिण अफ्रीका में दोनों भाषायें-टाल या डच और अंग्रेजी-एकता पद भोगती हैं | वह भी इस हद तक कि वहाँ के सरकारी गजट और धारासभा की सारी कार्यवाई अनिवार्य रूप से दोनों भाषाओं में छपती है |

बोअर लोग सीधे-सादे, भोले और धर्म-परायण हैं | वे अपने विशाल खेतों में रहते हैं | हम वहाँ के खेतों के क्षेत्रफल की कल्पना नहीं कर सकते | हमारे किसानों के खेत दो या तीन बीघा ज़मीन वाले होते हैं | इससे छोटे खेत भी हमारे यहाँ होते हैं | लेकिन वहाँ के खेतों का अर्थ है एक-एक किसान के अधिकार में सैकड़ों या हजारों बीघा ज़मीन | इतनी बड़ी-बड़ी ज़मीनों को तुरन्त जोतने का लोभ भी ये किसान नहीं रखते | और यदि कोई उनसे तर्क करता है तो वे कहते हैं: "भले बिन-जोती पड़ी रहे | जिस ज़मीन में हम खेती नहीं करते उसमें हमारे बच्चे करेंगे |"

प्रत्येक बोअर लड़ने में पूरा कुशल होता है | वे लोग आपस में कितने ही क्यों न लड़े-झगड़ें, परन्तु अपनी स्वतंत्रता उन्हें इतनी प्रिय है कि जब कभी उस पर आक्रमण होता है तब सारे ही बोअर तैयार हो जाते हैं और एक योद्धा के समान बहादुरी से लड़ते हैं | उन्हें लम्बी-चौड़ी कवायद और तालीम की ज़रुरत नहीं होती, क्योंकि लड़ना तो सारी बोअर जाति का स्वभाव अथवा गुण ही है | जनरल स्मट्स, जनरल डी वेट और जनरल हर्ज़ोग तीनों बड़े वकील और बड़े किसान हैं; और तीनों उतने ही बड़े योद्धा भी हैं | जनरल बोथा के पास ९००० एकड़ का खेत था | खेती की सारी पेचीदगियों को वे जानते थे | जब वे संधिवार्ताओं के लिए यूरोप गये थे तब उनके विषय में ऐसा कहा गया था कि भेड़ों की परीक्षा करने में उनके जैसा कुशल यूरोप में भी शायद ही कोई होगा | ये ही जनरल बोथा स्व. प्रेसिडेन्ट क्रूगर के स्थान पर आये थे | उनका अंग्रेजी का ज्ञान बहुत सुन्दर था | फिर भी जब इंग्लैंड में वे ब्रिटिश सम्राट् और मंत्रि-मंडल से मिले तो उन्होंने हमेशा अपनी मातृभाषा में ही उनसे बातचीत करना पसंद किया | कौन कह सकता है कि उनका ऐसा करना उचित नहीं था ? अंग्रेजी भाषा का अपना ज्ञान बताने के लिए वे कोई गलती करने का खतरा भला क्यों उठाते ? अंग्रेजी में उपर्युक्त शब्द खोजने के लिए वे अपनी विचारधारा को भंग करने का साहस क्यों करते ? ब्रिटिश मंत्रि-मंडल केवल अनजान में ही अंग्रेजी भाषा के किसी अपरिचित मुहावरे का प्रयोग कर और उसका अर्थ न समझने के कारण वे स्वयं कुछ का कुछ उत्तर दे बैठें, शायद घबरा जाएँ, और इस कारण उनके कार्य को हानि पहुँचे – ऐसी गंभीर गलती वे क्यों करने लगे ?

जिस प्रकार बोअर पुरुष बहादुर और सरल हैं, उसी प्रकार बोअर स्त्रियाँ भी बहादुर और सरल हैं | बोअर-युद्ध के समय बोअर लोगों ने अपना खून बहाया था; यह कुरबानी वे अपनी स्त्रियाँ की हिम्मत और उनके प्रोत्साहन से ही कर सके थे | बोअर स्त्रियाँ को न तो अपने वैधव्य का भय था और न भविष्य का भय था |

मैंने ऊपर कहा है कि बोअर लोग धर्म-परायण हैं, ईसाई है | परन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वे ईसा मसीह के नये करार (न्यू टेस्टामेन्ट) में विश्वास करते हैं | सच पूछा जाय तो यूरोप ही कहाँ नये करार में विश्वास करते है ? परन्तु यूरोप में नये करार का आदर करने का दावा ज़रूर किया जाता है, यद्यपि बहुत थोड़े यूरोपवासी ईसा मसीह के शांतिधर्म को जानते हैं और उसका पालन करते हैं | परन्तु ऐसा कहा जा सकता है कि बोअर लोग तो नये करार को केवल नाम से ही जानते हैं | पुराने करार (ओल्ड टेस्टामेन्ट) को वे श्रद्धा और भक्ति से पढ़ते हैं और उसमें छपे युद्धों के वर्णनों को कंठाग्र करते हैं | मूसा पैगम्बर की 'आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत' की शिक्षा में वे पूरी तरह विश्वास करते हैं | और जैसा उनका विश्वास है वैसा ही उनका व्यवहार है |

बोअर स्त्रियाँ समझती थीं कि उनके धर्म का ऐसा आदेश है कि अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए बड़े से बड़ा दुःख भी सहन करना पड़े तो उन्हें करना चाहिए; इसलिए उन्होंने धीरज और आनन्द के साथ सारी आपत्तियाँ झेलीं | बोअर स्त्रियाँ को झुकाने और उनके जोश को तोड़ने के उपाय करने में लॉर्ड किचनर ने कोई कमी नहीं

रखी | उन्हें अलग-अलग कैम्पों में बन्द रखा गया | वहाँ उन्हें असह्य कष्टों में से गुजरना पड़ा | खाने-पीने की तंगी भोगनी पड़ी | कड़ाके की सरदी और भयंकर गरमी की यातनायें सहनी पड़ी | कभी कोई शराब पीकर पागल बना हुआ या विषय-वासना के आवेश में होश भूला हुआ सैनिक इन अनाथ स्त्रियाँ पर हमला भी कर देता था | इन कैम्पों में अनेक तरह के दूसरे उपद्रव भी खड़े हो जाते थे | फिर भी बहादुर बोअर स्त्रियाँ झुकी नहीं | अन्त में राजा एडवर्ड ने स्वयं ही लॉर्ड किचनर को लिखा कि, "यह सब मुझसे सहा नहीं जाता | यदि बोअरों को झुकाने का हमारे पास यही एक उपाय हो, तो इसके बजाय मैं उनके साथ कैसी भी सन्धि करना पसंद करूँगा | इस युद्ध को आप जल्दी ही खतम कर दें |"

जब इन सारे दुःखों और यातनाओं की पुकार इंग्लैंड पहुँची तब ब्रिटिश जनता का मन भी दुःख से भर गया | बोअरों की बहादुरी से अंग्रेज जनता आश्चर्यचकित हो गई | इतनी छोटी-सी बोअर जाति ने सारी दुनिया में अपना साम्राज्य फैलाने वाली ब्रिटिश सत्ता को छका दिया, यह बात अंग्रेज जनता के मन में चुभा करती थी | परन्तु जब इन कैम्पों में बन्द की हुई बोअर स्त्रियाँ के असह्य दुःखों की आवाज इन स्त्रियाँ के मारफत नहीं, उनके पुरुषों के मारफत भी नहीं – वे तो रणक्षेत्र में जूझ रहे थे-परन्तु दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले कुछ इने-गिने उदार-चरित अंग्रेज स्त्री-पुरुषों के मारफत इंग्लैंड पहुँची, तब अंग्रेज जनता विचार में पड़ गई | स्व. सर हेनरी कैम्पबेल-वैनरमैन ने अंग्रेज जनता के हृदय को पहचाना और उन्होंने बोअर-युद्ध के खिलाफ गर्जना की | स्व. स्टेड ने सार्वजनिक रूप में ईश्वर से यह प्रार्थना की, और दूसरों को ऐसी प्रार्थना करने के लिए प्रेरित किया, कि इस युद्ध में ईश्वर अंग्रेजों को हरा दे | वह दृश्य चमत्कारिक था | बहादुरी से भोगा हुआ सच्चा कष्ट पत्थर जैसे हृदय को भी पिघला देता है, यह ऐसे दुःख अर्थात् तपस्या की महिमा है; और इसी में सत्याग्रह की कुंजी है |

इसके फलस्वरूप फ्रीनिखन की सन्धि हुई और अन्त में दक्षिण अफ्रीका के चारों उपनिवेश एक शासन-तंत्र के नीचे आ गये | यद्यपि अखबार पढ़ने वाला हर हिन्दुस्तानी इस सन्धि के बारेमें जानता होगा, फिर भी एक-दो बातें ऐसी है जिनकी कल्पना भी अनेकों को शायद नहीं होगी | फ्रीनिखन की सन्धि होते ही दक्षिण अफ्रीका के चारों उपनिवेश परस्पर जुड़ गये हों ऐसा नहीं है | प्रत्येक उपनिवेश की अपनी धारासभा थी | उसका मंत्रि-मंडल इस धारासभा के प्रति पूरी तरह जिम्मेदार नहीं था | ट्रान्सवाल और फ्री स्टेट की शासन-पद्धति 'क्राउन कॉलोनी' की शासन-पद्धति जैसी थी | ऐसा संकुचित अधिकार जनरल बोथा को या जनरल स्मट्स को कभी सन्तोष नहीं दे सकता था | फिर भी लॉर्ड मिल्नर ने 'बिना दूल्हे की बारात वाली' नीति अपनाना उचित माना | जनरल बोथा और जनरल स्मट्स धारासभा से अलग रहे | उन्होंने असहयोग कर दिया | सरकार के साथ कोई भी सम्बन्ध रखने से उन्होंने साफ इनकार कर दिया | लॉर्ड मिल्नर ने तीखा भाषण किया और कहा कि जनरल बोथा को ऐसा मान लेने की ज़रुरत नहीं कि सारी जिम्मेदारी का भार उन्हीं पर है | उनके बिना भी देश का राजकाज चल सकता है |

मैंने बिना किसी संकोच के बोअरों की बहादुरी, उनके स्वातंत्र्यप्रेम और उनके आत्मत्याग के बारेमें लिखा है | किन्तु मेरा आशय पाठकों पर यह छाप डालने का नहीं था कि संकट-काल में भी उनके बीच मतभेद पैदा नहीं होते थे अथवा उनमें कोई कमजोर मन वाले लोग होते ही नहीं थे | बोअरों में भी आसानी से खुश हो जाने वाला एक पक्ष लॉर्ड मिल्नर खड़ा कर सके थे; और उन्होंने यह मान लिया था कि इस पक्ष की मदद से वे धारासभा को स्वयं सफल बना सकेंगे | कोई नाटककार भी मुख्य पात्र के बिना अपने नाटक को रंगमंच पर सफल नहीं बना सकता; तब फिर इस कठिन संसार में राजकाज चलाने वाला कोई पुरुष मुख्य पात्र को भूल कर सफल होने की आशा रखे, तो वह पागल ही माना जाएगा | यही दशा सचमुच लॉर्ड मिल्नर की हुई | और यह भी कहा जाता था कि उन्होंने जनरल बोथा को धमकी तो दी थी, परन्तु ट्रान्सवाल और फ्री स्टेट का शासन जनरल बोथा के बिना चलाना इतना कठिन हो गया कि लॉर्ड मिल्नर अपने बगीचे में अकसर चिन्तातुर और व्याकुल अवस्था में देखे जाते थे ! जनरल बोथा ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि फ्रीनिखन के संधिपत्र का अर्थ मैंने निश्चित रूप से यह समझा था कि बोअर लोगों को अपनी आंतरिक व्यवस्था करने का पूरा अधिकार तुरन्त मिल जाएगा | उन्होंने यह भी कहा कि यदि ऐसा न होता तो मैंने संधिपत्र पर कभी भी हस्ताक्षर न किये होते | लॉर्ड किचनर ने उत्तर में यह कहा कि मैंने ऐसा कोई विश्वास जनरल बोथा को नहीं दिलाया था | मैंने इतना ही कहा था कि जैसे-जैसे बोअर प्रजा विश्वासपात्र सिद्ध होती जाएगी वैसे-वैसे उसे क्रमशः अधिक स्वतंत्रता मिलती जाएगी | अब इन दोनों के बीच न्याय कौन करे ? यदि कोई पंच द्वारा निर्णय कराने की बात कहता, तो भी जनरल बोथा उसे क्यों मानने लगे ? उस समय इंग्लैंड की बड़ी (साम्राज्य) सरकार ने जो न्याय किया वह संपूर्णतया उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाला था | उस सरकार ने यह बात स्वीकार की कि सामने वाला पक्ष – और उसमें भी निर्बल पक्ष-समझौते का जो अर्थ समझा हो वह अर्थ बलवान पक्ष को मान्य रखना ही चाहिए | न्याय और सत्य के सिद्धान्त के अनुसार तो सदा वही अर्थ सच्चा होगा | मेरे कथन का अपने मन में मैंने चाहे जो अर्थ मान रखा हो, फिर भी उसकी जो छाप पढ़ने वालों या सुनने वालों के मन पर पड़ती हो उसी अर्थ में मैंने अपना वचन कहा है या अपना लेख लिखा है, ऐसा मुझे उनके सामने स्वीकार करना ही चाहिए | बहुत बार हम व्यवहार में इस सुवर्ण-नियम का पालन नहीं करते, इसी कारण से हमारे अनेक लड़ाई-झगड़े पैदा होते हैं और सत्य के नाम पर अर्धसत्य का – अर्थात् सच कहा जाय तो ड्योढ़े असत्य का-उपयोग किया जाता है |

इस प्रकार जब सत्य की – इस उदाहरण में जनरल बोथा की – संपूर्ण विजय हुई, तब उन्होंने अपना कार्य हाथ में लिया | इसके फलस्वरूप चारों उपनिवेश एकत्र हुए और दक्षिण अफ्रीका को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हुई | यूनियन जैक उसका ध्वज है और नकशो में उस प्रदेश का रंग लाल दिखाया जाता है; फिर भी ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि दक्षिण अफ्रीका संपूर्ण रूप में स्वतंत्र ही है | ब्रिटिश साम्राज्य दक्षिण अफ्रीका की सरकार की संमति के बिना एक पैसा भी दक्षिण अफ्रीका से ले नहीं सकता | इतना ही नहीं, ब्रिटिश मंत्रियों ने

यह भी स्वीकार किया है कि यदि दक्षिण अफ्रीका ब्रिटिश ध्वज हटा देना चाहे और नाम से भी स्वतंत्र होना चाहे, तो कोई उसे ऐसा करने से रोक नहीं सकता | फिर भी यदि आज तक दक्षिण अफ्रीका के गोरों ने यह कदम नहीं उठाया, तो उसके लिए अनेक प्रबल कारण हैं | एक तो यह कि बोअर प्रजा के नेता चतुर और सयाने हैं | ब्रिटिश साम्राज्य के साथ वे इस प्रकार की भागीदारी अथवा ऐसा सम्बन्ध बनाये रखें, जिसमें उन्हें किसी तरह की हानि न उठानी पड़े, तो इसे वे अनुचित नहीं मानते | लेकिन इसके सिवा दूसरा एक व्यावहारिक कारण भी है | वह यह कि नेटाल में अंग्रेजों की संख्या अधिक है; केप कॉलोनी में भी अंग्रेजों की संख्या बहुत है, परन्तु बोअरों से अधिक नहीं; और जोहानिसबर्ग में केवल अंग्रेजों का ही प्राधान्य है | ऐसी दशा में यदि बोअर जाति समस्त दक्षिण अफ्रीका में स्वतंत्र प्रजासत्ताक राज्य स्थापित करना चाहे, तो घर में ही लड़ाई शुरू हो जाय और शायद उसमें से गृहयुद्ध भी भड़क उठे | इसलिए दक्षिण अफ्रीका आज भी ब्रिटिश साम्राज्य का एक डोमीनियन (अधिराज्य) माना जाता है |

दक्षिण अफ्रीका के यूनियन का संविधान किस प्रकार रचा गया, यह भी जानने जैसी बात है | चारों उपनिवेशों की धारासभाओं के प्रतिनिधियों ने एकमत होकर यूनियन के संविधान का मसौदा तैयार किया और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को उसे अक्षरश: स्वीकार करना पड़ा | ब्रिटिश लोकसभा के एक सदस्य ने संविधान के मसौदे में पाये गये एक व्याकरण-दोष की ओर सदस्यों का ध्यान खींचा और कहा कि ऐसा दोषयुक्त शब्द संविधान से निकाल देना चाहिए | परन्तु स्व. सर हेनरी कैम्पबेल-बैनरमैन ने सदस्य के सुझाव को अस्वीकार करते हुए कहा कि राज्य का शासन शुद्ध व्याकरण से नहीं चल सकता; यह संविधान ब्रिटिश मंत्रि-मंडल तथा दक्षिण अफ्रीका की सरकार के मंत्रियों के बीच हुए सलाह-मशविरे के परिणाम-स्वरूप रचा गया है; अत: उसमें व्याकरण का दोष भी दूर करने का अधिकार ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के लिए सुरक्षित नहीं रखा गया है | इसका नतीजा यह हुआ कि संविधान जिस रूप में था उसी रूप में उसे लोकसभा और लॉर्ड सभा ने मान्य रखा |

इस सम्बन्ध में एक तीसरी बात भी ध्यान देने योग्य है | यूनियन के संविधान में कुछ धारायें ऐसी हैं, जो तटस्थ पाठक को ज़रूर निरर्थक मालूम होंगी | उनकी वजह से खर्च भी बहुत बढ़ गया है | यह बात संविधान के रचयिताओं के ध्यान से बाहर भी नहीं थी | परन्तु उन लोगों का उद्देश्य संपूर्णता सिद्ध करना नहीं था, बल्कि आपसी समझौते से एकमत होना और संविधान को सफल बनाना था | इसी कारण से अभी यूनियन की चार राजधानियाँ मानी जाती हैं, क्योंकि कोई भी उपनिवेश अपनी राजधानी का महत्त्व छोड़ने को तैयार नहीं है | चारों उपनिवेशों की स्थानीय धारासभायें भी रखी गई हैं | चारों उपनिवेशों के लिए गवर्नर जैसा कोई पदाधिकारी तो होना ही चाहिए, इसलिए चार प्रान्तीय अधिकारी भी स्वीकार किये गये हैं | सब कोई यह समझते हैं कि चार स्थानीय धारासभायें, चार राजधानियाँ और चार प्रान्तीय शासक बकरी के गले के स्तनों की तरह निरुपयोगी और केवल आडम्बर बढ़ाने वाले ही हैं | परन्तु इससे दक्षिण अफ्रीका का शासन चलाने वाले व्यवहार-कुशल

राजनीतिक डरने वाले थोड़े ही थे ? इस व्यवस्था में आडम्बर होते हुए भी और उसके कारण खर्च अधिक होने पर भी चारों उपनिवेशों की एकता वांछनीय थी | इसलिए दक्षिण अफ्रीका के राजनीतिज्ञों ने बाहरी दुनिया की टीकाओं की चिन्ता किये बिना खुद को जो उचित लगा वही किया और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा उसे स्वीकार कराया |

इस तरह दक्षिण अफ्रीका का यह अतिशय संक्षिप्त इतिहास मैंने पाठकों की जानकारी के लिए यहाँ देने का प्रयत्न किया है | मुझे लगा कि इसके बिना सत्याग्रह के महान संग्राम का रहस्य समझाया नहीं जा सकता | मूल विषय पर आने से पहले अब हमें यह देखना होगा कि हिन्दुस्तानी लोग दक्षिण अफ्रीका में कैसे आये और वहाँ सत्याग्रह का आरम्भ होने के पूर्व वे अपनी कठिनाइयों और संकटों से कैसे जूझे |

३. दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों का आगमन

पिछले प्रकरण में हम यह देख चुके हैं कि अंग्रेज नेटाल में आकर कैसे बसे थे | वहाँ उन्होंने जूलुओं से कुछ अधिकार और रिआयतें प्राप्त कीं | अनुभव से उन्होंने यह समझ लिया कि नेटाल में गन्ने, चारा और कॉफी का सुन्दर उत्पादन हो सकता है | बड़े पैमाने पर ये फसलें पैदा करने के लिए हजारों मजदूरों की ज़रुरत थी | सौ-पचास अंग्रेज परिवार ऐसी सहायता के बिना ये फसलें पैदा नहीं कर सकते थे | इसलिए उन्होंने हबशियों को काम करने के लिए ललचाया और डराया भी | परन्तु अब गुलामी का कानून रद हो चुका था, इसलिए वे इस प्रयत्न में सफल हो सकने जितना बल हबशियों पर आजमा नहीं सके | हबशियों को बहुत मेहनत करने की आदत नहीं होती | छह माह की साधारण मेहनत से वे अपना निर्वाह भलीभाँति कर सकते है | तब फिर किसी मालिक के साथ वे लम्बी मुद्दत के लिए क्यों बंधें ? लेकिन जब तक स्थायी मजदूर न मिले तब तक अंग्रेज अपना यह ध्येय पूरा नहीं कर सकते थे | इसलिए उन्होंने भारत सरकार के साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ किया और मजदूरों की पूर्ति के लिए हिन्दुस्तान की सहायता माँगी | भारत सरकार ने नेटाल की माँग स्वीकार की और उसके फलस्वरूप हिन्दुस्तानी मजदूरों का पहला जहाज १६ नवम्बर, १८६० को नेटाल पहुँचा | दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास में यह तारीख उल्लेखनीय मानी जाएगी; क्योंकि यदि यह घटना न घटी होती तो दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानी न पहुँचे होते और वहाँ सत्याग्रह की लड़ाई भी न हुई होती | और उस स्थिति में यह इतिहास लिखने की आवश्यकता ही खड़ी न हुई होती |

मेरी दृष्टि से नेटाल के अंग्रेजों की यह माँग स्वीकार करने में भारत सरकार ने गंभीरता से सोचा नहीं | हिन्दुस्तान के अंग्रेज अधिकारी जाने-अनजाने नेटाल के अपने भाइयों के पक्ष में हो गये | यह सच है कि इकरारनामे में मजदूरों की रक्षा की यथासंभव अधिक से अधिक शर्ते दाखिल करके अनेक खाने-पीने की सामान्य सुविधायें कर दी गई थीं | परन्तु उसमें इस बात का पूरा ख्याल तो नहीं ही रखा गया कि इस प्रकार सुदूर देश में जाने वाले अपढ़ मजदूरों पर यदि कोई दुःख या संकट आ पड़े, तो उससे वे कैसे मुक्ति पा सकेंगे | और इन प्रश्नों पर तो बिलकुल नहीं सोचा गया कि हिन्दुस्तानी मजदूरों के धर्म का वहाँ क्या होगा अथवा वे अपनी नीति की रक्षा वहाँ कैसे करेंगे ? हिन्दुस्तान के अंग्रेज अधिकारियों ने यह भी नहीं सोचा कि कानून से भले ही गुलामी की प्रथा का अंत आ गया हो, परन्तु मालिकों के हृदय से दूसरों को गुलाम बनाने का लोभ तो दूर नहीं हुआ है | अधिकारियों को यह बात समझनी चाहिए थी, परन्तु वे समझे नहीं कि ये मजदूर सुदूर देश में जाकर एक निश्चित अवधि के लिए गुलाम बन जाएँगे | सर विलियम विल्सन हंटर ने, जिन्होंने इन मजदूरों की स्थिति का गहरा अध्ययन किया था, इस स्थिति की तुलना करते हुए दो शब्दों का या शब्द-समूह का प्रयोग किया था | नेटाल के ही हिन्दुस्तानी मजदूरों के बारेमें एक बार उन्होंने लिखा था कि वे अर्ध-गुलामी की स्थिति में रहते हैं | दूसरी बार

अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि नेटाल के हिन्दुस्तानी मजदूरों की स्थिति लगभग गुलामी की हद तक पहुँच गई है | और नेटाल के एक कमीशन के समक्ष साक्षी देते हुए वहाँ के एक बड़े से बड़े यूरोपियन, स्व. श्री एस्कंब ने भी यही बात स्वीकार की थी | ऐसे तो अनेकों प्रमाण नेटाल के अग्रणी यूरोपियनों के मुख से ही दिये जा सकते हैं | और उनमें से अधिकांश प्रमाण भारत सरकार के सामने इस विषय में पेश की गई अरजियों में एकत्र किये गये है | लेकिन जो होना था वही हुआ | जो जहाज इन मजदूरों को हिन्दुस्तान से नेटाल ले गया, वही जहाज मजदूरों के साथ सत्याग्रह के महान वृक्ष का बीज भी नेटाल ले गया |

इन मजदूरों को नेटाल से सम्बन्धित हिन्दुस्तानी दलालों ने कैसे ठगा, कैसे दलालों के भुलावे में आकर ये लोग नेटाल गये, नेटाल पहुँचने पर इनकी आँख कैसे खुली, आँख खुलने पर भी ये लोग नेटाल में क्यों रहे, क्यों दूसरे हिन्दुस्तानी भी इनके बाद वहाँ गये, वहाँ जाकर इन्होंने धर्म और नीति के समस्त बन्धन कैसे तोड़ डाले अथवा ये बन्धन कैसे टूट गये, कैसे इन अभागे मजदूरों में विवाहिता स्त्री और वेश्या के बीच का भेद बिलकुल मिट गया – यह सारी कहानी इस छोटी-सी पुस्तक में लिखी ही नहीं जा सकती |

ये हिन्दुस्तानी मजदूर नेटाल में 'एग्रीमेन्ट' पर गये हुए मजदूरों के नाम से पहचाने जाते थे | इस पर से ये मजदूर अपने आपको 'गिरमिटिया' कहने लगे | इसलिए अब आगे 'एग्रीमेन्ट' को हम 'गिरमिट' कहेंगे और उसके आधार पर गये हुए मजदूरों को 'गिरमिटिया' कहेंगे |

जब नेटाल में गिरमिटियों के जाने के समाचार मोरीशियस में फैले तब ऐसे मजदूरों से सम्बन्ध रखने वाले हिन्दुस्तानी व्यापारी नेटाल जाने को ललचाये | मोरीशियस नेटाल और हिन्दुस्तान के बीच में पड़ता है | मोरीशियस द्वीप में हजारों हिन्दुस्तानी व्यापारी और मजदूर रहते हैं | उनमें से एक व्यापारी स्व. अबूबकर आमद ने नेटाल में अपनी पेढ़ी खोलने का विचार किया | उस समय नेटाल के अंग्रेजों को भी इसकी कल्पना नहीं थी कि हिन्दुस्तानी व्यापारी क्या-क्या करने की शक्ति रखते हैं, न उन्हें इस बात की परवाह ही थी | अंग्रेजों ने गिरमिटियों की मदद से गन्ने, चाय, कॉफी वगैरा की बड़ा मुनाफा देने वाली फसलें पैदा कीं, गन्ने से शक्कर तैयार की और अचरज में डाल दे इतने कम समय में वे थोड़ी थोड़ी मात्रा में ये तीनों चीजें दक्षिण अफ्रीका को मुहैंया करने लगे | उन्होंने इतना धन कमाया कि अपने लिए बड़े-बड़े महल खड़े कर लिए और जंगल में मंगल कर दिया | ऐसे समय सेठ अबूबकर जैसा सरल, प्रामाणिक और चतुर व्यापारी उनके बीच आकर बसा, यह उन्हें अखरा नहीं | इतना ही नहीं, परन्तु एक अंग्रेज भी साझेदार के नाते उनके साथ पेढी में जुड़ गया ! अबूबकर सेठ ने व्यापार चलाया, ज़मीन खरीदी और उनकी बहुत बड़ी कमाई की अफवाहें हिन्दुस्तान में उनके वतन पोरबन्दर तथा उसके आसपास के गाँवों में फैलीं | इसके फलस्वरूप दूसरे मेमन नेटाल पहुँचे | उनके पीछे-पीछे सूरत

के बोहरे भी वहाँ जा पहुँचे | और इन व्यापारियों को मुनीमों की ज़रुरत तो थी ही | इसलिए गुजरात और काठियावाड़ (सौराष्ट्र) के हिन्दू मुनीम भी नेटाल पहुँच गये |

इस प्रकार नेटाल में दो वर्ग के हिन्दुस्तानी हो गये: (१) स्वतंत्र व्यापारी और उनका स्वतंत्र नौकर-वर्ग; (२) गिरमिटिया हिन्दुस्तानी | समय पाकर गिरमिटियों के बाल-बच्चे हुए | गिरमिट के कानून के अनुसार उनकी यह सन्तान यद्यपि मजदूरी करने के लिए बंधी हुई नहीं थी, फिर भी इस कानून की कुछ कड़ी धाराओं का बुरा असर तो उस पर पड़ा ही | गुलामी का दाग गुलामों की सन्तान को लगे बिना कैसे रहता ? ये गिरमिटिया मजदूर पाँच वर्ष के इकरार पर नेटाल जाते थे | पाँच वर्ष बीत जाने के बाद वहाँ मजदूरी करने को वे बंधे नहीं थे | इकरार पूरा होने के बाद स्वतंत्र मजदूरी या व्यापार करना हो तो वैसा करने का और नेटाल में स्थायी रूप से बसना हो तो वहाँ बसने का उन्हें अधिकार था | कुछ लोगों ने इस अधिकार का उपयोग किया और कुछ लोग हिन्दुस्तान लौट आये | जो हिन्दुस्तानी नेटाल में ही रहे वे 'फ्री इंडियन्स' के नाम से पुकारे जाने लगे | हम उन्हें गिरमिटमुक्त अथवा संक्षेप में मुक्त हिन्दुस्तानी कहेंगे | इस भेद को समझ लेना आवश्यक है | क्योंकि जो अधिकार पूर्ण स्वतंत्र हिन्दुस्तानी-जिनका वर्णन ऊपर आ गया है – भोगते थे, वे सब अधिकार गिरमिट से मुक्त हुए इन हिन्दुस्तानियों को नहीं थे | उदाहरण के लिए, ये लोग एक जगह से दूसरी जगह जाना चाहे तो इसके लिए उन्हें परवाना लेना ही चाहिए ऐसा नियम था | वे विवाह करें और उस विवाह को कानूनी दृष्टि से जायज मनवाना चाहें, तो यह ज़रूरी था कि उस विवाह को वे गिरमिटियों की रक्षा करने के लिए नियुक्त अधिकारी के दफ़्तर में दर्ज करायें | इनके सिवा भी दूसरे कड़े अंकुश उन लोगों पर लगे हुए थे |

ट्रान्सवाल और फ्री स्टेट में सन् १८८०-१८९० के वर्षों में बोअरों के प्रजा-सत्ताक राज्य थे | प्रजा-सत्ताक राज्य का अर्थ भी यहाँ स्पष्ट कर देना ज़रूरी है | यहाँ प्रजा-सत्ताक राज्य का अर्थ गोरा-सत्ताक राज्य है | हबशी प्रजा का उसके साथ कोई सम्बन्ध हो ही नहीं सकता था | हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने देखा कि वे केवल गिरमिटिया हिन्दुस्तानीयों और गिरमिट मुक्त हिन्दुस्तानियों के साथ ही व्यापार नहीं कर सकते, परन्तु हबशियों के साथ भी कर सकते हैं | हिन्दुस्तानी व्यापारी हबशी लोगों के लिए बड़े सुविधाजनक सिद्ध हुए | गोरे व्यापारियों से हबशी अतिशय डरते थे | गोरे व्यापारी हबशियों के साथ व्यापार तो करना चाहते थे, परन्तु हबशी ग्राहकों से वे मीठी जबान बोलेंगे ऐसी आशा ग्राहक रख ही नहीं सकते थे | अगर हबशी ग्राहक को अपने पैसे का पूरा बदला मिल जाता, तो वह अपना अहोभाग्य समझता था | परन्तु कुछ लोगों का ऐसा कड़वा अनुभव भी हुआ कि चार शिलिंग की चीज खरीदने के लिए एक पौंड उन्होंने गल्ले पर रखा, लेकिन सोलह शिलिंग लौटाने के बजाय गोरे व्यापारी ने चार शिलिंग ही लौटाये या कुछ भी न लौटाया ! गरीब हबशी ग्राहक अधिक रकम माँगता या हिसाब की भूल बताता, तो बदले में उसे भद्दी गालियाँ मिलतीं | इतने से ही छूट जाता तो भी बेचारा अपनी खैर मनाता; वर्ना भद्दी गालियाँ के साथ उसे गोरे व्यापारी का घूंसा या लात भी खानी पड़ती थी ! मेरा यह कहने का बिलकुल आशय

नहीं है कि सारे अंग्रेज व्यापारी हबशियों के साथ ऐसा व्यवहार करते थे | परन्तु इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि ऐसा उदाहरण काफ़ी संख्या में देखने को मिलते थे | इसके विपरीत, हिन्दुस्तानी व्यापारी हबशी ग्राहक से मीठी जबान तो बोलता ही था; परन्तु उसके साथ विनोद भी करता था | हबशी ग्राहक भोले होते थे और दुकान के भीतर आकार चीज़ों को हाथ में उठाकर देखना-परखना चाहते थे | हिन्दुस्तानी व्यापारी यह सब सहन करता था | यह सच है कि वह परमार्थ की दृष्टि से ऐसा नहीं करता था; इसमें उसकी दृष्टि स्वार्थपूर्ण ही थी | मौका मिलने पर हिन्दुस्तानी व्यापारी हबशी ग्राहकों को ठगे बिना नहीं रहता; परन्तु हबशियों में हिन्दुस्तानी व्यापारी की प्रियता का कारण उसकी मिठास थी | इसके सिवा, हबशी ग्राहक हिन्दुस्तानी व्यापारी से बिलकुल नहीं डरते थे; उलटे ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि जब किसी हिन्दुस्तानी व्यापारी ने हबशी ग्राहकों को ठगने का प्रयत्न किया और इसका पता उन्हें चल गया, तो उनके हाथों व्यापारी को मार भी खानी पड़ी है ! और उनकी गालियाँ तो हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने अनेकों बार सुनी हैं | इस प्रकार हिन्दुस्तानियों और हबशियों के इस सम्बन्ध में डरने के मौके तो हिन्दुस्तानियों को ही आये है | अंत में परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तानी व्यापारियों को हबशियों की ग्राहकी बहुत लाभदायक मालूम हुई | और हबशी तो सारे दक्षिण अफ्रीका में फैले हुए थे |

हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने सुना था कि ट्रान्सवाल और फ्री स्टेट में बोअर लोगों के साथ भी व्यापार किया जा सकता है | बोअर लोग सरल, भोले और आडम्बर-रहित होते हैं; वे हिन्दुस्तानी व्यापारियों के ग्राहक बनने में शर्मिन्दा नहीं होंगे | ऐसा सोचकर कुछ हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने ट्रान्सवाल और फ्री स्टेट की दिशा में भी प्रयाण किया | वहाँ जाकर उन्होंने दुकानें खोलीं | उन दिनों वहाँ रेल को सुविधा नहीं थी, इसलिए व्यापार में खूब मुनाफा मिल सकता था | हिन्दुस्तानी व्यापारियों की कल्पना सच निकली; उन्हें बोअरों और हबशियों की बहुत बड़ी ग्राहकी मिलने लगी | अब बचा केवल केप कॉलोनी | वहाँ भी कुछ हिन्दुस्तानी व्यापारी जा पहुँचे और अच्छी कमाई करने लगे | इस प्रकार थोड़ी-थोड़ी संख्या में चारों उपनिवेशों में हिन्दुस्तानी कौम बंट गई |

इस समय पूर्ण स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों की संख्या वहाँ ४० से ५० हजार के बीच और गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियों तथा उनकी सन्तानों की संख्या लगभग एक लाख है |

४. मुसीबतों का सिंहावलोकन – १

नेटाल

नेटाल के गोरे मालिकों को सिर्फ गुलामों की ज़रुरत थी | ऐसे मजदूर उन्हें पुसा नहीं सकते थे, जो गिरमिट की अवधि पूरी करने के बाद स्वतंत्र हो सकें और कुछ अंश में भी उनके साथ स्पर्धा कर सकें | ये गिरमिटिया मजदूर नेटाल इसलिए गये थे कि हिन्दुस्तान में खेती के धन्धे में या दूसरे किसी धन्धे में वे सफल नहीं हो पाये थे | फिर भी वे ऐसे नहीं थे कि खेती की उन्हें कोई कल्पना ही न हो अथवा ज़मीन या खेती की क़ीमत न समझ सकें | उन्होंने देखा कि नेटाल में यदि वे सिर्फ साग-भाजी भी पैदा करें, तो काफ़ी अच्छी कमाई कर सकते हैं; और यदि ज़मीन का एक छोटासा टुकड़ा भी ले लें, तब तो उससे और ज़्यादा कमाई कर सकते हैं | इसलिए बहुत से गिरमिटिया इकरार से मुक्त होने के बाद नेटाल में कोई न कोई छोटा-मोटा धन्धा करने लगे | इससे सब मिलाकर तो नेटाल जैसे देश के निवासियों को लाभ ही हुआ | अनेक तरह की साग-भाजी पैदा होने लगी, जो योग्य किसानों के अभाव में पहले पैदा नहीं होती थी | जो साग-भाजी कहीं-कहीं थोड़ी मात्रा में पैदा होती थी वह अब बड़ी मात्रा में पैदा होने लगी | इससे साग-भाजी के भाव एकदम उतर गये | लेकिन यह बात धनी गोरों को अच्छी नहीं लगी | उन्हें लगा कि आज तक जिसे वे अपना एकाधिकार मानते थे, उसमें अब हिस्सा बँटाने वाले पैदा हो गये हैं | इस कारण से इन गरीब गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध एक आन्दोलन नेटाल में शुरू हो गया | पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक ओर तो गोरे लोग अधिकाधिक संख्या में मजदूरों की माँग करते थे, हिन्दुस्तान से जितने भी गिरमिटिया आते थे वे सब नेटाल में खप जाते थे; और दूसरी ओर जो हिन्दुस्तानी गिरमिट-मुक्त होते थे उन पर अनेक तरह के प्रतिबन्ध लगाने का आन्दोलन चलाते थे | यही था हिन्दुस्तानियों की होशियारी और जी-तोड़ मेहनत का बदला !

इस आन्दोलन ने अनेक रूप ग्रहण किये थे | गोरों के एक वर्ग ने यह माँग की कि गिरमिट से मुक्त होने वाले मजदूरों को वापस हिन्दुस्तान भेज देना चाहिए और इसलिए पुराने इकरारनामे को बदल कर नये इकरारनामे में नये आने वाले मजदूरों से यह शर्त लिखवानी चाहिए कि या तो गिरमिट की अवधि पूरी हो जाने पर वे हिन्दुस्तान लौट जाएँगे या फिर से गिरमिट में दाखिल हो जाएँगे | दूसरे वर्ग ने यह विचार प्रकट किया कि गिरमिट से मुक्त होने पर हिन्दुस्तानी मजदूर अगर फिर से गिरमिट में दाखिल न होना चाहें, तो उनसे भारी वार्षिक मुंड-कर लिया जाय | इन दोनों वर्गों का उद्देश्य तो एक ही था: यह कि किसी भी युक्ति से गिरमिट-मुक्त वर्ग के लिए नेटाल में स्वतंत्रता से रहना सर्वथा असंभव कर दिया जाय | आन्दोलनकारियों ने इतना होहल्ला मचाया कि अंत में नेटाल सरकार ने एक कमीशन नियुक्त कर दिया | दोनों वर्गों की माँग बिलकुल अनुचित थी; और गिरमिट-मुक्त मजदूरों का अस्तित्व आर्थिक दृष्टि से नेटाल की समस्त प्रजा के लिए पूर्णतया लाभदायी था | इसलिए

कमीशन के समक्ष जो भी स्वतंत्र प्रमाण आये, वे सब उपरोक्त दोनों वर्गों के विरुद्ध थे | इसके फलस्वरूप तत्काल तो विरुद्ध पक्षों की दृष्टि से इस आन्दोलन का कोई परिणाम नहीं आया; परन्तु जैसे आग बुझने के बाद भी अपनी थोड़ी-बहुत निशानी छोड़ जाती है उसी तरह इस आन्दोलन ने भी अपनी थोड़ी-बहुत छाप नेटाल सरकार पर अवश्य डाली | दूसरा कुछ हो भी कैसे सकता था ? नेटाल की गोरी सरकार गोरों के धनिक वर्ग की हिमायती थी | उसने भारत सरकार के साथ इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार आरंभ किया और आन्दोलनकारियों के दोनों पक्षों की सूचनायें उसके सामने रखी | लेकिन भारत सरकार एकदम ऐसी सूचनायें कैसे स्वीकार करती, जिनके फलस्वरूप गिरमिटिया मजदूर नेटाल में हमेशा के लिए गुलामी में फँसे रहें ? गिरमिट के मातहत हिन्दुस्तानियों को इतनी दूर भेजने का एक कारण या बहाना यह था कि गिरमिट पूरी होने पर गिरमिटिया लोग स्वतंत्र बनकर अपनी शक्तियों का वहाँ पूरा विकास करेंगे और उसके फलस्वरूप अपनी आर्थिक स्थिति सुधारेंगे | नेटाल उस समय तक क्राउन कॉलोनी ही था, इसलिए कॉलोनियल ऑफिस उसके शासन के लिए पूरी तरह जिम्मेदार माना जाता था | अत: नेटाल उस ऑफिस से भी अपनी अन्यायपूर्ण इच्छाएँ और माँगे पूरी करने में मदद पाने की आशा नहीं रख सकता था | इस कारण से और ऐसे अन्य कारणों से नेटाल में उत्तरदायी शासन का अधिकार, प्राप्त करने का आन्दोलन आरंभ हुआ | उत्तरदायी शासन की यह सत्ता नेटाल को सन् १८९३ में मिली | अब नेटाल को अपनी ताकत का अनुभव होने लगा | कॉलोनियल ऑफिस को भी नेटाल की चाहे जैसी माँगे स्वीकार करने में अब अधिक कठिनाई नहीं मालूम हुई | नेटाल की इस नई अर्थात् उत्तरदायी सरकार ने भारत सरकार से सलाह-मशविरा करने के लिए अपने प्रतिनिधि हिन्दुस्तान में भेजे | उनकी माँग यह थी कि प्रत्येक गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी पर २५ पौंड अर्थात् रु ३७५ का वार्षिक मुंड-कर लगाया जाय | इसका अर्थ यही हुआ कि कोई भी हिन्दुस्तानी मजदूर इतना भारी कर भर नहीं सकता था और इसलिए स्वतंत्र मनुष्य के नाते नेटाल में रह नहीं सकता था | हिन्दुस्तान के तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड एल्गिन को २५ पौंड की रकम बहुत ज़्यादा भारी लगी और अन्त में उन्होंने ३ पौंड का वार्षिक मुंड-कर स्वीकार कर लिया | गिरमिटिया की कमाई के हिसाब से यह ३ पौंड का कर उसकी ६ मास की कमाई के बराबर होता था ! यह मुंड-कर केवल मजदूर पर ही नहीं लगाया गया, परन्तु उसकी पत्नी, तेरह वर्ष या इससे अधिक उमर की लड़की और सोलह वर्ष या इससे अधिक उमर के लड़कों पर भी लगाया गया था | शायद ही कोई मजदूर ऐसा होता था, जिसकी पत्नी और दो बच्चे न हों | इसका अर्थ यह हुआ कि सामान्यत: हर एक मजदूर को १२ पौंड का वार्षिक कर भरना था | यह कर मजदूरों के लिए कितना दु:खदायी हो गया था, इसका वर्णन करना असंभव है | केवल अनुभवी व्यक्ति ही इसका दु:ख जान सकता है अथवा जिसने मजदूरों के दु:ख को अपनी आँखों से देखा हो वह कुछ हद तक उसे समझ सकता है | नेटाल सरकार के इस कदम के खिलाफ हिन्दुस्तानी कौम खूब लड़ी थी | ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार को अरजियाँ भेजी गईं | परन्तु उनका परिणाम २५ पौंड के ३ पौंड होने से अधिक कुछ नहीं

आया | गिरमिटिया मजदूर स्वयं तो इस बात को क्या समझ सकते थे अथवा इस बारेमें क्या कर सकते थे ? आन्दोलन तो केवल हिन्दुस्तानी व्यापारी-वर्ग ने ही देशप्रेम से कहिये या परमार्थ की दृष्टि से प्रेरित होकर चलाया था |

जो व्यवहार गिरमिटिया मजदूरों के साथ किया गया वही स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों के साथ भी किया गया | नेटाल के गोरे व्यापारियों ने स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों के खिलाफ मुख्यत: ऐसे ही कारणों से आन्दोलन शुरू किया | हिन्दुस्तानी व्यापारी नेटाल में अच्छी तरह जम गये थे | उन्होंने शहर के अच्छे-अच्छे हिस्सों में ज़मीनें खरीद लीं | जैसे-जैसे गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियों की आबादी बढ़ती गई, वैसे वैसे उनकी ज़रुरत की चीजों की खपत भी बढ़ती गई | हजारों बोरी चावल हिन्दुस्तान से मँगाया जाता था और उसकी बिक्री से हिन्दुस्तानी व्यापारियों को अच्छा मुनाफा होता था | यह व्यापार अधिकतर और स्वाभाविक रूप में हिन्दुस्तानी व्यापारियों के हाथ में ही रहा | इसके सिवा, हबशियों के साथ के व्यापार में भी वे काफ़ी हिस्सा बँटाने लगे | यह बात छोटे गोरे व्यापारियों को सहन नहीं हुई | फिर, इन हिन्दुस्तानी व्यापारियों को कुछ अंग्रेजों ने ही बताया कि कानून के अनुसार उन्हें भी नेटाल की धारासभा के सदस्य बनने का और सदस्य चुनने का अधिकार है | अत: कुछ हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने अपने नाम भी मत-दाताओं की सूची में दर्ज कराये | इस स्थिति को नेटाल के राजनीतिक क्षेत्र के गोरे बरदाश्त नहीं कर सके; क्योंकि उन्हें यह चिन्ता होने लगी कि यदि इस प्रकार हिन्दुस्तानियों की स्थिति नेटाल में मजबूत हो जाय और उनकी प्रतिष्ठा बढ़े, तो उनकी स्पर्धा में गोरे यहाँ टिक नहीं सकेंगे | इससे नेटाल की उत्तरदायी सरकार का पहला कदम स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों के बारेमें ऐसा कानून बनाना था, जिससे एक भी नया हिन्दुस्तानी नेटाल में मतदाता न बन सके | सन् १८९४ में इस विषय का पहला बिल नेटाल की धारासभा में आया | इस बिल में हिन्दुस्तानियों को हिन्दुस्तानियों के नाते ही मतदान के अधिकार से वंचित रखने का सिद्धान्त स्वीकार किया गया था | नेटाल में रंगभेद के आधार पर हिन्दुस्तानियों के बारेमें बनाया गया यह पहला कानून था | हिन्दुस्तानी जनता ने इसका विरोध किया | एक रात में अरजी तैयार हुई | उस पर चार सौ आदमियों के हस्ताक्षर लिए गये | यह अरजी पहुँचते ही नेटाल की धारासभा चौंक उठी | लेकिन बिल तो पास हुआ ही | उस समय लॉर्ड रिपन उपनिवेशों के मंत्री थे | उनके पास हिन्दुस्तानियों की जो अरजी गई, उसमें दस हजार लोगों के हस्ताक्षर थे | दस हजार हस्ताक्षरों का अर्थ था नेटाल के लगभग सारे स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों के हस्ताक्षर | लॉर्ड रिपन ने नेटाल धारासभा के बिल को अस्वीकार कर दिया और कहा कि ब्रिटिश साम्राज्य कानून में रंगभेद को स्वीकार नहीं कर सकता | हिन्दुस्तानियों की यह विजय कितनी महत्त्वपूर्ण थी, इसकी कल्पना पाठकों को आगे चलकर अधिक हो सकेगी | इसके उत्तर में नेटाल सरकार ने धारासभा में एक नया बिल पेश किया | उसमें से रंगभेद तो निकल गया, किन्तु परोक्ष रूप से आक्रमण उसमें भी हिन्दुस्तानियों पर ही किया गया था | हिन्दुस्तानी कौम उसके खिलाफ भी लड़ी, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली | यह नया बिल द्वि-अर्थी था | उसका अर्थ स्पष्ट कराने

के लिए कौम यदि चाहती तो अंतिम अदालत तक अर्थात् प्रिवी कौंसिल तक लड़ सकती थी; परन्तु ऐसा करना उसने उचित नहीं समझा | मुझे आज भी लगता है कि प्रिवी कौंसिल तक उसका न लड़ना उचित ही था | कानून में रंगभेद को नहीं घुसने दिया गया, यह कोई मामूली बात नहीं थी |

परन्तु नेटाल के गोरे मालिकों या नेटाल सरकार को इतने से सन्तोष नहीं हुआ | हिन्दुस्तानियों की राजनीतिक सत्ता को नेटाल में जमने से रोकना उनके लिए एक आवश्यक कदम था | लेकिन उनकी नजर असल में तो हिन्दुस्तानियों के व्यापार पर और स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों के आगमन पर ही थी | ३० करोड़ लोगों की आबादी वाला हिन्दुस्तान अगर नेटाल की दिशा में उलट पड़े, तो नेटाल के गोरों का क्या होगा-वे तो समुद्र में ही बह जाएँगे ! इस भय से वहाँ के गोरे बेचैन हो उठे थे | उस समय नेटाल की आबादी का अनुपात लगभग इस प्रकार था : ४ लाख हबशी, ४० हजार गोरे, ६० हजार गिरमिटिया मजदूर, १० हजार गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी और १० हजार स्वतंत्र हिन्दुस्तानी | गोरों के भय के लिए कोई ठोस कारण तो नहीं थे, लेकिन डरे हुए मनुष्यों को उदाहरणों या दलीलों से कभी समझाया ही नहीं जा सकता | हिन्दुस्तान की लाचार हालत का और हिन्दुस्तानियों के रीति-रिवाजों का ज्ञान उन्हें नहीं था, इसलिए उनके मन में यह भ्रम था कि जैसे साहसी और जैसे शक्तिशाली हम स्वयं हैं वैसे ही हिन्दुस्तानी भी होने चाहिए | अत: उन्होंने केवल त्रैराशिक का हिसाब लगा लिया था | इसमें उन्हें दोषी कैसे माना जाय ? हिन्दुस्तान की करोड़ों की आबादी की तुलना में अपनी छोटी संख्या को देखकर उनका इस प्रकार भयभीत होना स्वाभाविक ही था | जो भी हो, परन्तु इसका परिणाम यह आया कि नेटाल की धारासभा ने दूसरे जो दो कानून पास किये, उनमें भी मतदान-सम्बन्धी हिन्दुस्तानियों की लड़ाई में मिली विजय के फलस्वरूप रंगभेद को उसे दूर रखना पड़ा; और गर्भित भाषा का उपयोग करके उसे अपना ध्येय सिद्ध करना पड़ा | इसके फलस्वरूप विरोध करने वाले हिन्दुस्तानियों की इज्जत कुछ हद तक बनी रही | हिन्दुस्तानी कौम इस बार भी ड़ट कर लड़ी, परन्तु कानून तो दोनों ही धारासभा में पास हुए | एक कानून से तो हिन्दुस्तानियों के व्यापार पर कड़ा अंकुश लगा दिया गया और दूसरे कानून से नेटाल में हिन्दुस्तानियों के प्रवेश पर | पहले कानून का आशय यह था कि कानून के अनुसार नियुक्त किये गये अधिकारी की इजाजत के बिना किसी को व्यापार का परवाना नहीं मिल सकता | परन्तु व्यवहार में चाहे जो गोरा जाकर अधिकारी से परवाना प्राप्त कर सकता था, जब कि हिन्दुस्तानी को वह बड़ी मुसीबतों के बाद मिलता था; इसके लिए हिन्दुस्तानी को वकील करना होता था और दूसरा खर्च भी करना पड़ता था | इसलिए ढीले-पोचे हिन्दुस्तानी तो व्यापार के परवाने के बिना ही रह जाते थे | दूसरे कानून की मुख्य शर्त यह थी कि जो हिन्दुस्तानी यूरोप की किसी भी भाषा में नेटाल में प्रवेश करने की अरजी लिख सके, वही नेटाल में प्रवेश पा सकता है | इसलिए इस कानून ने करोड़ों हिन्दुस्तानियों के लिए नेटाल का दरवाजा बिलकुल बन्द कर दिया | मैं जाने-अनजाने नेटाल सरकार के साथ अन्याय न कर बैठूँ, इसलिए मुझे यह बता देना चाहिए कि जो हिन्दुस्तानी इस कानून के पास होने से पूर्व तीन वर्ष तक नेटाल में रह चुका

हो, वह अगर नेटाल छोड़कर हिन्दुस्तान या दूसरे स्थान में जाता और वहाँ से नेटाल लौटता, तो यूरोप की कोई भाषा जाने बिना भी अपनी पत्नी और नाबालिग बच्चों के साथ वह नेटाल में प्रवेश कर सकता था |

इसके सिवा, नेटाल में गिरमिटिया हिन्दुस्तानियों तथा स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों पर दूसरे भी कानूनी और कानून से बाहर के प्रतिबन्ध लगे हुए थे | लेकिन उनमें पाठकों को उतारना मैं ज़रूरी नहीं मानता | इस पुस्तक के विषय को समझने के लिए जितनी बातें आवश्यक मालूम होती हैं उतनी ही यहाँ देने का मेरा विचार है | दक्षिण अफ्रीका के प्रत्येक उपनिवेश में बसने वाले हिन्दुस्तानियों की स्थिति का इतिहास बहुत विस्तार से दिया जा सकता है; परन्तु ऐसा इतिहास देना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है |

५. मुसीबतों का सिंहावलोकन – २

ट्रान्सवाल और अन्य उपनिवेश

नेटाल की तरह दक्षिण अफ्रीका के दूसरे उपनिवेशों में भी हिन्दुस्तानियों के प्रति गोरों की नापसंदगी कम-ज़्यादा मात्रा में १८८० से पहले ही बढ़ने लगी थी | केप कॉलोनी के सिवा दूसरे उपनिवेशों में गोरों की एक ही राय बनी थी कि मजदूरों के नाते तो हिन्दुस्तानी बड़े अच्छे हैं; परन्तु बहुतेरे गोरों के मन में यह बात स्वयंसिद्ध सत्य की तरह जम गई थी कि स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों के आने से दक्षिण अफ्रीका को केवल नुकसान ही होता है | ट्रान्सवाल प्रजा-सत्ताक राज्य था | वहाँ के प्रेसिडेन्ट के सामने हिन्दुस्तानियों का यह कहना हास्यास्पद बनने जैसा था कि हम ब्रिटिश प्रजाजन कहलाते हैं | हिन्दुस्तानियों को कोई भी शिकायत करनी हो तो वे केवल प्रिटोरिया स्थित ब्रिटिश राजदूत (एजेन्ट) के सामने ही कर सकते थे | ऐसा होते हुए भी आश्चर्य की बात तो यह है कि ट्रान्सवाल के ब्रिटिश साम्राज्य से बिलकुल अलग होने पर ब्रिटिश राजदूत हिन्दुस्तानियों की जो मदद कर सकता था, वह ट्रान्सवाल के ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत आ जाने पर बिलकुल खतम हो गई | जिस समय लॉर्ड मोर्ले भारत-मंत्री थे उन दिनों ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों की वकालत करने के लिए एक प्रतिनिधि-मंडल उनके पास गया था | तब लॉर्ड मोर्ले ने उसके सदस्यों से स्पष्ट शब्दों में कहा था: 'आप जानते हैं कि उत्तरदायी शासन-तंत्र वाले उपनिवेशों पर बड़ी (साम्राज्य) सरकार का नियंत्रण बहुत कम है | स्वतंत्र राज्यों को बड़ी सरकार युद्ध की धमकी दे सकती है-उनके साथ युद्ध भी कर सकती है, परन्तु उपनिवेशों के साथ तो सिर्फ सलाह-मशविरा ही हो सकता है | उनके साथ बड़ी सरकार का सम्बन्ध रेशम की डोर से बंधा हुआ है, जो थोड़ा भी खींचने से टूट सकती है | उनके साथ बल से तो काम लिया ही नहीं जा सकता; हाँ, कल से (युक्ति से) जो कुछ करना संभव है उतना सब करने का मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ |' जब ट्रान्सवाल के विरुद्ध युद्ध घोषित किया गया तब लॉर्ड लैंड्सडाउन, लॉर्ड सेलबोर्न वगैरा ब्रिटिश अधिकारियों ने कहा था कि युद्ध करने के अनेक कारणों में एक कारण ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों की दुःखद स्थिति भी है |

अब हम देखें कि ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों का दुःख क्या था | ट्रान्सवाल में हिन्दुस्तानी पहले-पहल सन् १८८१ में दाखिल हुए थे | स्व. सेठ अबूबकर ने ट्रान्सवाल की राजधानी प्रिटोरिया में दुकान खोली और उसके एक मुख्य मुहल्ले में ज़मीन भी खरीदी | उसके बाद दूसरे हिन्दुस्तानी व्यापारी भी एक के बाद एक वहाँ पहुँचे | उनका व्यापार धड़ल्ले से चलने लगा, इस कारण गोरे व्यापारियों को उनसे ईर्ष्या होने लगी | अखबारों में हिन्दुस्तानियों के खिलाफ लेख, पत्र वगैरा लिखे जाने लगे और धारासभा में यह माँग करने वाली अरजियाँ पेश की गई कि हिन्दुस्तानियों को ट्रान्सवाल से बाहर निकाल दिया जाय और उनका व्यापार बन्द कर दिया जाय | ट्रान्सवाल जैसे बिलकुल नये देश में गोरों की धनतृष्णा का कोई पार नहीं था | वे नीति और अनीति के बीच का भेद शायद

ही जानते थे | धारासभा में उन्होंने जो अरजियाँ पेश की थीं, उनमें ऐसे वाक्य लिखे गये थे: "ये लोग (हिन्दुस्तानी व्यापारी) मानवीय सभ्यता को जानते ही नहीं | वे बदचलती से होने वाले रोगों से सड़ रहे हैं | हर औरत को वे अपना शिकार समझते हैं | उनका विश्वास है कि औरतों में आत्मा होती ही नहीं |" इन चार वाक्यों में चार झूठ भरे हैं | ऐसे दूसरे बहुतेरे नमूने पेश किये जा सकते हैं | जैसे ये गोरे थे वैसे ही धारासभा में उनके प्रतिनिधि थे | हमारे व्यापारी क्या जानें कि उनके खिलाफ कैसा बेहूदा और अन्यायपूर्ण आन्दोलन चल रहा है ? अखबार तो वे पढ़ते ही नहीं थे | गोरों के अखबारी प्रचार और अरजियों द्वारा किये जाने वाले आन्दोलन का असर धारासभा पर पड़ा और धारासभा में एक बिल पेश हुआ | इसका पता जब अग्रणी हिन्दुस्तानियों को चला तो वे लोग चौंके | वे स्व. प्रेसिडेन्ट क्रूगर के पास पहुँचे | प्रेसिडेन्ट ने हिन्दुस्तानी नेताओं को घर में प्रवेश भी नहीं करने दिया | घर के आँगन में ही उन्हें खड़ा रखा और उनकी थोड़ी-बहुत बातें सुनने के बाद उनसे कहा: "तुम लोग इस्माईल की सन्तान हो, इसलिए तुम ईसो की सन्तान की गुलामी करने के लिए ही पैदा हुए हो | हम लोग ईसो की सन्तान माने जाते हैं, इसलिए तुम्हें हमारे बराबर बनाने वाले समान अधिकार तो कभी मिल ही नहीं सकते | हम जो अधिकार तुम्हें दें उन्हीं से तुम्हें सन्तोष मानना चाहिए |" प्रेसिडेन्ट के इस उत्तर में कोई द्वेष या रोष था, ऐसा हम नहीं कह सकते | प्रेसिडेन्ट क्रूगर को इसी प्रकार की शिक्षा मिली थी; बचपन से ही उन्हें बाइबल के पुराने करार में कही हुई बातें सिखाई गई थीं और उन्होंने विश्वास से उन बातों को स्वीकार कर लिया था | और, जिस मनुष्य का जो विश्वास हो वैसा ही वह शुद्ध मन से कहे, तो इसमें उसका दोष कैसे निकाला जाय ? परन्तु ऐसे निखालस और शुद्ध अज्ञान का भी बुरा असर तो होता ही है | उसका नतीजा यह आया कि १८८५ में एक बहुत कड़ा कानून उतावली से धारासभा में पास हुआ; मानो हजारों हिन्दुस्तानी तत्काल ट्रान्सवाल को लुटने की ताक में बैठे हों ! ब्रिटिश राजदूत को हिन्दुस्तानी नेताओं की प्रेरणा से इस कानून के खिलाफ कदम उठाने पड़े | यह मामला उपनिवेश मंत्री तक पहुँचा | इस कानून के अनुसार जो हिन्दुस्तानी ट्रान्सवाल में व्यापार करने के लिए आकर बसे, उसके लिए २५ पौंड देकर अपना नाम दर्ज करना ज़रूरी था; कोई हिन्दुस्तानी ट्रान्सवाल में एक इंच भी ज़मीन नहीं खरीद सकता था; और मतदाता तो वह बन ही नहीं सकता था | यह सब इतना अनुचित और अन्यायपूर्ण था कि ट्रान्सवाल सरकार तर्क से इसका बचाव नहीं कर सकती थी | ट्रान्सवाल सरकार और ब्रिटिश सरकार के बीच एक सन्धि हुई थी, जिसे 'लंदन कन्वेन्शन' कहा जाता था | उसकी १४वीं धारा ब्रिटिश प्रजाजनों के अधिकारों की रक्षा से सम्बन्ध रखती थी | उस धारा के अनुसार बड़ी (साम्राज्य) सरकार ने इस कानून का विरोध किया | ट्रान्सवाल सरकार ने यह तर्क दिया कि उसने जो कानून पास किया है, उसके लिए बड़ी सरकार ने ही पहले से स्पष्ट या गर्भित संमति दी थी |

इस प्रकार ब्रिटेन और ट्रान्सवाल की सरकार के बीच मतभेद पैदा होने से यह झगड़ा पंच के समक्ष रखा गया | पंच के निर्णय शिथिल था | उसने दोनों सरकारों को खुश रखने का प्रयत्न किया | नतीजा यह हुआ कि इस मामले

में भी हिन्दुस्तानियों को नुकसान उठाना पड़ा | लाभ इतना ही हुआ, यदि उसे लाभ कहा जा सके तो, कि अधिक नुकसान उठाने के बजाय उन्हें कम नुकसान उठाना पड़ा | पंच के उपर्युक्त निर्णय के अनुसार कानून में सुधार १८८६ में हुआ | उसके फलस्वरूप २५ पौंड के बदले ३ पौंड लेने का निर्णय हुआ; और ज़मीन बिलकुल न खरीद सकने की जो कड़ी शर्त थी उसे रद करके यह शर्त रखी गई कि हिन्दुस्तानी लोग ऐसे ही लोकेशन, बाड़े या मुहल्ले में ज़मीन खरीद सकते हैं, जो ट्रान्सवाल सरकार उनके लिए पहले से नियत कर दे | इस धारा का अमल करने में भी सरकार ने मन में चोरी रखी | इसलिए ऐसे बाड़ों में भी पूर्ण स्वामित्व की ज़मीनें खरीदने के अधिकार सरकार ने हिन्दुस्तानियों को नहीं दिये | ऐसे हर शहर में, जहाँ हिन्दुस्तानियों की वस्ती थी, ये बाड़े शहर से बहुत दूर और गन्दी से गन्दी जगह में रखे गये थे | वहाँ पानी की और रोशनी की कम से कम सुविधा होती थी; पाखानों की सफाई का भी यही हाल था | इसलिए हम हिन्दुस्तानी ट्रान्सवाल की पंचम (अछूत) जाति बन गये थे | इस कारण से इन बाड़ों में और हिन्दुस्तान के ढेढ़बाड़ों में कोई फर्क नहीं था, ऐसा कहा जा सकता है | जिस तरह हिन्दू यह मानते हैं कि भंगी, चमार या ढेढ़ को छूने से अथवा उसके पड़ोस में रहने से वे अपवित्र हो जाते हैं, उसी प्रकार ट्रान्सवाल के गोरे यह मानते थे कि हिन्दुस्तानियों के स्पर्श से या उनके पड़ोस में रहने से वे अपवित्र हो जाएँगे | इसके लिए १८८५ के इस कानून न. ३ का ट्रान्सवाल की सरकार ने यह अर्थ किया कि हिन्दुस्तानी लोग व्यापार भी इन्हीं लोकेशनों या बाड़ों में कर सकते है | यह अर्थ सही है या नहीं इसका निर्णय करने की जिम्मेदारी पंच ने ट्रान्सवाल के न्यायालय पर छोड़ दी थी, इसलिए हिन्दुस्तानी व्यापारियों की स्थिति ट्रान्सवाल में बड़ी विषम बन गई | इस सबके बावजूद कहीं सलाह मशविरा करके, कहीं अदालत में मुकदमे लड़कर, तो कहीं अपने थोड़े-बहुत प्रभाव का उपयोग करके हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने अपनी स्थिति को काफ़ी हद तक सँभाल रखा | बोअर-युद्ध छिड़ा उस समय वहाँ के हिन्दुस्तानियों की स्थिति ऐसी दुःखद और अनिश्चित थी |

अब हम फ्री स्टेट में हिन्दुस्तानियों की स्थिति की जाँच करेंगे | वहाँ मुश्किल से दस या पन्द्रह हिन्दुस्तानी दुकानें खुली होंगी कि गोरों ने हिन्दुस्तानियों के खिलाफ जबरदस्त आन्दोलन छेड़ दिया | वहाँ की धारासभा ने सावधानी से काम करके हिन्दुस्तानियों की जड़ ही उखाड़ दी | उसने एक कड़ा कानून पास किया और हिन्दुस्तानियों को नाम का मुआवजा देकर प्रत्येक हिन्दुस्तानी व्यापारी को फ्री स्टेट से निकाल दिया | उस कानून के अनुसार कोई हिन्दुस्तानी व्यापारी ज़मीन के मालिक या किसान के नाते फ्री स्टेट में बस ही नहीं सकता था | और, मतदाता तो वह कभी हो ही नहीं सकता था | खास इजाजत लेकर मजदूर के नाते या होटल के वेटर के नाते ही कोई हिन्दुस्तानी वहाँ बस सकता था ! ऐसी इजाजत भी हर एक अर्जदार को नहीं मिल सकती थी | इसका परिणाम यह हुआ कि कोई प्रतिष्ठित हिन्दुस्तानी दो-चार दिन के लिए भी फ्री स्टेट में रहना चाहे, तो बड़ी मुश्किल से ही

रह सकता था | बोअर-युद्ध छिड़ा उस समय वहाँ लगभग चालीस वेटरों के सिवा दूसरे कोई हिन्दुस्तानी नहीं थे |

केप कॉलोनी में भी थोड़ा-बहुत आन्दोलन तो अखबारों में हिन्दुस्तानियों के खिलाफ चला ही करता था | उदाहरण के लिए, हिन्दुस्तानी बालक सरकारी स्कूलों वगैरा में नहीं जा सकते थे | हिन्दुस्तानी यात्रियों को होटलों में ठहरने की जगह शायद ही मिल पाती थी | इस तरह हिन्दुस्तानियों के साथ अपमानजनक व्यवहार केप कॉलोनी में भी होता था | परन्तु व्यापार या ज़मीन की मालिकी के बारेमें बहुत समय तक हिन्दुस्तानियों को वहाँ कोई मुसीबत नहीं उठानी पड़ी |

केप कॉलोनी में ऐसी स्थिति क्यों थी, इसके कारण मुझे यहाँ बताने चाहिए | एक कारण तो यह था कि मुख्यत: केप टाउन में और सामान्यत: केप कॉलोनी में, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, मलायी लोगों की काफ़ी आबादी थी | मलायी लोग स्वयं मुसलमान थे, इसलिए हिन्दुस्तानी मुसलमानों के साथ उनके सम्बन्ध तुरन्त ही बांध गये; और हिन्दुस्तानी मुसलमानों के मारफत हिन्दुस्तानियों का थोड़ा-बहुत सम्बन्ध मलायी लोगों के साथ बंधना स्वाभाविक ही था | इसके सिवा, हिन्दुस्तानी मुसलमानों में से कुछ लोगों ने मलायी स्त्रियों के साथ विवाह-सम्बन्ध जोड़ लिया | मलायी लोगों के खिलाफ तो कोई कानून केप कॉलोनी की सरकार बना ही नहीं सकती थी | केप कॉलोनी उन लोगों की जन्मभूमि थी; और भाषा भी उनकी डच थी | डच लोगों के साथ ही वे पहले से रहे-बसे थे, इसलिए रहन-सहन में मलायी लोगों ने बहुत कुछ उनका अनुकरण कर लिया था | इन सब कारणों से केप कॉलोनी में हमेशा ही कम से कम रंगद्वेष रहा है |

फिर, केप कॉलोनी सबसे पुराना उपनिवेश होने के कारण तथा दक्षिण अफ्रीका का शैक्षणिक और सांस्कृतिक केन्द्र होने के कारण वहाँ सयाने, विनयशील और उदार हृदय के गोरे भी पैदा हुए | मेरी मान्यता के अनुसार तो संसार में एक भी ऐसा स्थान और एक भी ऐसी जाति नहीं है, जहाँ और जिसमें उचित अवसर प्राप्त होने पर और अच्छे संस्कार तथा शिक्षा मिलने पर सुन्दर से सुन्दर मानव-पुष्प न खिल सके | सौभाग्य से दक्षिण अफ्रीका में मैंने हर जगह ऐसे उत्तम मानव देखे हैं | परन्तु केप कॉलोनी में ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक थी | उनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध और विद्वान थे श्री मेरीमैन, जो दक्षिण अफ्रीका के ग्लैडस्टन माने जाते थे | १८७२ में केप कॉलोनी को उत्तरदायी शासन-तंत्र प्राप्त हुआ तब से वे उसके प्रत्येक मंत्रि-मंडल के सदस्य रहे और १९१० में दक्षिण अफ्रीका का यूनियन स्थापित हुआ उस समय वे उसके अंतिम मंत्रि-मंडल के प्रधानमंत्री थे | दूसरे दो परिवार थे – संपूर्ण श्राइनर परिवार और मोल्टीनो परिवार | ये दोनों परिवार श्री मेरीमैन के समकक्ष नहीं तो उनसे दूसरे नंबर पर तो आते ही थे | सर जॉन मोल्टीनो १८७२ के प्रथम मंत्रि-मंडल के प्रधानमंत्री थे | श्री डब्ल्यू. पी. श्राइनर एक प्रख्यात एडवोकेट थे | कुछ समय के लिए वे एटर्नी-जनरल रहे और आगे चलकर मंत्रि-मंडल

के प्रधानमंत्री भी रहे थे | इनकी प्रतिभाशाली बहन ऑलिव श्राइनर दक्षिण अफ्रीका की एक लोकप्रिय महिला थीं और जहाँ-जहाँ अंग्रेजी भाषा बोली जाती है वहाँ-वहाँ वे विदुषी के नाते विख्यात थीं | मनुष्य-मात्र पर उनका अपार प्रेम था | जब भी देखिये उनकी आँखों से प्रेम की वर्षा होती रहती थी | उन्होंने *ड्रीम्स* नामक पुस्तक लिखी तब से वे *ड्रीम्स* की लेखिका के रूप में प्रसिद्ध हो गई | उनकी सादगी इतनी बढ़ी हुई थी कि एक विख्यात परिवार की विदुषी महिला होते हुए भी घर में वे बरतन तक अपने हाथ से साफ करती थीं | श्री मेरीमैन ने और श्राइनर तथा मोल्टीनो परिवारों ने सदा ही हबशियों का पक्ष लिया था | जब-जब हबशियों के अधिकारों पर गोरों का आक्रमण होता था, तब-तब ये तीनों उनकी जोरदार हिमायत और बचाव करते थे | उनका यह प्रेम हिन्दुस्तानियों की ओर भी मुड़ता था, यद्यपि ये तीनों हबशियों और हिन्दुस्तानियों के बीच भेद रखते थे | उनका तर्क यह था कि हबशी दक्षिण अफ्रीका में गोरे आकर बसे उससे बहुत पहले के वतनी हैं, इसलिए गोरे हबशियों के स्वाभाविक अधिकार छीन नहीं सकते | परन्तु हिन्दुस्तानियों के बारेमें न्यायपूर्वक उनकी प्रतिस्पर्धा के भय को टालने के लिए कुछ कानून बनाये जाएँ, तो यह केवल अन्याय की बात नहीं कही जाएगी | फिर भी उनकी सहानुभूति तो हिन्दुस्तानियों के प्रति ही रहती थी | स्व. गोपाल कृष्ण गोखले जब दक्षिण अफ्रीका में आये थे उस समय उनके सम्मान में दक्षिण अफ्रीका की जो पहली सभा केप टाउन के टाउन-हॉल में हुई थी, उसके अध्यक्ष श्री श्राइनर थे | श्री मेरीमैन ने भी गोखले के साथ बड़ी मिठास और विनय से बातें की थीं और हिन्दुस्तानियों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की थी | केप टाउन के अखबारों में भी अन्य उपनिवेशों की अपेक्षा बहुत कम पक्षपात था | वे हिन्दुस्तानियों के उतने विरुद्ध नहीं थे |

श्री मेरीमैन और श्राइनर के बारेमें मैंने जो कुछ लिखा है वैसा दूसरे यूरोपियनों के बारेमें भी लिखा जा सकता है | यहाँ तो मैंने केवल उदाहरण के रूप में उपर्युक्त सर्वमान्य और प्रख्यात नाम ही दिये है | यह सच है कि ऐसे कारणों से केप कॉलोनी में रंगद्वेष अन्य उपनिशों से हमेशा कम रहा है, फिर भी जो हवा दक्षिण अफ्रीका के तीन उपनिवेशों में हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध निरंतर बहती रहती थी उसकी गंध केप कॉलोनी में पहुँचे बिना कैसे रह सकती थी ? इसलिए वहाँ भी नेटाल के जैसे हिन्दुस्तानियों के प्रवेश और व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाने वाले कानून – इमिग्रेशन रेस्ट्रिक्शन एक्ट और डीलर्स लाइसेन्सेज़ एक्ट – पास हुए |

इसलिए ऐसा कहा जा सकता है कि दक्षिण अफ्रीका का जो द्वार पहले हिन्दुस्तानियों के लिए बिलकुल खुला था, वह बोअर-युद्ध के समय लगभग बन्द हो गया था | ट्रान्सवाल में हिन्दुस्तानियों के प्रवेश पर लगी हुई तीन पौंड की फीस के सिवा दूसरा कोई नियंत्रण नहीं था | परन्तु जब नेटाल और केप कॉलोनी के बन्दरगाह हिन्दुस्तानियों के लिए बन्द हो गये तब दक्षिण अफ्रीका के भीतरी भाग में स्थित ट्रान्सवाल जाने वाले हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तान से जाकर कहाँ उतरते ? एक रास्ता था | वे पुर्तगाली बन्दरगाह डेलागोआ बे पर उतर कर ट्रान्सवाल जा सकते थे | परन्तु वहाँ भी कम या अधिक मात्रा में ब्रिटिश उपनिवेशों का अनुकरण किया गया था | इसलिए इतना कह

देना चाहिए कि अनेक कठिनाइयाँ उठाकर या रिश्वत देकर इक्के-दुक्के हिन्दुस्तानी ही नेटाल और डेलागोआ बे बन्दरगाहों पर उतर कर ट्रान्सवाल जा सकते थे |

६. हिन्दुस्तानियों ने क्या किया ?

१

हिन्दुस्तानी जनता की स्थिति पर विचार करते हुए पिछले प्रकरणों में हम कुछ हद तक यह देख चुके हैं कि हिन्दुस्तानियों ने अपने ऊपर होने वाले आक्रमणों का कैसे सामना किया | परन्तु सत्याग्रह की उत्पत्ति की कल्पना अच्छी तरह कराने के लिए इस सम्बन्ध में एक अलग प्रकरण देना ज़रूरी है कि हिन्दुस्तानी जनता की सुरक्षा के लिए क्या क्या प्रयत्न किये गये |

सन् १८९३ तक दक्षिण अफ्रीका में ऐसे स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों की संख्या बहुत कम थी, जो काफ़ी शिक्षित कहे जा सकें और हिन्दुस्तानी जनता के हितों के लिए लड़ सकें | अंग्रेजी जानने वाले | हिन्दुस्तानियों में मुख्यत: क्लार्क थे | वे अपने धन्धे की ज़रुरते पूरी करने लायक अंग्रेजी जानते थे, परन्तु अरजियाँ तैयार नहीं कर सकते थे | इसके सिवा, उन्हें अपना सारा समय अपने मालिकों को देना पड़ता था | अंग्रेजी की शिक्षा पाया हुआ दूसरा वर्ग ऐसे हिन्दुस्तानियों का था, जो दक्षिण अफ्रीका में ही पैदा हुए थे | ये अधिकतर गिरमिटियों की सन्तान थे | और इनमें से बड़ी संख्या के लोग थोड़ी भी योग्यता प्राप्त कर लेने पर कानूनी अदालतों में दुभाषियों के रूप में सरकारी नौकरी कर लेते थे | इसलिए वे हिन्दुस्तानियों के हितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के सिवा और कुछ नहीं कर सकते थे | यही उनकी बड़ी से बड़ी सेवा थी |

इसके अलावा, गिरमिटिया मजदूरों और गिरमिट-मुक्त मजदूरों का वर्ग मुख्यत: उत्तर प्रदेश और मद्रास राज्य से वहाँ आया था | हम यह भी देख चुके हैं कि स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों में गुजरात के मुख्यत: मुसलमान व्यापारी और हिन्दू मुनीम या मेहता थे | इनके सिवा कुछ पारसी व्यापारी और क्लार्क भी थे | परन्तु सारे दक्षिण अफ्रीका में पारसियों की संख्या संभवत: तीस या चालीस से ऊपर नहीं थी | स्वतंत्र व्यापारियों के वर्ग में एक चौथा दल सिन्धी व्यापारियों का था | समूचे दक्षिण अफ्रीका में दो सौ या इससे कुछ अधिक सिन्धी होंगे | ऐसा कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तान के बाहर वे जहाँ-जहाँ जाकर बसे हैं वहाँ-वहाँ उनका व्यापार एक ही प्रकार का होता है | वे 'फैंसी गुड्स' के व्यापारियों के नाते पहचाने जाते हैं | 'फैंसी गुड्स' में वे लोग खास तौर पर रेशम, जरी वगैरा का सामान, बम्बई की नक्काशी वाली सीसम, चंदन और हाथीदाँत की तरह-तरह की पेटियाँ और ऐसा ही दूसरा घरेलू सामान बेचते हैं | और उनके ग्राहक प्राय: गोरे लोग ही होते हैं |

गिरमिटिया मजदूरों को गोरे लोग 'कुली' के नाम से ही पुकारते थे | कुली का अर्थ है बोझ ढोने वाला मजदूर | यह नाम दक्षिण अफ्रीका में इतना प्रचलित हो गया है कि गिरमिटिया खुद भी अपने को 'कुली' कहने में नहीं हिचकिचाते ! बाद में तो यह नाम सारे ही हिन्दुस्तानियों के लिए चल पड़ा | सैकड़ों गोरे हिन्दुस्तानी वकील और हिन्दुस्तानी व्यापरी को क्रम से 'कुली' वकील और 'कुली' व्यापारी कहते थे ! कुछ गोरे तो ऐसा मानते या समझते

ही नहीं थे कि इस विशेषण का प्रयोग करने में कोई दोष है | और बहुत से गोरे केवल तिरस्कार प्रकट करने के लिए ही 'कुली' शब्द का प्रयोग करते थे | इसलिए स्वतंत्र हिन्दुस्तानी अपने को गिरमिटियों से अलग मनवाने का प्रयत्न करते थे | ऐसे कारणों से और हम हिन्दुस्तान से ही अपने साथ जिन्हें ले जाते हैं उन कारणों से स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों के वर्ग तथा गिरमिटिया और गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियों के वर्ग के बीच दक्षिण अफ्रीका में एक भेद खड़ा हो रहा था |

दुःख के इस समुद्र को रोकने का कार्य स्वतंत्र हिन्दुस्तानी वर्ग ने और मुख्यत: मुसलमान व्यापारियों ने अपने हाथ में लिया था | परन्तु गिरमिटिया मजदूरों या गिरमिट-मुक्त मजदूरों का सीधा सहयोग लेने का प्रयत्न जान बूझकर ही नहीं किया गया; ऐसा प्रयत्न करने की बात उस समय किसी को संभवत: सूझी भी नहीं थी | सूझती भी तो इस वर्ग को शामिल करने से काम बिगड़ने का भय बना रहता | इसके सिवा, माना यह गया था कि मुख्य आक्रमण तो स्वतंत्र हिन्दुस्तानी व्यापारी वर्ग पर ही हो रहा है, इसलिए सुरक्षा के प्रयत्न ने ऐसा संकुचित रूप धारण कर लिया था | इस तरह की मुसीबतें होने पर भी, अंग्रेजी का ज्ञान न होने पर भी और हिन्दुस्तान में सार्वजनिक कार्य का कोई अनुभव न होने पर भी यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों का यह वर्ग अपने दुःखों के सामने अच्छी तरह जूझा | उन्होंने गोरे वकील-बैरिस्टरों की सहायता ली, अरजियाँ तैयार करवाई और भेजीं, कभी-कभी शासकों के पास शिष्ट-मंडल भी भेजे और जहाँ-जहाँ संभव हुआ और उन्हें सूझा वहाँ-वहाँ अन्याय का विरोध किया | यह स्थिति १८९३ तक रही |

इस पुस्तक को समझने के लिए पाठकों को कुछ खास तारीखें याद रखनी होंगी | पुस्तक के अंत में मुख्य-मुख्य घटनायें उनकी तारीखों के साथ परिशिष्ट में दी गई हैं | उसे समय-समय पर पाठक देखते रहेंगे, तो सत्याग्रह की लड़ाई का स्वरूप और रहस्य समझने में उन्हें सहायता मिलेगी | सन् १८९३ तक ऑरेंज फ्री स्टेट में हमारी हस्ती मिट चुकी थी | ट्रान्सवाल में १८८५ के कानून नंबर ३ पर अमल हो रहा था | नेटाल में ऐसे कदम उठाने के बारेमें सोचा जा रहा था, जिनके परिणाम-स्वरूप केवल गिरमिटिया मजदूर ही उपनिवेश में रह सकें और बाकी के हिन्दुस्तानियों को निकाला जा सके; और यह ध्येय पूरा करने के लिए उत्तरदायी शासन की सत्ता प्राप्त कर ली गयी थी |

अप्रैल १८९३ में मैंने दक्षिण अफ्रीका जाने के लिए हिन्दुस्तान छोड़ा था | मुझे गिरमिटियों के इतिहास का कोई ज्ञान नहीं था | मैं केवल स्वार्थ-बुद्धि से ही वहाँ गया था | डरबन में पोरबन्दर के मेमनों की दादा अब्दुल्ला के नाम पर चल रही एक प्रसिद्ध पेढी थी | उतनी ही प्रसिद्ध पेढ़ी उनके प्रतिस्पर्धी और पोरबन्दर के मेमन तैयब हाजी खानमहमद की प्रिटोरिया में थी | दुर्भाग्य से इन प्रतिस्पर्धियों के बीच एक बड़ा मुकदमा चल रहा था | दादा अब्दुला के साझेदार ने, जो पोरबन्दर में था, यह सोचा कि मेरे जैसा नया बैरिस्टर भी दक्षिण अफ्रीका चला

गया तो उनके मुकदमे में कुछ अधिक सुविधा हो जाएगी | उन्हें इस बात का कोई डर नहीं था कि मेरे जैसा सर्वथा अनभिज्ञ और नौसिखुआ वकील उनका मुकदमा बिगाड़ देगा | कारण यह था कि मुझे कोई अदालत में जाकर उनका मुकदमा नहीं लड़ना था | मुझे तो उनके नियुक्त किये हुए धुरन्धर वकीलों और बैरिस्टरों को समझाने का काम यानी दुभाषिये का काम ही करना था | मुझे नये नये अनुभव प्राप्त करने का शौक था | यात्रा भी मुझे पसंद थी | बैरिस्टर के नाते मेरे पास मुकदमे लाने वाले दलालों को कमीशन देना मुझे जहर की तरह लगता था | काठियावाड़ (सौराष्ट्र) की खटपटों और षड्यंत्रो से मैं अकुला उठा था | और एक ही वर्ष के इकरार पर मुझे दक्षिण अफ्रीका जाना था | मैंने सोचा कि इस इकरार को स्वीकार करने में मुझे कोई कठिनाई नहीं है | और इसमें खोना तो मुझे कुछ था ही नहीं; क्योंकि मेरे जाने-आने और वहाँ रहने का सारा खर्च दादा अब्दुल्ला ही देने वाले थे | ऊपर से १०५ पौंड की मेरी फीस भी वे देने वाले थे | यह सारी बात मेरे स्वर्गीय बड़े भाई के मारफत हुई थी; वे मेरे लिए पिता के समान थे | उनकी सुविधा मेरी भी सुविधा थी | उन्हें मेरे दक्षिण अफ्रीका जाने की बात पसंद आई | इसलिए मैं मई १८९३ में डरबन जा पहुँचा |

बैरिस्टर के ठाटबाट का तो पूछना ही क्या ? अपनी मान्यता के अनुसार फ्रॉक-कोट, नेकटाई वगैरा पोशाक पहनकर बड़ी शान से मैं जहाज से डरबन-बन्दरगाह पर उतरा | परन्तु उतरते ही मेरी आँखें कुछ खुल गई | दादा अब्दुल्ला के जिन साझेदार से पोरबन्दर में मेरी बात हुई थी, उन्होंने नेटाल का जो वर्णन किया था उससे बिलकुल उलटा ही दृश्य वहाँ मेरे देखने में आया | इसमें उनका कोई दोष नहीं था | इसके पीछे उनका भोलापन, उनकी सादगी और वास्तविक परिस्थितियों का उनका अज्ञान था | नेटाल में हिन्दुस्तानियों को जो कष्ट भोगने पड़ते थे, उनकी कोई कल्पना उन्हें नहीं थी | और गोरों का जो व्यवहार तीव्र अपमानों से भरा था, वह उन्हें अपमानजनक नहीं लगता था | मैंने तो पहले ही दिन यह देख लिया कि हमारे लोगों के साथ गोरों का व्यवहार बहुत ही अशिष्ट और अपमानपूर्ण है |

नेटाल में उतरने के बाद पन्द्रह दिनों में ही अदालतों में मुझे जो कड़क अनुभव हुआ, ट्रेन में जो मुसीबतें उठानी पड़ी, रास्ते में जो मार खानी पड़ी, होटलों में ठहरने की जगह पाने में जो तकलीफें सहनी पड़ी-होटलों में जगह पाना लगभग असंभव था – उन सबके वर्णन में मैं यहाँ नहीं जाऊँगा | इतना ही कहूँगा कि वे सब अनुभव मेरी रग-रग में समा गये थे | मैं तो केवल एक ही मुकदमे के लिए वहाँ गया था | उसमें मेरी दृष्टि स्वार्थ और कुतूहल की थी | इसलिए उस एक वर्ष में तो मैं ऐसे दु:खों का केवल साक्षी और अनुभव करने वाला ही रहा | मेरे कर्तव्य का आरंभ वहीं से हुआ | मैंने देखा कि स्वार्थ की दृष्टि से दक्षिण अफ्रीका मेरे लिए कोई महत्व नहीं रखता | जहाँ अपमान और तिरस्कार हो वहाँ पैसे कमाने या मुसाफिरी करने का मुझे जरा भी लोभ नहीं था, बल्कि ऐसा करना मुझे बिलकुल नापसन्द था | मैं धर्म-संकट में पड़ गया | मेरे समक्ष दो मार्ग खुले थे | एक मार्ग था: जिन परिस्थितियों का ज्ञान मुझे हिन्दुस्तान में नहीं हो सका था उनका ज्ञान दक्षिण अफ्रीका में होने के कारण सेठ दादा अब्दुल्ला

के साथ हुए इकरार से मुक्त होकर हिन्दुस्तान लौट जाना | दूसरा था: चाहे जैसी मुसीबतें सह कर भी हाथ में लिया हुआ काम पूरा करना | कड़ाके की सरदी में मैरित्सबर्ग स्टेशन पर रेलवे पुलिस के धक्के खाकर, मुसाफिरी रोककर और रेल से उतर कर मैं वेटिंग-रूम में बैठा था | मेरा सामान कहाँ है, इसका पता मुझे नहीं था | किसी से पूछने की मेरी हिम्मत नहीं होती थी | कहीं फिर अपमान हो तो ? कहीं फिर मार खानी पड़े तो ? ऐसी स्थिति में सरदी से काँपते-काँपते नींद तो आती ही कैसे ? मन विचारों के चक्र पर घूमने लगा | सोचते-सोचते बहुत रात बीते मैंने यह निश्चय किया कि "यहाँ से भाग जाना कायरता होगी | हाथ में लिया हुआ अपना काम मुझे पूरा करना ही चाहिए | व्यक्तिगत अपमान सहकर और मार खानी पड़े तो मार खाकर भी मुझे प्रिटोरिया पहुँचना ही चाहिए |" प्रिटोरिया मेरे लिए केन्द्रस्थान था; वह मेरा लक्ष्य था | वहीं दादा अब्दुल्ला का मुकदमा लड़ा जा रहा था | अपना काम करते हुए हिन्दुस्तानियों के दुःख दूर करने के लिए कोई उपाय मैं कर सकूं तो मुझे करने चाहिए | इस निश्चय के बाद मुझे कुछ शांति मिली, मेरे भीतर कुछ शक्ति भी आई | परन्तु मैं सो नहीं पाया |

सवेरा होते ही मैंने दादा अब्दुल्ला की पेढी को और रेलवे के जनरल मैनेजर को तार किया | दोनों स्थानों से मुझे जवाब मिले | दादा अब्दुल्ला ने और उस समय नेटाल में रहने वाले उनके साझेदार सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम झवेरी ने सख्त कदम उठाये | उन्होंने अलग-अलग स्थानों पर अपने हिन्दुस्तानी दलालों को मेरी देखभाल रखने के बारेमें तार कर दिये | वे जनरल मैनेजर से भी मिले | स्थानीय दलाल को किये गये तार के फलस्वरूप मैरित्सबर्ग के हिन्दुस्तानी व्यापारी मुझसे मिले | उन्होंने मुझे हिम्मत बंधाई और कहा कि आपके जैसे कड़वे अनुभव हम सबको हुए है | परन्तु हम ऐसे अनुभवों के आदि हो गये हैं, इसलिए हम इनकी परवाह नहीं करते | व्यापार करना और भावुक मन रखना – दोनों बातें साथ-साथ कैसे चल सकती है ? इसलिए पैसे के साथ अपमान हो तो उस अपमान को भी पेटी में जमा करने का सिद्धान्त हमने स्वीकार कर लिया है ! उसी स्टेशन पर मुख्य द्वार से हिन्दुस्तानियों के आने की मनाही, टिकट मिलने में होने वाली कठिनाई वगैरा का वर्णन भी इन व्यापारियों ने मेरे सामने किया | उस रात जो ट्रेन आई उससे मैं प्रिटोरिया के लिए रवाना हुआ | मेरा किया हुआ निश्चय सच्चा है या झूठा, इसकी अन्तर्यामी प्रभु ने पूरी-पूरी परीक्षा की | प्रिटोरिया पहुँचते-पहुँचते मुझे अधिक अपमान और अधिक मार सहन करनी पड़ी | लेकिन इन सब ने केवल मुझे अपने निश्चय में दृढ़ ही बनाया |

इस प्रकार १८९३ में मुझे अनायास दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की दुःखद स्थिति का भलीभाँति अनुभव हुआ | मौका मिलने पर मैं प्रिटोरिया के हिन्दुस्तानियों से इस बारेमें बातचीत करता था, सारी स्थिति उन्हें समझाता था | परन्तु इससे ज़्यादा मैंने कुछ नहीं किया | मुझे लगा कि दादा अब्दुल्ला के मुकदमे का ध्यान रखना और दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों के दुःख दूर कराने का प्रयत्न करना-ये दोनों कार्य एकसाथ नहीं हो सकते | मैंने समझ लिया कि दोनों कार्य साथ-साथ करने का अर्थ होगा दोनों को बिगाड़ना | यह सब करते करते १८९४ का साल आ गया; मुकदमा भी पूरा हो गया | मैं डरबन लौट आया | मैंने हिन्दुस्तान जाने की तैयारी की | दादा

अब्दुल्ला ने मेरी बिदाई के अवसर पर एक समारोह भी किया | वहाँ किसीने *नेटाल मर्क्युरी* मेरे हाथ में रखा | उस अखबार में नेटाल की धारासभा की कार्यवाई की जो विस्तृत रिपोर्ट छपी थी, उसमें 'हिन्दुस्तानियों का मताधिकार' – इंडियन फ्रेन्चाइज़ – शीर्षक के नीचे मैंने कुछ पंक्तियाँ पढ़ी | स्थानीय सरकार हिन्दुस्तानियों को धारासभा के सदस्य चुनने के मताधिकार से वंचित करने वाला एक बिल तुरन्त ही पेश करने जा रही थी | मैंने समझ लिया कि यह हिन्दुस्तानियों के सारे अधिकार छीन लेने की बुनियाद है | धारासभा के भाषणों में ही सरकार का यह इरादा स्पष्ट दिखाई पड़ता था | समारोह में आये हुए सेठों और दूसरे लोगों के सामने मैंने वह रिपोर्ट पढ़कर सुनाई और यथाशक्ति उसका अर्थ उन्हें समझाया | इस सम्बन्ध में सारे तथ्य तो मैं जानता नहीं था | मैंने सुझाया कि इस आक्रमण का सामना करने के लिए हिन्दुस्तानियों को जबरदस्त लड़ाई छेड़नी चाहिए | उन्होंने मेरी बात मान ली | परन्तु ऐसी लड़ाई लड़ने की अपनी अशक्ति दिखाई और मुझसे वही रहने का आग्रह किया | मैंने यह लड़ाई लड़ने तक अर्थात् एक-दों महीने तक नेटाल में रुकना कबूल किया | उसी रात धारासभा में भेजने के लिए एक अरजी मैंने तैयार की | सरकार को एक तार इस आशय का किया कि बिल के अधिक वाचन की कार्रवाई मुलतवी रखी जाएँ | तुरन्त एक कमेटी नियुक्त की गई | सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम कमेटी के अध्यक्ष बनाये गये | ऊपर का तार उन्हीं के नाम से भेजा गया | बिल का अगला वाचन दो दिन तक मूलतवी रहा | वह अरजी दक्षिण अफ्रीका की धारासभाओं में से नेटाल की धारासभा में भेजी गई हिन्दुस्तानियों की सर्व-प्रथम अरजी थी | उसका काफ़ी असर हुआ | परन्तु बिल धारासभा में पास हो गया | उसका अंत क्या हुआ, यह मैं चौथे प्रकरण में बता चूका हूँ | दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों का इस तरह की लड़ाई लड़ने का यह पहला अनुभव था, इसलिए उनमें खूब उत्साह पैदा हुआ | प्रतिदिन सभायें होती थीं | दिनोंदिन अधिक लोग उनमें सम्मिलित होते थे | इस कार्य के लिए जितना धन ज़रूरी था उससे अधिक धन एकत्र हुआ था | नकलें करने, हस्ताक्षर लेने वगैरा के काम में मदद करने के लिए अनेक स्वयंसेवक मिल गये, जो बिना पैसा लिए और अपना पैसा खर्च करके भी काम करते थे | इस लड़ाई में गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियों की प्रजा भी उत्साह और उमंग से शामिल हुई थी | ये सब अंग्रेजी जानने वाले और सुन्दर अक्षर लिखने वाले नौजवान थे | उन्होंने रात-दिन की परवाह किये बिना नकलें करने का और दूसरा काम बड़े उत्साह से किया | एक माह के भीतर तो १०००० हस्ताक्षरों वाली अरजी लॉर्ड रिपन को भेजी गई; और मेरा तात्कालिक कार्य पूरा हुआ |

अब मैंने घर लौटने के लिए सबसे बिदा माँगी | लेकिन इस लड़ाई ने हिन्दुस्तानियों में इतना गहरा रस पैदा कर दिया था कि वे मुझे आने ही नहीं देते थे | उन्होंने ने कहा: "आप ही हमें समझाते हैं कि यह नेटाल सरकार का यहाँ हमारा जड़मूल से अंत करने का पहला कदम है | कौन जाने विलायत से हमारी अरजी पर उपनिवेश मैत्री का क्या उत्तर आता है ? हमारा उत्साह तो आप देख चुके हैं | काम करने के लिए हम तैयार है – हमारी ऐसी इच्छा भी है | हमारे पास पैसा भी है | लेकिन हमारा कोई मार्गदर्शक नहीं होगा, तो इतना किया-कराया भी

बेकार हो जाएगा | इसलिए हम मानते हैं कि यहाँ रहना आपका धर्म है |" मुझे भी लगा कि हिन्दुस्तानियों के हितों की रक्षा के लिए कोई स्थायी संस्था खड़ी हो जाय तो अच्छा रहे | लेकिन मैं कहाँ रहूँ और कैसे रहूँ ? उन लोगों ने मुझे वेतन देने की बात सुझाई, परन्तु वेतन लेने से मैंने साफ इनकार कर दिया | सार्वजनिक कार्य बड़े-बड़े वेतन लेकर नहीं किया जा सकता | उस पर मैं तो इस आन्दोलन की बुनियाद डालने वाला था | उस समय के अपने विचारों के अनुसार मैंने सोचा कि मुझे ऐसी तड़क-भड़क और शान-शौकत से रहना चाहिए, जो एक बैरिस्टर को शोभा दे और हिन्दुस्तानी कौम की प्रतिष्ठा को बढ़ाये | किन्तु उसका मतलब होता भारी खर्च | एक ओर हिन्दुस्तानियों की सेवा करने वाली संस्था के कार्य के लिए लोगों पर दबाव डालकर उनसे पैसे निकलवाना तथा संस्था की प्रवृत्तियाँ बढ़ाना और दूसरी ओर मेरी आजीविका के लिए उस संस्था पर निर्भर रहना – यह दो परस्पर विरोधी बातों का संगम हुआ माना जाता | ऐसा करने से मेरी काम करने की शक्ति भी घटती | इस कारण से और ऐसे ही दूसरे कारणों से सार्वजनिक सेवा के लिए पैसा – वेतन – लेने से मैंने साफ इनकार कर दिया | परन्तु मैंने उन्हें यह सुझाया: "यदि आप में से प्रमुख व्यापारी अपनी वकालत करने का काम मुझे सौपें और उसके लिए पेशगी 'रिटेनर' (वकील-फीस) दें, तो मैं यहाँ रहने को तैयार हूँ | आपको एक वर्ष का 'रिटेनर' पेशगी देना चाहिए | हम एक वर्ष तक परस्पर अनुभव करें, अपने काम का लेखा-जोखा निकाले और फिर ठीक लगे तो आगे भी इसी तरह काम चलाये |" मेरे इस सुझाव का सब लोगों ने स्वागत किया |

मैंने नेटाल की सुप्रीम कोर्ट में वकालत की सनद लेने की अरजी पेश की | नेटाल की लॉ सोसायटी अर्थात् वकील-मंडल ने मेरी अरजी का विरोध किया | उसकी एकमात्र दलील यह थी कि नेटाल के कानून के अर्थ के अनुसार काले या गेहुँए रंग के लोगों को वकालत की सनद किसी भी हालत में नहीं दी जा सकती | मेरी आरजी की हिमायत नेटाल के प्रसिद्ध वकील स्व. श्री एस्कंज ने की, जो एटर्नी-जनरल थे और बाद में नेटाल के प्रधानमंत्री रहे थे | लम्बे समय से वहाँ यह प्रथा चली आ रही थी कि वकील-मंडल का प्रमुख बैरिस्टर कोई फीस लिए बिना वकालत की सनद की अरजियाँ कोर्ट के सामने पेश करे | इस प्रथा के अनुसार श्री एस्कंब ने मेरी अरजी की हिमायत करना स्वीकार किया | वे दादा अब्दुल्ला के बड़े वकील भी थे | वकील मंडल की दलील सीनियर कोर्ट ने रद कर दी और मेरी अरजी स्वीकार की | इस प्रकार वकील मंडल का विरोध, उसके न चाहने पर भी, दूसरी बार मेरी प्रसिद्धि का कारण बन गया | दक्षिण अफ्रीका के अखबारों ने नेटाल के वकील-मंडल का मजाक उड़ाया और कुछ अखबारों ने मुझे बधाई भी दी |

सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम की अध्यक्षता में जो अस्थायी कमेटी नियुक्त की गई थी, उसे अब स्थायी रूप दे दिया गया | मैंने भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के एक भी अधिवेशन में भाग नहीं लिया था, परन्तु उसके बारेमें पढ़ा ज़रूर था | हिन्द के दादा, दादाभाई नौरोजी, के दर्शन मैंने किये थे; मैं उनकी पूजा करता था | इसलिए भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का भक्त तो मैं था ही | इस काँग्रेस के नाम को लोकप्रिय बनाने की वृत्ति भी मेरे मन में थी | मेरे

जैसा अनुभवहीन नौजवान नया नाम तो क्या खोजता ! गलती करने का भारी डर भी मन में सदा बना रहता था | इसलिए मैंने स्थायी कमेटी को यह सलाह दी कि वह अपना नाम 'नेटाल इंडियन काँग्रेस' रखे | भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस सम्बन्धी अपना अधूरा ज्ञान मैंने अधूरे रूप में नेटाल के हिन्दुस्तानियों के सामने रखा | आखिर १८९४ के मई या जून मास में नेटाल इंडियन काँग्रेस की स्थापना हुई | भारतीय काँग्रेस और नेटाल काँग्रेस में यह भेद था कि नेटाल काँग्रेस वर्ष में पूरे ३६५ दिन काम करती थी | इसके सदस्य वे ही लोग हो सकते थे, जो वर्ष में कम से कम ३ पौंड का चंदा दे सकते थे | अधिक से अधिक रकम तो दाता जो भी दे वह स्वीकार की जाती थी | अधिक रकम लेने का आग्रह भी खूब रखा जाता था | पाँच-सात सदस्य तो वर्ष के २४ पौंड देने वाले भी निकल आये | १२ पौंड देने वालों की संख्या काफ़ी थी | एक महीने में नेटाल काँग्रेस के करीब ३०० सदस्य बन गये थे | उनमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सभी धर्म के और सभी प्रान्तों के – अर्थात् जिन-जिन प्रान्तों के लोग नेटाल में थे उनमें से सब प्रान्तों के – लोग थे | पहले वर्ष तो बड़े जोश से काम चला | बड़े-बड़े व्यापारी अपनी सवारियों में बैठकर दूर-दूर के गाँवों में नये सदस्य बनाने और चन्दा वसूल करने के लिए पहुँच जाते थे | माँगते ही सब लोग अपना चन्दा दे नहीं देते थे | उन्हें समझना पड़ता था | इस तरह लोगों को समझाने में एक प्रकार की राजनीतिक तालीम मिलती थी और लोग परिस्थितियों से परिचित हो जाते थे | इसके सिवा, महीने में एक बार तो नेटाल काँग्रेस की बैठक होती ही थी | उसमें उस माह का पाई-पाई का हिसाब सुनाया जाता था और सदस्य उसे मंजूर करते थे | उस माह में हुई सारी घटना भी सुनाई जाती थीं और उन्हें 'मिनट-बुक' में दर्ज किया जाता था | सदस्य विविध प्रकार के प्रश्न पूछते थे | नये विषयों और नये कामों के बारेमें सलाह-मशविरा होता था | इस सबका एक लाभ यह होता था कि जो लोग ऐसी सभाओं में कभी बोलते नहीं थे वे भी बोलने लग जाते थे | भाषण भी व्यवस्थित और विवेकपूर्ण ही करने होते थे | यह सब एक बिलकुल नया अनुभव था | हिन्दुस्तानियों ने इसमें खूब रस लिया | इस बीच यह खबर आई कि लॉर्ड रिपन ने नेटाल के बिल को अस्वीकार कर दिया है | इससे लोगों का हर्ष और विश्वास दोनों बढ़े |

जिस प्रकार बाहरी आन्दोलन चल रहा था उसी प्रकार हिन्दुस्तानी कौम में भीतरी सुधार करने का आन्दोलन भी चल रहा था | हिन्दुस्तानियों के रहन-सहन के खिलाफ समूचे दक्षिण अफ्रीका में गोरे जोरदार आन्दोलन करते रहते थे | वे हमेशा यह तर्क किया करते थे कि हिन्दुस्तानी बहुत गंदे हैं, वे बड़े कंजूस हैं, जिस मकान में व्यापार करते हैं उसी में रहते हैं, उनके मकान गंदे और हवा-प्रकाश से रहित होते हैं, वे अपने सुख और आराम के लिए भी पैसा खर्च नहीं करते – ऐसे कंजूस और गंदे हिन्दुस्तानियों के साथ व्यापार में शुद्ध, विविध प्रकार की आवश्यकताओं वाले तथा उदार स्वभाव के गोरे कैसे प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं ? इसलिए मकानों की सफाई और स्वच्छता के बारेमें, मकान और दुकान अलग-अलग रखने के बारेमें, कपड़ों को साफ-सुथरा रखने के बारेमें और बड़ी कमाई करने वाले व्यापारियों को शोभा दे ऐसा रहन-सहन अपनाने के बारेमें नेटाल काँग्रेस की

सभाओं में भाषण होते थे, वाद-विवाद चलते थे और सूचनायें भी दी जाती थीं | यह सारी कार्रवाई मातृभाषा में (गुजराती में) होती थी |

पाठक समझ सकते हैं कि इन सब बातों से लोगों को स्वाभाविक रूप में कितनी व्यावहारिक शिक्षा और कितना राजनीतिक अनुभव मिलता होगा | नेटाल काँग्रेस के अधीन गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियों की सन्तान अर्थात् नेटाल में ही पैदा हुए अंग्रेजी बोलने वाले भारतीय नौजवानों की सुविधा के लिए एक शिक्षा-मंडल (नेटाल इंडियन एज्युकेशनल एसोसियेशन) की भी स्थापना की गई | उसका चन्दा नाममात्र का रखा गया था | इस मंडल का मुख्य उद्देश्य था इन नौजवानों को एकत्र करना, हिन्दुस्तान के प्रति उनमें प्रेम उत्पन्न करना और उन्हें हिन्दुस्तान का सामान्य ज्ञान देना | मंडल का दूसरा उद्देश्य था इन नौजवानों को यह बताना कि सवतंत्र हिन्दुस्तानी व्यापारी उन्हें अपने ही आदमी मानते हैं और व्यापारियों में उनके प्रति आदर की भावना उत्पन्न करना | नेटाल काँग्रेस के पास अपना खर्च चलाने के बाद एक बड़ी रकम जमा हो गई थी | इस रकम से ज़मीन खरीदी गई, जिससे आज तक काँग्रेस को आय होती रहती है |

इन सारी तफसीलो में मैं जान-बूझ कर उतरा हूँ | ऊपर की बातें विस्तार से जाने बिना पाठक यह बात पूरी तरह समझ नहीं सकते कि सत्याग्रह का जन्म स्वाभाविक रूप में कैसे हुआ और हिन्दुस्तानी कौम उसके लिए कैसे तैयार हुई | नेटाल काँग्रेस पर कैसी कैसी आपत्तियाँ आई, सरकारी अधिकारियों ने उस पर किस प्रकार आक्रमण किये और उन आक्रमणों से वह कैसे बची, यह और ऐसा ही दूसरा जानने योग्य इतिहास मुझे छोड़ना पड़ रहा है | परन्तु एक बात यहाँ बता देना ज़रूरी है | हिन्दुस्तानी कौम अतिशयोक्ति से सदा बचती रहती थी | कौम को उसके दोष और खामियाँ बताने की हमेशा कोशिश की जाती थी | गोरों की दलीलों में जितना सत्य होता उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया जाता था; और स्वतंत्रता तथा स्वाभिमान की रक्षा करते हुए गोरों के साथ सहयोग करने के प्रत्येक अवसर का स्वागत किया जाता था | हिन्दुस्तानियों के आन्दोलन का जितना विवरण दक्षिण अफ्रीका के अखबार ले सकते थे उतना उनमें दिया जाता था और वहाँ के अखबारों में हिन्दुस्तानियों पर जो अनुचित आक्रमण किये जाते थे उनका उत्तर भी उन अखबारों तक पहुँचाया जाता था |

नेटाल में जैसे नेटाल इंडियन काँग्रेस थी वैसे ही ट्रान्सवाल में भी हिन्दुस्तानियों की एक संस्था थी | ट्रान्सवाल की यह संस्था नेटाल काँग्रेस से बिलकुल स्वतंत्र थी | इन दोनों के विधानों में भी कुछ फर्क था | परन्तु इस चर्चा में यहाँ मैं नहीं उतरूँगा | ऐसी ही एक संस्था केप टाउन में भी थी | उसका विधान नेटाल और ट्रान्सवाल की संस्थाओं से भिन्न था | फिर भी तीनों का कार्य लगभग एक ही प्रकार का माना जा सकता है |

१८९४ का वर्ष समाप्त हुआ | नेटाल काँग्रेस का एक वर्ष भी १८९५ के मध्य में पूरा हो गया | मेरा वकालत का काम मुवक्किलों को पसंद आया | इसके फलस्वरूप नेटाल में मेरे रहने का समय भी बढ़ गया | १८९६ में

हिन्दुस्तानी कौम की इजाजत लेकर मैं छह महीनों के लिए हिन्दुस्तान आया | परन्तु पूरे छह महीने मैं रह भी नहीं पाया था कि नेटाल से तार आ गया और मुझे तुरन्त नेटाल लौट जाना पड़ा | १८९६-९७ की घटनाओं की चर्चा हम अलग प्रकरण में करेंगे |

७. हिन्दुस्तानियों ने क्या किया ?

२

इस प्रकार नेटाल इंडियन काँग्रेस का कार्य स्थिर और स्थायी हो गया | मैंने लगभग ढाई साल नेटाल में बिताये और इस अरसे में अधिकतर राजनीतिक कार्य ही किया | अब मैंने सोचा कि अगर मुझे और ज़्यादा दक्षिण अफ्रीका में रहना हो, तो अपने परिवार को हिन्दुस्तान से लाकर साथ रखना ज़रूरी है | हिन्दुस्तान की एक छोटी-सी यात्रा कर आने का भी मेरा मन हुआ | यह इच्छा भी मन में थी कि हिन्दुस्तान में रहते हुए भारतीय नेताओं को नेटाल में और दक्षिण अफ्रीका के अन्य उपनिवेशों में रहने वाले हिन्दुस्तानियों की स्थिति की संक्षिप्त कल्पना करा दी जाएँ | काँग्रेस ने मुझे छह महीने की छुट्टी दी और मेरी जगह पर नेटाल के प्रसिद्ध व्यापारी स्व. आदमजी मियाँखान उसके मंत्री नियुक्त हुए | उन्होंने काँग्रेस का कार्य बड़ी कुशलता से चलाया | वे अंग्रेजी काफ़ी अच्छी जानते थे और अनुभव से अंग्रेजी का अपना कामचलाऊ ज्ञान उन्होंने बहुत बढ़ा लिया था | गुजराती का अध्ययन उनका साधारण था | उनका व्यापार मुख्यत: हबशियों में चलता था, इसलिए जूलू भाषा का और उनके रीति-रिवाजों का उन्हें बड़ा अच्छा ज्ञान हो गया था | उनका स्वभाव शांत और बहुत मिलनसार था | वे ज़रूरी हो उतना ही बोलते थे | यह सब लिखने का उद्देश्य इतना ही है कि जिम्मेदारी का पद सँभालने के लिए जितनी आवश्यकता अंग्रेजी भाषा के ज्ञान की अथवा दूसरी बड़ी विद्वत्ता की होती है, उससे कहीं अधिक आवश्यकता सचाई, शांति, सहनशीलता, दृढ़ता, समय सूचकता, साहस और व्यावहारिक बुद्धि की होती है | जिस मनुष्य में इन सुन्दर और उदात्त गुणों का अभाव हो, उसमें उत्तम कोटि की विद्वत्ता हो तो भी सामाजिक कार्य में उसका कोई मूल्य नहीं है |

१८९६ के मध्य में मैं हिन्दुस्तान लौटा | मैं कलकत्ते के रास्ते होकर आया, क्योंकि उस समय नेटाल से कलकत्ता जाने वाले जहाज आसानी से मिलते थे | गिरमिटिया मजदूर कलकत्ते से या मद्रास से जहाज पर सवार होते थे | कलकत्ते से बम्बई आते हुए रास्ते में मैं ट्रेन चूक गया, इसलिए एक दिन मुझे अलाहाबाद रुकना पड़ा | वहीं से मैंने अपना कार्य शुरू कर दिया | मैं *पायोनियर* के श्री चेज़नी से मिला | उन्होंने मेरे साथ सौजन्यतापूर्वक बातें की | उन्होंने ईमानदारी से मुझे बता दिया कि उनकी सहानुभूति उपनिवेशों में बसे हुए गोरों के साथ है | परन्तु यदि मैं कुछ लिखूँ तो उसे पढ़ जाने का और अपने पत्र में उस पर टिप्पणी लिखने का वचन उन्होंने दिया | इसे मैंने काफ़ी माना |

हिन्दुस्तान में रहते हुए मैंने दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की स्थिति पर प्रकाश डालने वाली एक पुस्तिका लिखी | उस पर लगभग सारे ही भारतीय अखबारों ने संपादकीय टिप्पणी लिखी | उसके दो संस्करण छपवाने पड़े | उसकी पाँच हजार प्रतियाँ मैंने देश के विभिन्न स्थानों पर भिजवाई | इसी समय मैंने हिन्दुस्तान के नेताओं

के दर्शन किये : बम्बई में सर फिरोजशाह मेहता, न्यायमूर्ति बदरुद्दीन तैयबजी, महादेव गोविन्द रानडे आदि के; पूना में लोकमान्य तिलक और उनके मंडल के तथा प्रो. भांडारकर, गोपाल कृष्ण गोखले और उनके मंडल के | बम्बई से आरंभ करके पूना और मद्रास में मैंने भाषण भी किये | इन सबके ब्योरे में यहाँ मैं नहीं जाना चाहता |

परन्तु पूना का एक पवित्र संस्मरण देने का लोभ मैं नहीं रोक सकता, यद्यपि हमारे विषय के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है | वहाँ की सार्वजनिक सभा लोकमान्य तिलक के हाथ में थी और स्व. गोखलेजी का सम्बन्ध डेक्कन सभा के साथ था | सबसे पहले मैं तिलक महाराज से मिला | उनसे जब मैंने पूना में सभा करने की बात कही तो उन्होंने मुझसे पूछा: तुम गोपालराव से मिले हो ?

पहले तो मैं समझा नहीं कि उनका मतलब किस गोपालराव से है | इसलिए उन्होंने फिर पूछा : क्या तुम भी गोखले से मिले हो ? उन्हें जानते हो ?

मैंने कहा : अभी मैं उनसे मिला नहीं हूँ | केवल नाम से ही उन्हें जानता हूँ | लेकिन मेरा उनसे मिलने का इरादा है |

लोकमान्य : तुम हिन्दुस्तान की राजनीति से परिचित नहीं मालूम होते |

मैं बोला : इंग्लैंड से पढ़कर लौटने के बाद मैं हिन्दुस्तान में बहुत कम रहा और उस समय भी राजनीतिक विषयों से मैं बिलकुल दूर रहा | मैं मानता था कि यह काम मेरी शक्ति से बाहर है |

लोकमान्य : तब तो मुझे तुम्हें थोड़ी जानकारी देनी होगी | पूना में दो पक्ष हैं : एक सार्वजनिक सभा का और दूसरा डेक्कन सभा का |

मैंने कहा : इस विषय में मैं कुछ जानता हूँ |

लोकमान्य : यहाँ सभा करना तो आसान है | लेकिन मैं देखता हूँ कि तुम अपना प्रश्न सारे पक्षों के सामने रखना चाहते हो और सब पक्षों की मदद भी तुम लेना चाहते हो | यह बात मुझे पसंद है | परन्तु यदि तुम्हारी सभा में सार्वजनिक सभा का कोई सदस्य अध्यक्ष बना, तो डेक्कन सभा का कोई सदस्य उसमें नहीं आयेगा | और यदि डेक्कन सभा का कोई सदस्य अध्यक्ष होगा, तो सार्वजनिक सभा के सदस्य सभा में नहीं आयेंगे | इस कारण से तुम्हें कोई तटस्थ अध्यक्ष खोजना चाहिए | मैं तो इस विषय में केवल सुझाव ही दे सकता हूँ | दूसरी कोई मदद मुझसे नहीं हो सकेगी | तुम प्रोफेसर भांडारकर को जानते हो ? न जानते हो तो भी तुम उनके पास जाओ | वे तटस्थ पुरुष माने जाते हैं | वे राजनीतिक कार्यों में भाग भी नहीं लेते | लेकिन शायद तुम उन्हें अपनी सभा का अध्यक्ष बनने को ललचा सकोगे | श्री गोखले से इस सम्बन्ध में बात करना | उनकी भी सलाह लेना | बहुत संभव

है कि वे भी तेरे जैसी ही सलाह तुम्हें देंगे | यदि प्रो. भांडारकर जैसे सज्जन सभा के अध्यक्ष हो जाएँ, तो मेरा विश्वास है कि सभा को सफल बनाने का काम दोनों पक्ष अपने हाथ में ले लेंगे | हमारी तो इसमें तुम्हें पूरी मदद मिलेगी |

लोकमान्य की यह सलाह लेने के बाद मैं गोखलेजी के पास गया | इस प्रथम मिलाप में ही उन्होंने मेरे हृदय पर कैसे अधिकार कर लिया, यह तो मैं अन्यत्र लिख चुका हूँ | जिज्ञासु पाठकों को *यंग इंडिया* या *नवजीवन* की फाइल पढ़ लेनी चाहिए |[१] लोकमान्य की सलाह गोखले जी को भी पसंद आई | मैं तुरन्त प्रोफेसर भांडारकर के पास गया | उन विद्वान बुजुर्ग के दर्शन किये | नेटाल के हिन्दुस्तानियों की कहानी ध्यान से सुनकर उन्होंने कहा : "तुम देखते हो कि मैं सार्वजनिक जीवन में शायद ही भाग लेता हूँ | अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ | फिर भी तुम्हारी बातों ने मेरे मन पर गहरा प्रभाव डाला है | सभी पक्षों की मदद लेने का तुम्हारा विचार मुझे पसंद है | तुम नौजवान हो और हिन्दुस्तान की राजनीतिक परिस्थितियों से अनभिज्ञ हो | इसलिए दोनो पक्षों के सदस्यों से कहना कि मैंने तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है | जब उनमें से कोई सभा होने की सूचना मुझे करेंगे तब मैं ज़रूर हाजिर हो जाऊँगा |" और पूना में सुन्दर सभा हुई | दोनों पक्षों के नेता उसमें उपस्थित रहे और दोनों पक्षों के नेताओं ने उसमें भाषण किये |

इसके बाद मैं मद्रास गया | वहाँ मैं जस्टिस सुब्रह्मण्यम् अय्यर, श्री पी. आनन्दचार्लु, *हिन्दू* के तत्कालीन संपादक श्री जी. सुब्रह्मण्यम्, मद्रास *स्टेन्डर्ड* के सम्पादक श्री परमेश्वरम् पिल्ले, प्रख्यात वकील भाष्यम् आयंगर, श्री नॉर्टन आदि से मिला | वहाँ भी एक बड़ी सभा हुई | मद्रास से मैं कलकत्ता गया | वहाँ मैं सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, महाराजा ज्योतीन्द्र मोहन टागोर, *इंग्लिशमैन* के संपादक स्व. श्री सॉन्डर्स और दूसरे लोगों से मिला | कलकत्ते में सभा की तैयारियाँ चल रही थीं, इतने में – नवम्बर १८९६ में – नेटाल से मुझे तार मिला: "तुरन्त आइये |" मैं समझ गया कि वहाँ हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध कोई न कोई नया आन्दोलन शुरू हुआ होगा | इसलिए मैं कलकत्ते का कार्य पूरा किये बिना ही लौट पड़ा और बम्बई से मिलने वाले पहले ही जहाज पर अपने परिवार के साथ सवार हो गया | यह जहाज दादा अब्दुल्ला की पढ़ी ने खरीदा था | अपने अनेक साहसों में से नेटाल और पोरबन्दर के बीच जहाज चलाने का उनका यह पहला साहस था | उस जहाज का नाम 'कुरलैंड' था | मेरा टिकट 'कुरलैंड' का था | इस जहाज के रवाना होने के तुरन्त बाद उसी दिन पर्शियन कंपनी का एक जहाज 'नादरी' भी बम्बई से नेटाल के लिए रवाना हुआ था | दोनों जहाजों में दक्षिण अफ्रीका जाने वाले लगभग ८०० मुसाफिर रहे होंगे |

हिन्दुस्तान में दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की स्थिति के बारेमें मैंने जो आन्दोलन किया था उसने इतना बड़ा महत्व ग्रहण कर लिया कि हिन्दुस्तान के अधिकतर प्रमुख अखबारों ने उस पर टिप्पणियाँ लिखी थीं और रूटर ने उसके सम्बन्ध में कई तार विलायत भेजे थे | इसका पता मुझे नेटाल पहुँचने पर चला | विलायत पहुँचे

हुए उन तारों के आधार पर रूटर के वहाँ के प्रतिनिधि ने एक संक्षिप्त तार दक्षिण अफ्रीका भी भेजा था | उस तार में हिन्दुस्तान में मैंने जो कुछ कहा उसे कुछ अतिशयोक्ति का रूप दे दिया गया था | ऐसी अतिशयोक्ति हम बहुत बार देखते हैं | इस तरह की अतिशयोक्ति हमेशा जान-बूझ कर नहीं की जाती | अनेक कार्यों में व्यस्त रहने वाले लोग, जिनके अपने पूर्वाग्रह और पहले से बंधे हुए विचार होते हैं, किसी चीज को ऊपर-ऊपर से पढ़ लेते हैं और फिर उसके आधार पर एक सार तैयार करते हैं, जो कभी कभी आंशिक रूप में उनकी कल्पना की उपज होता है | फिर इस तार के विभिन्न स्थानों में विभिन्न अर्थ लागाये जाते हैं | यह सब अनायास ही होता रहता है | सार्वजनिक कार्यों के साथ जुड़ा हुआ यह एक खतरा है और यह उनकी मर्यादा भी है | हिन्दुस्तान में रहते हुए मैंने नेटाल के गोरों की टीका की थी, उन पर आरोप लगाये थे; गिरमिटिया मजदूरों पर लगाये गये ३ पौंड के मुंड-कर की मैंने बहुत कड़े शब्दों में निन्दा की थी | बाला-सुंदरम्[२] नामक एक निर्दोष गिरमिटिये पर उसके मालिक ने हमला किया था | इससे उसके शरीर पर जो अनेक घाव हो गये थे, उन्हें मैंने अपनी आँखों से देखा था | उसका सारा केस मेरे हाथ में था | बालासुंदरम् के कष्टों का चित्रण मैं अपनी शक्ति के अनुसार काफ़ी अच्छा कर सका था | जब मेरे भाषणों का तोड़ा-मरोड़ा हुआ रूटर का सार नेटाल के गोरों ने पढ़ा, तो वे मुझ पर आग-बबूला हो उठे | खूबी तो यह है कि इस विषय में मैंने नेटाल में जो कुछ लिखा था, वह हिन्दुस्तान में जो कुछ लिखा और कहा उससे अधिक तीखा और अधिक विस्तृत था | हिन्दुस्तान में एक भी बात मैंने ऐसी नहीं कही, जिसमें थोड़ी भी अतिशयोक्ति रही हो | परन्तु अपने अनुभव से मैं यह जानता था कि किसी भी घटना का वर्णन जब हम किसी अपरिचित व्यक्ति के सामने करते हैं तब जितना अर्थ हम उसे देते हैं उसकी अपेक्षा अपरिचित श्रोता अथवा पाठक उसमें अधिक अर्थ देखता है | इस कारण से हिन्दुस्तान में मैंने जान-बूझ कर नेटाल का चित्र कुछ हद तक हलका ही चित्रित किया था | लेकिन नेटाल में मैं जो कुछ लिखता था उसे बहुत कम गोरे पढ़ते थे और उसकी परवाह तो उनसे भी कम गोरे करते थे | हिन्दुस्तान में मेरे कहे या लिखे हुए शब्दों के बारेमें इससे उलटा ही असर हो सकता था और हुआ | रूटर की सार रूप रिपोर्ट तो हजारों गोरे पढ़ते थे | फिर, जो विषय तार में उल्लेख करने योग्य माना गया हो उसका महत्त्व वस्तुत: जितना होता है उससे अधिक माना जाता है | नेटाल के गोरों ने सोचा कि मेरे कार्य का हिन्दुस्तान में उतना ही प्रभाव पड़ा है जितना उन्होंने माना है और इसलिए शायद गिरमिट की प्रथा बन्द हो जाएगी, जिससे सैकड़ों गोरे मालिकों को नुकसान पहुँचेगा | इसके सिवा, उन लोगों को लगा कि हिन्दुस्तान के सामने नेटाल के गोरे कलंकित हो गये हैं |

इस प्रकार नेटाल के गोरे मेरे विरुद्ध उत्तेजित हो रहे थे तभी उन्होंने सुना कि मैं अपने परिवार के साथ 'कुरलैंड' में नेटाल लौट रहा हूँ, जिसमें ३००-४०० हिन्दुस्तानी यात्री हैं | और उसके साथ उतने ही हिन्दुस्तानी यात्रियों को लाने वाला 'नादरी' जहाज भी है | इस समाचार ने आग में घी डालने का काम किया | इससे गोरे और ज़्यादा उत्तेजित हो गये | नेटाल के गोरों ने बड़ी बड़ी सभायें कीं | लगभग सभी अग्रगणय गोरों ने उनमें भाग लिया |

सभाओं में मुख्यत: मेरे खिलाफ और सामान्यत: हिन्दुस्तानी यात्रियों के खिलाफ सख्त टिकायें हुईं | 'कुरलैंड' और 'नादरी' के आगमन को 'नेटाल पर होने वाले आक्रमण' का रूप दिया गया | सभा में भाषण करने वाले लोगों ने इसका यह अर्थ निकाला कि मैं इन दोनों जहाजों के ८०० यात्रियों को अपने साथ नेटाल ला रहा हूँ | और सभा के लोगों को यह भी समझाया गया कि नेटाल को स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों से भर देने के प्रयत्न का मेरा यह पहला कदम है | सभा में एकमत से यह प्रस्ताव पास हुआ कि दोनों जहाजों के यात्रियों को और मुझे नेटाल की भूमि पर उतरने न दिया जाय | यदि नेटाल सरकार इन यात्रियों को न रोके या नहीं रोक सके, तो इस सम्बन्ध में सभा में नियुक्त की गई गोरों की कमेटी कानून को अपने हाथ में ले-ले और अपने ही बल से हिन्दुस्तानियों को उतरने से रोके ! दोनों जहाज एक ही दिन नेटाल के डरबन बन्दरगाह पर पहुँचे |

पाठकों को यह स्मरण होगा कि हिन्दुस्तान में प्लेग के दर्शन पहले पहल १८९६ में हुए थे | नेटाल सरकार के पास हमें बाकायदा हिन्दुस्तान लौटा देने का कोई साधन नहीं था | उस समय तक प्रवेश-प्रतिबन्धक कानून (इमिग्रेशन रेस्ट्रिक्शन एक्ट) अस्तित्व में नहीं आया था | नेटाल सरकार की संपूर्ण सहानुभूति गोरों की उपर्युक्त कमेटी के साथ ही थी | नेटाल सरकार के एक मंत्री स्व. श्री एस्कंब उस कमेटी के कार्य में पूरा भाग लेते थे | कमेटी को भड़काने का काम भी वे ही करते थे | प्रत्येक बन्दरगाह में यह नियम होता है कि किसी जहाज में छुतहे रोग का उपद्रव हो अथवा कोई जहाज ऐसे बन्दरगाह से आ रहा हो जहाँ छुतहा रोग फैला हो, तो उस जहाज को अमुक समय के लिए 'क्वारन्टीन' में रखा जाय – अर्थात् जहाज के साथ का संपर्क तोड़ दिया जाय और यात्रियों, माल वगैरा को अमुक समय तक उतारने की मनाही कर दी जाय | ऐसा प्रतिबन्ध स्वास्थ्य के नियमों के आधार पर ही और बन्दरगाह के स्वास्थ्य अधिकारी की आज्ञा से ही लगाया जा सकता है | नेटाल सरकार ने प्रतिबन्ध लगाने के इस अधिकार का केवल राजनीतिक उपयोग – इसीलिए दुरूपयोग – किया और जहाजों के यात्रियों में कोई भी छुतहा रोग न होते हुए भी दोनों जहाजों को २३ दिन तक डरबन बन्दरगाह के प्रवेश-मार्ग पर लटकाये रखा | इस बीच गोरों की कमेटी का काम जारी रहा | दादा अब्दुल्ला 'कुरलैंड' के मालिक थे और 'नादरी' के एजेन्ट थे | उन्हें कमेटी ने खूब डराया-धमकाया | कुछ गोरों ने दोनों जहाजों को वापिस हिन्दुस्तान ले जाने के लिए उन्हें प्रलोभन दिये और वापिस न ले जाने की स्थिति में उनके व्यापार को भी धक्का पहुँचाने का डर दिखाया | लेकिन पेढी के साझेदार कायर नहीं थे | उन्होंने धमकी देने वाले गोरों को सुना दिया: "हमारा सारा व्यापार चौपट हो जाएगा, हम बरबाद हो जाएँगे, तब तक हम लड़ेंगे | लेकिन डर कर इन निर्दोष और असहाय मुसाफिरों को वापस भेजने का गुनाह हम नहीं करेंगे | आप यह समझ लें कि जैसे आपको अपने देश का अभिमान है वैसे ही हमें भी अपने देश का कुछ अभिमान होगा |" इस पेढी के पुराने वकील श्री एक. ए. लॉटन भी साहसी और बहादुर थे |

संयोगवश इसी अरसे में स्व. श्री मनसुखलाल हीरालाल नाजर (सूरत के कायस्थ तथा स्व. श्री नानाभाई हरिदास के भानजे) दक्षिण अफ्रीका पहुँचे | मैं उन्हें पहचानता नहीं था | उनके जाने का भी मुझे कोई पता नहीं था | मेरे लिए यह कहना शायद ही ज़रूरी हो कि 'नादरी' और 'कुरलैंड' जहाजों के मुसाफिरों को दक्षिण अफ्रीका लाने में मेरा बिलकुल हाथ नहीं था | उनमें से अधिकतर लोग दक्षिण अफ्रीका के पुराने निवासी थे | और बहुतसे लोग तो ट्रान्सवाल जाने के लिए इन जहाजों पर चढ़े थे | गोरों की कमेटी ने इन मुसाफिरों के लिए भी धमकी भरी चेतावनियाँ भिजवाई | कैप्टनों ने मुसाफिरों को वे चेतावनियाँ पढ़ सुनाई | उनमें स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि: "नेटाल के गोरे अत्यन्त उत्तेजित हो गये हैं | उनकी उत्तेजित स्थिति को जानते हुए भी यदि हिन्दुस्तानी मुसाफिर जहाजों से उतरने का प्रयत्न करेंगे, तो बन्दरगाह पर कमेटी के लोग खड़े रहेंगे और एक एक हिन्दुस्तानी को समुद्र में फेंक देंगे |" 'कुरलैंड' के मुसाफिरों को इस चेतावनी का अनुवाद करके मैंने सुनाया | 'नादरी' के मुसाफिरों को वहाँ के किसी अंग्रेजी जानने वाले मुसाफिर ने इनका अनुवाद सुनाया | दोनों ही जहाजों के मुसाफिरों ने वापिस जाने से साफ इनकार कर दिया | उन्होंने यह भी कहा कि : "बहुत से मुसाफिरों को ट्रान्सवाल जाना है | जो लोग नेटाल में उतरना चाहते हैं, उनमें से भी बहुतसे तो नेटाल के पुराने निवासी हैं | जो भी हो, हम में से हर एक हिन्दुस्तानी को नेटाल में उतरने का कानूनी अधिकार है और कमेटी की धमकियों के बावजूद अपना यह अधिकार सिद्ध करने के लिए मुसाफिर हर हालत में यहाँ उतरेंगे |"

नेटाल की सरकार भी थक गई थी | अनुचित और अन्यायी प्रतिबन्ध आखिर कितने दिन तक लगाया जा सकता था ? २३ दिन पूरे हो गये | लेकिन न तो दादा अब्दुल्ला अपनी बात से डिगे और न हिन्दुस्तानी मुसाफिर डिगे | इसलिए २३ दिन के बाद प्रतिबन्ध उठा लिया गया और जहाजों को बन्दरगाह के भीतर आने की इजाजत मिली | इस बीच श्री एस्कंब ने उत्तेजित बनी हुई कमेटी को शांत किया | उन्होंने एक सभा करके नेटाल के गोरों से कहा : "डरबन में यूरोपियनों ने सुन्दर एकता और हिम्मत दिखाई | आपसे जितना बना उतना आपने किया | सरकार ने भी आपकी मदद की | उसने २३ दिन तक हिन्दुस्तानियों को प्रतिबन्ध में रखा | आपने अपनी भावनाओं और अपने जोश का जो प्रदर्शन किया वह काफ़ी है | इसका इंग्लैंड की बड़ी सरकार पर गहरा असर होगा | आपके कार्य से नेटाल सरकार का काम सरल हो गया है | अब अगर बल का उपयोग करके एक भी हिन्दुस्तानी मुसाफिर को उतरने से रोकेंगे, तो अपने काम को आप खुद ही नुकसान पहुँचायेंगे | आप नेटाल सरकार की स्थिति को विषम बना देंगे | ऐसा करके भी आप हिन्दुस्तानियों को रोकने में सफल नहीं होंगे | मुसाफिरों का तो कोई अपराध है ही नहीं | उनमें स्त्रियाँ और बालक भी हैं | वे बम्बई से जहाज पर चढ़े उस समय उन्हें आपकी भावनाओं का कोई ज्ञान ही नहीं था | इसलिए अब आपको मेरी सलाह मानकर बिखर जाना चाहिए और मुसाफिरों के उतरने में जरा भी रुकावट नहीं डालनी चाहिए | लेकिन मैं इतना वचन आपको देता हूँ कि भविष्य में आने वाले हिन्दुस्तानियों के बारेमें नियंत्रण लगाने की सत्ता नेटाल सरकार धारासभा से प्राप्त कर लेगी |" यहाँ

मैंने श्री एस्कंब के भाषण का सार ही दिया है | श्री एस्कंब के श्रोतागण उनके भाषण से निराश तो हुए | परन्तु नेटाल के गोरों पर उनका बड़ा प्रभाव था, इसलिए उनके कहने से सब गोरे बिखर गये | और दोनों जहाज बन्दरगाह पर आये |

मेरे बारेमें श्री एस्कंब ने कहलवाया कि मैं दिन में जहाज न छोडूँ | शाम को वे बन्दरगाह के सुपरिन्टेन्डेन्ट को मुझे लिवाने भेजेंगे | उसी के साथ मैं घर जाऊँ | परन्तु मेरा परिवार किसी भी समय उतर सकता है | यह कोई बाकायदा हुक्म नहीं था, बल्कि कैप्टन को जहाज से मुझे उतरने न देने की सलाह थी तथा मेरे सिर पर झूल रहे खतरे की चेतावनी थी | कैप्टन मुझे जबरन् तो रोक ही नहीं सकता था | लेकिन मैंने यह माना कि मुझे इस सुझाव को स्वीकार करना चाहिए | अपने बाल-बच्चों को घर न भेज कर मैंने डरबन के प्रसिद्ध व्यापारी तथा मेरे पुराने मुवक्किल और मित्र पारसी रुस्तमजी के यहाँ यह कहकर भेज दिया कि मैं वहाँ तुमसे मिलूँगा | मुसाफिरों के उतर जाने पर श्री लॉटन – दादा अब्दुल्ला के वकील और मेरे मित्र –आये और मुझसे मिले | उन्होंने मुझसे पूछा : "आप अभी तक क्यों नहीं उतरे ? "मैंने उनसे श्री एस्कंब के पत्र की बात कही | वे बोले : "मुझे तो शाम तक राह देखना और बाद में अपराधी या चोर की तरह शहर में प्रवेश करना पसंद नहीं है | आपको यदि कोई डर न हो, तो अभी ही मेरे साथ चलिये | मानो कुछ हुआ ही न हो इस प्रकार हम पैदल ही शहर में होकर चले जाएँगे |" मैंने कहा : "मैं नहीं मानता कि मुझे किसी तरह का डर है | मेरे समक्ष शिष्टता-अशिष्टता का प्रश्न केवल यही है कि श्री एस्कंब की सूचना – सलाह – को स्वीकार करना चाहिए या नहीं | और यह भी थोड़ा सोच लेना चाहिए कि जहाज के कैप्टन की इसमें कोई जिम्मेदारी है या नहीं |" श्री लॉटन हंस कर बोले : "मि. एस्कंब ने आपके लिए ऐसा क्या किया है कि जिससे उनकी सलाह पर आपको थोड़ा भी ध्यान देना पड़े ? इसके सिवा, उनकी सलाह में केवल भलमनसाहत ही है और कोई भेद नहीं है, ऐसा विश्वास करने के लिए आपके पास क्या कारण है ? शहर में क्या हुआ है और उसमें इन महाशय का कितना हाथ रहा है, यह मैं आपसे ज़्यादा जानता हूँ | (मैंने बीच में सिर हिलाया) | लेकिन हम मान लें कि श्री एस्कंब ने भले आशय से ही आपको यह सलाह दी है | फिर भी मेरा यह निश्चित मत है कि उनकी सलाह पर अमल करने से आपकी प्रतिष्ठा को धक्का लगेगा | इसलिए मेरी तो आपको यह सलाह है कि यदि आप तैयार हों तो इसी समय मेरे साथ चले चलिये | कैप्टन तो हमारे अपने ही आदमी है, इसलिए उनकी जिम्मेदारी हमारी जिम्मेदारी है | उनसे पूछने वाले सिर्फ दादा अब्दुल्ला ही हो सकते हैं | मैं जानता हूँ कि वे इस विषय में क्या सोचेंगे, क्योंकि उन्होंने इस लड़ाई में बहुत बड़ी बहादुरी दिखाई है |" मैंने कहा : तब हम चलें | मुझे कोई तैयारी नहीं करनी है | मुझे केवल अपनी पगड़ी ही सिर पर रखनी है | कैप्टन से कह दें और हम लोग निकल पड़े |" हमने कैप्टन की इजाजत ले ली |

श्री लॉटन डरबन के बड़े पुराने और प्रसिद्ध वकील थे | मैं हिन्दुस्तान गया उससे पहले ही मेरा उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बंध गया था | अपने कठिन मुकदमों में मैं उन्हीं की मदद लेता था और बहुत बार बड़े वकील के रूप में उन्हीं को रखता था | वे साहसी थे और कद्दावर शरीर वाले थे |

हमारा रास्ता डरबन के बड़े से बड़े मुहल्ले में होकर जाता था | हम रवाना हुए उस समय शाम के चार या साढ़े चार बजे होंगे | आकाश में हलके बादल थे, लेकिन सूरज को ढँकने के लिए वे काफ़ी थे | पैदल रुस्तमजी के घर तक पहुँचने के लिए कम से कम एक घंटे का रास्ता था | हम जहाज से उतरे ही थे कि कुछ गोरे लड़कों ने हमें देख लिया | बड़ी उमर के आदमी उनमें कोई नहीं थे | सामान्यत: बन्दरगाह पर जितने लोग रहा करते थे उतने ही वहाँ दिखाई देते थे | अपने ढंग की पगड़ी पहनने वाला केवल मैं ही था, इसलिए उन लड़कों ने मुझे तुरन्त पहचान लिया | वे 'गांधी', 'गांधी' 'इसको मारो' 'इसको घेर लो' चिल्लाते-चिल्लाते हमारी ओर आये | कुछ लड़के कंकड़-पत्थर भी फेंकने लगे | अब कुछ अधेड़ उमर के गोरे भी उनमें मिल गये | धीरे-धीरे आक्रमणकारियों की भीड़ बढ़ने लगी | श्री लॉटन को लगा कि पैदल जाने में खतरे का सामना करना होगा | इसलिए उन्होंने रिक्शा बुलाई | रिक्शा का अर्थ है मनुष्य द्वारा खींची जाने वाली छोटी गाड़ी | मैं तो किसी दिन रिक्शा में बैठा ही नहीं था: क्योंकि जिस सवारी को मनुष्य खींचते हों उसमें बैठने से मुझे बड़ी नफरत थी | फिर भी आज मुझे लगा कि रिक्शा में बैठ जाना मेरा धर्म है | परन्तु ईश्वर जिसे बचाना चाहता है वह नीचे गिरना चाहे तो भी गिर नहीं सकता, ऐसा अपने जीवन में तो पाँच-सात बार आई कठिनाइयों में मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है | उन कठिनाइयों में मैं गिरा नहीं, इसका श्रेय मैं स्वयं तो बिलकुल नहीं ले सकता | दक्षिण अफ्रीका में रिक्शा खींचनेवाले हबशी ही होते हैं | गोरे लड़कों और बड़ी उमर के गोरों ने रिक्शा वाले को धमकी दी कि तू अगर इस आदमी को रिक्शा में बैठायेगा, तो हम तुझे पीटेंगे और तेरी रिक्शा तोड़ डालेंगे | इसलिए रिक्शा वाला 'खा' (नहीं) कह कर भाग गया और मैं रिक्शा में नहीं बैठ पाया |

अब हमारे सामने पैदल ही जाने के सिवा दूसरा कोई रास्ता न रह गया | जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते गये वैसे-वैसे गोरों की भीड़ भी बढ़ती ही चली गई | हम दोनों मुख्य मार्ग वेस्ट स्ट्रीट में पहुँचे तब तक तो छोटे-बड़े सैकड़ों गोरे इकट्ठे हो गए | एक बलवान गोरे ने श्री लॉटन को हाथों में उठाकर मुझसे अलग कर दिया | इसलिए अब वे मेरे पास तक पहुँचने की स्थिति में नहीं रहे | मुझ पर गालियों की और पत्थरों की या जो कुछ भी गोरों के हाथ लगा उसकी वर्षा होने लगी | मेरी पगड़ी सिर से नीचे गिरा दी गई | इसी बीच एक कद्दावर मोटा गोरा मेरे पास आया | पहले उसने मुझे एक जोर का थप्पड़ लगाया; फिर एक लात जमाई | मैं चक्कर खाकर गिरने वाला ही था कि रास्ते के पास के एक मकान के आंगन की जाली मेरे हाथ में आ गई | वहाँ मैंने थोड़ा दम लिया और चक्कर मिटने पर आगे बढ़ा | जिन्दा मुकाम पर पहुँचने की आशा मैं लगभग छोड़ चुका था | लेकिन इतना मुझे अच्छी तरह याद है कि उस समय भी मेरा हृदय इन मारने वाले गोरों को जरा भी दोषी नहीं मानता था |

ऐसी मुसीबत में मैं अपना रास्ता तय कर रहा था कि इतने में डरबन के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की पत्नी मेरे सामने से निकली | हम एक-दूसरे को भलीभाँति जानते थे | वह एक बहादुर महिला थी | आकाश में बादल छाये हुए थे और अब तो सूरज भी ढल रहा था, फिर भी उस महिला ने मेरी रक्षा के लिए अपना छाता खोला और वह मेरी बगल में रहकर चलने लगी | किसी महिला का अपमान, और उसमें भी डरबन के बहुत पुराने और लोकप्रिय पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की पत्नी का अपमान तो गोरे कर ही नहीं सकते थे –उसे कोई चोट भी नहीं पहुँचा सकते थे | इसलिए उसे बचा कर जो मार मुझ पर पड़ती थी वह बहुत हलकी ही होती थी | इतने में मुझ पर हो रहे इस आक्रमण का पता पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट को चल गया | उन्होंने मेरी रक्षा के लिए पुलिस-दल भेजा, जिसने आकर मुझे घेर लिया | हमारा रास्ता पुलिस-थाने के पास होकर जाता था | जब हम वहाँ पहुँचे तो मैंने देखा कि पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट हमारी प्रतीक्षा में ही खड़े थे | उन्होंने मुझे पुलिस-थाने में ही जाने की सलाह दी | मैंने उनका उपकार माना, लेकिन थाने में जाने से इनकार कर दिया | मैंने कहा : "मुझे किसी भी हालत में अपने मुकाम पर पहुँचना होगा | डरबन के लोगों की न्यायवृत्ति पर और अपने सत्य पर मुझे विश्वास है | आपने मेरी रक्षा के लिए जो पुलिस-दल भेजा, उसके लिए मैं आपका बड़ा आभारी हूँ | श्रीमती एलेक्ज़ेन्डर ने भी मेरी रक्षा की है |"

वहाँ से मैं किसी अधिक कठिनाई और कष्ट के बिना सही-सलामत रुस्तमजी के घर पहुँच गया | उनके घर पहुँचते लगभग शाम हो गई थी | 'कुरलैंड' जहाज के डॉक्टर दाजी बरजोर रुस्तमजी सेठ के यही थे | उन्होंने मेरा इलाज शुरू किया | मेरे घावों की परीक्षा की | घाव ज़्यादा तो नहीं थे | एक गुप्त चोट पड़ी थी, वही ज़्यादा तकलीफ दे रही थी | लेकिन अभी मुझे शांति से आराम करने का अधिकार नहीं मिला था | रुस्तमजी सेठ के मकान के सामने हजारों गोरे इकट्ठे हो गये थे | रात पड़ जाने से लुच्चे-लफंगे लोग भी उनमें शरीक हो गये थे | उन लोगों ने रुस्तमजी से कहलवाया कि अगर तुम गांधी को हमारे हवाले नहीं करोगे, तो हम उसके साथ तुम्हें और तुम्हारी दुकान को भी जला कर खाक कर देंगे | लेकिन रुस्तमजी किसी के डराये डर जाएँ ऐसे हिन्दुस्तानी नहीं थे | पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट एलेक्ज़ेन्डर को इस बात का पता चल, तो वे अपनी खुफिया पुलिस के साथ आकर चुपके से गोरों की भीड़ में पैठ गये | एक बेंच मंगाकर उस पर खड़े हो गये | इस तरह लोगों के साथ बात-चीत करने के बहाने उन्होंने रुस्तमजी के मकान के दरवाजे पर कब्जा कर लिया, ताकि उसे तोड़ कर कोई भीतर न घुस सके | ठीक जगहों पर खुफिया पुलिस तो तैनात कर ही दी थी | वहाँ पहुँचते ही उन्होंने अपने एक कर्मचारी से कह दिया था कि वह हिन्दुस्तानी की पोशाक पहन कर और मुँह को रंग कर हिन्दुस्तानी व्यापारी का वेश बना ले | साथ ही उसे यह हुक्म दिया था कि वह आकर मुझसे मिले और कहे कि : "अगर आप अपने मित्र की, उनके मेहमानों की, उनके माल की और अपने परिवार की रक्षा करना चाहते हों, तो आपको हिन्दुस्तानी पुलिस की पोशाक पहन कर पारसी रुस्तमजी के गोदाम में होते हुए गोरों की भीड़ में से ही मेरे आदमी के साथ चुपके से निकल जाना चाहिए और पुलिस-थाने पर पहुँच जाना चाहिए | इस गली के कोने पर आपके लिए गाड़ी तैयार

रखी गई है | आपको और दूसरों को बचाने का मेरे पास सिर्फ एक यही रास्ता है | भीड़ इतनी अधिक उत्तेजित हो गई है कि उसे नियंत्रण में रखने का मेरे पास कोई साधन नहीं है | अगर आप यहाँ से जल्दी नहीं निकल जाएँगे, तो यह मकाम ज़मीनदोस्त कर दिया जाएगा | इतना ही नहीं, मेरे लिए इस बात का अंदाज लगाना भी संभव नहीं है कि आपके इस मकान में रहने से जान-माल का कितना नुकसान होगा |"

मैंने स्थिति को तुरन्त समझ लिया | मैंने जल्दी से हिन्दुस्तानी सिपाही की पोषक पहनी और रुस्तमजी के मकान से बाहर निकल गया | वह पुलिस अफसर और मैं सही-सलामत पुलिस-थाने में पहुँच गये | इस बीच पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री एलेक्ज़ेन्डर अपने प्रासंगिक गीतों से और भाषणों से भीड़ का मनोरंजन करते रहे | जब उन्हें मेरे पुलिस-थाने में पहुँचने का संकेत मिल गया तब उन्होंने गंभीर बनकर भीड़ से पूछा :

"आप लोग क्या चाहते हैं ?"

"हम गांधी को चाहते हैं |"

"गांधी को लेकर आप क्या करेंगे ?"

"हम उसे जलायेंगे |"

"उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?"

"उसने हमारे बारेमें हिन्दुस्तान में बहुतेरी झूठी बातें कही हैं और वह नेटाल में हजारों हिन्दुस्तानियों को घुसाना चाहता है |"

"लेकिन गांधी बाहर न निकलें, तो आप क्या करेंगे ?"

"तो हम इस मकान को जला डालेंगे |"

"मकान में तो गांधी की पत्नी और बच्चे भी हैं | दूसरे स्त्री-पुरुष भी हैं | स्त्रियों और बच्चों को जलाने में भी आपको शर्म नहीं आयेगी ?"

"इसका दोष आप पर होगा | आप हमें ऐसा करने के लिए लाचार बना दें, तो हम क्या करें ? हम दूसरे किसी को चोट पहुँचाना नहीं चाहते | गांधी को हमें सौप दीजिए, बस इतने से हमें सन्तोष हो जाएगा | आप गुनहगार को हमें न सौपें और उसे पकड़ने में दूसरों को होने वाले नुकसान की जिम्मेदारी हम पर डाले, यह कहाँ का न्याय है ?"

पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने मुसकुरा कर भीड़ के लोगों को यह खबर सुनाई कि मैं तो उनके बीच से ही होकर दूसरी जगह सुरक्षित रूप में पहुँच गया हूँ ! लोग यह सुन कर खिलखिला कर हंस पड़े और चिल्लाने लगे : "यह झूठ है, सरासर झूठ है !"

श्री एलेक्ज़ेन्डर ने उनसे-कहा : "यदि आप अपने बूढ़े पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की बात का भरोसा न करें, तो आप अपनी पसन्द के तीन-चार आदमियों की एक कमेटी बना दें | दूसरे सब लोग मुझे यह वचन दीजिए कि कोई मकान के अन्दर नहीं घुसेंगे और यदि कमेटी गांधी को मकान में न खोज सके तो आप सब शांति से अपने-अपने घर लौट जाएँगे | आज उत्तेजित होकर आपने पुलिस की सत्ता को स्वीकार नहीं किया, इसमें बदनामी पुलिस की नहीं लेकिन आपकी हुई है | इसलिए पुलिस ने आपके साथ चाल चली; वह आपके बीच से आपके शिकार को निकाल कर ले गई और आप सब हार गये | इसके लिए पुलिस को तो आप दोष नहीं ही देंगे | जिस पुलिस को आपने ही नियुक्त किया है, उसने अपने कर्तव्य का पालन किया है |"

यह सारी बातचीत पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने इतनी मिठास से, इतने विनोद से और इतनी दृढ़ता से की कि भीड़ के लोगों ने माँगा हुआ वचन उन्हें दे दिया | उन्होंने कमेटी बनाई | कमेटी ने पारसी रुस्तमजी के घर का कोना-कोना छान डाला और बाहर आकर लोगों से कहा : सुपरिन्टेन्डेन्ट की बात सच है | उन्होंने हमें हरा दिया है |" लोग सब निराश तो हुए, लेकिन अपना वचन उन्होंने पाला | उन्होंने रुस्तमजी के मकान को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया | सब अपने अपने घर चले गये | वह १३ जनवरी, १८९७ का दिन था |

उसी दिन सवेरे मुसाफिरों पर लगे प्रतिबन्ध के उठते ही डरबन के एक अखबार का संवाददाता जहाज पर मेरे पास आकर सारी बातें मुझसे पुछ गया था | मुझ पर लगाये गये सारे आरोपों के बारेमें पूरा स्पष्टीकरण देना मेरे लिए बहुत आसान था | मैंने सारे उदाहरण देकर संवाददाता के सामने यह सिद्ध कर दिया था कि हिन्दुस्तान में मैंने जरा भी अतिशयोक्ति नहीं की | जो कुछ मैंने वहाँ किया वह मेरा धर्म था | अपने धर्म का पालन यदि मैंने न किया होता, तो मैं मनुष्य-जाति में अपनी गिनती कराने लायक भी न रह जाता | ये सारी बातें दूसरे दिन पूरी-पूरी डरबन के अखबारों में छपीं और सयाने व समझदार गोरों ने अपनी गलती स्वीकार की | अखबारों ने नेटाल के यूरोपियनों की स्थिति के बारेमें अपनी सहानुभूति प्रकट की, परन्तु उसके साथ मेरे कार्य का भी उन्होंने पूरा समर्थन किया | इससे मेरी प्रतिष्ठा बढ़ी और मेरे साथ हिन्दुस्तानी कौम की प्रतिष्ठा भी बढ़ी | यूरोपियनों के सामने यह भी सिद्ध हुआ कि गरीब हिन्दुस्तानी भी नामर्द और कायर नहीं है और हिन्दुस्तानी व्यापारी अपने व्यापार की परवाह किये बिना स्वाभिमान के ख़ातिर और स्वदेश के ख़ातिर लड़ सकते हैं |

यद्यपि इससे कौम को बड़ा दुःख सहना पड़ा, दादा अब्दुल्ला को तो बहुत बड़ा नुकसान उठाना पड़ा, फिर भी मैं मानता हूँ कि अंत में इससे लाभ ही हुआ | कौम को भी अपनी शक्ति का थोड़ा अंदाज लगा और उसका

आत्म-विश्वास बढ़ा | मुझे भी अधिक अनुभव हुआ और अधिक तालीम मिली | आज जब मैं उन दिनों का विचार करता हूँ तो मुझे लगता है कि ईश्वर उस समय मुझे सत्याग्रह के लिए तैयार कर रहा था |

नेटाल की घटनाओं का असर इंग्लैंड में भी हुआ | श्री चैम्बरलेन ने नेटाल सरकार को तार किया कि जिन गोरों ने मुझ पर आक्रमण किया उन पर कोर्ट में मुकदमा चलाया जाना चाहिए और मुझे न्याय मिलना चाहिए |

श्री एस्कंब उस समय नेटाल सरकार के एटर्नी-जनरल थे | उन्होंने मुझे बुलाया | श्री चैम्बरलेन के तार की बात कही, गोरों के आक्रमण से मुझे जो चोट पहुँची उसके लिए दुःख प्रकट किया और मैं खतरे से बच गया इसके लिए अपनी खुशी बताई | उन्होंने यह भी कहा : "मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि ऐसा मैं बिलकुल नहीं चाहता था कि आपको या आपकी कौम के किसी भी आदमी को चोट पहुँचे | यूरोपियनों के आक्रमण से आपको चोट पहुँचने का मुझे डर था, इसी कारण से मैंने आपके पास यह सूचना भेजी थी कि दिन में न उतर कर आप रात को जहाज से उतरें | लेकिन मेरी सूचना आपको ठीक नहीं लगी | आपने मि. लॉटन की सलाह मानी, इसके लिए मैं आपको जरा भी दोषी नहीं मानता | आपको जो उचित लगा उसे करने का आपको पूरा अधिकार था | मि. चैम्बरलेन की माँग के साथ नेटाल सरकार पूरी तरह सहमत है | हम चाहते है कि अपराधियों को दंड मिले | क्या आक्रमण करने वालों में से आप किसी को पहचान सकते हैं ?"

मैंने उत्तर दिया : "संभव है, एक-दो आदमियों को मैं पहचान सकूं | परन्तु यह बात आगे बढ़े इसके पहले ही मुझे कह देना चाहिए कि मैंने अपने मन में कभी का निश्चय कर लिया है कि मैं अपने पर हुए इस हमले के बारेमें किसी के खिलाफ अदालत में शिकायत करूँगा ही नहीं | हमला करने वाले लोगों का तो मैं इसमें कोई दोष भी नहीं देखता | उन्हें तो जो कुछ जानकारी मिली वह उनके नेताओं की ओर से मिली थी | वह सच थी या झूठ, इसकी चाँच करने के लिए वे बैठे नहीं रह सकते थे | मेरे विषय में जो कुछ उन्होंने सुना वह सब उन्हें सही लगा हो, तो उनका उत्तेजित होना और आवेश में आकर न करने जैसी बातें भी कर डालना स्वाभाविक था | इसमें मैं उन लोगों का दोष नहीं मानता | लोगों की उत्तेजित बनी हुई भीड़ तो इसी तरह न्याय प्राप्त करती आई है | अगर इस मामले में किसी का दोष हो, तो वह इस सम्बन्ध में रची गई कमेटी का है और स्वयं आपका है और इसलिए नेटाल सरकार का है | रूटर ने चाहे जैसा तार किया हो, परन्तु जब आप यह जानते थे कि मैं यहाँ आ रहा हूँ तब आपका और कमेटी का कर्तव्य हो जाता था कि आप लोगों ने जो जो शंकायें हिन्दुस्तान के मेरे कार्यों के बारेमें अपने मन में खड़ी कर ली थीं उनके सम्बन्ध में मुझसे पूछते, मेरे उत्तर सुनते और उसके बाद जो उचित मालूम होता वह करते | अब मुझ पर जो आक्रमण हुआ उसके लिए मैं आप पर या कमेटी पर तो मुकदमा चला ही नहीं सकता | और यदि मुकदमा चलाना संभव हो, तो भी ऐसा न्याय मैं कोर्ट के द्वारा प्राप्त नहीं करना चाहूँगा | नेटाल के गोरों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए आपको जैसे कदम उठाना उचित लगा वैसे आपने उठाये

| यह राजनीतिक विषय है | मुझे भी राजनीतिक क्षेत्र में ही आपसे लड़ना होगा और आपको तथा नेटाल के गोरों को यह बताना होगा कि हिन्दुस्तानी कौम ब्रिटिश साम्राज्य के एक बड़े भाग के रूप में गोरों को किसी तरह की हानि पहुँचाये बिना केवल अपने स्वाभिमान और अधिकारों की रक्षा करना चाहती है |"

श्री एस्कंब ने कहा : "आपने जो कुछ कहा उसे मैं समझा हूँ और वह मुझे अच्छा भी लगा है | आप अपने आक्रमणकारियों पर मुकदमा नहीं चलाना चाहते, यह सुनने के लिए मैं तैयार नहीं था | और यदि आप उन लोगों पर मुकदमा चलाना चाहते, तो मैं जरा भी नाराज न होता | लेकिन जब आपने मुकदमा न चलाने का अपना निर्णय बता दिया है, तो मुझे यह कहने में संकोच नहीं होता कि आपने सही निर्णय किया है | इतना ही नहीं, अपने इस संयम से आप अपनी कौम की अधिक सेवा करेंगे | इसके साथ मुझे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि आप अपने इस कदम से नेटाल सरकार को विषम स्थिति से बचा लेंगे | आप चाहेंगे तो हम आपके आक्रमणकारियों की गिरफ़्तारी बगैरा तो करेंगे, परन्तु आपसे यह कहना शायद ही ज़रूरी हो कि इससे गोरे फिर भड़क उठेंगे और तरह-तरह की टिकायें होंगी | और यह सब कोई भी सरकार कभी पसंद नहीं करेगी | परन्तु यदि मुकदमा न चलाने के बारेमें आपने अंतिम निर्णय कर लिया हो, तो आपको अपना यह विचार बताने वाला एक पत्र मुझे लिख देना चाहिए | केवल हमारी बातचीत का सार ही मि. चैम्बरलेन के पास भेजकर मैं अपनी सरकार का बचाव नहीं कर सकता | मुझे तो आपके पत्र का भावार्थ ही तार द्वारा उनके पास भेजना होगा | लेकिन मैं यह नहीं कहता कि ऐसा पत्र आप इसी समय लिख दें | आप अपने मित्रों से इस विषय में विचार-विमर्श करें | मि. लॉटन की भी सलाह लें | यह सब कर लेने के बाद भी आप अपने निर्णय पर दृढ़ रहें, तो ही आप मुझे उपर्युक्त आशय का पत्र लिखें | लेकिन इतना मैं आपसे कह दूँ कि अपने पत्र में आक्रमणकारियों पर मुकदमा न चलाने की जिम्मेदारी स्पष्ट रूप में आपको स्वयं अपने सिर लेनी होगी | तभी मैं आपके इस पत्र का उपयोग कर सकूँगा |"

मैंने उनसे कहा : "मुझे कल्पना नहीं थी कि आपने इस घटना के सम्बन्ध में मुझे बुलाया है | इस विषय में न तो मैंने किसी से विचार-विमर्श किया है, और न किसी से विचार-विमर्श करने की मेरी इच्छा है | जब मैंने श्री लॉटन के साथ जहाज से उतरने और आगे बढ़ने का निर्णय किया तभी अपने मन में ठान लिया था कि गोरे मुझे कोई भी कष्ट क्यों न दें, मैं उसका बुरा नहीं मानूँगा | इसलिए आक्रमणकारियों पर मुकदमा चलाने का कोई प्रश्न ही नहीं रहता | मेरे मन में यह धार्मिक प्रश्न है | और आपके कहे अनुसार मैं भी यह मानता हूँ कि मेरे इस संयम से न केवल मेरी कौम की सेवा होगी, परन्तु मुझे स्वयं भी उससे लाभ होगा | इसलिए मैं सारी जिम्मेदारी अपने सिर लेकर इसी समय आपका माँगा हुआ पत्र लिख देना चाहता हूँ |"

और मैंने श्री एस्कंब से एक कोरा कागज माँगकर वहीं पत्र लिखा और उन्हें दे दिया |

१. देखिये *यंग इंडिया,* १३-७-१९२१; *नवजीवन,* २८-७-१९२१ |

२. मूल गुजराती में यहाँ गिरमिटिये का नाम सुब्रह्मण्यम् दिया गया है, जो गलत लगता है | *आत्मकथा* में बालासुंदरम् नाम है, जो सच्चा है |

८. हिन्दुस्तानियों ने क्या किया?

३

इंग्लैंड में कार्य

पाठक पिछले प्रकरणों में यह देख चुके हैं कि हिन्दुस्तानी कौम ने अपनी स्थिति को सुधारने के लिए कुछ प्रयत्न किये और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई | जिस प्रकार दक्षिण अफ्रीका में कौम ने अपने सारे अंगों का विकास करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया, उसी प्रकार हिन्दुस्तान और इंग्लैंड से जितनी मदद मिल सकती थी उतनी पाने का प्रयत्न भी उसने किया | हिन्दुस्तान के कार्य के बारेमें तो मैं थोड़ा लिख चुका हूँ | अब यह बताना चाहिए कि इंग्लैंड से मदद लेने के बारेमें क्या किया गया | सबसे पहले भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की ब्रिटिश कमेटी के साथ सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक था | इसलिए हिन्दुस्तान के दादा श्री दादाभाई नौरोजी को और ब्रिटिश कमेटी के अध्यक्ष सर विलियम वेडरबर्न को सारी घटनाओं का ब्योरेवार वर्णन करने वाले साप्ताहिक पत्र लिखे जाते थे | और जब-जब अरजियों की नकलें बगैरा भेजने का मौका आता तब तब कमेटी के डाकखर्च में और सामान्य खर्च में मदद करने के लिए कम से कम १० पौंड की रकम भेजी जाती थी |

यहाँ मैं दादाभाई नौरोजी का एक पवित्र संस्मरण दे दूँ | दादाभाई ब्रिटिश कमेटी के अध्यक्ष नहीं थे | फिर भी हमने सोचा कि उनके द्वारा ही कमेटी को पैसे भेजना उचित होगा, और वे हमारी ओर से भेजे हुए पैसे कमेटी के अध्यक्ष को दे दें | परन्तु पहली ही बार हमने जो पैसे भेजे उन्हें दादाभाई ने लौटा दिया और सुझाया कि कमेटी के नाम के पैसे और पत्र आपको सीधे सर विलियम वेडरबर्न के पास ही भेजने चाहिए | दादाभाई स्वयं तो यथाशक्ति हमारी सहायता करते ही थे, परन्तु उनका कहना था कि कमेटी की प्रतिष्ठा तभी बढ़ेगी जब हम सर विलियम वेडरबर्न के द्वारा ही काम लेंगे | मैंने यह भी देखा कि दादाभाई इतने बूढ़े होते हुए भी अपने पत्र-व्यवहार में बड़े नियमित रहते थे | उन्हें कुछ अधिक न लिखना होता तो कमसे कम पत्र की पहुँच तो वे लौटती डाक से भेज ही देते थे और उसमें प्रोत्साहन की एक पंक्ति अवश्य रहती थी | ऐसे पत्र भी वे स्वयं ही लिखते थे और उनकी नकल अपनी टिश्यु-पेपर बुक में कर लेते थे |

पिछले एक प्रकरण में मैं यह भी बता चुका हूँ कि हमने अपनी संस्था को 'काँग्रेस' का नाम तो दिया था, परंतु हमारा इरादा अपने प्रश्नों को किसी एक पार्टी के प्रश्न बनाने का कभी नहीं रहा | इसलिए दादाभाई जानें इस ढंग से हमारा पत्र-व्यवहार दूसरी पार्टियों के लोगों के साथ भी चलता था | उनमें दो सज्जन मुख्य थे : एक सर मंचेरजी भावनगरी और दूसरे सर विलियम विल्सन हन्टर | सर मंचेरजी भावनगरी उस समय ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के सदस्य थे | उनसे हमें अच्छी मदद मिलती थी; वे सदा हमें महत्त्वपूर्ण सूचनायें भी देते रहते थे | लेकिन दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों के प्रश्न का महत्त्व हिन्दुस्तानियों से भी पहले समझने वाले और उनकी बहुमूल्य

सहायता करने वाले यदि कोई थे तो वे सर विलियम विल्सन हन्टर थे | वे *टाइम्स* के हिन्दुस्तानी विभाग के संपादक थे | हमने दक्षिण अफ्रीका की स्थिति के बारेमें उन्हें प्रथम पत्र लिखा तभी से वे उस विभाग में हिन्दुस्तानियों के प्रश्न की उसके सच्चे स्वरूप में सार्वजनिक चर्चा करने लगे थे; और हमारे ध्येय के समर्थन में अनेक सज्जनों को व्यक्तिगत पत्र भी लिखते थे | जब कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता तब उनका पत्र लगभग प्रति सप्ताह हमें मिलता था | उनका जो पहला उत्तर आया उसमें उन्होंने लिखा था : "आपकी बताई स्थिति के बारेमें पढ़कर मुझे बड़ा दुःख हुआ है | आप अपनी लड़ाई विनय से, शांति से और बिना किसी आतिशयोक्ति के लड़ रहे हैं | इस प्रश्न में मेरी सहानुभूति संपूर्ण रूप में आपके साथ है | आपको न्याय मिले इसके लिए मैं अपनी शक्तिभर व्यक्तिगत रूप में और सार्वजनिक रूप में सब-कुछ कर गुजरूँगा | मेरा विश्वास है कि इस मामले में हम एक इंच भी पीछे नहीं हट सकते | आपकी माँग ऐसी है कि कोई निष्पक्ष मनुष्य उसमें काटछांट करने की बात सुझा ही नहीं सकता |" *टाइम्स* में इस विषय में जो पहला लेख उन्होंने लिखा था उसमें भी अपने पत्र के लगभग यही शब्द उद्धृत किये थे | अंत तक उनका यही रुख हमारे प्रश्न के बारेमें रहा | लेडी हन्टर ने अपने एक पत्र में लिखा था कि अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व ही दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों के प्रश्न पर लिखी जाने वाली एक लेखमाला की रुपरेखा उन्होंने तैयार की थी |

श्री मनसुखलाल नाजर का नाम मैं पिछले प्रकरण में दे चुका हूँ | हिन्दुस्तानियों का प्रश्न अधिक अच्छे ढंग से समझाने के लिए कौम की ओर से उन्हें इंग्लैंड भेजा गया था | उन्हें यह सूचना की गई थी कि वे सब पार्टियों को अपने साथ रखकर यह काम करें | इंग्लैंड के अपने निवास काल में वे सदा स्व. सर विलियम विल्सन हन्टर, सर मंचेरजी भावनगरी और भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की ब्रिटिश कमेटी के संपर्क में रहे | वे भारतीय सिविल सर्विस के सेवा-निवृत्त अधिकारियों, भारत-मंत्री के कार्यालय तथा उपनिवेश-मंत्री के कार्यालय के संपर्क में भी रहते थे | इस प्रकार अपने प्रयत्न में उन्होंने एक भी दिशा ऐसी नहीं छोड़ी, जहाँ उनकी पहुँच हो सकती थी | इस सबका परिणाम स्पष्ट रूप में यह आया कि हिन्दुस्तान के बाहर बसने वाले हिन्दुस्तानियों की स्थिति ने बड़ी (साम्राज्य) सरकार की दृष्टि में प्रथम श्रेणी का महत्व ग्रहण कर लिया | और उसका अच्छा तथा बुरा असर दूसरे उपनिवेशों पर भी पड़ा | अर्थात् जिन-जिन उपनिवेशों में हिन्दुस्तानी लोग बसे हुए थे वहाँ वे अपनी स्थिति के महत्त्व के प्रति जाग्रत बन गये और वहाँ के यूरोपियन निवासी उस खतरे के प्रति सजग हो गये, जो उनके ख्याल से हिन्दुस्तानी लोग उपनिवेशों में यूरोपियनों के प्रभुत्व को पहुँचा सकते थे |

९. बोअर-युद्ध

जिन पाठकों ने पिछले प्रकरण ध्यान से पढ़े होंगे उन्हें इस बात का ख्याल होगा कि बोअर-युद्ध के समय दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की दशा कैसी थी | उस समय तक अपनी दशा को सुधारने के लिए उन्होंने जो-जो प्रयत्न किये, उनका वर्णन भी किया जा चुका है |

डॉ. जेमिसन की सोने की खदानों के मालिकों के साथ जो गुप्त मंत्रणा हुई थी, उसके अनुसार उन्होंने १८९९ में जोहानिसबर्ग पर धावा बोल दिया | दोनों की आशा तो यह थी कि जोहानिसबर्ग पर अधिकार कर लेने के बाद ही बोअर-सरकार को इस धावे का पता चलेगा | पर ऐसी आशा रखने में डॉ. जेमिसन तथा उनके मित्रों ने बहुत बड़ी गलती की | दूसरी गलती उन्होंने यह आशा रखकर की कि हमारे षड्यंत्र का भंडाफोड़ हो गया, तो भी रोडेशिया में तालीम पाये हुए निशानेबाजों (शार्प-शूटर्स) के सामने अनाड़ी बोअर किसान कुछ कर नहीं सकेंगे | उन्होंने गलती से यह भी मान लिया था कि जोहानिसबर्ग की आबादी का बहुत बड़ा भाग उनका स्वागत ही करेगा | उन भले डॉक्टर की यह आशा भी पूरी नहीं हुई | प्रेसिडेन्ट क्रूगर को सारे षड्यंत्र का पूरा पता चल गया था | उन्होंने अत्यन्त शांति, कुशलता और गुप्त रीति से डॉ. जेमिसन का सामना करने की तैयारियाँ कर ली थीं और जो लोग उनके साथ षड्यंत्र में शरीक हुए थे, उन्हें गिरफ्तार करने की भी पूरी तैयारी कर ली थी | इसलिए डॉ. जेमिसन जोहानिसबर्ग के निकट पहुँचे उसके पहले ही बोअर-सेना ने अपनी गोलियों से उनका स्वागत किया | इस सेना के सामने डॉ. जेमिसन की टुकड़ी टिक ही नहीं सकती थी | जोहानिसबर्ग में कोई सरकार के खिलाफ विद्रोह न कर सके, इसके लिए भी प्रेसिडेन्ट क्रूगर संपूर्ण रूप में तैयार थे | इसके फलस्वरूप शहर की आबादी में से कोई आदमी सिर उठाने की हिम्मत नहीं कर सका | प्रेसिडेन्ट क्रूगर की सारी कार्रवाई से जोहानिसबर्ग के करोड़पति स्तब्ध रह गये | प्रेसिडेन्ट की इतनी सुन्दर तैयारी का परिणाम यह हुआ कि धावे को पीछे धकेलने में पैसे का कम से कम खर्च हुआ और प्राणों की भी कम से कम हानि हुई|

डॉ. जेमिसन और उनके सब मित्र – सोने की खदानों के मालिक – पकड़ लिए गये और तुरन्त उन पर मुकदमा चलाया गया | कुछ लोगों को फाँसी की सजा हुई | इन अपराधियों में से अधिकतर तो करोड़पति ही थे | लेकिन बड़ी (साम्राज्य) सरकार उनके लिए कुछ नहीं कर सकी, क्योंकि उन्होंने दिन-दहाड़े धावा बोलने का अपराध किया था | प्रेसिडेन्ट क्रूगर का महत्त्व एकदम बढ़ गया | उपनिवेश-मंत्री श्री चैम्बरलेन ने उन्हें दीन वचन वाला तार किया और प्रेसिडेन्ट क्रूगर के दयाभाव को जाग्रत करके इन सब करोडपतियों के लिए दया की भीख माँगी | प्रेसिडेन्ट क्रूगर अपना दाव खेलने में अत्यन्त कुशल थे | उन्हें इस बात का कोई भय था ही नहीं कि दक्षिण अफ्रीका की कोई भी शक्ति उनके हाथ से राजसत्ता छीन सकती है | डॉ. जेमिसन तथा उनके मित्रों का षड्यंत्र उनकी अपनी दृष्टि से तो बड़ी कुशलतापूर्वक रचा गया था, परन्तु प्रेसिडेन्ट क्रूगर की दृष्टि में वह बालिशता का

काम था | इसलिए उन्होंने श्री चैम्बरलेन की नम्र प्रार्थना स्वीकार कर ली और न केवल किसी को फाँसी की सजा नहीं दी, बल्कि सबको संपूर्ण क्षमा करके मुक्त कर दिया !

लेकिन उछाले के साथ ऊपर आया हुआ अन्न पेट में कब तक टिक सकता है; वह तो बाहर निकलेगा ही | प्रेसिडेन्ट क्रूगर भी जानते थे कि डॉ. जेमिसन का धावा तो गंभीर रोग का एक सामान्य-सा लक्षण भर था | जोहानिसबर्ग के करोड़पति अपनी बदनामी को किसी भी तरह घोने का प्रयत्न न करें, यह असंभव था | इसके सिवा, जिन सुधारों के लिए डॉ. जेमिसन के आक्रमण की योजना बनाई गई थी, उनमें से तो अभी तक एक भी सुधार नहीं किया गया था | इस कारण से यह संभव नहीं था कि जोहानिसबर्ग के करोड़पति शांत रहें | उनकी माँगों के लिए दक्षिण अफ्रीका स्थित ब्रिटिश हाई कमिश्नर लॉर्ड मिल्नर की पूरी सहानुभूति थी | साथ ही, श्री चैम्बरलेन ने भी ट्रान्सवाल का द्रोह करने वाले डॉ. जेमिसन तथा करोड़पतियों के प्रति दिखाई गई प्रेसिडेन्ट क्रूगर की महान उदारता की स्तुति करते हुए उनका ध्यान सुधारों की आवश्यकता पर खींचा था | सब कोई यह मानते थे कि युद्ध के सिवा इस झगड़े का निबटारा कभी हो ही नहीं सकेगा | खदानों के मालिकों की माँगे इस प्रकार की थीं कि उनका अंतिम परिणाम ट्रान्सवाल में बोअरों के प्रभुत्व का नाश होने में ही आता | दोनों पक्ष जानते थे कि इसका अंतिम परिणाम युद्ध ही होगा, इसलिए दोनों युद्ध की तैयारी कर रहे थे | उस समय दोनों पक्षों का शब्दयुद्ध देखने जैसा था | जब प्रेसिडेन्ट क्रूगर अधिक हथियार और युद्ध-सामग्री मँगाते थे तब ब्रिटिश एजेन्ट उन्हें चेतावनी देता था कि आत्मरक्षा के लिए अंग्रेज सरकार को भी दक्षिण अफ्रीका में थोड़ी सेना लाने के लिए मजबूर होना पड़ेगा | जब ब्रिटिश सेना दक्षिण अफ्रीका में आती थी तब प्रेसिडेन्ट क्रूगर अंग्रेजों को ताना मारते थे और युद्ध की अधिक तैयारियाँ करने में लग जाते थे | इस प्रकार एक पक्ष दूसरे पर आरोप लगाता था और दोनों युद्ध की तैयारी भी करते जाते थे |

जब प्रेसिडेन्ट क्रूगर ने पूरी तैयारी कर ली तब उन्हें लगा कि अब बैठे रहने का अर्थ होगा खुद होकर शत्रु की शरण में जाना | ब्रिटिश साम्राज्य के पास धन का और पशुबल का अखूट भण्डार है; ब्रिटिश साम्राज्य धीरे-धीरे तैयारी करते हुए और प्रेसिडेन्ट क्रूगर को खदान-मालिको की शिकायतें दूर करने के लिए समझाते हुए लम्बा समय निकाल सकता है और दुनिया को यह दिखा सकता है कि प्रेसिडेन्ट क्रूगर खदान-मालिकों की शिकायतें दूर करते ही नहीं, इसलिए हमें मजबूर होकर युद्ध करना पड़ा है | ऐसा कहकर वह इतनी जबरदस्त तैयारी के साथ युद्ध करेगा कि प्रेसिडेन्ट क्रूगर युद्ध में उनका मुकाबला कर ही न सकें और दीन तथा अपमानित होकर ब्रिटिश साम्राज्य की माँगे स्वीकार करने के लिए विवश हो जाएँ | जिस प्रजा का १८ से ६० वर्ष की आयु का समग्र पुरुष-वर्ग युद्ध करने में कुशल हो, जिसकी स्त्रियाँ भी इरादा कर लें तो युद्ध में लड़ने की क्षमता रखती हो, जिस प्रजा में राष्ट्रीय स्वतंत्रता एक धार्मिक सिद्धान्त मानी जाती हो, वह प्रजा चक्रवर्ती राजा के बल और सत्ता के सामने भी ऐसी दीन नहीं बन सकती | और, बोअर प्रजा सचमुच ऐसी ही बहादुर थी |

ऑरेंज फ्री स्टेट के साथ प्रेसिडेन्ट क्रूगर ने पहले ही समझौता कर लिया था | इन दोनों बोअर राज्यों की नीति और कार्य-पद्धति एक ही थी | प्रेसिडेन्ट क्रूगर बिलकुल नहीं चाहते थे कि ब्रिटिश माँगें पूरी तरह स्वीकार कर ली जाएँ; खदान-मालिकों को सन्तोष हो इस हद तक भी वे इन माँगों को स्वीकार नहीं करना चाहते थे | इस लिए दोनों राज्यों ने सोचा कि जब युद्ध अनिवार्य ही है तो ऐसी स्थिति में जितना भी समय जाएगा उतना ब्रिटिश साम्राज्य को युद्ध की तैयारी के लिए देने के बराबर होगा | इस पर प्रेसिडेन्ट क्रूगर ने अपने अंतिम विचार और अंतिम माँगें लॉर्ड मिल्नर को बता दीं | इसके साथ ही उन्होंने ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट की सीमा पर सेना तैनात कर दी | इसका परिणाम युद्ध के सिवा दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता था | ब्रिटिश साम्राज्य के समान चक्रवर्ती राज्य इस धमकी के सामने झुक ही नहीं सकता था | प्रेसिडेन्ट क्रूगर के 'अल्टीमेटम' का समय पूरा हुआ और बोअर-सेना बिजली की गति से आगे बढ़ी | उसने लेडीस्मिथ, किम्बरली और मेफेकिंग पर घेरा डाल दिया | इस प्रकार १८९९ में इस महान युद्ध का आरम्भ हुआ | पाठक यह तो जानते ही है कि इस युद्ध के कारणों में – अर्थात् ब्रिटिश माँगों में – एक कारण बोअर-राज्यों में हिन्दुस्तानियों की दुर्दशा भी थी |

अब दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों के सामने यह महान प्रश्न खड़ा हुआ कि उन्हें इस मौके पर क्या करना चाहिए | बोअरों का समूचा पुरुष-वर्ग तो युद्ध मने चला गया | वकीलों ने वकालत छोड़ी, किसानों ने खेत छोड़े, व्यापारियों ने व्यापार छोड़ा और नौकरों ने नौकरी छोड़ी | अंग्रेजों के पक्ष में बोअरों जितने भी नहीं, परन्तु केप कॉलोनी, नेटाल और रोडेशिया में असैनिक वर्गों के लोग बड़ी संख्या में स्वयंसेवक बने | अनेक बड़े अंग्रेज वकील बैरिस्टर और अंग्रेज व्यापारी स्वयंसेवकों में भरती हो गये | जिस अदालत में मैं वकालत करता था उसमें अब मुझे बहुत कम वकील दिखाई देते थे | अनेक बड़े वकील युद्धकार्य में जुट गये | हिन्दुस्तानियों पर जो आक्षेप लगाये जाते थे, उनमें से एक यह था : "ये लोग दक्षिण अफ्रीका में केवल पैसे जमा करने ही आते हैं | ये हम पर (अंग्रेजों पर) निरे बोझ बने हुए हैं | जिस प्रकार दीमक लकड़ी में घुस जाती है और कुरेद-कुरेद कर उसे बिलकुल खोखला बना देती है, उसी प्रकार ये हिन्दुस्तानी हमारे कलेजे कुरेद कर खाने के लिए ही यहाँ आये हैं | देश पर यदि आक्रमण हो, हमारे घरबार लुटने का मौका आये, तो ये लोग हमारी थोड़ी भी मदद करने वाले नहीं हैं | उस समय न केवल हमें शत्रुओं से अपनी रक्षा करनी होगी, परन्तु अपने साथ इन लोगों की भी रक्षा करनी पड़ेगी |" इस आक्षेप के बारेमें भी हम सब हिन्दुस्तानियों ने गहरा विचार किया | हम सबको लगा कि इस समय यह सिद्ध कर दिखाने का एक सुन्दर अवसर हमें मिला है कि इस आक्षेप में कोई सचाई नहीं है-वह निराधार है | लेकिन दूसरी ओर कुछ लोगों ने नीचे के विचार भी सामने रखे :

"अंग्रेज और बोअर दोनों ही हमें एक से तकलीफ देते हैं | ट्रान्सवाल में ही हमें दुःख भोगन पड़ता है और नेटाल व केप कॉलोनी में नहीं भोगना पड़ता, ऐसी बात नहीं है | भेद केवल दुःख की मात्रा का है | फिर, हमारी कौम तो गुलामों की कौम कही जाती है | हम जानते हैं कि बोअरों जैसी एक छोटी-सी कौम अपने अस्तित्व के लिए

अंग्रेजों से लड़ रही है | यह जानते हुए भी हम उसके नाश का कारण कैसे बन सकते हैं ? और अंत में यदि व्यवहार की दृष्टि से देखें, तो कोई यह भविष्य-वाणी नहीं कर सकता कि बोअर लोग इस युद्ध में हारने वाले हैं | वे युद्ध में यदि जीत गए, तो क्या हमसे बदला लिए बिना रहेंगे ?"

यह दलील जोरदार भाषा में सामने रखने वाला एक सबल पक्ष हमारे बीच था | मैं खुद भी इस दलील को समझ सका था और उसे आवश्यक महत्त्व भी देता था | फिर भी मुझे वह जंची नहीं | मैंने उसका खंडन अपने मन में और कौम के लोगों के सामने इस तरह किया :

"दक्षिण अफ्रीका में हमारा अस्तित्व केवल ब्रिटिश प्रजाजनों के नाते ही है | हर अरजी में हमने ब्रिटिश प्रजाजनों के रूप में ही अपने अधिकार माँगे हैं | हमने ब्रिटिश प्रजाजन होने में गौरव माना है अथवा अपने शासकों और दुनिया को यह मानने दिया है कि ब्रिटिश प्रजाजन होने में हमारा गौरव है | हमारे शासकों ने भी हमारे अधिकारों का बचाव इसीलिए किया है कि हम ब्रिटिश प्रजाजन हैं | दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेज हमें दुःख देते हैं, इस कारण से उनके और हमारे घरबार नष्ट होने का मौका आने पर भी यदि हम हाथ पर हाथ धरे प्रेक्षकों की तरह तमाशा देखते रहें, तो यह हमारे मनुष्यत्व के लिए शोभा की बात नहीं है | इतना ही नहीं, यह मनोवृत्ति हमारे दुःखों में वृद्धि करने वाली सिद्ध होगी | जिस आक्षेप को हमने गलत माना है उसे गलत सिद्ध करने का अनायास हमें जो अवसर मिला है, उसे हाथ से जाने देने का अर्थ होगा स्वयं उस आक्षेप को सिद्ध करना | उसके बाद अगर हम पर अधिक दुःख पड़े और अंग्रेज हमें अधिक ताने मारें और हमसे अधिक नफरत करें, तो वह आश्चर्य की बात नहीं होगी | वह तो हमारा ही दोष कहा जाएगा | अंग्रेजों ने जितने आक्षेप हम पर लगाये हैं वे बिलकुल निराधार हैं – उन पर दलील करने जैसा भी कुछ नहीं है – ऐसा कहना अपने आप को धोखा देना है | यह सच है कि हम ब्रिटिश साम्राज्य में गुलामों के समान हैं, परन्तु आज तक का हमारा प्रयत्न ब्रिटिश साम्राज्य में रहकर गुलामी को दूर करने का रहा है | हिन्दुस्तान के सारे नेता ऐसा ही करते हैं | हम लोग भी ऐसा ही कर रहे हैं | और यदि हम ब्रिटिश साम्राज्य के सदस्यों के रूप में ही अपनी स्वतंत्रता और उन्नति सिद्ध करना चाहते हों, तो इस समय हमें भी तन-मन-धन से इस युद्ध में अंग्रेजों की सहायता करके यह ध्येय सिद्ध करने का सुवर्ण अवसर मिला है | बोअरों का पक्ष न्याय का पक्ष है, ऐसा बहुत हद तक कहा जा सकता है | परन्तु किसी राज्यतंत्र के भीतर रहते हुए प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वतंत्र विचारों के आचरण में, नहीं उतार सकता | राज्य के अधिकारीगण जितने भी कार्य करते है वे सब उचित ही होते हैं ऐसा नहीं | फिर भी जब तक प्रजाजन अमुक राज्य को स्वीकार करते हैं तब तक उस राज्य के कार्यों का समर्थन करना और उनमें राज्य की सहायता करना उनका स्पष्ट कर्तव्य है |

"इसके सिवा, प्रजा का कोई भाग यदि राज्य या सरकार के किसी कार्य को धार्मिक दृष्टि से अनीतिपूर्ण समझता हो, तो उस कार्य में विघ्न डालने से पहले या सहायता देने से पहले राज्य को ऐसे अनीतिपूर्ण कार्य से बचाने का संपूर्ण प्रयत्न प्राणों को संकट में डालकर भी उस भाग को करना चाहिए | ऐसा हमने कुछ किया नहीं है | ऐसा धर्म-संकट हमारे सामने खड़ा भी नहीं हुआ है और ऐसे किसी सार्वजनिक और व्यापक कारण से हम इस युद्ध में भाग नहीं लेना चाहते, यह न तो किसी ने कहा है और न माना है | इसलिए प्रजा के नाते हमारा सामान्य धर्म तो यही है कि युद्ध के गुण-दोष का विचार किये बिना जो युद्ध हो रहा है उसमें यथा-शक्ति सहायता करें | अंत में, यदि बोअर-राज्य युद्ध में जीते – और वे हारेंगे ही ऐसा मानने का हमारे पास कोई कारण नहीं है – तो हम चूल्हे से निकलकर भट्ठी में गिरेंगे और फिर तो वे हमसे मनमाना बदला लेंगे, ऐसा कहना या विश्वास करना बहादुर बोअरों के साथ और स्वयं अपने साथ भी अन्याय करना है | यह तो केवल हमारी कायरता की निशानी मानी जाएगी | ऐसा सोचना भी हमारी वफादारी को बट्टा लगाना है | क्या कोई अंग्रेज एक क्षण के लिए भी ऐसा सोच सकता है कि अंग्रेज हार गये तो उसका क्या होगा ? युद्ध के मैदान में जाने वाला कोई भी मनुष्य अपना मनुष्यत्व खोये बिना ऐसी दलील कर ही नहीं सकता |"

यह दलील मैंने १८९९ में की थी; और आज भी उसमें परिवर्तन करने का कोई कारण मुझे दिखाई नहीं देता | मेरा कहने का मतलब यह है कि जो मोह उस समय ब्रिटिश साम्राज्य के बारेमें मुझे था और हमारी स्वतंत्रता की जो आशा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहकर उस समय मैंने बाँधी थी वह मोह और वह आशा आज भी बनी रहती, तो मैं अक्षरश: यही दलील दक्षिण अफ्रीका में करता और वैसी स्थिति में यहाँ हिन्दुस्तान में भी करता | इस दलील के अनेक खण्डन मैंने दक्षिण अफ्रीका में और उसके बाद इंग्लैंड में भी सुने थे | फिर भी अपने इन विचारों को बदलने का कोई कारण मुझे नहीं दिखाई पड़ा | मैं जानता हूँ कि मेरे आज के विचारों का प्रस्तुत विषय के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है | परन्तु ऊपर का भेद बताने के दो सबल कारण हैं | एक तो यह है कि इस पुस्तक को कोई उतावली में पढ़ना चाहने वाले पाठकों से यह आशा रखने का मुझे कोई अधिकार नहीं कि वे इसे धैर्य से और ध्यान से पढ़ेंगे | ऐसे पाठकों के लिए मेरे आज के कार्यों के साथ उपर्युक्त विचारों का मेल बैठाना कठिन होगा | दूसरा कारण यह कि उस विचारसरणी में भी सत्य का ही आग्रह है | हम भीतर जैसे हैं वैसे ही बाहर दिखाई दें और उसके अनुसार व्यवहार करें, यह धार्मिक आचरण की अंतिम सीढ़ी नहीं किन्तु पहली सीढ़ी है | इस नींव के बिना धार्मिक जीवन की इमारत खड़ी करना असंभव है |

अब हम फिर अपने इतिहास की ओर मुड़ें |

मेरी ऊपर की दलील अनेक लोगों को पसंद आई | पाठक यह न मान लें कि मेरी अकेले की ही यह दलील थी | फिर, इस दलील से पहले भी युद्ध में भाग लेने की इच्छा रखने वाले अनेक हिन्दुस्तानी थे | लेकिन अब

व्यावहारिक प्रश्न यह खड़ा हुआ : युद्ध की इस भयंकर आंधी में हिन्दुस्तानियों की कमजोर आवाज को कौन सुनेगा ? हिन्दुस्तानियों के सहायता के प्रस्ताव का कितना महत्त्व आंका जाएगा ? हथियार तो हम में से किसीने कभी उठाये ही नहीं थे | युद्ध में सैनिकों से भिन्न काम करने के लिए भी तालीम ज़रूरी थी | कदम से कदम मिलाकर एक ताल में कूच करना भी तो हम में से किसी को नहीं आता था | इसके सिवा, सेना के साथ लंबी मंजिलें तय करना, अपना-अपना सामान खुद उठाकर चलना – यह भी हमारे लिए कठिन था | इसके सिवा, गोरे हम सबको 'कुली' ही मानेंगे, हमारा अपमान भी करेंगे, हमें तिरस्कार की नजर से देखेंगे | यह सब कैसे बरदाश्त किया जाए ? और अगर हम सेना में भारती होने की माँग करें, तो उस माँग को स्वीकार कैसे करायें ? इन प्रश्नों पर सोचने-विचारने के बाद अंत में हम इस निश्चय पर आये कि अपना प्रस्ताव स्वीकार कराने के लिए हमें जोरदार प्रयत्न करना चाहिए, काम का अनुभव हमें अधिक काम करना सिखायेगा, यदि हमारे भीतर इच्छा होगी तो सेवा करने की शक्ति ईश्वर देगा; मिला हुआ काम कैसे पूरा होगा, इसकी चिन्ता हमें छोड़ देनी चाहिए; यथाशक्ति तालीम लेनी चाहिए और एक बार सेवाधर्म स्वीकार करने का निश्चय कर लेने के बाद मान-अपमान का विचार छोड़ देना चाहिए; और यदि अपमान हो तो उसे सहन करके भी सेवा करनी चाहिए |

अपनी माँग स्वीकार कराने में हमें बेहद मुश्किलों का सामना करना पड़ा | इसका इतिहास रसप्रद है, लेकिन उसे देने का यह स्थान नहीं है | इसलिए यहाँ मैं इतना ही कह देता हूँ कि हम में से मुख्य लोगों ने घायलों और बीमारों को सार-सँभाल करने की तालीम ली | हमने अपनी शारीरिक क्षमता के बारेमें डॉक्टरों के प्रमाणपत्र लिए और एक पत्र द्वारा युद्ध में जाने की अपनी माँग सरकार के सामने रखी | हमारे इस पत्र का और माँग स्वीकार करने के हमारे आग्रह का सरकार पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा | पत्र को उत्तर देते हुए सरकार ने हमारा आभार माना, परन्तु उस समय हमारी माँग स्वीकार करने से इनकार कर दिया | इस बीच बोअरों की शक्ति बढ़ती गई | उनका आक्रमण एक भयंकर बाढ़ की तरह हुआ और नेटाल की राजधानी तक उनके आ पहुँचने का भय खड़ा हो गया | हर जगह घायल और मृत सैनिकों के ढेर लग गये थे | अपनी माँग स्वीकार कराने का हमारा प्रयत्न जारी ही था | अंत में एम्बुलेन्स कोर (घ्यालों को उठाने वाले और उनकी सेवा-शुश्रूषा करने वाले दम) के रूप में हमारी सेवायें स्वीकार की गई | हमने तो अपने पत्र में अस्पतालों के पाखाने साफ करने या झाडू लगाने का काम स्वीकार करने की बात भी लिख दी थी | इसलिए एम्बुलेन्स कोर बनाने के बात हमें स्वागत के योग्य लगे, यह स्वाभाविक था | हमारा प्रस्ताव स्वतंत्र और गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियों के विषय में ही था | परन्तु हमने सुझाया था कि गिरमिटिया हिन्दुस्तानियों को भी उनके साथ शामिल करना अच्छा होगा | उस समय तो सरकार को अधिक से अधिक मनुष्यों की ज़रुरत थी | इसलिए उसने गिरमिटिया मजदूरों के गोरे मालिकों की कोठियों में पहुँच कर उनसे अपने मजदूरों को एम्बुलेन्स कोर में भरती होने देने की विनंती की | इसके फलस्वरूप लगभग ११०० हिन्दुस्तानियों का एक बड़ा और शानदार दल डरबन से युद्ध के मोर्चे पर जाने के

लिए रवाना हुआ | रवाना होते समय हमें श्री एस्कंब के, जिनसे पाठक परिचित हो चुके हैं और जो नेटाल के गोरे स्वयंसेवकों के मुखिया थे, धन्यावाद और आशीर्वाद प्राप्त हुए !

अंग्रेजी अखबारों को तो यह सब चमत्कार जैसा ही लगा | उन्हें यह आशा नहीं थी कि हिन्दुस्तानी लोग इस युद्ध में कोई भाग लेंगे | एक अंग्रेज ने वहाँ के एक प्रमुख दैनिक में हिन्दुस्तानियों की स्तुति करने वाली एक कविता लिखी | उसकी टेक की एक पंक्ति का आशय यह था : 'अंत में तो हम सब एक ही साम्राज्य के बालक है |'

इस दल में लगभग ३०० से ४०० गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी रहे होंगे, जो स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों के प्रयत्नों से भरती हुए थे | इनमें से ३७ आदमी नेता माने जाते थे, क्योंकि उनके हस्ताक्षरों से उपर्युक्त प्रस्ताव सरकार के पास गया था और दुसरों को एकत्र करने वाले भी वे ही थे | इन नेताओं में बैरिस्टर थे और मुनीम थे | बाकी के लोगों में राज, सुतार जैसे कारीगर और सामान्य मजदूर वगैरा थे | उनमें हिन्दू, मुसलमान, मद्रासी और उत्तर भारतीय- इस प्रकार सब धर्मों और सब प्रान्तों के लोग थे | कहा जा सकता है कि व्यापारी-वर्ग में से एम्बुलेन्स दल में कोई नहीं था | परन्तु व्यापारियों ने पैसे की काफ़ी मदद दी थी |

ऐसे दल के लोगों को फौजी भत्ता तो मिलता है, परन्तु उनकी दूसरी ज़रूरतें भी होती हैं | ये ज़रूरतें पूरी हो जाएँ, तो कैम्प के कठोर जीवन में उन लोगों को कुछ राहत मिल जाती है | इस तरह की ज़रूरतें पूरी करने की जिम्मेदारी हिन्दुस्तानी व्यापारी-वर्ग ने अपने सिर ले ली | इसके सिवा, जिन घायल सैनिको की हमें सेवा-शुश्रूषा करनी होती थी, उनके लिए मिठाई, सिगरेट वगैरा चीजें मुहैया करने में भी व्यापारियों ने अच्छी मदद की | जब कभी हम शहरों के पास अपनी छावनी डालते थे, तब वहाँ के व्यापारी हमारी ऐसी ज़रूरते पूरी करने में पूरा हाथ बँटाते थे |

इस एम्बुलेन्स दल में जो गिरमिटिया मजदूर शरीक हुए थे, उनके साथ उनकी कोठियों से अंग्रेज सरदार देखरेख के लिए भेजे गये थे | लेकिन काम तो हम सबका एक ही था | सबको साथ रहना होता था | इसलिए गिरमिटिया मजदूर हमे देखकर बड़े प्रसन्न हुए | और उस पूरे दल की व्यवस्था स्वाभाविक रूप में हमारे ही हाथों में आ गई इस कारण से यह संपूर्ण एम्बुलेन्स दल हिन्दुस्तानी कौम का ही माना गया और उसके काम का यश हिन्दुस्तानी कौम को ही मिला | सच पूछा जाए तो गिरमिटिया के इस दल में भरती होने का श्रेय कौम नहीं ले सकती, उसका श्रेय तो कोठियों के गोरे मालिक ही ले सकते हैं | लेकिन इसमें कोई शंका नहीं कि इस दल के बन जाने के बाद उनकी सुव्यवस्था का श्रेय तो स्वतंत्र हिन्दुस्तानी ही – अर्थात् हिन्दुस्तानी कौम ही ले सकती है | और यह बात जनरल बुलर ने अपने खरीतों (डिस्पेचों) में स्वीकार की थी |

हमें बीमारों और घायलों की सार-सँभाल की तालीम देने वाले डॉ. बूथ भी मेडिकल सुपरिन्टेन्डेन्ट के रूप में हमारे दल के साथ थे | वे एक भले पादरी थे और भारतीय ईसाइयों में काम करते थे, परन्तु वे सबके साथ

घुलमिल जाते थे | और ऊपर मैंने जिन ३७ नेताओं की बात कही है उनमें से अधिकतर लोग इन भले पादरी के शिष्य थे | हिन्दुस्तानियों के एम्बुलेन्स दल की तरह यूरोपियनों का भी एक एम्बुलेन्स दल बनाया गया था और दोनों दलों को एक ही जगह काम करना होता था |

युद्ध में सहायता करने का हमारा प्रस्ताव बिना किसी शर्त के सरकार के सामने रखा गया था | परन्तु स्वीकृति पत्र में यह कहा गया था कि हमें तोप या बन्दूक की मार की सीमा के भीतर काम नहीं करना पड़ेगा | इसका अर्थ यह हुआ कि युद्ध के मैदान में जो सैनिक घायल हों, उन्हें सेना के साथ रहने वाला स्थायी एम्बुलेन्स दल उठाकर सेना के बहुत पीछे लाकर छोड़ जाए, उसके बाद हम उन्हें सँभाले | गोरों का और हम हिन्दुस्तानियों का, अस्थायी एम्बुलेन्स दल तैयार करने का कारण यह था कि जनरल बुलर लेडीस्मिथ में बोअर-सेना से घिरे हुए जनरल व्हाइट को मुक्त कराने का महाप्रयत्न करने वाले थे; और उसमें स्थायी एम्बुलेन्स दल व्यवस्था कर सके उससे कहीं अधिक संख्या में सैनिकों के घायल होने की आशंका थी | युद्ध ऐसे प्रदेश में हो रहा था जहाँ रणक्षेत्र और केन्द्रीय अस्पताल के बीच पक्की सड़कें भी नहीं थीं | इसलिए घायल हुए सैनिकों को घोड़ागाड़ी वगैरा में अस्पताल तक ले जाना असंभव था | केन्द्रीय अस्पताल हमेशा किसी रेलवे स्टेशन के पास और रणक्षेत्र से सात-आठ मील से लेकर पच्चीस मील तक दूर रखा जात था |

हमें जल्दी हीं काम करने का अवसर मिल गया; और वह काम हमारी अपेक्षा से ज़्यादा कठिन था | घायलों को उठाकर सात-आठ मील तक ले जाना तो हमारे लिए सामान्य बात थी | परन्तु कभी-कभी हमें बुरी तरह जख्मी हुए सैनिकों और अफसरों को पच्चीस-पच्चीस मील तक भी उठा कर ले जाना पड़ता था | रास्ते में उन्हें दवा देनी होती थी | कूच सवेरे ८ बजे शुरू होती थी; और ५ बजे शाम तक केन्द्रीय अस्पताल में पहुँचना ज़रूरी होता था | यह बड़ा कठिन काम कहा जाएगा | ऐसा मौका एक ही बार आया जब एक दिन में घायलों को उठाकर हमें पच्चीस मील का रास्ता तय करना पड़ा | इसके सिवा, युद्ध के आरंभ में ब्रिटिश सेना को हार पर हार खानी पड़ी और बहुत बड़ी तादाद में सैनिक घायल हुए | इस कारण से हमें तोप-बन्दूकों की मार के भीतर न ले जाने का विचार भी अधिकारियों को छोड़ देना पड़ा | लेकिन इतनी बाद मुझे कहनी चाहिए कि जब ऐसा मौका आया उस समय हमसे कह दिया गया कि 'आप लोगों के साथ हुई शर्त के अनुसार हम आपको ऐसे खतरे की जगह नहीं भेजना चाहते जहाँ आप पर गोले बरसें | इसलिए अगर आप इस खतरे में पड़ना न चाहें, तो जनरल बुलर का आपको मजबूर करने का बिलकुल विचार नहीं है | परन्तु यदि आप स्वेच्छा से यह खतरा उठाना चाहें, तो सरकार अवश्य ही आपका उपकार मानेगी |' हम तो खतरा उठाने को तैयार ही थे | खतरे के स्थान से बाहर रहना हमें जरा भी पसंद नहीं था | अत: हम सब ने इस अवसर नवसर का स्वागत किया | लेकिन न तो हम में से किसी को गोली का घाव लगा और न दूसरी कोई चोट पहुँची|

हमारे दल को अनेक सुखद अनुभव हुए | लेकिन उन सबको देने का यह स्थान नहीं है | फिर भी इतना कहना चाहिए कि हमारे इस दल को, जिसमें अनाड़ी माने जाने वाले गिरमिटिया मजदूर भी थे, यूरोपियनों के अस्थायी एम्बुलेन्स दल के सदस्यों और सेना के गोरे सैनिकों के सम्पर्क में कई बार आना पड़ता था, परन्तु हम में से किसी को भी ऐसा नहीं लगा कि गोरे हमारे साथ रुखा बरताव करते हैं या हमारा अपमान करते है | गोरों के अस्थायी दल में तो दक्षिण अफ्रीका में बसे हुए गोरे ही थे | उन्होंने युद्ध से पहले हिन्दुस्तानी-विरोधी आन्दोलन में भाग लिया था | लेकिन उन पर आई हुई विपत्ति के समय हिन्दुस्तानी लोग अपने निजी दुःखों को भूल कर उनकी मदद करने के लिए निकल पड़े हैं, इस ज्ञान और इस दृश्य ने उस समय तो उनके हृदयों को भी पिघला दिया | जनरल बुलर के खरीतों में हमारे कार्य की प्रशंसा की गई थी, यह बात पहले कही जा चुकी है | हमारे एम्बुलेन्स दल के ३७ नेताओं को युद्ध के तमगे भी दिये गये थे |

जब लेडीस्मिथ को बोअरों के घेरे से मुक्त कराने का जनरल बुलर का आक्रमण पूरा हो गया तब – अर्थात् लगभग दो महीनों में – हमारा दल तथा गोरों का दल भी बिखेर दिया गया | वैसे युद्ध तो उसके बाद बहुत लम्बा चला | हम फिर से जुड़ने के लिए सदा तैयार रहते थे; और हमारे दल को बिखेरने वाले हुक्म में हमसे कहा गया था कि यदि फिर से इतने बड़े पैमाने पर जोर की सैनिक कार्रवाई करना ज़रूरी हुआ, तो सरकार हमारा उपयोग अवश्य करेगी |

दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों ने बोअर-युद्ध में जो भाग लिया वह तुलना में बहुत मामूली कहा जाएगा | यह कहना गलत नहीं होगा कि प्राणों की हानि तो उन्होंने बिलकुल नहीं उठाई | फिर भी सहायता करने की शुद्ध इच्छा का असर हुए बिना नहीं रहता | और तब ऐसी इच्छा की किसीने आशा न रखी हो उस समय यदि उसका अनुभव हो, तब तो उसकी क़ीमत दूनी आंकी जाती है | बोअर-युद्ध के समय अंग्रेजों के मन में हिन्दुस्तानियों के बारेमें ऐसी सुन्दर भावना बनी रही |

यह प्रकरण पूरा करने से पहले एक जानने जैसी घटना मुझे यहाँ बता देनी चाहिए | लेडीस्मिथ में घिरे हुए लोगों में अंग्रेजों के साथ वहाँ बसने वाले इक्के-दुक्के हिन्दुस्तानी भी थे | उनमें से कुछ व्यापारी थे; बाकी के सब गिरमिटिया मजदूर थे – जो या तो रेलवे में काम करते थे या अंग्रेजों के घरों में नौकर थे | उनमें से एक गिरमिटिया था परभुसिंग | घिरे हुए लोगों में से प्रत्येक आदमी को लेडीस्मिथ के सैनिक अधिकारी ने कोई न कोई कार्य सौपा था | एक अतिशय खतरनाक और उतना ही महत्त्वपूर्ण कार्य 'कुली' कहे जाने वाले परभुसिंग के हाथ में था | लेडीस्मिथ के पास की एक पहाड़ी पर बोअरों की पोम-पोम नामक एक तोप रखी हुई थी | उसके गोलों से लेडीस्मिथ के अनेक मकान नष्ट हो गये थे; कुछ लोग जान से भी मारे गये थे | उस तोप में से गोला छूटे और दूर के निशाने तक पहुँचे, इसमें एक-दो मिनट तो लगते ही थे | यदि इतने समय की चेतावनी भी घिरे हुए नागरिकों

को मिल जाए, तो गोला निशान तक पहुँचे उसके पहले वे कोई न कोई रक्षा का स्थान खोज लें और अपने प्राण बचा लें | परभुसिंग को एक पेड़ के नीचे बैठना होता था | तोप का चलना शुरू होते ही वह पेड़ के नीचे बैठ जाता था और तोप चलती रहती तब तक वहीं बैठा रहता था | उसे यह काम सौंपा गया था कि तोप वाली पहाड़ी को सतत देखता रहे और ज्यों ही तोप से निकलती ज्वाला को देखे त्यों ही घंटा बजा दे | प्राण-घातक गोला छुटने की चेतावनी का घंटा बजते ही लेडीस्मिथ के नागरिक अपनी-अपनी रक्षा की जगह में छिप कर उसी तरह प्राण बचा लेते थे, जैसे बिल्ली को देखकर चूहे अपने बिल में घुस जाते हैं और जान बचा लेते हैं |

परभुसिंग की इस अमूल्य सेवा की प्रशंसा करते हुए लेडीस्मिथ के सैनिक अधिकारी ने कहा था कि 'परभुसिंग' ने इतनी निष्ठा से कार्य किया कि एक बार भी घंटा बजाना वह चूका नहीं |' यह कहना शायद ही ज़रूरी हो कि खुद परभुसिंग का जीवन तो सदा खतरे में ही रहता था | उसकी बहादुरी की कहानी न सिर्फ नेटाल में प्रसिद्ध हुई, बल्कि भारत के तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड कर्जन के कानों तक भी पहुँची | उन्होंने परभुसिंग को देने के लिए एक काश्मीरी अंगरखा भेजा और नेटाल सरकार को लिखा कि अधिक से अधिक प्रसिद्धि के साथ, कारण बताकर, परशुसिंग को यह अंगरखा भेंट किया जाए | यह काम डरबन के मेयर को सौंपा गया था | उन्होंने डरबन के टाउन-हॉल के कौंसिल चेम्बर में आम सभा करके परभुसिंग को वह अंगरखा भेंट किया | यह उदाहरण हमें दो बातें सिखाता है : १. किसी भी आदमी को हलका या तुच्छ नहीं मानना चाहिए; २. चाहे जैसा डरपोक आदमी भी अवसर आने पर वीर बन सकता है |

१०. युद्ध के बाद

बोअर-युद्ध का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग सन् १९०० में समाप्त हो गया था | लेडीस्मिथ, किम्बरली और मेफेकिंग की मुक्ति बोअर-सेना से हो चुकी थी | जनरल क्रोन्जे पारडीबर्ग में हार चुके थे | बोअरों द्वारा जीता हुआ ब्रिटिश उपनिवेशों का संपूर्ण भाग ब्रिटिश साम्राज्य के हाथ में फिर से आ चुका था | लॉर्ड किचनर ने ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट पर भी अधिकार कर लिया था | अब सिर्फ वानर-युद्ध (गुरीला वारफेयर) बाकी रहा था |

मैंने सोचा कि दक्षिण अफ्रीका में मेरा कार्य अब पूरा हो गया है | मैं एक महीने के बदले छह वर्ष वहाँ रहा | कार्य की रुपरेखा हमारे सामने अच्छी तरह निश्चित हो चुकी थी | फिर भी हिन्दुस्तानी कौम को राजी किये बिना मैं दक्षिण अफ्रीका छोड़ नहीं सकता था | मैंने हिन्दुस्तान जाकर वहाँ लोकसेवा करने का अपना इरादा साथियों को बताया | दक्षिण अफ्रीका में मैंने स्वार्थ के बजाय सेवाधर्म का सबक सीखा था | मुझे सेवाधर्म की ही लगन लगी थी | श्री मनसुखलाल नाजर दक्षिण अफ्रीका में थे ही; श्री खान भी वहाँ थे | कुछ हिन्दुस्तानी नवयुवक दक्षिण अफ्रीका से इंग्लैंड जाकर बैरिस्टर हो आये थे | ऐसी स्थिति में वहाँ से मेरा हिन्दुस्तान लौटना किसी भी तरह अनुचित नहीं कहा जा सकता था | ये सारी दलीलें मैंने अपने साथियों के सामने रखी, फिर भी एक शर्त पर मुझे हिन्दुस्तान लौटने की इजाजत मिली : दक्षिण अफ्रीका में कोई भी अकल्पित कठिनाई खड़ी हो और कौम को मेरी उपस्थिति ज़रूरी मालूम हो, तो कौम मुझे किसी भी समय वापस बुला सकती है और मुझे तुरन्त दक्षिण अफ्रीका लौटना पड़ेगा | मेरा यात्रा-खर्च और दक्षिण अफ्रीका का निवास-खर्च उठाने की जिम्मेदारी कौम के लोगों ने ले ली | यह शर्त मैंने मान ली और मैं हिन्दुस्तान लौट आया |

मैंने बम्बई में बैरिस्टरी करने का निर्णय कर लिया | इसके पीछे मुख्य हेतु स्व. गोखले की सलाह और मार्गदर्शन में सार्वजनिक कार्य करना था, दूसरा हेतु था सार्वजनिक कार्य करते हुए आजीविका कमाना | इसलिए मैंने चैम्बर (कमरे) किराये पर लिए | मेरी वकालात भी थोड़ी चलने लगी | दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों के साथ मेरा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध बंध गया था कि उस देश से हिन्दुस्तान लौटे हुए मुवक्किल ही मुझे इतना काम दे देते थे, जिससे अपना जीवन-निर्वाह मैं आसानी से कर सकूँ | लेकिन मेरे नसीब में स्थिर और शांत जीवन बिताना लिखा ही नहीं था | मुश्किल से तीन-चार महीने मैं बम्बई में स्थिर रहा होऊँगा कि दक्षिण अफ्रीका से यह ज़रूरी तार आया : "यहाँ की स्थिति गंभीर है | श्री चैम्बरलेन कुछ समय में आयेंगे | आपकी उपस्थिति ज़रूरी है |"

मैंने बम्बई ऑफिस और घर समेत लिए | और पहले जहाज से मैं दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हो गया | १९०२ का अंत निकट था | १९०१ के अंत में मैं हिन्दुस्तान लौटा था | १९०२ के मार्च-अप्रैल में मैंने बम्बई में ऑफिस खोला | तार के आधार पर मैं वहाँ की सारी परिस्थिति तो नहीं जान सका | लेकिन मैंने अंदाज लगाया कि मुसीबत कोई ट्रान्सवाल में ही खड़ी हुई होगी | अपनी परिवार को मैं साथ नहीं ले गया था, क्योंकि मैने सोचा था कि चार-

छह महीनों में मैं हिन्दुस्तान लौट सकूँगा | लेकिन डरबन पहुँचकर सारी बातें सुनते ही मैं आश्चर्यचकित हो गया | हम में से अनेक लोगों को यह आशा थी कि बोअर-युद्ध के बाद समस्त दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों की स्थिति ज़रूर सुधर जाएगी | कम से कम ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट में तो कोई मुसीबत नहीं रहनी चाहिए, क्योंकि जब बोअर-युद्ध छिड़ा उस समय लॉर्ड लेन्सड़ाउन, लॉर्ड सेल्बर्न और ब्रिटेन के अन्य ऊँचे सत्ताधारियों ने यह कहा था कि इस युद्ध का एक कारण बोअरों द्वारा हिन्दुस्तानियों के साथ किया जाने वाले बुरा व्यवहार भी है | प्रिटोरिया के ब्रिटिश एजेन्ट (राजदूत) भी मेरे समक्ष अनेक बार कह चुके थे कि यदि ट्रान्सवाल ब्रिटिश उपनिवेश बन जाय, तो वहाँ के हिन्दुस्तानियों के सारे दुःख दूर हो जाएँ | गोरों का भी यही विश्वास था कि राज्यसत्ता बदल जाने पर ट्रान्सवाल के पुराने (विरोधी) कानून हिन्दुस्तानियों पर किसी हालत में लागू नहीं किये जा सकते | यह बात इस सीमा तक सर्वमान्य हो गई थी कि ज़मीन नीलाम करने वाले जो कर्मचारी बोअर-युद्ध से पूर्व हिन्दुस्तानियों द्वारा लगाई हुई बोली कभी भी कबूल नहीं करते थे, वे अब खुलेआम उसे कबूल करने लगे | बहुत से हिन्दुस्तानियों ने इस तरह नीलाम में ज़मीनें खरीदी भी | लेकिन जब वे लोग अपनी ज़मीनों का दस्तावेज रजिस्टर कराने तहसील में गये, तो तहसील के अधिकारी ने १८८५ के कानून न. ३ का हवाला दे कर ज़मीनों की रजिस्ट्री करने से इनकार कर दिया ! मैं डरबन के बन्दरगाह पर उतरा तब इतना तो मैंने सुन लिया | हिन्दुस्तानी नेताओं ने मुझसे कहा कि आपको ट्रान्सवाल जाना होगा | लेकिन पहले श्री चैम्बरलेन डरबन आएँगे | यहाँ के (नेटाल के) हिन्दुस्तानियों की स्थिति से भी उन्हें परिचित कराना ज़रूरी है | यहाँ का काम पूरा करके उनके पीछे ही पीछे आपको ट्रान्सवाल जाना होगा |

नेटाल में हिन्दुस्तानियों का एक प्रतिनिधि-मंडल श्री चैम्बरलेन से मिला | उन्होंने उसकी सारी बातें शांति और धीरज से सुनी और नेटाल के मंत्रि-मंडल से हिन्दुस्तानियों की स्थिति के बारेमें बातचीत करने का वचन दिया | नेटाल में बोअर-युद्ध से पूर्व जो कानून पास हो चुके थे, उनमें तुरन्त सुधार होने की मैंने स्वयं तो कोई आशा नहीं रखी थी | इन कानूनों की चर्चा मैं पिछले प्रकरणों में कर चुका हूँ |

पाठक यह तो जानते ही है कि बोअर-युद्ध से पहले कोई भी हिन्दुस्तानी किसी भी समय ट्रान्सवाल में जा सकता था | लेकिन आज मैंने देखा कि वह स्थिति नहीं रह गई थी | उस समय का यह प्रतिबन्ध गोरों और हिन्दुस्तानियों दोनों पर एकसा लागू होता था | ट्रान्सवाल की स्थिति अभी भी ऐसी थी कि यदि अधिक संख्या में लोग वहाँ घुस जाते तो अन्न और वस्त्र भी सबको पूरे नहीं मिल सकते थे; क्योंकि युद्ध का अंत होने के बाद भी सब दुकानें फिर से खुली नहीं थीं | दुकानों का ज़्यादातर माल बोअर-सरकार हड़प कर गई थी | इसलिए मैंने मन में सोचा कि यह प्रतिबन्ध यदि अमुक समय के लिए ही लगाया गया हों, तब तो डरने का कोई कारण नहीं है | लेकिन गोरों और हिन्दुस्तानियों को ट्रान्सवाल में प्रवेश करने का जो परवाना लेना पड़ता था, उसे देने की रीति में फर्क था |

और, यह फर्क शंका और भय का कारण बन गया | परवाना देने के दफ़्तर दक्षिण अफ्रीका के अलग-अलग बन्दरगाहों में खोले गये थे | ऐसा कहा जा सकता है कि गोरों को तो माँगते ही परवाने मिल सकते थे | परन्तु हिन्दुस्तानियों के लिए ट्रान्सवाल में एक एशियाटिक विभाग खोला गया था |

ऐसा अलग विभाग खोलने की यह नई घटना थी | पहले उस विभाग के अधिकारी को हिन्दुस्तानी लोग अरजी करते थे | उस अरजी के मंजूर होने के बाद डरबन या दूसरे बन्दरगाह से सामान्यत: परवाने मिल सकते थे | यदि मुझे भी ऐसी अरजी करनी होती तो श्री चैम्बरलेन के ट्रान्सवाल छोड़ने से पहले परवाना मिलने की आशा ही नहीं रखी जा सकती थी | ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानी वैसा परवाना प्राप्त करके मेरे पास भेज नहीं सके थे | यह उनकी शक्ति से बाहर की बात थी | मेरे परवाने का आधार उन्होंने डरबन की मेरी जान-पहचान पर ही रखा था | परवाना देने वाले अधिकारी को तो मैं जानता नहीं था, लेकिन डरबन के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट को जानता था | इसलिए उन्हें साथ ले जाकर उनके द्वारा अधिकारी से मेरा परिचय करवाया | सन् १८९३ के साल में एक बरस मैं ट्रान्सवाल में रहा था, यह बताकर मैंने परवाना लिया और मैं प्रिटोरिया पहुँचा |

प्रिटोरिया में मैंने दूसरा ही वातावरण देखा | मैंने समझ लिया कि एशियाटिक विभाग एक भयानक विभाग है और वह केवल हिन्दुस्तानियों को दबाने के लिए ही खोला गया है | उसमें नियुक्त किये गये अधिकारी उस वर्ग के थे, जो बोअर-युद्ध के समय सेना के साथ हिन्दुस्तान से दक्षिण अफ्रीका आये थे और अपना नसीब अजमाने के लिए वही बस गये थे | उनमें से कुछ अधिकारी रिश्वत खाते थे | ऐसे दो अधिकारियों पर रिश्वत खाने के अपराध में मुकदमे भी चले थे | पंच ने तो दोनों को निर्दोष बता कर छोड़ दिया था, परन्तु रिश्वत खाने के बारेमें कोई संदेह न रह जाने से उन्हें नौकरी से अलग कर दिया गया था | पक्षपात का तो कोई पार ही नहीं था | और, जहाँ ऐसा कोई विभाग अलग से खोला जाता है वहाँ, और यदि वह प्रचलित अधिकारों पर अंकुश लगाने के लिए ही खोला गया हो तब तो, उसका झुकाव अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए तथा अंकुश लगाने का अपना फ़र्ज़ वह पूरी तरह अदा कर रहा है यह दिखाने के लिए सदा नये अंकुश खोजने की ओर ही रहता है | एशियाटिक विभाग के बारेमें ठीक ऐसा ही हुआ |

मैंने देखा कि मुझे अपने काम का फिर से श्रीगणेश करना पड़ेगा | एशियाटिक विभाग को तुरन्त इस बात का पता नहीं चला कि मैं ट्रान्सवाल में कैसे दाखिल हुआ | मुझसे पूछने की एकाएक उसकी हिम्मत नहीं हुई | मैं मानता हूँ कि इतना विश्वास तो उसे था ही कि मैं चोरी से कभी प्रवेश नहीं करूँगा | परोक्ष रूप से उसने यह जान भी लिया कि परवाना मुझे कैसे मिला | प्रिटोरिया का हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडल भी श्री चैम्बरलेन के पास जाने को तैयार हुआ | उनके सामने पेश की जाने वाली अरजी तो मैंने तैयार की | परन्तु एशियाटिक विभाग ने मुझे श्री चैम्बरलेन के सामने नहीं जाने दिया | इस स्थिति में हिन्दुस्तानी नेताओं को लगा कि उन्हें भी श्री चैम्बरलेन

से मिलने नहीं जाना चाहिए | पर मुझे उनका यह विचार पसंद नहीं आया | मैंने उनसे कहा कि मेरा जो अपमान हुआ उसे मुझे पी जाना चाहिए; और उन्हें सलाह दी कि मेरे अपमान की उन्हें भी परवाह नहीं करनी चाहिए | अरजी तो तैयार है ही | उसे श्री चैम्बरलेन को सुनाना ज़रूरी है | उस समय हिन्दुस्तानी बैरिस्टर श्री जॉर्ज गोडफ्रे वहाँ उपस्थित थे | उन्हें श्री चैम्बरलेन के सामने अरजी पढ़ने के लिए तैयार किया गया | हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडल गया | वहाँ मेरे विषय में बात निकली | श्री चैम्बरलेन ने कहा : "मि. गांधी से मैं डरबन में मिल चुका हूँ | इसलिए यहाँ मैंने उनसे मिलने से इनकार कर दिया, ताकि ट्रान्सवाल की बात मैं ट्रान्सवाल के लोगों से ही सुन सकूँ |" मेरी दृष्टि से उनका यह उत्तर जलती आग में घी डालने जैसा था | श्री चैम्बरलेन एशियाटिक विभाग की सिखाई हुई बात बोले थे | जो हवा हिन्दुस्तान में फैली हुई थी वही एशियाटिक विभाग ने ट्रान्सवाल में फैला दी | गुजराती (या हिन्दुस्तानी) लोग यह बात जानते ही होंगे कि अंग्रेज अधिकारी हिन्दुस्तान में बम्बई के रहने वाले लोगों को चम्पारण में परदेशी मानते हैं | इस न्याय से एशियाटिक विभाग ने श्री चैम्बरलेन को यह सिखाया कि डरबन में रहने वाला मैं ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों की बात क्या जान सकता हूँ | उस विभाग के अधिकारियों को क्या पता कि मैं ट्रान्सवाल में रह चुका था और न रहा होऊँ तो भी ट्रान्सवाल की सारी परिस्थिति से पूरी तरह परिचित था | प्रश्न सिर्फ एक ही था : 'ट्रान्सवाल की परिस्थिति से अधिक से अधिक परिचित कौन था ?' इस प्रश्न का उत्तर हिन्दुस्तानी कौम ने मुझे ठेठ हिन्दुस्तान से ट्रान्सवाल बुला कर दे ही दिया था | लेकिन यह कोई नया अनुभव नहीं है कि सत्ताधारियों के सामने बुद्धि पर आधारित दलीलें नहीं चल सकतीं | उस समय श्री चैम्बरलेन स्थानीय ब्रिटिश अधिकारियों के प्रभाव में इतने ज़्यादा थे और वहाँ के गोरों को सन्तुष्ट करने के लिए इतने आतुर थे कि उनसे न्याय पाने की आशा बिलकुल नहीं थी या बहुत कम थी | फिर भी हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडल केवल यह सोच कर उनसे मिलने गया कि गलती से या आहत स्वाभिमान की भावना के कारण न्यायप्राप्ति का एक भी सही उपाय आजमाये बिना रह न जाय |

परन्तु मेरे सामने १८९४ से भी अधिक विषम परिस्थिति खड़ी हो गई | एक दृष्टि से तो मुझे ऐसा लगा कि श्री चैम्बरलेन के दक्षिण अफ्रीका छोड़ते ही मैं हिन्दुस्तान लौट सकता हूँ | दूसरी ओर मैं सपष्ट रूप से यह देख सका कि दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानी कौम को भयंकर स्थिति में देखते हुए भी यदि मैं हिन्दुस्तान में व्यापक क्षेत्र में जनता की सेवा करने के अभिमान से लौट जाऊँ, तो सेवाधर्म की जो झाँकी मुझे दक्षिण अफ्रीका में हुई है वह दूषित हो जाएगी | मैंने सोचा कि कौम पर मंडराने वाले विपत्ति के बादल बिखर न जाएँ अथवा सारे प्रयत्नों के बावजूद विपत्ति के बादल अधिक गहरे बन हिन्दुस्तानी कौम पर टूट कर हम सबका नाश न कर दें तब तक मुझे ट्रान्सवाल में ही रहना चाहिए-फिर उसका अर्थ जीवन-भर दक्षिण अफ्रीका में रहना ही क्यों न हो | मैंने कौम के नेताओं के साथ इस आशय की बात की और १८९४ की तरह इस बार भी वकालत से जीवन-निर्वाह चलाने का अपना निश्चय मैंने उन्हें बताया | कौम के लोग तो यही चाहते थे |

मैंने तुरन्त ट्रान्सवाल में वकालत करने की अरजी पेश की | मुझे थोड़ा भय था कि नेटाल की तरह यहाँ का वकील-मंडल भी मेरी अरजी का विरोध करेगा, परन्तु वह भय निराधार सिद्ध हुआ | मुझे वकालत की सनद मिल गई और जोहानिसबर्ग में मैंने ऑफिस खोला | ट्रान्सवाल में हिन्दुस्तानियों की सबसे ज़्यादा आबादी जोहानिसबर्ग में ही थी | इसलिए मेरी आजीविका तथा सार्वजनिक सेवा दोनों दृष्टियों से जोहानिसबर्ग ही मेरे लिए अनुकूल केन्द्र था | एशियाटिक विभाग की सड़ांध और भ्रष्टाचार का कड़वा अनुभव प्रतिदिन मुझे हो रहा था और ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानी मंडल (ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन) की संपूर्ण शक्ति यह सड़ांध दूर करने में ही खर्च हो रही थी | अब १८८५ का कानून न. ३ रद कराने की बात दूर का ध्येय बन गई | तात्कालिक ध्येय एशियाटिक ऑफिस के रूप में जो तेज बाढ़ डुबाने के लिए हमारी ओर बढ़ी चली आ रही थी उससे अपने आपको बचाना था | हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडल लॉर्ड मिल्नर से, वहाँ आये हुए लॉर्ड सेल्बर्न से, ट्रान्सवाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर आर्थर लॉली से-जो बाद में मद्रास के गवर्नर हो गये थे, और इनसे नीची श्रेणी के अधिकारियों से मिले और उनके सामने अपनी शिकायतें पेश कीं | मैं अकेला तो सरकारी अधिकारियों से बहुत बार मिलता था | यहाँ वहाँ कुछ राहत हमें मिलती थी, परन्तु वह सब फटे हुए कपड़ों में पैबन्द लगाने जैसा था | हमें कुछ वैसा ही सन्तोष इन छोटी-छोटी राहतों से मिलता था जैसा लुटेरे हमारा सारा धन लूट कर ले जाएँ और बाद में हमारे रोने-गिड़गिडाने से पसीज कर थोड़ा धन लौटा दें उस समय हमें मिल सकता है | इस आन्दोलन के फलस्वरूप ही जिन-जिन अधिकारियों के नौकरी से बरखास्त होने की बात मैं पहले लिख चुका हूँ उन पर कोर्ट में मुकदमा चला था | हिन्दुस्तानियों के प्रवेश के बारेमें अपना जो भय मैं पहले बता चुका हूँ वह सच साबित हुआ | गोरों के लिए ट्रान्सवाल में आने का परवाना लेना ज़रूरी न रहा, लेकिन हिन्दुस्तानियों पर परवाने का बन्धन बना ही रहा | ट्रान्सवाल की भूतपूर्व सरकार ने कानून जितना सख्त बनाया था उतना सख्त उसका अमल नहीं होता था | यह स्थिति बोअर-सरकार की उदारता या भलमनसाहत के कारण नहीं, परन्तु उसके प्रशासन विभाग की लापरवाही के कारण खड़ी हुई थी | और उस विभाग के अधिकारी भले हों तो भी अपनी भलमनसाहत के उपयोग का जितना अवकाश उन्हें बोअर-सरकार के शासन में मिलता था, उतना ब्रिटिश सरकार के शासन में नहीं मिल सकता | ब्रिटिश राज्यतंत्र पूराना होने के कारण दृढ़ तथा व्यवस्थित हो गया है, और उसके अधीन अधिकारियों को यंत्र की तरह काम करना पड़ता है | उन लोगों की कार्य करने की स्वतंत्रता पर एक के बाद दूसरे चढ़ते-उतरते अंकुश लगे रहते है | इसलिए यदि ब्रिटिश संविधान में राज्य-पद्धति उदार हो, तो प्रजा को उस उदार पद्धति का अधिक से अधिक लाभ मिल सकता है; और यदि वह पद्धति अत्याचारी या कंजूस हो, तो उसकी नियंत्रित सत्ता के मातहत प्रजा को उसके दबाव का भी पूरा-पूरा अनुभव होता है | इससे उलटी स्थिति ट्रान्सवाल की भूतपूर्व सत्ता के जैसे राज्यतंत्र में होती है | ऐसे तंत्र में उदार कानूनों का पूरा लाभ प्रजा को मिलने या न मिलने का अधिकतर आधार सरकारी विभागों के अधिकारियों पर रहता है | इस न्याय के अनुसार ट्रान्सवाल

में जब ब्रिटिश सत्ता स्थापित हुए तब हिन्दुस्तानियों से सम्बन्ध रखने वाले सारे ही कानूनों का अमल दिनोंदिन ज़्यादा कड़ा होने लगा | पहले जहाँ-जहाँ कानून की पकड़ से बचने के मार्ग खुले थे वहाँ-वहाँ ऐसे सब मार्ग बन्द कर दिये गये | जैसा हम पहले देख चुके हैं, एशियाटिक विभाग की कार्रवाई सख्त हुए बिना रह ही नहीं सकती थी | इसलिए पुराने कानून रद कराने का ध्येय एक ओर रह गया; फिलहाल तो हिन्दुस्तानी कौम को इसी दृष्टि से प्रयत्न करना पड़ा कि उन कानूनों की सख्ती को अमल में कम कैसे कराया जाए |

एक सिद्धान्त की चर्चा हमें जल्दी या देर से करनी ही पड़ेगी; और इस स्थान पर उसकी चर्चा करने से शायद हिन्दुस्तानियों के दृष्टिकोण को तथा आगे चलकर खड़ी हुई परिस्थिति को समझना सुविधाजनक होगा | ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट में ब्रिटिश झंडा लहराने लगा उसके बाद तुरन्त ही लॉर्ड मिल्नर ने एक कमेटी नियुक्त की | उसका कार्य था इन दोनों राज्यों के पुराने कानूनों की जाँच करके ऐसे कानूनों की सूची तैयार करना, जो प्रजा की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने वाले हों या ब्रिटिश संविधान की भावना के विरुद्ध हों | इस जाँच में हिन्दुस्तानियों की स्वतंत्रता पर हमला करने वाले कानून स्पष्ट रूप में सम्मिलित किये जा सकते थे | परन्तु यह जाँच-कमेटी नियुक्त करने के पीछे लॉर्ड मिल्नर का उद्देश्य हिन्दुस्तानियों के दुःख दूर करना नहीं, बल्कि अंग्रेजों के दुःख दूर करना था | उनकी इच्छा ऐसे कानूनों को जल्दी से जल्दी रद कराने की थी, जो परोक्ष रूप में अंग्रेजों के रास्ते में रुकावट डालते थे | इस कमेटी की रिपोर्ट बहुत ही थोड़े समय में तैयार हो गई; और ऐसा कहा जा सकता है कि अंग्रेजों के हितों के विरुद्ध जाने वाले अनेक अनेक छोटे-मोटे कानून एक ही हुक्म से रद कर दिये गये |

उसी कमेटी ने हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध जाने वाले कानूनों की भी सूची बना ली | ये सब कानून एक पुस्तक के रूप में छापे गये, जिसका उपयोग या हमारी दृष्टि से दुरूपयोग एशियाटिक विभाग आसानी से करने लगा |

अब यदि हिन्दुस्तानी-विरोधी कानून उनमें हिन्दुस्तानियों का नाम रखकर खास तौर पर उनके विरुद्ध न बनाये जाते, परन्तु सबको लागू हों इस प्रकार रचे जाते तथा उनका अमल करने या न करने का चुनाव अधिकारियों पर छोड़ दिया जाता; अथवा इन कानूनों में ऐसे अंकुश रखे जाते जिनका अर्थ सार्वजनिक होता, परन्तु वह अर्थ करने पर उनका अधिक दबाव हिन्दुस्तानियों पर पड़ता, तो ऐसे कानूनों से भी कानून बनाने वालों का उद्देश्य पूरा हो जाता और फिर भी वे कानून सार्वजनिक कहे जाते | उनके अमल से किसी का अपमान न होता | और समय बीतने पर जब विरोध की भावना मंद पड़ जाती उस समय उन कानूनों में किसी प्रकार का परिवर्तन किये बिना-केवल उनके उदार अमल से ही-उस कौम को राहत मिल जाती, जिसके विरुद्ध वे कानून बनाये गये थे | जिस तरह दूसरे प्रकार के कानूनों को मैंने सार्वजनिक कानून कहा है, उसी तरह पहले प्रकार के कानून एकदेशीय अथवा जातीय कहे जा सकते हैं | दक्षिण अफ्रीका में उन्हें रंगभेद के कानून कहा जाता है, क्योंकि

उनमें चमड़ी का भेद करके काली या गेहुँए रंग की चमड़ी वाली प्रजाओं पर गोरों की तुलना में अधिक अंकुश लगाये जाते हैं | इसी को 'कलर-बार' अथवा रंग-भेद या रंग द्वेष कहा जाता है |

प्रचलित कानूनों में से ही हम एक उदाहरण यहाँ लें | पाठकों को स्मरण होगा कि नेटाल में मताधिकार से सम्बन्धित जो पहला कानून पास हुआ और बाद में जो बड़ी (साम्राज्य) सरकार द्वारा अस्वीकार कर दिया गया, उसमें एक धारा ऐसी थी कि भविष्य में किसी भी एशियाई को मतदान का अधिकार नहीं रहेगा | अब अगर ऐसे कानून को बदलवाना हो तो लोकमत इतनी हद तक शिक्षित होना चाहिए कि अधिकतर लोग एशियाई लोगों के न केवल विरुद्ध न हों, बल्कि उनके प्रति मित्रता की भावना रखते हों | ऐसा सुअवसर किसी दिन आये तभी नया कानून पास करके रंगभेद के कलंक को मिटाया जा सकता है | यह है एकदेशीय या रंगभेदी कानून का उदाहरण | नेटाल का उपर्युक्त कानून रद होकर उसके स्थान पर जो दूसरा कानून पास हुआ, उसमें भी पहले कानून का मूल हेतु लगभग सिद्ध हो गया; परन्तु उसमें से रंगभेद का डंक दूर कर दिया गया और वह सार्वजनिक हो गया | इस दूसरे कानून की एक धारा का आशय इस प्रकार है : "जिस देश को पार्लियामेन्टरी फ्रेन्चाइज न हो – अर्थात् ब्रिटिश लोकसभा के सदस्य चुनने के मताधिकार जैसा मताधिकार न हो, उस देश के नागरिक नेटाल में मतदान के अधिकारी नहीं हो सकते |" इस धारा में कहीं भी हिन्दुस्तानियों का या एशियाई लोगों का नाम नहीं आया है | हिन्दुस्तान में इंग्लैंड के जैसा मताधिकार है या नहीं, इस विषय में कानून के पंडितों के भिन्न भिन्न मत हो सकते है | लेकिन हम दलील के लिए यह मान ले कि भारत में उस समय-यानी १८९४ में-ऐसा मताधिकार नहीं था अथवा आज भी नहीं है; फिर भी नेटाल में मताधिकारियों के नाम दर्ज करने वाला अधिकारी यदि हिन्दुस्तानियों के नाम दर्ज कर ले, तो कोई एकाएक ऐसा नहीं कह सकेगा कि उस अधिकारी ने कानून के खिलाफ काम किया है | सामान्य अनुमान हमेशा प्रजा के अधिकार के पक्ष में किया जाता है | इसलिए जब तक तत्कालीन सरकार विरोध न करना चाहे तब तक वह अधिकारी, उपर्युक्त कानून अस्तित्व में हो तो भी, हिन्दुस्तानियों और दूसरे लोगों के नाम मताधिकारियों के पत्रक में दर्ज कर सकता है | अत: मान लीजिए कि समय पाकर नेटाल में हिन्दुस्तानियों के प्रति गोरों की घृणा मंद पड़ जाए और सरकार को हिन्दुस्तानियों का विरोध न करना हो, तो कानून में किसी भी तरह का परिवर्तन किये बिना हिन्दुस्तानियों के नाम मतदाता-सूची में दर्ज किये जा सकते है | सार्वजनिक कानून की यह खूबी है | दक्षिण अफ्रीका के जिन दूसरे कानूनों का मैं पिछले प्रकरणों में उल्लेख कर चूका हूँ, उनसे ऐसे अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं | अत: सयानि राजनीती यही मानी जाएगी कि एकदेशीय कानून कम से कम बनाये जाएँ – बिलकुल न बनाये जाए तो अति उत्तम होगा | एक बार कोई कानून बन जाने के बाद उसे बदलने में अनेक कठिनाइयाँ होती हैं | लोकमत बहुत अधिक शिक्षित बन जाता है तभी बने हुए कानून रद हो सकते हैं | जिस लोकतंत्र में हमेशा कानूनों में परिवर्तन होता ही रहता है, उस लोकतंत्र को सुदृढ़ और सुव्यवस्थित नहीं कहा जा सकता |

अब हम ट्रान्सवाल के एशियाई-विरोधी कानूनों में भरे हुए जहर का अंदाज अधिक अच्छी तरह लगा सकते हैं | वे सब कानून एकदेशीय थे | उनके अनुसार एशियाई लोग मत नहीं दे सकते थे; सरकार द्वारा निर्धारित किये हुए मुहल्लों से बाहर ज़मीन के मालिक नहीं बन सकते थे | वे कानून रद न हों तब तक अधिकारी-वर्ग हिन्दुस्तानियों की मदद बिलकुल नहीं कर सकता था | वे कानून सार्वजनिक नहीं थे, इसीलिए लॉर्ड मिल्नर द्वारा नियुक्त जाँच-कमेटी उन्हें दूसरे कानूनों से अलग निकाल सकी | लेकिन अगर वे सार्वजनिक कानून होते, तो अन्य कानूनों के साथ वे भी – जिनमें एशियाई लोगों का नाम तो नहीं था, परन्तु जिनका उपयोग एशियाइयों के विरुद्ध ही किया जाता था – रद हो गये होते | तब अधिकारी लोग ऐसा कभी न कह पाते कि "हम क्या करें ? हम लाचार हैं | जब तक कई धारासभा इन कानूनों को रद न करे तब तक हमें तो उन पर अमल करना ही होगा |"

जब ये कानून अमल के लिए एशियाटिक विभाग के हाथ में आये तब उसने पूरी सख्ती से इन पर अमल शुरू कर दिया | इतना ही नहीं, उसने यह भी सुझाया कि यदि सरकार ऐसा मानती है कि ये कानून अमल करने लायक हैं, तो सरकार को उनमें एशियाई लोगों के पक्ष में जान-भुझ कर रखे गये या असावधानी से रह गये बच निकलने के रास्तों को बन्द करने की अधिक सत्ता प्राप्त करनी चाहिए | यह तर्क तो सीधा और सरल मालूम होता है | ये कानून बुरे हों तो सरकार को उन्हें रद कर देना चाहिए; और यदि ये ठीक हों तो इनमें रहे हुए दोषों को दूर कर देना चाहिए | मंत्रि-मण्डल ने इन कानूनों पर अमल करने की नीति अपनाई थी | हिन्दुस्तानी कौम ने बोअर-युद्ध में अंग्रेजों के साथ खड़े रह कर अपने प्राणों की बाजी लगाई थी, परन्तु यह तो तीन-चार वर्ष पुरानी बात हो चुकी थी | ट्रान्सवाल में ब्रिटिश एजेन्ट (राजदूत) हिन्दुस्तानी प्रजा के लिए लड़ा था, परन्तु यह घटना पुराने राज्यतंत्र में हुई थी | बोअर-युद्ध का एक कारण हिन्दुस्तानियों के साथ बोअरों का बुरा व्यवहार भी है-ऐसी जो घोषणा की गई थी, वह तो स्थानीय परिस्थितियों का अनुभव न रखने वाले शासकों द्वारा दूरदर्शिता का उपयोग किये बिना की गई घोषणा थी | स्थानीय अनुभव ने ट्रान्सवाल के ब्रिटिश अधिकारियों को स्पष्ट रूप से दिखा दिया कि बोअर-राज्य के समय हिन्दुस्तानी-विरोधी जो कानून बनाये गये थे, वे न तो पर्याप्त थे और न व्यवस्थित थे | यदि हिन्दुस्तानी लोग जब चाहें तब ट्रान्सवाल में प्रवेश कर सकें और जहाँ भी चाहें वहाँ मनचाहा व्यापार कर सकें, तो अंग्रेज व्यापारियों को बड़ा नुकसान होगा | इन दलीलों ने और ऐसी दूसरी दलीलों ने गोरों पर और मंत्रि-मंडल के उनके प्रतिनिधियों पर दृढ़ अधिकार जमा लिया था | वे सब कम से कम समय में ज़्यादा से ज़्यादा धन एकत्र करना चाहते थे | इसमें हिन्दुस्तानी लोग उनके साझेदार बनें, यह उन्हें कैसे बरदाश्त होता ? इसके साथ तत्त्वज्ञान का पाखंड भी मिल गया | दक्षिण अफ्रीका के बुद्धिमान लोगों को केवल व्यापार की दृष्टि से की जाने वाली स्वार्थपूर्ण दलील सन्तोष नहीं दे सकती थी | अन्याय करने के लिए भी मनुष्य की बुद्धि ऐसी दलीले

खोजती है, जो उसे उचित लगे | दक्षिण अफ्रीका के गोरों की बुद्धि ने यही किया | जनरल स्मट्स तथा दूसरे लोगों ने जो दलीलें दीं, वे इस प्रकार थी :

"दक्षिण अफ्रीका पश्चिमी सभ्यता का प्रतिनिधि है | हिन्दुस्तान पूर्वीय सभ्यता का केन्द्रस्थान है | इस युग के तत्वज्ञानी, विचारशील लोग, यह स्वीकार नहीं करते कि इन दो सभ्यताओं का समन्वय हो सकता है | इसलिए यदि इन दो प्रतिद्वन्द्वी सभ्यताओं का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रजायें छोटे समुदायों में भी एक-दूसरे से मिलें, तो उसका परिणाम विस्फोट ही हो सकता है – दोनों का संघर्ष अनिवार्य है | पश्चिम सादगी का विरोधी है | पूर्व के लोग सादगी को जीवन में प्रमुख स्थान देते हैं | ऐसी स्थिति में इन दोनों का मेल कैसे बैठ सकता है ? इन दो सभ्यताओं में से कौनसी सभ्यता अधिक अच्छी है, यह देखना राजनीतिक यानी व्यावहारिक पुरुषों का काम नहीं है | पश्चिम की सभ्यता अच्छी हो या बुरी, लेकिन पश्चिम की प्रजायें उसीसे चिपटी रहना चाहती हैं | उस सभ्यता की रक्षा के लिए पश्चिम की प्रजाओं ने अथक प्रयत्न किये हैं, खून की नदियाँ बहाई हैं और दूसरे भी अनेक तरह के कष्ट सहे हैं | इसलिए पश्चिम की प्रजाओं को इस समय दूसरा रास्ता नहीं सूझ सकता | इस दृष्टि से सोचने पर हिन्दुस्तानियों और यूरोपियनों का प्रश्न न तो व्यापार-द्वेष का है और न वर्ण द्वेष का | यह प्रश्न केवल अपनी सभ्यता की रक्षा करने का अर्थात् आत्मरक्षा का ऊँचे से ऊँचे प्रकार का अधिकार भोगने का और उससे सम्बन्धित कर्तव्यों का पालन करने का ही है | कुछ भाषण करने वाले लोगों को हिन्दुस्तानियों के दोष निकालने की बात यूरोपियनों को उभाड़ने के लिए भले ही पसंद आती हो, लेकिन राजनीतिक दृष्टि से सोचने वाले लोग तो यही मानते हैं और कहते हैं कि हिन्दुस्तानियों के गुण ही दक्षिण अफ्रीका में उनके दोष माने जाते हैं | हिन्दुस्तानी लोग अपनी सादगी, लम्बे समय तक मेहनत करने के अपने धीरज, अपनी किफायतशारी, अपनी परलोक परायणता, अपनी सहनशीलता आदि गुणों के कारण ही दक्षिण अफ्रीका में अप्रिय बन गये हैं | पश्चिम की प्रजा साहसी, अधीर, दुनियावी ज़रूरतें बढ़ाने और उनकी पूर्ति करने में मग्न, खाने-पीने की शौकीन, शरीर-श्रम बचाने के लिए आतुर और उड़ाऊ स्वभाव की है | इसलिए उसे हमेशा यह डर बना रहता है कि यदि पूर्वीय सभ्यता के हजारों प्रतिनिधि दक्षिण अफ्रीका में बसेंगे, तो पश्चिम के लोगों को पीछे हटना ही होगा | दक्षिण अफ्रीका में बसने वाली पश्चिम की प्रजा आत्महत्या करने के लिए कभी तैयार नहीं होगी | और उस प्रजा के समर्थक, उसके नेता, उसे किसी भी समय ऐसे खतरे में नहीं पड़ने देंगे |"

मैं मानता हूँ कि यहाँ मैंने उपर्युक्त तर्क उसी रूप में निष्पक्ष भाव से प्रस्तुत किया है, जैसा वह दक्षिण अफ्रीका के अच्छे से अच्छे और चरित्रवान गोरों के द्वारा किया गया है | इस तर्क को मैंने ऊपर तत्त्वज्ञान का पाखंड कहा है; परन्तु उससे मैं यह सूचित नहीं करना चाहता कि इस तर्क में कोई सचाई नहीं है | व्यावहारिक दृष्टि से, अर्थात् तात्कालिक स्वार्थ की दृष्टि से, तो उसमें काफ़ी सचाई है | परन्तु तत्त्वज्ञान की दृष्टि से वह निरा पाखंड और ढोंग है | मेरी अल्प बुद्धि को तो ऐसा लगता है कि किसी तटस्थ मनुष्य की बुद्धि ऐसे निर्णय को स्वीकार नहीं करेगी

| कोई भी सुधारक अपनी सभ्यता को ऐसी लाचार स्थिति में नहीं रखेगा, जैसी लाचार स्थिति से उपर्युक्त तर्क प्रस्तुत करने वाले लोगों ने अपनी सभ्यता को रखा है | जहाँ तक मैं जानता हूँ, पूर्व के किसी भी तत्त्वज्ञानी को यह भय नहीं है कि पश्चिम की प्रजा स्वतंत्रता से पूर्व की प्रजा के संपर्क में आयेगी, तो पूर्व की सभ्यता पश्चिम की सभ्यता की बाढ़ में बालू की तरह बह जाएगी | जहाँ तक मैंने पूर्वीय तत्त्वज्ञान को समझा है, मुझे तो यह दिखाई देता है कि पूर्व की सभ्यता पश्चिम के स्वतंत्र समागम से निर्भय रहती है; इतना ही नहीं परन्तु ऐसे समागम का वह स्वागत करेगी | इससे उलटे उदाहरण यदि पूर्व में पाये जाएँ, तो उनसे मेरे बताये हुए सिद्धान्त पर कोई आँच नहीं आती; क्योंकि मेरे सिद्धान्त के समर्थन में अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं | परन्तु जो भी हो, पश्चिम के तत्त्वज्ञानियों का यह दावा है कि पश्चिमी सभ्यता का मूल सिद्धान्त सर्वोच्च पशुबल पर आधारित है | यही कारण है कि उस सभ्यता के समर्थक पशुबल की रक्षा में अपने समय का अधिक से अधिक भाग खर्च करते है | उन लोगों का तो यह भी सिद्धान्त है कि जो प्रजायें अपनी ज़रूरते बढ़ायेंगी नहीं, उनका अन्त में नाश ही होने वाला है | इन सिद्धान्तों का अनुसरण करके ही पश्चिम की प्रजा दक्षिण अफ्रीका में बसी है और अपनी संख्या से अनेक गुनी अधिक संख्या वाले हबशियों को उसने वश में किया है | तब फिर उसे हिन्दुस्तान की गरीब प्रजा का भय तो हो ही कैसे सकता है ? और पूर्वीय सभ्यता की दृष्टि से उस प्रजा को कोई वास्तविक भय नहीं है, इसका उत्तम प्रमाण यह है कि हिन्दुस्तानी दक्षिण अफ्रीका में यदि सदा मजदूरों के रूप में ही रहते, तो गोरे कभी भी हिन्दुस्तानियों के वहाँ बसने के विरुद्ध आन्दोलन नहीं करते |

तब शेष कारण तो केवल व्यापार और रंग के ही रह जाते हैं | हजारों गोरों ने यह लिखा है और स्वीकार किया है कि हिन्दुस्तानियों का व्यापार छोटे छोटे अंग्रेज व्यापारियों को परेशान करता है और गेहुँए रंग वाली प्रजा के प्रति नफरत का भाव अभी तो गोरी प्रजा की रग-रग में पठ गया है | संयुक्त राज्य अमेरिका के कानून में तो सारे नागरिकों को समान अधिकार दिये गये हैं; परन्तु वहाँ भी बूकर टी. वाशिंग्टन जैसा उच्चतम पश्चिमी शिक्षा पाया हुआ, अत्यन्त चरित्रवान ईसाई और पश्चिमी सभ्यता को पूर्ण रूप से अपनी बना लेने वाल पुरुष प्रेसिडेन्ट रूजवेल्ट के दरबार में नहीं जा सका था, और आज भी नहीं जा सकता | अमेरिका के हबशियों ने पश्चिम की सभ्यता स्वीकार कर ली है; वे ईसाई भी बन गये हैं | लेकिन उनकी काली चमड़ी उनका अपराध माना जाता है | और यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के राज्यों में सामाजिक दृष्टि से उनसे घृणा की जाती है और उनका तिरस्कार किया जाता है, तो दक्षिण अमेरिका के राज्यों में अपराध की केवल शंका होने पर ही गोरे उन्हें जिन्दा जला डालते हैं | दक्षिण अमेरिका में इस दण्डनीति का एक विशेष नाम भी है, जो आज अंग्रेजी भाषा में प्रचलित हो गया है | वह शब्द है 'लिन्च लॉ' | 'लिन्च लॉ' का अर्थ ऐसी दण्डनीति है, जिसके अनुसार सजा पहले दी जाती है और अपराध की जाँच बाद में होती है | यह नाम 'लिन्च' नामक एक मनुष्य के नाम के आधार पर पड़ा है, जिसने यह दण्डप्रथा आरंभ की थी |

इस तरह पाठक यह समझ लेंगे कि उपर्युक्त तात्त्विक माने जाने वाले तर्क में बहुत सार नहीं है | लेकिन पाठक इसका यह अर्थ भी न करें कि उपर्युक्त तर्क प्रस्तुत करने वाले सब गोरे भिन्न विश्वास रखते हुए भी ऐसा तर्क करते हैं | उनमें से अनेक लोग सच्चे हृदय से मानते है कि उनका यह तर्क तात्त्विक है | संभव है कि हम उनके जैसी स्थिति में हों तो हम भी शायद ऐसा ही तर्क करें | कुछ ऐसे ही कारण से यह लोकोक्ति प्रचलित हुई है- 'बुद्धि : कर्मानुसारिणी |' यह अनुभव किसे नहीं होगा कि हमारी अन्तर्वृत्ति का निर्माण जैसा हुआ होता है वैसा ही तर्क हमें सुझा करता है; और वह तर्क जब दूसरों के गले नहीं उतरता तो हमें असंतोष होता है, हम अधीर बन जाते है और अंत में हमें क्रोध आता है |

मैंने जान-बूझकर इस प्रश्न की इतनी बारीकी से चर्चा की है | मैं चाहता हूँ कि पाठक विभिन्न दृष्टियों को समझें और जो लोग आज तक ऐसा न करते आये हों वे विभिन्न दृष्टियों का आदर करने और उन्हें समझने की आदत डालें | सत्याग्रह का रहस्य जानने के लिए और खास करके सत्याग्रह का प्रयोग करने के लिए ऐसी उदारता और ऐसी सहनशीलता अत्यन्त आवश्यक है | इनके बिना सत्याग्रह संभव ही नहीं है | यह पुस्तक मैं केवल लिखने के उद्देश्य से ही नहीं लिख रहा हूँ | इसके पीछे यह हेतु भी नहीं है कि दक्षिण अफ्रीका के इतिहास का एक पहलू भारत की जनता के सामने रखा जाए | इस पुस्तक को लिखने का मेरा हेतु यह है कि जिस सत्याग्रह के लिए मैं जीता हूँ, जीना चाहता हूँ और जिसके लिए उतनी ही हद तक मैं मरने को भी तैयार हूँ, उस सत्याग्रह का जन्म कैसे हुआ और उसका सर्वप्रथम सामुदायिक प्रयोग कैसे किया गया – यह सब भारतीय जनता जाने, समझे और जितना पसंद करे उतना यथाशक्ति आचरण में उतारे |

अब हम फिर से अपनी कथा को आगे बढ़ाये | हम यह देख चुके हैं कि ब्रिटिश सत्ताधारियों ने यह निर्णय किया था कि ट्रान्सवाल में नये हिन्दुस्तानियों को आने से रोका जाय और पुरानों की स्थिति इतनी कठिन बना दी जाए कि वे घबरा कर ट्रान्सवाल छोड़ दें, और न छोड़ें तो भी वे लगभग मजदूर जैसे बनकर ही रह सकें | दक्षिण अफ्रीका के कुछ महान माने जाने वाले राजनीतिक पुरुषों ने अनेक बार यह कहा था कि हिन्दुस्तानियों को हम दक्षिण अफ्रीका में केवल लकड़हारों और कांवरियों के रूप में ही रख सकते है | पहले जिस एशियाटिक विभाग की बात मैं लिख चुका हूँ उसमें दूसरे गोरे अधिकारियों के साथ हिन्दुस्तान में किसी समय रह चुके और विभक्त जिम्मेदारी (डायर्की) के शोधक और प्रचारक के रूप में प्रसिद्धि पाये हुए श्री लायनल कर्टिस भी थे | कुलीन परिवार के ये नौजवान, उस समय १९०५-०६ में तो नौजवान ही थे, लॉर्ड मिल्नर के विश्वस्त आदमी थे | प्रत्येक कार्य वैज्ञानिक पद्धति से ही करने का उनका दावा था | परन्तु वे बड़ी-बड़ी गलतियाँ भी कर सकते थे | अपनी ऐसी एक गलती से उन्होंने जोहानिसबर्ग की म्युनिसिपैलिटी को १४००० पौंड के खड्डे में उतार दिया था ! उन्होंने यह सुझाव रखा कि ट्रान्सवाल में नये हिन्दुस्तानियों को आने से रोकना हो, तो उस दिशा में पहला कदम यह उठाया जाना चाहिए कि दक्षिण अफ्रीका में बसे हुए पुराने हिन्दुस्तानियों के नाम इस ढंग से रजिस्टर किये जाए

कि एक हिन्दुस्तानी के बदले दूसरा हिन्दुस्तानी दक्षिण अफ्रीका में घुस न सके, और अगर घूस भी जाएँ तो तुरन्त पकड़ लिया जाय | ट्रान्सवाल में ब्रिटिश सत्ता स्थापित होने के बाद हिन्दुस्तानियों को जो परवाने दिये जाते थे, उन पर या तो हिन्दुस्तानी के दस्तखत लिए जाते थे या दस्तखत न कर सकने की स्थिति में उसके अंगूठे की निशानी ली जाती थी | इसके बाद किसी अधिकारी ने सुझाया कि परवानों पर हिन्दुस्तानियों की फोटो भी रहनी चाहिए | इस प्रकार फोटो, अंगूठे की निशानी और दस्तखत-ये सब वैसे ही चल पड़े | इसके लिए कोई कानून बनाना ज़रूरी नहीं माना गया | इस कारण कौम के नेताओं को इन बातों का तुरन्त पता भी नहीं चल सका था | धीरे धीरे ही उन्हें इन नई बातों के दाखिल होने का पता चला | उन्होंने कौम की ओर से सत्ताधारियों को अर्जिया भेजीं; प्रतिनिधि-मंडल भी भेजे | अधिकारियों की दलील यह थी कि कोई भी हिन्दुस्तानी किसी भी रीति से ट्रान्सवाल में प्रवेश करे, इसे हम स्वीकार नहीं कर सकते | इसलिए सब हिन्दुस्तानियों के पास एक ही तरह के परवाने होने चाहिए और उनमें इतना व्योरा होना चाहिए कि उन परवानों के आधार पर उनके मालिक ही ट्रान्सवाल में आ सकें, दूसरे कोई न आ सकें | मैंने कौम को यह सलाह दी कि ऐसा कोई कानून तो नहीं है जिसके अनुसार ऐसे परवाने लेना हमारे लिए अनिवार्य हो; परन्तु जब तक शांतिरक्षा का कानून (पीस प्रिजर्वेशन ऑर्डिनेन्स) मौजूद है तब तक अधिकारी हमसे परवाने अवश्य माँग सकते हैं | जिस तरह हिन्दुस्तान में 'डिफेन्स ऑफ इंडिया एक्ट'-भारत रक्षा कानून-था, उसी तरह दक्षिण अफ्रीका में शांतिरक्षा का कानून था | जिस तरह हिन्दुस्तान में 'डिफेन्स ऑफ इंडिया एक्ट' केवल प्रजा को परेशान करने के लिए ही लम्बी अवधि तक चालू रखा गया था, उसी तरह यह शांतिरक्षा कानून आवश्यकता पूरी हो जाने के बाद भी केवल हिन्दुस्तानियों को परेशान करने के लिए ही दक्षिण अफ्रीका में लम्बे समय तक चालू रखा गया था | यह कहना गलत नहीं होगा कि गोरों पर शांतिरक्षा कानून का सामान्यत: बिलकुल अमल नहीं होता था | अब यदि परवाने लेना अनिवार्य हो तो उन पर पहचान की कोई निशानी होनी ही चाहिए | इसलिए जो हिन्दुस्तानी दस्तखत न कर सकते हों उनके लिए अंगूठे की निशानी परवाने पर देना उचित ही होगा | पुलिसवालों ने यह खोज निकाला है कि किन्हीं भी दो मनुष्यों की अंगुलियों की रेखायें एकसी कभी नहीं होतीं | उन्होंने अंगुलियों की आकृति और संख्या का वर्गीकरण किया है | इस विज्ञान का निष्णात व्यक्ति दो अंगूठों की छाप की तुलना करके एक-दो मिनट में ही कह सकता है कि वे अंगूठों दो अलग व्यक्तियों के हैं या एक ही व्यक्ति के हैं | लेकिन फोटो देने की बात मुझे बिलकुल पसंद नहीं थी; और मुसलमानों की दृष्टि से तो फोटो देने में धार्मिक आपत्ति भी थी |

अन्त में हिन्दुस्तानी कौम और सरकार के बीच हुई बातचीत का परिणाम यह आया : कौम ने यह बात मान ली कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी अपना पुराना परवाना लौटा कर नया परवाना ले और नया आने वाला हिन्दुस्तानी नये रूप में ही परवाना ले | ऐसा करना हिन्दुस्तानियों के लिए कानून की दृष्टि से जरा भी अनिवार्य नहीं था, परन्तु उन्होंने इस आशा से स्वयं ही परवाने ले लिए कि उन पर नये अंकुश नहीं लगाये जाएँगे, कौम सम्बन्धित लोगों

को यह दिखा सकेगी कि वह धोखे से किसी भी नये हिन्दुस्तानी को ट्रान्सवाल में दाखिल नहीं करना चाहती और नये आने वाले हिन्दुस्तानियों को परेशान करने के लिए शांतिरक्षा कानून का अमल नहीं किया जाएगा | ऐसा कहा जा सकता है कि लगभग सभी हिन्दुस्तानियों ने नये परवाने ले लिए थे | यह कोई ऐसी-वैसी बात नहीं मानी जाएगी | जो काम करना कानून की दृष्टि से हिन्दुस्तानी कौम के लिए जरा भी अनिवार्य न था, वह काम उसने संपूर्ण एकता से बहुत ही जल्दी कर दिखाया | यह कौम की सच्चाई, व्यवहार-कुशलता, सयानपन, बुद्धिमानी और नम्रता का लक्षण था | और अपने इस काम से कौम ने यह भी सिद्ध कर दिखाया कि ट्रान्सवाल के किसी भी कानून का किसी भी तरह उल्लंघन करने का उसका बिलकुल इरादा नहीं था | हिन्दुस्तानियों का ऐसा विश्वास था कि जो काम सरकार के साथ इतनी सज्जनता से व्यवहार करती है, उस कौम के साथ सरकार भी अच्छा व्यवहार करेगी, उसके प्रति आदर दिखायेगी और उसे दूसरे अधिकार भी देगी | ट्रान्सवाल की ब्रिटिश सरकार ने इस सज्जनता का बदला कैसे चुकाया, यह हम अगले प्रकरण में देख सकेंगे |

११. सज्जनता का बदला : खूनी कानून

पुराने और नये परवानों की अदला-बदली हुई तब तक हम १९०६ के साल में पहुँच गये थे | १९०३ में मैंने ट्रान्सवाल में दूसरी बार प्रवेश किया था | उस वर्ष के लगभग मध्य में मैंने जोहानिसबर्ग में ऑफिस खोला था | इस प्रकार मेरे दो वर्ष एशियाटिक विभाग के आक्रमणों का विरोध करने में ही बीत गये | हम सब ने यह मान लिया था कि परवानों का मामला निबट जाने से सरकार को संपूर्ण सन्तोष होगा और कौम को थोड़ी शांति मिलेगी | लेकिन कौम के नसीब में तो शांति लिखी ही नहीं थी | पिछले प्रकरण में मैं श्री लायनल कर्टिस का परिचय दे चुका हूँ | उन्हें ऐसा लगा कि हिन्दुस्तानियों के केवल नये परवाने ले लेने से ही गोरों का उद्देश्य सिद्ध नहीं होता | महान कार्य परस्पर समझौते से पूरे हों, यह उनकी दृष्टि से काफ़ी नहीं था | वे मानते थे कि ऐसे कार्यों के पीछे कानून का बल भी होना चाहिए; तभी वे उचित ठहरते हैं और तभी उनके भीतर रहे सिद्धान्तों की रक्षा हो सकती है | श्री कर्टिस चाहते थे कि हिन्दुस्तानियों पर अंकुश लगाने के लिए कोई ऐसा कार्य किया जाएँ, जिसका प्रभाव समूचे दक्षिण अफ्रीका पर पड़े और अंत में दूसरे उपनिवेश उसका अनुकरण भी करें | उनका ख्याल था कि जब तक दक्षिण अफ्रीका का एक भी दरवाजा हिन्दुस्तानियों के लिए खुला रहेगा तब तक ट्रान्सवाल सुरक्षित नहीं कहा जाएगा | इसके सिवा, वे ट्रान्सवाल सरकार और हिन्दुस्तानियों के बीच हुए समझौते को हिन्दुस्तानी कौम की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला मानते थे | लेकिन उनका इरादा कौम की प्रतिष्ठा बढ़ाने का नहीं बल्कि घटाने का था | हिन्दुस्तानियों पर बाहरी अंकुश लगा कर कानून के आतंक से कौम को थरथरा देना चाहते थे | इसलिए उन्होंने एशियाटिक एक्ट का मसौदा तैयार किया और सरकार को यह सलाह दी कि जब तक इस मसौदे के अनुसार कानून पास नहीं होगा, तब तक हिन्दुस्तानी लोग छिपे तौर पर ट्रान्सवाल में ज़रूर ही दाखिल होते रहेंगे और जो लोग इस तरह दाखिल होंगे उन्हें ट्रान्सवाल से बाहर निकालने के लिए वर्तमान कानूनों में कोई भी व्यवस्था नहीं है | श्री कर्टिस की ये दलीलें और उनका एशियाटिक एक्ट का मसौदा ट्रान्सवाल सरकार को पसंद आया | और उनके मसौदे के अनुसार ट्रान्सवाल की धारासभा में पेश किया जाने वाला बिल सरकारी गजट में प्रकाशित हुआ |

इस बिल की मैं विस्तार से चर्चा करूँ इसके पहले एक महत्त्वपूर्ण घटना का वर्णन कुछ शब्दों में यहाँ कर देना आवश्यक है | मैं सत्याग्रह आन्दोलन का प्रेरक था, इसलिए यह आवश्यक है कि पाठक मेरे जीवन की घटनाओं को पूरी तरह समझ लें | ट्रान्सवाल में इस तरह हिन्दुस्तानियों पर अधिक अंकुश लगाने के प्रयत्न जिन दिनों हो रहे थे उसी अरसे में नेटाल में वहाँ के हबशियों का-जूलुओं का-विद्रोह जाग उठा | उस विस्फोट को विद्रोह कहा जा सकता है या नहीं, इस विषय में मुझे शंका थी आज भी मुझे शंका है | फिर भी यह घटना विद्रोह के नाम से ही सदा नेटाल में पुकारी गई है | बोअर-युद्ध के समान उस विद्रोह के समय भी नेटाल में रहने वाले कई

गोरे उसे शांत करने के लिए स्वयंसेवक के रूप में सेना में भरती हुए थे | मैं भी नेटाल का ही निवासी माना जाता था, इसलिए मुझे लगा कि इस युद्ध में मुझे भी यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए | हिन्दुस्तानी कौम की इजाजत लेकर मैंने नेटाल सरकार को लिखा कि मुझे घायलों की सेवा-शुश्रूषा करने वाला दल (स्ट्रेचर-बेयरर कोर्प्स) खड़ा करने दिया जाय | मेरा प्रस्ताव सरकार ने मान लिया | इसलिए मैंने जोहानिसबर्ग का घर छोड़ दिया और अपने बाल-बच्चों को नेटाल के फिनिक्स आश्रम में भेज दिया, जहाँ *इंडियन ओपीनियन* नामक साप्ताहक चलाया जाता था और जहाँ मेरे सहयोगी मित्र रहते थे | ऑफिस मैंने बन्द नहीं किया, क्योंकि मैं जानता था कि यह सेवाकार्य लम्बे समय तक मुझे नहीं करना पड़ेगा |

२०-२५ आदमियों का एक छोटासा दल खड़ा करके मैं नेटाल की सेना के साथ जुड़ गया | इस छोटे से दल में भी लगभग सभी जातियों और सभी प्रान्तों के हिन्दुस्तानी थे | इस दल ने एक माह तक घायलों की सेवा-शुश्रूषा का कार्य किया | हमें करने के लिए जो काम सौंपा गया था, उसके लिए मैंने सदा ही ईश्वर का उपकार माना | अनुभव से मैंने देखा कि जो हबशी विद्रोह में घायल होते थे उन्हें केवल हम लोग ही उठाते थे, वर्ना वे जहाँ के तहाँ पड़े-पड़े दुःख भोगा करते थे | इन घायलों के घावों की सार-सँभाल और मरहम-पट्टी करने में एक भी गोरा हमारी मदद नहीं करता था | जिस सर्जन के मातहत हमें यह काम करना था, उसका नाम डॉ. सावेज था | वह अत्यन्त दयालु था | घायलों को उठाकर अस्पताल में ले आने के बाद उनकी सार-सँभाल करना हमारे क्षेत्र में नहीं आता था | परन्तु हम तो यह समझ कर ही युद्ध में शरीक हुए थे कि जो भी काम हमें सौपा जाए, वह हमारे क्षेत्र के भीतर ही है | उस भले और दयालु डॉक्टर ने हमसे कहा कि मुझे एक भी गोरा इन घायलों की सार-सँभाल करने वाला नहीं मिलता | मैं किसी गोरे को यह काम करने के लिए मजबूर करने की शक्ति नहीं रखता | इसलिए आप लोग यदि दया का यह काम करेंगे, तो मैं आपका उपकार मानूँगा | हमने खुश होकर जूबुओं की सेवा-शुश्रूषा का काम हाथ में ले लिया | कुछ हबशियों के घावों की पाँच-पाँच, छह-छह दिन तक मरहम-पट्टी नहीं की गई, इसलिए वे बदबू करने लगे थे | उनके घावों को साफ करके मरहम-पट्टी करने का काम हमारे सिर आया और हमने उसे बहुत ही पसंद किया | हबशी बेचारे हमारे साथ कुछ बोल तो नहीं सकते थे | परन्तु उनके हाव-भाव और उनकी आँखों से प्रकट होने वाली कृतज्ञता से हम समझ सकते थे कि वे हमें ईश्वर द्वारा उनकी मदद के लिए भेजे हुए दूत ही मानते थे | यह काम बड़ा कठिन था | कभी-कभी तो हमें दिन में चालीस-चालीस मील की मंजिल तय करनी पड़ती थी |

एक महीने में हमारा यह काम पूरा हो गया | अधिकारियों को हमारे काम से सन्तोष हुआ | गवर्नर ने हमें धन्यवाद और आभार का पत्र भी लिखा | हमारे दल के प्रत्येक सदस्य को एक विशेष पदक दिया गया था, जो इसी अवसर के उपलक्ष में तैयार किया गया था | इस दल के तीन सार्जन्ट गुजराती थे | उनके नाम ये हैं : श्री उमियाशंकर शेलत, श्री सुरेन्द्रराय मेढ़ और श्री हरिशंकर जोशी | ये तीनों बड़े हृष्टपुष्ट थे और तीनों ने बहुत कड़ी मेहनत की

थी | दूसरे हिन्दुस्तानियों के नाम इस समय मुझे याद नहीं आते, लेकिन इतना अच्छी तरह याद है कि उन लोगों में एक पठान भी था | मुझे यह भी याद है कि हम लोग उस पठान के जितना ही बोझ उठा सकते थे और उसके साथ रह कर कूच भी कर सकते थे, यह बात उसे आश्चर्यकारक लगती थी |

इस दल का काम करते-करते मेरे दो विचार परिपक्व हो गये, जो धीरे-धीरे मेरे मन में पक रहे थे | एक विचार तो यह कि सेवाधर्म को जीवन में प्रमुख स्थान देने वाले मनुष्य को ब्रह्मचर्य का पालन अवश्य ही करना चाहिए | दूसरा यह कि सेवाधर्म का पालन करने वाले मनुष्य को गरीबी का सदा के लिए वरण करना चाहिए | वह कोई ऐसा धन्धा न करे, जिसकी वजह से सेवाधर्म का पालन करने में उसे कोई हिचकिचाहट होने का मौका आये अथवा सेवाधर्म के पालन में थोड़ी भी रुकावट हो |

इस दल में मैं काम करता था तभी जैसे बने वैसे जल्दी ही ट्रान्सवाल आने के बारेमें मुझे पत्र और तार मिलते रहे थे | इसलिए उसका काम पूरा होते ही फिनिक्स के सब मित्रों से मिल कर मैं तुरन्त जोहानिसबर्ग पहुँच गया | वहाँ ऑफिस में मैंने ऊपर बताये एशियाटिक बिल का मसौदा पढ़ा | २२ अगस्त, १९०६ को प्रकाशित हुआ ट्रान्सवाल सरकार का वह असाधारण गजट ऑफिस से मैं घर ले गया, जिसमें बिल का मसौदा छपा था | मेरे मकान के पास एक छोटी-सी पहाड़ी थी | अपने एक मित्र के साथ उस टेकरी पर जाकर मैं *इंडियन ओपीनियन* के लिए उस बिल का गुजराती अनुवाद करने लगा | जैसे-जैसे मैं उस बिल की धारायें पढ़ता गया, वैसे-वैसे मैं काँपता गया | उसमें मैं हिन्दुस्तानियों के प्रति द्वेष और घृणा के सिवा दूसरा कुछ नहीं देख सका | मुझे लगा कि अगर यह बिल पास हो गया और हिन्दुस्तानियों ने कायर बनकर उसे स्वीकार कर लिया, तो दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानी कौम के पैर जड़ से उखड़ जाएँगे | मैंने स्पष्ट रूप से समझ लिया कि हिन्दुस्तानी कौम के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न है | मैंने यह भी समझ लिया कि कौम अरजियाँ पेश करने से अपने ध्येय में यदि सफल न हो, तो उसे हाथ पर हाथ धरे चुपचाप बैठे नहीं रहना चाहिए | इस खूनी कानून की शरण में जाने की अपेक्षा उसका मर जाना बेहतर होगा | लेकिन मरा कैसे जाएँ ? हिन्दुस्तानी कौम ऐसे कौन से खतरे में पड़े या कि पड़ने की हिम्मत करे, जिससे उसके सामने जीत या मौत के सिवा तीसरा कोई रास्ता ही न रह जाएँ ? मेरे सामने तो मानो ऐसी भयंकर दीवाल खड़ी हो गई, जिसके पार कोई रास्ता सूझता ही नहीं था | जिस बिल के मसौदे ने मुझे जड़ से हिला दिया, उसकी तफसील पाठकों को जाननी ही चाहिए | उसका सार नीचे दिया जाता है :

ट्रान्सवाल में रहने का अधिकार रखने वाले प्रत्येक हिन्दुस्तानी पुरुष, स्त्री और आठ वर्ष के अथवा आठ वर्ष के ऊपर के बालक-बालिकाओं को एशियाटिक विभाग के दफ़्तर में नाम लिखा कर परवाना ले लेना चाहिए | ये परवाने लेते समय अपने पुराने परवाने वहाँ के अधिकारियों को सौंप देने चाहिए | अरजी में हर हिन्दुस्तानी को अपना नाम, पता, जाति, उमर वगैरा लिखना चाहिए | नाम दर्ज करने वाले अधिकारी (रजिस्ट्रार) को अर्जदार के

शरीर पर कोई खास निशानियां हों तो उन्हें लिख लेना चाहिए और अर्जदार की सब अंगुलियों और अंगूठे की छाप लेनी चाहिए | निश्चित की हुई अवधि के भीतर जो हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुष इस तरह अरजी न करें, उनके ट्रान्सवाल में रहने के अधिकार रद हो जाएँगे | अरजी न करना कानून के अनुसार अपराध माना जाएगा | इस अपराध के लिए जुर्माना किया जा सकता है, जैल की सजा हो सकती है और कोई कोर्ट उचित समझे तो अपराधी को देशनिकाल की सजा भी दे सकती है | बच्चों की अरजी माता-पिता को देनी चाहिए; और निशानियाँ लिखाने और अंगुलियों वगैरा को छाप देने के लिए बच्चों को अधिकारियों के सामने ले जाने की जिम्मेदारी भी माता-पिता की होगी | अगर माता-पिता ने अपनी यह जिम्मेदारी अदा न की हो, तो सोलह वर्ष की उमर हो जाने पर बच्चों को यह जिम्मेदारी खुद अदा करनी चाहिए | और अगर वे यह जिम्मेदारी अदा न करें, तो जिस-जिस सजा के पात्र माता-पिता हो सकते है, उसी सजा के पात्र सोलह वर्ष की उमर को पहुँचे हुए नौजवान भी माने जाएँगे | जो परवाना अर्जदार को दिया जाय उसे कोई पुलिस अधिकारी जब और जहाँ माँगे तब और वहाँ बताना अनिवार्य होगा | यह परवाना पेश न करना अपराध माना जाएगा और उस अपराध के लिए कोर्ट जुर्माने को या क़ैद की सजा कर सकती है | इस परवाने की माँग रास्ते चलते यात्री से भी की जा सकती है | परवानों की जाँच करने के लिए पुलिस अधिकारी लोगों के घरों में भी प्रवेश कर सकते हैं | किसी बाहर के स्थान से आकर ट्रान्सवाल में प्रवेश करते समय हिन्दुस्तानी स्त्री या पुरुष को जाँच करने वाले अधिकारी के सामने अपना परवाना पेश करना ही चाहिए | कोई हिन्दुस्तानी अदालत में किसी काम से जाए या माल-ऑफिस में व्यापार का अथवा सायकल रखने का अनुमति-पत्र लेने जाए, तो वहाँ भी अधिकारी उससे परवाना माँग सकता है | कहने का अर्थ यह कि कोई हिन्दुस्तानी किसी भी सरकारी दफ़्तर में उस दफ़्तर से सम्बन्धित किसी काम के सिलसिले में जाए, तो वहाँ का अधिकारी हिन्दुस्तानी की प्रार्थना सुनने से पहले उससे परवाना माँग सकता है | यह परवाना अधिकारी के सामने पेश करने से इनकार करना या परवाना रखने वाले आदमी से माँगी जाने वाली परवाना-सम्बन्धी कोई भी जानकारी अधिकारी को देने से इनकार करना भी अपराध माना जाएगा और उसके लिए भी कोर्ट अपराधी को जुर्माने की या क़ैद की सजा कर सकती है |

जहाँ तक मैं जानता हूँ, इस प्रकार का कानून दुनिया के किसी भी हिस्से में स्वतंत्र मानवों के लिए नहीं बनाया गया होगा | मैं जानता हूँ कि नेटाल के गिरमिटिया हिन्दुस्तानियों के लिए बनाये हुए परवाने के कानून बहुत कड़े हैं, लेकिन वे बेचारे तो स्वतंत्र मानव माने ही नहीं जाते | फिर भी यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त बिल की तुलना में उन लोगों के लिए बने हुए परवानों के कानून नरम है और उन कानूनों को तोड़ने की सजा इस बिल में बताई गई सजा के सामने कुछ भी नहीं है | इस बिल के अनुसार कोई लाखों का व्यापार करने वाला हिन्दुस्तानी व्यापारी भी देशनिकाले की सजा पा सकता है | अर्थात् इस बिल की धाराओं को भंग करने से उसकी आर्थिक स्थिति जड़मूल से नष्ट हो सकती है | और धैर्य रखने वाले पाठक आगे चल कर देखेंगे कि इस बिल की कुछ

धाराओं को भंग करने से हिन्दुस्तानियों को देशनिकाले की सजा भी हुई थी | हिन्दुस्तान में जरायम-पेशा जातियों के लिए कुछ कड़े कानून है | इस बिल की तुलना उन कानूनों के साथ आसानी से हो सकत है; और तुलना करने पर सब मिलाकर यह बिल सख्ती में उन कानूनों से किसी भी प्रकार घटिया नहीं कहा जा सकता | इस बिल में हाथों की दसों अंगुलियों की छाप लेने की जो धारा थी, वह तो दक्षिण अफ्रीका में बिलकुल नई ही चीज थी | मुझे इस सम्बन्ध में कुछ साहित्य पढ़ना चाहिए, ऐसा सोचकर मैं एक पुलिस अधिकारी श्री हेनरी की लिखी *फिंगर इंप्रेशन्स* (अंगुलियों की निशानियाँ) नामक पुस्तक पढ़ गया | उसमें मैंने देखा कि इस प्रकार अंगुलियों की छाप कानूनन् तो केवल अपराधियों की ही ली जाती है | इसलिए जबरदस्ती हिन्दुस्तानियों की दस अंगुलियों की छाप लेने की बात मुझे अत्यन्त भयंकर लगी | स्त्रियों और सोलह वर्ष के भीतर के बालकों के परवानों की प्रथा भी इस बिल के द्वारा पहले-पहल दाखिल की गई थी |

दूसरे दिन अग्रगण्य हिन्दुस्तानियों को एकत्र करके मैंने उन्हें यह बिल अक्षरश: समझाया | इसके फलस्वरूप उन लोगों पर बिल का वही असर हुआ, जो मुझ पर हुआ था | उनमें से एक मित्र तो जोश में आकर बोल उठे : "मेरी पत्नी से जो आदमी परवाना माँगने आयेगा, उसे मैं तो वहीं का वहीं गोली से उड़ा दूँगा | भले बाद में मेरा जो भी होना हो होता रहे |" मैंने उन्हें शांत किया | फिर सबसे कहा : "यह संकट बड़ा गंभीर है | यह बिल अगर पास हो गया और हमने उसे स्वीकार कर लिया, तो उसका अनुकरण समूचे दक्षिण अफ्रीका में होगा | मुझे तो दक्षिण अफ्रीका में हमारी हस्ती को मिटाना ही उसका एकमात्र उद्देश्य मालूम होता है | यह बिल इस दिशा में उठाया जाने वाला कोई अन्तिम कदम नहीं है, परन्तु हमें सता-सता कर दक्षिण अफ्रीका से भगा देने का पहला कदम है | इसलिए हमारी जिम्मेदारी केवल ट्रान्सवाल में बसने वाले दस-पन्द्रह हजार हिन्दुस्तानियों की सुरक्षितता तक ही सीमित नहीं है; उसमें दक्षिण अफ्रीका में बसी हुई समस्त हिन्दुस्तानी कौम की सुरक्षितता का समावेश होता है | और, यदि हम इस बिल का गूढ़ अर्थ पूरी तरह समझ लें, तब तो सारे हिन्दुस्तान की प्रतिष्ठा को बचाने की जिम्मेदारी भी हम पर आ जाती है | क्योंकि इस बिल में केवल हमारा ही अपमान नहीं होता, परन्तु सारे हिन्दुस्तान का अपमान होता है | अपमान का अर्थ ही है निर्दोष मनुष्य के स्वाभिमान का भंग होना | हम ऐसे कानून के पात्र हैं, यह कोई भी नहीं कह सकता | हम निर्दोष हैं; और हिन्दुस्तानी प्रजा के एक भी निर्दोष सदस्य का अपमान समस्त प्रजा का अपमान है | इसलिए ऐसे कठिन अवसर पर हम यदि उतावली करेंगे, अधीर बन जाएँगे और गुस्सा करेंगे, तो केवल इतना करने से हम इस आक्रमण से बच नहीं सकेंगे | परन्तु यदि हम शांति से अपनी रक्षा के उपाय खोजकर समय पर उन्हें काम में लेंगे, एक होकर रहेंगे और अपमान का विरोध करने पर आ पड़ने वाले दुःख भी सहन करेंगे, तो मेरा विश्वास है कि ईश्वर स्वयं हमारी सहायता करेगा |" सब कोई बिल की गंभीरता को समझ गये | यह निर्णय किया गया कि एक सार्वजनिक सभा की जाए, जिसमें

कुछ प्रस्ताव रखे जाएँ और उन्हें पास किया जाए | इसके लिए यहूदियों की एक नाटक-शाला किराये पर ली गई और वहाँ सभा की गई |

अब पाठक समझ सकेंगे कि इस प्रकरण के शीर्षक में उपर्युक्त बिल को 'खूनी कानून' क्यों कहा गया है | इस प्रकरण के लिए 'खूनी' विशेषण की योजना मैंने नहीं की है | परन्तु यह विशेषण दक्षिण अफ्रीका में ही इस कानून का परिचय कराने के लिए प्रचलित हो गया था |

१२. सत्याग्रह का जन्म

यहूदियों की उस नाटक-शाला में ११ सितम्बर, १९०६ को हिन्दुस्तानियों की सभा हुई | ट्रान्सवाल के भिन्न-भिन्न शहरों से प्रतिनिधियों को सभा में बुलाया गया | परन्तु मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि जो प्रस्ताव मैंने तैयार किये थे, उनका पूरा अर्थ तो मैं खुद भी उस समय समझ नहीं पाया था | मैं इस बात का अनुमान भी उस समय नहीं लगा सका था कि उन प्रस्तावों को पास करने के परिणाम क्या आएँगे | सभा हुई | नाटक-शाला में पाँव रखने की भी जगह न रही | सब लोगों के चेहरों पर मैं यह भाव देख सकता था कि कुछ नया काम हमें करना है, कुछ नई बात होने वाली है | ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन के अध्यक्ष श्री अब्दुल गनी सभा के सभापति-पद पर आसीन थे | वे ट्रान्सवाल के बहुत ही पुराने हिन्दुस्तानी निवासियों में से एक थे | वे महमद कासम कमरुद्दीन नामक विख्यात पेढी के साझेदार थे और उसकी जोहानिसबर्ग की शाखा के व्यवस्थापक थे | सभा में जितने प्रस्ताव पास हुए थे उनमें सच्चा प्रस्ताव तो एक ही था | उसका आशय इस प्रकार था : 'इस बिल के विरोध में सारे उपाय किये जाने के बावजूद यदि वह धारासभा में पास हो ही जाए, तो हिन्दुस्तानी उसके सामने हार न माने और हार न मानने के फलस्वरूप जो जो दुःख भोगने पड़े उन सबको बहादुरी से सहन करें |'

यह प्रस्ताव मैंने सभा को अच्छी तरह समझा दिया | सभा ने शांति से मेरी बात सुनी | सभा का सारा कामकाज हिन्दी में या गुजराती में ही चला, इसलिए किसी को कोई बात समझ में न आये ऐसा तो हो ही नहीं सकता था | हिन्दी न समझने वाले तामिल और तेलुगु भाइयों को इन भाषाओं के बोलने वाले लोगों ने सारी बातें पूरी तरह समझा दीं | नियमानुसार प्रस्ताव सभा के समक्ष रखा गया | अनेक वक्ताओं ने उसका समर्थन भी किया | उनमें एक वक्ता सेठ हाजी हबीब थे | वे भी दक्षिण अफ्रीका के बहुत पुराने और अनुभवी निवासी थे | उनका भाषण बड़ा जोशीला था | आवेश में आकर वे यहाँ तक बोल गये कि, "यह प्रस्ताव हमें खुदा को हाजिर मान कर पास करना चाहिए | हम नामर्द बनकर ऐसे कानून के सामने कभी न झुकें | इसलिए मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि इस कानून के सामने मैं कभी सिर नहीं झुकाऊँगा | मैं इस सभा में आये हुए सब लोगों को यह सलाह देता हूँ कि वे भी खुदा को हाजिर मानकर ऐसी कसम खायें |"

इस प्रस्ताव के समर्थन में अन्य लोगों ने भी तीखे और जोशीले भाषण किये | जब सेठ हाजी हबीब बोलते-बोलते कसम की बात पर आये, तब मैं चौंका और सावधान हो गया | तभी मुझे अपनी जिम्मेदारी का और हिन्दुस्तानी कौम की जिम्मेदारी का पूरा भान हुआ | आज तक कौम ने अनेक प्रस्ताव पास किये थे | अधिक सोचने-विचारने के बाद या नये अनुभवों के बाद उन प्रस्तावों में परिवर्तन भी किये गये थे | ऐसे भी मौके आये थे जब प्रस्ताव पास करने वाले सब लोगों ने उन प्रस्तावों पर अमल नहीं किया | पास किये हुए प्रस्तावों में परिवर्तन करना,

प्रस्तावों से सहमत होने वाले लोगों का बाद में उन पर अमल करने से इनकार करना आदि सारी दुनिया के सार्वजनिक जीवन के सामान्य अनुभव की बातें हैं | परन्तु ऐसे प्रस्तावों में कोई ईश्वर का नाम बीच में नहीं लाता | सिद्धान्त की दृष्टि से सोचा जाएँ तो किसी निश्चय में और ईश्वर का नाम लेकर की गई प्रतिज्ञा में कोई भेद नहीं होना चाहिए | जब बुद्धिशाली मनुष्य सोच-समझ कर कोई निश्चय करता है, तो वह अपने निश्चय से कभी डिगता नहीं | उसकी दृष्टि में उस निश्चय का महत्त्व उतना ही होता है जितना कि ईश्वर को साक्षी रखकर की गई प्रतिज्ञा का | लेकिन दुनिया सैद्धान्तिक निर्णयों के आधार पर नहीं चलती | वह ईश्वर को साक्षी रख कर की गई प्रतिज्ञा और सामान्य निश्चय के बीच महासागर जितना भेद मानती है | किसी सामान्य निश्चय को बदलने में बदलने वाले को शर्म नहीं आती | परन्तु ईश्वर को साक्षी रख कर प्रतिज्ञा करने वाला मनुष्य जब प्रतिज्ञा का भंग करता है, तब वह खुद ही नहीं शरमाता है, समाज भी उसे धिक्कारता है और पापी मानता है | इस बात ने मानव-मन में इतनी गहरी जड़ जमा ली है कि कानून की दृष्टि में भी कसम खाकर कही गई बात अगर झूठी साबित हो, तो कसम खाने वाला आदमी अपराधी माना जाता है और उसे कड़ी सजा दी जाती है |

ऐसे विचारों से मरा हुआ मैं – जिसे गंभीर प्रतिज्ञाओं का काफ़ी अनुभव था और जिसने प्रतिज्ञाओं के मीठे फल जीवन में चखे थे – सेठ हाजी हबीब के कसम वाले सुझाव से चौक उठा | मैंने उसके परिणामों का अनुमान एक क्षण में लगा लिया | इस घबराहट से मुझ में उत्साह और जोश पैदा हुआ | और यद्यपि मैं उस सभा में प्रतिज्ञा करने या दूसरों से कराने के इरादे से नहीं गया था, तो भी मुझे सेठ हाजी हबीब का सुझाव बहुत पसंद आया | लेकिन उसके साथ मुझे ऐसा भी लगा कि सभा में आये हुए सब लोगों को सारे परिणामों से परिचित करा देना चाहिए, प्रतिज्ञा का अर्थ सबको स्पष्ट शब्दों में समझा देना चाहिए; और उसके बाद वे प्रतिज्ञा कर सकें तो ही उसका स्वागत करना चाहिए और यदि न कर सकें तो मुझे समझ लेना चाहिए कि हिन्दुस्तानी कौम के लोग अभी अन्तिम कसौटी पर चढ़ने को तैयार नहीं हुए हैं | इसलिए मैंने सभापति से कहा कि मुझे सेठ हाजी हबीब के कथन का गूढ़ अर्थ सभा को समझाने की इजाजत दी जाएँ | मुझे इजाजत मिली और मैं खड़ा हुआ | मैंने जिस प्रकार लोगों को समझाया उसका सार आज जैसा मुझे याद है उस रूप में नीचे देता हूँ :

“मैं इस सभा को यह समझाना चाहता हूँ कि आज तक हम लोगों ने जो प्रस्ताव जिस रीति से पास किये हैं, उन प्रस्तावों और उन्हें पास करने की रीति में तथा इस प्रस्ताव और इसे पास करने की रीति में बहुत बड़ा भेद है | यह प्रस्ताव बहुत गंभीर है, क्योंकि इसके संपूर्ण अमल पर दक्षिण अफ्रीका में हमारी हस्ती का आधार है | इस प्रस्ताव को पास करने की जो रीति हमारे मित्र ने सुझाई है, वह जैसे गंभीर है वैसे ही नई भी है | मैं स्वयं तो इस रीति से यह प्रस्ताव पास कराने के इरादे से यहाँ नहीं आया था | इसका श्रेय केवल सेठ हाजी हबीब को ही मिलना चाहिए और इसकी जिम्मेदारी का भार भी उन्हीं के सिर पर है | मैं उन्हें इसके लिए अभिनन्दन देता हूँ | उनका सुझाव मुझे बहुत पसन्द आया है | लेकिन अगर उनका सुझाव आप स्वीकार करें, तो उनकी जिम्मेदारी

में आप सब भी साझेदार बन जाएँगे | यह जिम्मेदारी क्या है, इसे आपको समझ ही लेना चाहिए; और कौम के सलाहकार और सेवक के नाते मेरा धर्म है कि यह जिम्मेदारी मैं आपको पूरी तरह समझा दूँ |

"हम सब एक ही सरजनहार परमात्मा में विश्वास करते हैं | भले ही मुसलमान उसे खुदा कहें और हिन्दू उसे ईश्वर कहें, लेकिन उसका स्वरूप एक ही है | उस ईश्वर को साक्षी रख कर या हमारे बीच रख कर यदि हम प्रतिज्ञा करें या कसम खायें, तो यह मामूली बात नहीं है | ऐसी कसम खाकर यदि हम अपनी प्रतिज्ञा पर डटे न रहें, उसका भंग करें, तो हम कौम के, दुनिया के और ईश्वर के अपराधी बनेंगे | मैं तो यह मानता हूँ कि जो मनुष्य सावधान रह कर, शुद्ध बुद्धि से, प्रतिज्ञा करता है और बाद में उसे भंग करता है, वह अपनी इन्सानियत अथवा मनुष्यता खो देता है | और जिस प्रकार पारा चढ़ाया हुआ तांबे का सिक्का रुपया नहीं है यह पता चलते ही उसकी कोई क़ीमत नहीं रह जाती, बल्कि उस खोते सिक्के का मालिक सजा का पात्र हो जाता है, उसी प्रकार झूठी कसम खाने वाले आदमी की भी कोई क़ीमत नहीं रह जाती; साथ ही वह इसलोक तथा परलोक दोनों में सजा का पात्र ठहरता है | सेठ हाजी हबीब ऐसी ही गम्भीर कसम खाने की बात सुझाते हैं | इस सभा में ऐसा एक भी आदमी नहीं है, जो बालक या बेसमझ कहा जाएँ | आप सब प्रौढ़ हैं, अनुभवी हैं | आपने दुनिया देखी है, आप में से कई लोग कौम के प्रतिनिधि हैं, और आप में से बहुत से लोगों ने कम-ज़्यादा जिम्मेदारी के काम भी किये हैं | इसलिए इस सभा का एक भी आदमी ऐसा कहकर अपनी प्रतिज्ञा से मुकर नहीं सकता कि 'मैंने बिना समझे यह प्रतिज्ञा की थी |'

"मैं जानता हूँ कि प्रतिज्ञायें और व्रत किसी अत्यन्त महत्त्व के अवसर पर ही लिए जाते है, और लिए जाने चाहिए | चलते-फिरते प्रतिज्ञा लेने वाला मनुष्य उनके पालन में दृढ़ नहीं रह पाता है | परन्तु यदि दक्षिण अफ्रीका की हिन्दुस्तानी कौम के सामाजिक जीवन में प्रतिज्ञा लेने योग्य किसी अवसर की मैं कल्पना कर सकूँ, तो वह निश्चित रुप से यही अवसर है | ऐसे कदम अत्यन्त सावधानी से और डर-डर कर उठाये जाएँ, इसी में बुद्धिमानी है | लेकिन सावधानी और डर की भी एक सीमा होती है | उस सीमा तक अब हम पहुँच गये हैं | सरकार ने सभ्यता की मर्यादा का त्याग कर दिया है | उसने हमारे चारों ओर दावानल सुलगा दिया है | ऐसे समय भी अगर हम अपना सब-कुछ दाँव पर न लगा दें और हाथ पर हाथ धरकर सोच-विचार में ही पड़े रहें, तो हम अयोग्य और कायर सिद्ध होंगे | इसलिए यह अवसर कसम खाने या प्रतिज्ञा लेने का है, इसमें मुझे कोई शंका नहीं है | परन्तु यह कसम खाने की शक्ति हम में है या नहीं, यह तो प्रत्येक हिन्दुस्तानी को अपने लिए सोच लेना होगा | ऐसे प्रस्ताव बहुमत से पास नहीं हुआ करते | जितने लोग कसम खाते हैं उतने ही उस कसम से बंधते हैं | ऐसी कसमें दिखावे के लिए कभी नहीं खाई जातीं | उसका असर स्थानीय सरकार पर बड़ी (साम्राज्य) सरकार पर या भारत सरकार पर कैसा पड़ेगा, इसका कोई जरा भी विचार न करे | हर एक को अपने हृदय पर हाथ रखकर अपने

हृदय की ही जाँच करनी चाहिए | और ऐसा करने के बाद यदि उसकी अन्तरात्मा उत्तर दे कि कसम खाने की शक्ति उसमें है, तो ही उसे कसम खानी चाहिए, और तभी उसकी कसम फल देने वाली सिद्ध होगी |

"अब दो शब्द इसके परिणामों के बारेमें भी कह दूँ | उत्तम आशा रखते हुए तो ऐसा कहा जा सकता है कि अगर हिन्दुस्तानी कौम का बड़ा भाग यह कसम खा सके और कसम खाने वाले सब लोग अपनी कसम पर डटे रहें, तो संभवत: यह बिल पास न हो; और अगर पास हो भी जाएँ, तो तुरन्त रद कर दिया जाय | संभव है कि बिल का विरोध करने की कसम खाने से हमें बहुत कष्ट न सहने पड़े | यह भी हो सकता है कि हमें जरा भी कष्ट न सहना पड़े | लेकिन कसम खाने वाले व्यक्ति का धर्म एक ओर यदि श्रद्धा से आशा रखने का है, तो दूसरी ओर किसी भी तरह की आशा न रखकर कसम खाने को तैयार रहने का है | इसीलिए हमारी लड़ाई के जो कड़वे से कड़वे परिणाम आ सकते हैं, उनका चित्र मैं सभा के सामने खींचना चाहता हूँ | मान लीजिए कि सभा में आये हुए हम सब कसम खायें | हमारी संख्या अधिक से अधिक तीन हजार होगी | यह भी संभव है कि बाकी के दस हजार हिन्दुस्तानी यह कसम न खायें | शुरू में तो हमारी हँसी ही होगी | इसके सिवा, इस सारी चेतावनी के बावजूद यह बिलकुल संभव है कि कसम खाने वाले लोगों में से कुछ या बहुत से लोग पहली कसौटी में ही कमजोर मालूम पड़े | संभव है कि हमें जेल में जाना पड़े; जेल में जाकर अपमान सहने पड़े | वहाँ हमें भूख, ठंड और धूप का कष्ट भी भोगना पड़ सकता है; कड़ी मेहनत भी करनी पड़ सकती है | संभव है, जेल में उद्धत दारोगाओं की मार भी हमें खानी पड़े | हमारा जुर्माना हो सकता है और माल-सामान जब्त होकर नीलाम भी किया जा सकता है | अगर लड़ने वाले बहुत कम रह जाएँ, तो आज हमारे पास बहुत पैसा होने पर भी कल हम बिलकुल कंगाल बन सकते हैं | हमें देशनिकाले की सजा भी हो सकती है | और भूखों मरते-मरते व जेल के दूसरे कष्ट भोगते-भोगते हम में से कुछ लोग बीमार भी पड़ सकते हैं और कुछ मर भी सकते हैं | इसलिए संक्षेप में कहा जाए तो यह बिलकुल असंभव नहीं कि हम जितने भी दु:खों और कष्टों की कल्पना कर सकते हैं उतने सब हमें भोगने पड़े | इसलिए बुद्धिमानी की बात यही होगी कि यह सब हमें सहना पड़ेगा ऐसा मानकर ही हम कसम खायें | मुझसे कोई पूछे कि इस लड़ाई का अन्त क्या होगा और कब होगा, तो मैं कह सकता हूँ कि सारी कौम यदि इस कसौटी में से पूरी तरह पार हो जाए, तो लड़ाई का फैसला तुरन्त हो जाएगा | परन्तु यदि हम में से बहुत लोग कष्टों की आँधी आने पर गिर जाएँ या फिसल जाएँ, तो यह लड़ाई लम्बी चलेगी | फिर भी इतना तो मैं साहस और निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि जब तक मुट्ठीभर लोग भी अपनी प्रतिज्ञा को जीवित रखने वाले होंगे तब तक हमारी इस लड़ाई का एक ही अंत आयेगा | वह यह कि लड़ाई में हमारी निश्चित विजय होगी |

"अब मैं अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी के बारेमें दो शब्द कह दूँ | यदि एक ओर मैं आपको प्रतिज्ञा लेने में रहे खतरे बता रहा हूँ, तो दूसरी ओर मैं आपको कसम खाने की प्रेरणा भी दे रहा हूँ | और ऐसा करते हुए मैं अपनी जिम्मेदारी को अच्छी तरह समझ रहा हूँ | यह भी हो सकता है कि आज के आवेश के कारण या गुस्से के कारण

इस सभा में उपस्थित लोगों का बड़ा भाग प्रतिज्ञा ले-ले, परन्तु संकट के समय निर्बल सिद्ध हो और केवल मुट्ठीभर लोग ही अंतिम अग्नि-परीक्षा का सामना करने के लिए रह जाए | उस स्थिति में भी मेरे जैसे के लिए तो एक ही मार्ग रह जाएगा: 'मर जाना किन्तु कानून के सामने सिर न झुकाना |' मान लीजिए कि ऐसी स्थिति आ जाएँ – ऐसा होने की जरा भी संभावना नहीं है, फिर भी हम मान लें – जब सारे लोग अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दें और मैं अकेला ही रह जाऊँ, तो भी मेरा विश्वास है कि मैं अपनी प्रतिज्ञा का भंग नहीं करूँगा | मेरे इस कथन का उद्देश्य आप सब समझ लें | यह अभिमान की बात नहीं है, परन्तु मुख्यत: इस मंच पर बैठे हुए हिन्दुस्तानी नेताओं को सावधान करने की बात है | अपना उदाहरण लेकर मैं नेताओं से नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि आप में अकेले रह जाने पर भी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने का निश्चय अथवा वैसा करने की शक्ति न हो तो आप प्रतिज्ञा न लें; इतना ही नहीं, लोगों के सामने यह प्रस्ताव रखा जाएँ और वे प्रतिज्ञा लें उससे पहले लोगों के सामने आप अपना विरोध प्रकट करें और स्वयं उस प्रस्ताव का समर्थन न करें | यद्यपि हम सब साथ मिलकर यह प्रतिज्ञा लेना चाहते है, फिर भी कोई इसका यहि अर्थ न करे कि हम में से कोई एक या बहुतेरे लोग अपनी प्रतिज्ञा का भंग कर दें, तो बाकी के लोग स्वभावत: उसके बन्धन से मुक्त हो सकते हैं | सब कोई अपनी-अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह समझ कर स्वतंत्र रूप से ही प्रतिज्ञा लें और यह समझ कर ले कि दुसरे लोग कुछ भी करें, हम तो मरते दम तक उसका पालन करेंगे |"

इतनी बात कहकर मैं बैठ गया | लोगों ने संपूर्ण शांति रखकर मेरा एक-एक शब्द सुना | कौम के दूसरे नेता भी बोले | सब ने अपनी जिम्मेदारी तथा श्रोताओं की जिम्मेदारी की चर्चा की | इसके बाद सभा-पति खड़े हुए | उन्होंने भी सारी स्थिति स्पष्ट की | अंत में समस्त सभा ने खड़े होकर, हाथ ऊँचे करके और ईश्वर को साक्षी रखकर यह प्रतिज्ञा ली कि 'बिल पास होकर यदि कानून का रूप ले-ले तो हम उसके सामने सिर नहीं झुकायेंगे |' उस दृश्य को मैं जीवन में कभी भूल नहीं सकता | लोगों के उत्साह का पार न था | दूसरे ही दिन उस नाटकशाला में कोई दुर्घटना घटी और सारी नाटक-शाला आग में जलकर खाक हो गई | तीसरे दिन लोग मेरे पास नाटक-शाला के जलने के समाचार लेकर आये और यह कह कर कौम को बधाई देने लगे कि नाटक-शाला का जलना एक शुभ शकुन है; जिस तरह नाटक-शाला जलकर खाक हो गई उसी तरह वह बिल भी जलकर खाक हो जाएगा | ऐसे चिह्नों का मुझ पर कभी असर नहीं हुआ, इसलिए मैंने इस घटना को कोई महत्त्व नहीं दिया | इस बात का उल्लेख मैंने यहाँ केवल लोगों के शौर्य और श्रद्धा का दर्शन कराने के लिए ही किया है | हिन्दुस्तानी कौम के शौर्य और श्रद्धा के अनेक प्रमाण आगे के प्रकरणों में पाठकों के सामने आयेंगे |

ऊपर की महान सभा होने के बाद कार्यकर्ता चुपचाप बैठे न रहे | जगह-जगह सभायें की गई और हर सभा में सर्वानुमति से प्रतिज्ञायें ली गईं | अब *इंडियन ओपीनियन* में खूनी कानून ही चर्चा का मुख्य विषय बन गया |

दूसरी ओर, स्थानीय सरकार से मिलने के कदम भी उठाये गये | एक प्रतिनिधि-मंडल उपनिवेश-मंत्री श्री डंकन से मिलने गया और अन्य बातों के साथ उसने कौम के लोगों द्वारा ली गई प्रतिज्ञा की बात भी उनसे कही | सेठ हाजी हबीब ने जो प्रतिनिधि-मंडल के एक सदस्य थे, कहा : "अगर मेरी पत्नी की अंगुलियों की छाप लेने कोई अधिकारी आयेगा, तो मैं अपने गुस्से को जरा भी काबू में नहीं रख सकूँगा | मैं उसे जान से मार दूँगा और खुद भी मर जाऊँगा |" उपनिवेश-मंत्री क्षणभर तो सेठ हाजी हबीब के मुँह की ओर देखते रहे | फिर बोले : "यह कानून स्त्रियों पर लागू किया जाय या न किया जाय, इस प्रश्न पर सरकार सोच रही है | और इतना विश्वास तो मैं इसी समय आपको दिला सकता हूँ कि स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाली इस कानून की धारायें वापस ले ली जाएगी | इस सम्बन्ध में आपकी भावनाओं को सरकार समझ गई है और वह उनका सम्मान करना चाहती है | परन्तु जहाँ तक दूसरी धाराओं का सम्बन्ध है, मुझे यह बताते हुए दुःख होता है कि सरकार उनके विषय में दृढ़ है और आगे भी दृढ़ रहेगी | जनरल बोथा चाहते हैं कि आप पूरा विचार करके यह कानून स्वीकार कर लें | सरकार गौरों के अस्तित्व के लिए इस कानून को ज़रूरी मानती है | कानून के उद्देश्यों की रक्षा करते हुए उसकी तफसीलों के बारेमें आप कोई सुझाव रखेंगे, तो सरकार अवश्य उन पर ध्यान देगी | इसलिए प्रतिनिधि-मंडल को मेरी सलाह है कि इस कानून को स्वीकार करके आप तफसीलों के बारेमें ही अपने सुझाव सरकार के समक्ष रखेंगे तो आपका हित होगा |" उपनिवेश-मन्त्री के साथ प्रतिनिधि-मंडल की जो दलीलें हुई उन्हें मैं यहाँ नहीं दे रहा हूँ, क्योंकि वे सब दलीलें पिछले प्रकरणों में आ चुकी हैं | उपनिवेश-मंत्री के समक्ष इन दलीलों को प्रस्तुत करने में केवल भाषा का ही भेद था – दलीलें सब वही थीं | प्रतिनिधि-मंडल ने यह कहकर कि आपकी सलाह के बावजूद कोई हिन्दुस्तानी इस कानून को स्वीकार नहीं करेगा और स्त्रियों को कानून से मुक्त रखने के इरादे के लिए सरकार का आभार मानकर उपनिवेश-मंत्री से बिदा ली | यह कहना कठिन है कि इस खूनी कानून से स्त्रियों की मुक्ति हिन्दुस्तानी कौम के आन्दोलन के कारण हुई या सरकार ने ही अधिक सोच-विचार कर श्री कर्टिस की वैज्ञानिक पद्धति को अस्वीकार कर दिया और कुछ हद तक लौकिक व्यवहार को नजर में रखकर यह छूट दी | सरकार का दावा यह था कि वह हिन्दुस्तानी कौम के आन्दोलन के कारण नहीं परन्तु स्वतंत्र रूप से ही इस निर्णय पर पहुँची थी | जो भी हो, परन्तु कौम ने तो काकतालीय न्याय से यह मान लिया कि केवल उसके आन्दोलन का ही यह परिणाम आया है; और इससे उसका लड़ने का उत्साह बढ़ गया |

हम में से कोई यह जानता नहीं था कि कौम के इस निश्चय को अथवा आन्दोलन को क्या नाम दिया जा सकता है | उस समय मैंने इस आन्दोलन को 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का नाम दिया था | उस समय तो मैं 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का गूढार्थ भी पूरी तरह जानता या समझता नहीं भी | मैं केवल इतना ही समझा था कि किसी नवीन सिद्धान्त का जन्म हुआ है | हमारी लड़ाई ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' नाम के कारण उलझन बढ़ती गई और इस महान संग्राम को केवल अंग्रेजी नाम ही देना मुझे लज्जास्पद लगा | इसके सिवा, ये शब्द

ऐसे थे जो कौम की जबान पर चढ़ भी नहीं सकते थे | इसलिए जो कोई इस संग्राम के लिए उत्तम शब्द खोज निकाले उसके लिए मैंने *इंडियन ओपीनियन* में एक छोटे से इनाम की घोषणा की | कुछ नाम मेरे पास आये | उस समय तक *इंडियन ओपीनियन* में इस लड़ाई के अर्थ की अच्छी तरह चर्चा हो चुकी थी | अत: यह कहा जा सकता है कि प्रतिस्पर्धियों के सामने नाम की खोज करने के लिए पूरी सामग्री थी | श्री मगनलाल गांधी ने भी इस स्पर्धा में भाग लिया | उन्होंने 'सदाग्रह' नाम भेजा | यह नाम पसंद करने का कारण बताते हुए उन्होंने लिखा कि हिन्दुस्तानियों का यह आन्दोलन एक महान 'आग्रह' है और यह अग्राह 'सद्' अर्थात् शुभ है, इसीलिए उन्होंने यह नाम चुना है | उनकी दलील का सार यहाँ मैंने थोड़े में दिया है | यह नाम मुझे पसंद आया | परन्तु जिस वस्तु का समावेश मैं सुझाये हुए नाम में करना चाहता था वह इसमें नहीं आती थी | इसलिए मैंने 'द्' का 'तूर' करके उसमें 'य' जोड़ दिया और 'सत्याग्रह' नाम बना दिया | सत्य के भीतर शांति का समावेश मानकर और किसी भी वस्तु का आग्रह करने से उसमें बल उत्पन्न होता है इसलिए आग्रह में बल का समावेश करके मैंने भारतीयों के इस आन्दोलन को 'सत्याग्रह' – अर्थात् सत्य और शांति से उत्पन्न होने वाले बल – का नाम दिया और उसी नाम से इसका परिचय कराया | और तब से 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' शब्द का उपयोग इस आन्दोलन के लिए बन्द कर दिया | वह भी इस हद तक कि अंग्रेजी के लेखों या पत्रों में भी बहुत बार 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' शब्द का उपयोग न करके मैंने 'सत्याग्रह' शब्द का या किसी दूसरे अंग्रेजी शब्द का उपयोग शुरू कर दिया | इस प्रकार जो वस्तु सत्याग्रह के नाम से पहचानी जाने लगी उस वस्तु का और 'सत्याग्रह' नाम का जन्म हुआ | हमारे इस इतिहास को आगे बढ़ाने से पहले ही 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' और 'सत्याग्रह' के बीच का भेद समझ लेना आवश्यक है | इसलिए अगले प्रकरण में हम इस भेद को समझ लेंगे |

१३. सत्याग्रह बनाम 'पैसिव रेज़िस्टेन्स'

हिन्दुस्तानी कौम का आन्दोलन जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया वैसे-वैसे अंग्रेज भी उसमें दिलचस्पी लेने लगे | मुझे इतना कह देना चाहिए कि यद्यपि ट्रान्सवाल के अंग्रेजी अखबार अधिकतर खूनी कानून के पक्ष में ही लिखते थे और गोरों द्वारा किये जाने वाले हिन्दुस्तानियों के विरोध का समर्थन करते थे, फिर भी कोई प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी उन अखबारों के लिए कुछ लिखते तो वे खुशी से छापते थे | हिन्दुस्तानियों द्वारा सरकार के पास भेजी जाने वाली अरजियाँ भी वे पूरी छापते थे अथवा कम से कम उनका सार अवश्य देते थे | हिन्दुस्तानियों की बड़ी सभाओं में कभी-कभी वे अपने रिपोर्टरो को भेजते थे और वैसा न करते तब हमारी भेजी हुई संक्षिप्त रिपोर्ट छापते थे |

अखबारों का इस प्रकार का सौजन्यपूर्ण व्यवहार कौम के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ | और हमारा आन्दोलन आगे बढ़ने पर कुछ गोरे भी उसमें रस लेने लगे | ऐसे अग्रगण्य गोरे नेताओं में जोहानिसबर्ग के एक लखपती श्री हॉस्किन भी थे | उनके मन में रंगद्वेष तो पहले से ही नहीं था | लेकिन कौम का आन्दोलन शुरू हुआ उसके बाद वे हिन्दुस्तानियों के प्रश्न में अधिक रस लेने लगे | जर्मिस्टन जोहानिसबर्ग के उपनगर जैसा एक शहर है | वहाँ के गोरों ने मेरा भाषण सुनने की इच्छा बताई | एक सभा की गई | श्री हॉस्किन उसके सभापति बने और मैंने भाषण किया | सभा में श्री हॉस्किन ने हिन्दुस्तानियों के आन्दोलन का और मेरा परिचय कराते हुए कहा : "ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों ने न्यायप्राप्ति के अन्य उपाय असफल सिद्ध होने पर 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का आश्रय लिया | उन्हें मतदान का अधिकार नहीं है | उनकी संख्या थोड़ी है | वे कमजोर हैं | उनके पास हथियार नहीं हैं | इसलिए उन्होंने 'पैसिव रेज़िस्टेन्स', जो कमजोरों का हथियार है, ग्रहण किया है |" उनकी यह बात सुनकर मैं चौक उठा और जो भाषण करने मैं सभा में गया था उसने दूसरा ही रूप पकड़ लिया | वहाँ मैंने श्री हॉस्किन की दलील का विरोध करके 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' को 'सोल-फोर्स' अर्थात् आत्मबल का नाम दिया | उस सभा में मैंने यह समझ लिया कि 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' शब्द के उपयोग से भयंकर गलतफहमी खड़ी हो सकती है | उस सभा में मैंने जो दलीलें की थी उन्हें अधिक विस्तार से प्रस्तुत करके मैं 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' तथा आत्मबल के बीच का भेद अधिक स्पष्ट रूप में समझाने का प्रयत्न करूँगा |

मुझे इस बात का तो ख्याल नहीं है कि सर्वप्रथम अंग्रेजी भाषा में 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' इन दो शब्दों का प्रयोग कब हुआ और किसने किया | परन्तु अंग्रेज प्रजा में जब कभी कोई कानून प्रजा के अल्पमत को पसन्द नहीं आया तब उस कानून के खिलाफ विद्रोह करने के बजाय अल्पमत ने कानून के सामने सिर न झुकाने का 'पैसिव' अर्थात् नरम कदम उठाया है और उसके फलस्वरूप होने वाली सजा को भुगत लेना पसंद किया है | कुछ वर्ष पूर्व ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने शिक्षा-सम्बन्धी कानून (एज्युकेशन एक्ट) पास किया था | उस समय इंग्लैंड के नोन-

कन्फॉर्मिस्ट नामक ईसाई सम्प्रदाय ने डॉक्टर क्लिफर्ड के नेतृत्व में 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का आश्रय लिया था | इंग्लैंड की स्त्रियों ने मताधिकार के लिए जो महान आन्दोलन किया, वह भी 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' के नाम से पहचाना जाता था | इन दोनों आन्दोलनों को ध्यान में रखकर ही श्री हॉस्किन ने गोरों की सभा में यह कहा था कि 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' कमजोरों का या ऐसे लोगों का हथियार है जिन्हें मतदान का अधिकार नहीं है | डॉक्टर क्लिफर्ड का पक्ष मताधिकारियों का था | परन्तु ब्रिटिश लोकसभा में उनकी संख्या कम थी, इसलिए उनके मतों की शक्ति शिक्षा-कानून को पास होने से रोक नहीं सकी | अर्थात् वह पक्ष संख्या-बल में कमजोर सिद्ध हुआ | नोन-कन्फॉर्मिस्ट पक्ष अपना ध्येय सिद्ध करने के लिए हथियारों का उपयोग करने के विरुद्ध नहीं था | परन्तु ऐसे कार्य में हथियारों का उपयोग करके सफलता प्राप्त करने की उसे आशा नहीं थी | इसके सिवा, हर समय एकाएक विद्रोह करके अधिकार प्राप्त करने की पद्धति किसी सुव्यवस्थित राज्यतंत्र में चल ही नहीं सकती | फिर यह बात भी थी कि डॉ. किलफर्ड के पक्ष के कुछ ईसाई सामान्यत: हथियारों का उपयोग संभव होने पर भी उनके उपयोग का विरोध करते | इंग्लैंड की स्त्रियों के आन्दोलन में उन्हें मतदान का अधिकार नहीं था | संख्या में और शरीर-बल में भी वे कमजोर थीं | इसलिए यह दूसरा उदाहरण भी श्री हॉस्किन की दलीलों का समर्थन करता था | स्त्रियों के मताधिकार सम्बन्धी आन्दोलन में हथियारों के उपयोग का त्याग नहीं किया गया था | स्त्रियों के एक दल ने मकान भी जलाये थे और पुरुषों पर आक्रमण भी किये थे | मैं नहीं मानता कि उन्होंने किसी दिन किसी आदमी का खून करने का इरादा किया हो | परन्तु मौका आने पर लोगों को मारने-पीटने का और इस तरह लोगों को थोड़ा-बहुत परेशान करने का इरादा तो उनका था ही |

लेकिन दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी आन्दोलन में हथियारों का किसी भी जगह और किसी भी स्थिति में कोई स्थान नहीं था; और जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे वैसे-वैसे पाठक देखेंगे कि भयंकर दु:ख पड़ने पर भी सत्याग्राहियों ने कभी शरीर-बल का उपयोग नहीं किया | और वह भी ऐसे समय जब वे उस बल का सफलतापूर्वक उपयोग करने की स्थिति में थे | इसके सिवा, हिन्दुस्तानियों को मताधिकार नहीं था और वे कमजोर थे, ये दोनों बातें सच हैं | परन्तु सत्याग्रह आन्दोलन के संगठन के साथ इन बातों का कोई सम्बन्ध नहीं था | इससे मैं यह नहीं कहना चाहता कि हिन्दुस्तानी कौम के हाथ में मताधिकार का बल होता अथवा हथियारों का बल होता, तो भी वह सत्याग्रह ही करती | मताधिकार का बल उसके पास होता तो शायद सत्याग्रह के लिए कोई अवकाश ही न रह जाता | अगर उसके पास हथियारों का बल होता, तो विरोधी पक्ष अवश्य ही सावधान रह कर अपना काम करता | इसलिए हथियारों का बल रखने वाले पक्ष के सामने सत्याग्रह करने के अवसर बहुत कम आ सकते हैं, यह भी समझ में आने जैसी बात है | मेरे कहने का मतलब इतना ही है कि हिन्दुस्तानी कौम के आन्दोलन की योजना बनाते समय मेरे मन में तो हथियारों के उपयोग की संभावना या असंभावना का प्रश्न ही खड़ा नहीं हुआ, ऐसा मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ | सत्याग्रह केवल आत्मा का बल है; और जहाँ जितने अंश में हथियारों का अर्थात्

शरीर-बल का या पशुबल का उपयोग होता है अथवा उसकी कल्पना रहती है वहाँ उतने ही अंश में आत्मबल का कम प्रयोग होता है | मेरी मान्यता के अनुसार ये दोनों शक्तियाँ शुद्ध विरोधी शक्तियाँ हैं; और ये विचार सत्याग्रह आन्दोलन के जन्म के समय भी मेरे हृदय में तो पूरी तरह उतर गये थे |

परन्तु यहाँ हमें इस बात का निर्णय नहीं करना है कि ये विचार सही हैं या गलत | हमें तो केवल 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' और सत्याग्रह के बीच का भेद समझ लेना है | और हमने देख लिया कि इन दो शक्तियों में बहुत बड़ा और बुनियादी भेद है | अत: इस भेद को समझे बिना यदि अपने को 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' अथवा सत्याग्रही मानने वाले लोग परस्पर यह समझें कि हम दोनों एक ही हैं, तो दोनों के साथ अन्याय होगा और इसके हानिकारक परिणाम भी आयेंगे | हम खुद ही दक्षिण अफ्रीका में 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' शब्द का उपयोग करते थे | इसलिए मताधिकार के ख़ातिर लड़ने वाली ब्रिटिश स्त्रियों की बहादुरी और आत्मत्याग का हम पर आरोपण करके हमारी प्रशंसा करने वाले लोग बहुत थोड़े थे, परन्तु अधिकतर लोगों ने हमें उन स्त्रियों की तरह जान-माल को नुकसान पहुँचाने वाले लोग ही मान लिया था | और श्री हॉस्किन के समान उदार और शुद्ध मन वाले मित्र ने भी हमें कमजोर मान लिया | विचार में इतना बल है कि मनुष्य जैसा अपने को मानता है वैसा ही अन्त में वह बन जाता है | यदि हम ऐसा मानते ही रहें और दूसरों को भी मानने दें कि हम कमजोर हैं इसलिए लाचारी से 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का उपयोग करते हैं, तो 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' करते हुए हम कभी भी बलवान नहीं बनेंगे और मौका मिलते ही कमजोरों का वह हथियार हम छोड़ देंगे | इसके विपरीत; यदि हम सत्याग्रही हों और अपने को बलवान मानकर सत्याग्रह की शक्ति का उपयोग करें, तो उसके दो परिणाम निश्चित रूप से आते हैं | बल के ही विचार का पोषण करते-करते हम दिनोंदिन अधिक बलवान बनते हैं; और जैसे-जैसे हमारा बल बढ़ता जाता है वैसे-वैसे सत्याग्रह का तेज भी बढ़ता जाता है और उस शक्ति को छोड़ने का मौका तो हम कभी खोजते हीं नहीं | इसके सिवा, 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' में प्रेम की भावना के लिए कोई अवकाश नहीं रहता, जब कि सत्याग्रह में वैर की भावना के लिए कोई अवकाश नहीं रहता; इतना ही नहीं, सत्याग्रह में वैर की भावना अधर्म मानी जाती है | 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' में मौका आने पर हथियार-बल का उपयोग किया जा सकता है; सत्याग्रह में हथियारों के उपयोग के लिए उत्तम से उत्तम परिस्थितियां पैदा होने पर भी वे सर्वथा त्याज्य रहते हैं | 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' को अकसरउसके हथियार-बल की तैयारी माना जाता है, जब कि सत्याग्रह का उपयोग इस तरह कभी किया ही नहीं जा सकता | 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' हथियार-बल के साथ साथ चल सकता है, सत्याग्रह हथियार-बल का संपूर्ण रूप से विरोधी है; इसलिए दोनों का कोई मेल हो ही नहीं सकता | अर्थात् सत्याग्रह और हथियार-बल एकसाथ कभी निभा ही नहीं सकता | सत्याग्रह का उपयोग अपने प्रियजनों के प्रति भी हो सकता है, और होता है | 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का उपयोग प्रियजनों के प्रति वस्तुत: हो ही नहीं सकता – अर्थात् प्रियजनों को हम अपने शत्रु माने तो ही उनके प्रति 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का उपयोग किया जा सकता है | 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' में विरोधी पक्ष को दुःख देने की और उसे परेशान

करने की कल्पना हमेशा रहती है और उसे दुःख देते हुए स्वयं को जो दुःख सहना पड़े उसे सहन करने की तैयारी होती है; जबकि सत्याग्रह में विरोधी को दुःख देने का विचार भी नहीं रहता | उसमें तो स्वयं दुःख मोल लेकर – स्वयं दुःख सह कर विरोधी को जीतने का विचार ही होता है |

इन दो शक्तियों के बीच मुख्य भेद ये हैं | मेरे कहने का यह आशय नहीं है कि 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' के जो गुण – अथवा दोष कह लीजिए – मैंने ऊपर गिनाये हैं, उन सबका प्रत्येक 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' में अनुभव होता ही है | लेकिन यह बताया जा सकता हैं कि 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' के अनेक उदाहरणों में ये दोष देखे गये हैं | मुझे पाठकों को यह भी बता देना चाहिए कि अनेक ईसाई ईसा मसीह को 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' के आदि नेता कहते हैं | परन्तु ईसा मसीह के उदाहरण में तो 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का अर्थ केवल सत्याग्रह ही माना जाना चाहिए | इस अर्थ में 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' के उदाहरण इतिहास में बहुत नहीं मिलेंगे | टॉल्स्टॉय ने रूस के दुखोबोर लोगों का जो उदाहरण उद्धृत किया है, वह ऐसे ही 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का अर्थात् सत्याग्रह का उदाहरण है | ईसा मसीह के बाद जो अत्याचार हजारों ईसाइयों ने सहन किये, उनके लिए उस जमाने में 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' शब्द का उपयोग होता ही नहीं था | इसलिए उन लोगों के जितने भी निर्मल उदाहरण मिलते हैं, उन्हें मैं तो सत्याग्रह का ही नाम दूँगा | और यदि हम उन्हें 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' के उदाहरण मानें तब तो 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' और सत्याग्रह में कोई भेद ही नहीं रहता | इस प्रकरण का उद्देश्य तो यह दिखाना हैं कि अंग्रेजी भाषा में 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' शब्द का जिस अर्थ में उपयोग किया जाता है, उससे सत्याग्रह की कल्पना सर्वथा भिन्न है |

'पैसिव रेज़िस्टेन्स' के लक्षण गिनाते हुए मुझे ऊपर की चेतावनी इस ख्याल से देनी पड़ी हैं कि उस शक्ति का उपयोग करने वालों के साथ कोई अन्याय न हो जाए | उसी तरह सत्याग्रह के लक्षण गिनाते हुए यह बताना भी आवश्यक हैं कि जो लोग अपने को सत्याग्रही कहते हैं, उनके लिए मैं यह दावा नहीं करता कि उनमें सत्याग्रह के मेरे बताये सारे लक्षण विद्यमान है | यह बात मेरी जानकारी से बाहर नहीं है कि अनेक सत्याग्रही सत्याग्रह के उन गुणों से सर्वथा अपरिचित है, जिन्हें मैं ऊपर गिना चुका हूँ | अनेक लोग ऐसा मानते हैं कि सत्याग्रह कमजोरों का शस्त्र है | अनेक लोगों को मैंने यह कहते सुना है कि सत्याग्रह हथियार-बल से किये जाने वाले विरोध की तैयारी है | परन्तु मुझे एक बार फिर यह कहना चाहिए कि मैंने यह नहीं बताया है कि सत्याग्रही कैसे गुणों वाले देखे गये हैं, बल्कि यह बताने का प्रयत्न किया है कि सत्याग्रह की कल्पना में क्या गूढ़ अर्थ भरे हैं और उसके अनुसार सत्याग्रही कैसे होने चाहिए | थोड़े में, इस प्रकरण का उद्देश्य यह दिखाना है कि जिस शक्ति का उपयोग ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों ने आरंभ किया उस शक्ति को स्पष्ट रूप से लोगों को समझाने के लिए और उस शक्ति को 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' कही जाने वाली शक्ति के साथ भ्रम से मिला न दिया जाय इसकी सावधानी रखने के लिए हमें उस शक्ति का अर्थ प्रकट करने वाला शब्द खोजना पड़ा; साथ ही प्रस्तुत प्रकरण का उद्देश्य यह दिखाना भी है कि सत्याग्रह में उस समय कौन-कौन से सिद्धान्तों का समावेश किया गया था |

१४. इंग्लैंड में प्रतिनिधि-मंडल

ट्रान्सवाल में खूनी कानून का विरोध करने के लिए स्थानीय सरकार के सामने अरजियाँ पेश करने वगैरा के जो-जो कदम उठाने ज़रूरी थे वे सब उठा लिए गये थे | ट्रान्सवाल की धारासभा ने बिल की स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाली धारा निकाल दी थी | परन्तु बाकी का बिल लगभग उसी रूप में पास हुआ जिस रूप में वह सरकारी गजट में प्रकाशित किया गया था | परन्तु उस समय कौम में बड़ी हिम्मत थी और उतनी ही एकता और एकमत भी था, इसलिए कोई निराश नहीं हुआ | हमारा यह निश्चय अटल रहा कि इस सम्बन्ध में जो भी वैधानिक उपाय करने ज़रूरी हों वे अवश्य ही किये जाएँ | उस समय तक ट्रान्सवाल 'क्राउन कॉलोनी' था | 'क्राउन कॉलोनी' का शब्दार्थ है शाही उपनिवेश – अर्थात् ऐसा उपनिवेश जिसके कानूनों, प्रशासन आदि के लिए बड़ी (साम्राज्य) सरकार जिम्मेदार मानी जाए | इसलिए जो कानून शाही उपनिवेश की धारासभा पास करे उसके लिए ब्रिटिश सम्राट् की सम्मति केवल व्यवहार और शिष्टाचार का पालन करने के लिए ही प्राप्त करनी ज़रूरी नहीं होती; बहुत बार अपने मंत्रि-मंडल की सलाह से सम्राट् ऐसे कानूनों के लिए अपनी सम्मति देने से इनकार भी कर सकता है, जो ब्रिटिश संविधान के सिद्धान्त के विरुद्ध हों | इसके विपरीत, उत्तरदायी शासन (रिस्पॉन्सिबल गवर्नमेन्ट) वाले उपनिवेशों की धारासभा जो कानून पास करती है, उनके लिए सम्राट् की सम्मति मुख्यत: केवल शिष्टाचार पूरा करने के लिए ही ली जाती है |

कौम का प्रतिनिधि-मंडल विलायत जाए तो कौम को अपनी जिम्मेदारी अधिक समझनी होगी, यह बताने का भार मेरे ही सिर पर था | इसलिए मैंने हमारे एसोसियेशन के सामने तीन सुझाव रखे | पहला, यद्यपि यहूदियों की नाटक-शाला (एम्पायर थियेटर) में हुई सभा में हमने प्रतिज्ञाएँ ली थीं, फिर भी हमें एक बार और प्रमुख हिन्दुस्तानियों की व्यक्तिगत प्रतिज्ञायें प्राप्त कर लेनी चाहिए, ताकि अगर लोगों के मन में कोई भी शंका पैदा हुई हो या किसी भी तरह की कमजोरी ने घर किया हो तो उसका हमें पता चल जाए | इस सुझाव के समर्थन में मेरा एक तर्क यह था कि प्रतिनिधि-मंडल सत्याग्रह के बल से इंग्लैंड जाएगा तो निर्भय होकर जाएगा और निर्भयता से हिन्दुस्तानी कौम का निश्चय इंग्लैंड में उपनिवेश-मंत्री तथा भारत-मंत्री के सामने प्रकट कर सकेगा | दूसरा सुझाव यह था कि प्रतिनिधि-मंडल के खर्च की पूरी व्यवस्था पहले से ही होनी चाहिए | और तीसरा सुझाव यह था कि प्रतिनिधि-मंडल में कम से कम सदस्य जाने चाहिए | तीसरा सुझाव मैंने लोगों में अकसर पाई जाने वाली इस गलत मान्यता को सुधारने के लिए दिया था कि प्रतिनिधि-मंडल में अधिक सदस्यों के जाने से अधिक कार्य हो सकते हैं | प्रतिनिधि-मंडल में जाने वाले लोग अपने सम्मान के लिए नहीं परन्तु केवल कौम की सेवा के लिए जाएँ, इस विचार को महत्त्व देने की और खर्च बचाने की व्यावहारिक दृष्टि मेरे इस तीसरे सुझाव में थी | मेरे तीनों सुझाव स्वीकार कर लिए गए | लोगों के हस्ताक्षर लिए गये | अनेक लोगों ने प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर

किये | लेकिन इस समय मैंने यह बात देखी कि जिन लोगों ने नाटक-शाला की सभा में मौखिक प्रतिज्ञा की थी, उनमें से भी कुछ लोग प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करने में हिचकिचा रहे थे | एक बार जो प्रतिज्ञा ले ली उसे बाद में पचास बार दोहराने में भी हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए | फिर भी यह अनुभव किसे नहीं होगा कि लोग सोच-विचार कर जो प्रतिज्ञा लेते हैं, उसमें भी वे ढीले पड़ जाते हैं अथवा मुँह से ली हुई प्रतिज्ञा को लिखित रूप देने में घबराते हैं ? प्रतिनिधि-मंडल के खर्च के लिए पैसे भी हमारे अनुमान के अनुसार इकट्ठे हो गये | लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई प्रतिनिधियों के चुनाव में पैदा हुई | मेरा नाम तो उसमें था ही | लेकिन मेरे साथ कौन जाए ? इसका निर्णय करने में कमेटी ने बहुत समय ले लिया | कितनी ही रातें चर्चा में बीत गई | और संगठनों अथवा संघों में जो-जो बुरी आदतें ऐसे अवसर पर देखने में आती हैं, उनका हमें पूरा अनुभव हुआ | कुछ लोग कहते कि मैं अकेला ही जाऊँ तो सबको संतोष होगा | लेकिन ऐसा करने से मैंने साफ इनकार कर दिया | सामान्यत: ऐसा कहा जा सकता है कि दक्षिण अफ्रीका में हिन्दू-मुसलमान का प्रश्न नहीं था | लेकिन यह दावा नहीं किया जा सकता कि दोनों जातियों के बीच कोई मतभेद थे ही नहीं | इन मतभेदों ने कभी जहरीला रूप नहीं लिया, इसका कारण कुछ हद तक वहाँ की विचित्र परिस्थितियाँ मानी जा सकती हैं | परन्तु इसका सच्चा और निश्चित कारण तो यही हैं कि हिन्दुस्तानी कौम के नेताओं ने सच्ची निष्ठा और शुद्ध हृदय से अपना कार्य किया और कौम का सुन्दर मार्गदर्शन किया | मैंने यह सलाह दी कि मेरे साथ एक मुसलमान सज्जन अवश्य होने चाहिए और प्रतिनिधि-मंडल में केवल दो ही सदस्य इंग्लैंड जाने चाहिए | लेकिन हिन्दुओं की ओर से तुरन्त कहा गया कि मैं तो सारी कौम का प्रतिनिधि माना जाऊँगा, इसलिए हिन्दुओं का एक प्रतिनिधि इस मंडल में होना ही चाहिए | कुछ लोगों ने यह भी कहा कि प्रतिनिधि-मंडल में एक कोंकणी और एक मेमन मुसलमान होना चाहिए और हिन्दुओं में से एक पाटीदार, एक अनाविल और इसी तरह दूसरी जातियों का एक-एक सदस्य होना चाहिए | परन्तु अंत में सब लोग समझ गये और श्री हाजी वजीरअली और मैं – दो ही आदमी एकमत से चुने गये |

हाजी वजीरअली आधे मलायी कहे जा सकते थे | उनके पिता हिन्दुस्तानी मुसलमान थे और माता मलायी थी | उनकी मातृभाषा को हम ड़च कह सकते हैं | लेकिन अंग्रेजी शिक्षा भी उन्होंने इस हद तक ली थी कि वे ड़च और अंग्रेजी दोनों अच्छी तरह बोल सकते थे | अंग्रेजी में भाषण करते हुए उन्हें कहीं रुकना नहीं पड़ता था | अखबारों में पत्र लिखने की कला का भी उन्होंने अच्छा विकास कर लिया था | वे ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन के सदस्य थे और लम्बे समय से सार्वजनिक कार्य में भाग लेते आ रहे थे | हिन्दुस्तानी भी वे अच्छी तरह बोल सकते थे | एक मलायी महिला के साथ उनका विवाह हुआ था, जिसके फलस्वरूप वे अनेक संतानों के पिता थे |

हम दोनों विलायत पहुँचते ही अपने काम में जुट गये | भारत-मंत्री के सामने पेश की जाने वाली अरजी तो हमने जहाज में ही तैयार कर ली थी | इंग्लैंड पहुँच कर हमने उसे छपवा लिया | उस समय लॉर्ड एल्गिन उपनिवेश-

मंत्री थे और लॉर्ड मोर्ले भारत-मंत्री थे | हम दोनों भारत के दादा श्री दादाभाई नौरोजी से मिले | फिर उनके मारफत भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की ब्रिटिश कमेटी से मिले | उसे हमने अपना केस सुनाया और कहा कि हम सारे पक्षों को साथ रखकर अपना काम करना चाहते हैं | दादाभाई ने तो हमें यह सलाह दी ही थी | ब्रिटिश कमेटी को भी हमारा यह विचार उचित लगा | इसी प्रकार हम लोग सर मंचेरजी भावनगरी से भी मिले | उन्होंने भी हमारी बहुत मदद की | उनकी और दादाभाई की यह सलाह थी कि जो प्रतिनिधि-मंडल लॉर्ड एल्गिन से मिलने जाए, उसका नेता कोई तटस्थ और विख्यात एंग्लो-इंडियन हो तो अच्छा | सर मंचेरजी ने कुछ नाम भी सुझाये | उनमें सर लेपल ग्रिफिन का नाम भी था | मुझे पाठकों को बता देना चाहिए कि उस समय सर विलियम विल्सन हंटर जीवित नहीं थे | वे जीवित होते तो दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की स्थिति का गाढ़ परिचय होने के कारण वे ही उस प्रतिनिधि-मंडल के नेता बने होते अथवा उन्होंने ही लॉर्डसभा के किसी प्रभावशाली महान नेता को मंडल का नेतृत्व करने के लिए खोज दिया होता |

हम दोनों सर लेपल ग्रिफिन से मिले | वे हिंदुस्तान में चलने वाले राजनीतिक आन्दोलनों के खिलाफ थे | परन्तु हमारे इस प्रश्न में उन्हें बड़ा रस आया | और उन्होंने केवल सौजन्य के ख़ातिर नहीं, परन्तु न्याय-दृष्टि से ही हमारे कार्य में प्रमुख भाग लेना स्वीकार किया | उन्होंने सारे कागजात पढ़े और हमारे प्रश्न से वे परिचित हुए | हम दूसरे एंग्लो-इंडियनों से भी मिले | ब्रिटिश लोकसभा के अनेक सदस्यों से मिले और कुछ न कुछ प्रभाव रखने वाले ऐसे दूसरे सब लोगों से भी मिले, जिनसे मिल सकना हमारे लिए संभव था | हमारा प्रतिनिधि-मंडल लॉर्ड एल्गिन से मिला | उन्होंने हमारे सारी बातें ध्यान से सुनी, अपनी सहानुभूति प्रकट की, अपनी कठिनाइयाँ भी बताई; परन्तु साथ ही यथाशक्ति हमारे लिए सब-कुछ करने का वचन भी दिया | यही प्रतिनिधि-मंडल लॉर्ड मोर्ले से भी मिला | उन्होंने भी हमारे प्रश्न के लिए सहानुभूति प्रकट की | उनके उद्गारों का सार मैं पहले दे चुका हूँ | सर विलियम वेडरबर्न के प्रयत्नों से ब्रिटिश लोकसभा के ऐसे सदस्यों की एक सभा लोकसभा के दीवानखाने में हुई, जिनका सम्बन्ध हिन्दुस्तान के राजकाज से था | हमने उनके सामने भी अपना मामला यथाशक्ति प्रस्तुत किया | उस समय आयरिश पार्टी के नेता श्री रेडमंड थे | इसलिए हम खास तौर पर उनसे भी मिलने गये | थोड़े में कहा जाए तो हम लोकसभा के सभी पक्षों के जिन-जिन सदस्यों से मिलना संभव था उन सबसे मिले | इंग्लैंड में हमें भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की ब्रिटिश कमेटी की मदद तो काफ़ी मिली ही | परन्तु वहाँ के रीति-रिवाज के अनुसार उसमें अमुक पक्ष के अथवा अमुक विचारों के लोग ही शरीक होते थे | उसमें शरीक न होने वाले ऐसे बहुतसे लोग थे, जो हमारे कार्य में पूरी सहायता करते थे | उन सबको एक ही स्थान पर एकत्र करके यदि इस कार्य में लगाया जा सके, तो अधिक अच्छा काम हो सकेगा – ऐसी मान्यता और ऐसे इरादे से हमने एक स्थायी समिति रचने का निश्चय किया | हमारा यह विचार सब पक्षों के लोगों को पसन्द आया |

प्रत्येक संस्था का आधार मुख्यत: उसके मंत्री पर रहता है | मंत्री ऐसा होना चाहिए जिसका उस संस्था के उद्देश्यों और ध्येयों पर पूर्ण विश्वास हो; इतना ही नहीं, परन्तु जिसमें उसके उद्देश्यों और ध्येयों की सिद्धि के लिए अपना लगभग संपूर्ण समय देने की शक्ति हो और संस्था का कार्य करने की योग्यता हो | श्री एल. डब्ल्यू. रिच में ये सारे गुण थे | वे दक्षिण अफ्रीका के ही थे और मेरे ऑफिस में क्लार्क रह चुके थे | इस समय वे लन्दन में बैरिस्टरी का अध्ययन करते थे और यह कार्य करने की उनकी इच्छा भी थी | इसलिए हमने इस कार्य के लिए एक स्थायी समिति – साउथ अफ्रीका ब्रिटिश इंडियन कमिटी – रचने का साहस किया |

मेरी दृष्टि से इंग्लैंड में तथा पश्चिम के अन्य देशों में एक ऐसी असभ्य प्रथा है कि वहाँ अच्छे-अच्छे कार्यो का शुभारंभ भोज के समय किया जाता हैं | ब्रिटिश प्रधानमंत्री प्रतिवर्ष ९ नवम्बर के दिन मैन्शन हाउस नामक व्यापारियों के महान केन्द्र में सारे संसार का ध्यान खींचने वाला अपना भाषण करते हैं, जिसमें वे अपने वार्षिक कार्यक्रम की रुपरेखा बताते हैं और भविष्य के विषय में अपना अनुमान प्रकट करते है | लंदन के लॉर्ड मेयर की ओर से ब्रिटिश मंत्रि-मंडल को और अन्य लोगों को उस भवन में भोज का निमंत्रण दिया जाता है; भोज के समाप्त होने के बाद शराब की बोतलें खुलती हैं और यजमान तथा अतिथियों की स्वास्थ्य-कामना के लिए शराब पी जाती हैं | और जिस समय यह शुभ अथवा अशुभ (सब कोई अपनी दृष्टि के अनुसार इनमें से कोई विशेषण चुन लें) कार्य चल रहा होता है उसी बीच भाषण भी किये जाते हैं | उसमें ब्रिटिश सम्राट् के मंत्रि-मंडल का 'टोस्ट' (स्वास्थ्य-सम्बन्धी आशीर्वाद) भी सम्मिलित कर दिया जाता है | इस 'टोस्ट' के उत्तर में ही प्रधानमंत्री का उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण भाषण होता है | जिस तरह सार्वजनिक रूप में किसी बात की चर्चा आदि के लिए भोजन का निमंत्रण देने की प्रथा है, उसी तरह निजी रूप में किसी के साथ विशेष बातचीत करनी हो तो उस व्यक्ति को भोजन के लिए निमंत्रित करने की प्रथा है | और कभी भोजन करते-करते तो कभी भोजन पूरा हो जाने के बाद बातचीत का विषय छेड़ा जाता है | हमें भी एक बार नहीं किन्तु अनेक बार इस प्रथा के वश होना पड़ा था | लेकिन कोई पाठक इसका यह अर्थ न कर ले कि हम में से किसी ने भी अपेय वस्तु (शराब) पी या अखाद्य वस्तु (मांस) खाई | इस प्रथा के अनुसार हमने भी एक दिन दोपहर के भोजन का निमंत्रण अपने मुख्य समर्थकों और सहायक मित्रों को दिया | लगभग सौ मित्रों को हमने निमंत्रण भेजे होंगे | इस भोज का हेतु सहायकों और समर्थकों का आभार मानना, उनसे बिदा लेना और स्थायी समिति की स्थापना करना था | इस भोज में भी प्रथानुसार भोजन के बाद भाषण हुए और स्थायी समिति की स्थापना भी हुई | इस कार्यक्रम से भी हमारे आन्दोलन को अधिक प्रसिद्धि मिली |

इस प्रकार लगभग छह सप्ताह का समय इंग्लैंड में बिता कर हम दक्षिण अफ्रीका लौटे | मदीरा पहुँचने पर हमें श्री रिच का तार मिला : 'लॉर्ड एल्गिन ने यह घोषणा की हैं कि ब्रिटिश मंत्रि-मंडल ने सम्राट् से यह सिफारिश की है कि वे ट्रान्सवाल के एशियाटिक एक्ट को अस्वीकार कर दें |' हमारे हर्ष का तो पार न

रहा | मदीरा से केप टाउन पहुँचने में १४-१५ दिन लगते थे | ये दिन हमने बड़े आनन्द में बिताये और भविष्य में कौम के दूसरे दुःखों को दूर कराने के लिए शेखचिल्ली की तरह हवाई किले भी खूब बनाये | परन्तु दैव की गति निराली होती हैं | हमारे ये हवाई किले कैसे ढह गये, इसका वर्णन अगले प्रकरण में किया जाएगा |

लेकिन यह प्रकरण पूरा करने से पहले एक दो पवित्र संस्मरण मुझे यहाँ देने चाहिए | इतना तो मुझे कहना ही चाहिए कि इंग्लैंड में हमने अपना एक भी क्षण व्यर्थ नहीं खोया | बड़ी संख्या में सरक्यूलर (परिपत्र) वगैरा भेजने का काम अकेले हाथों नहीं हो सकता था | इसके लिए हमें बाहरी मदद की बड़ी ज़रुरत थी | पैसा खर्च करने पर ऐसी मदद हमें काफ़ी मिल सकती भी | परन्तु अपने ४० वर्ष के अनुभव से मैं यह कह सकता हूँ कि ऐसी मदद स्वयंसेवकों की शुद्ध मदद के जितनी फलवती नहीं होती | सौभाग्य से ऐसी शुद्ध मदद हमें इंग्लैंड में मिल गई | कई हिन्दुस्तानी नौजवान, जो वहाँ अध्ययन करते थे, हमारे आसपास घिरे रहते थे और उनमें से कुछ लोग सुबह-शाम, इनाम अथवा नाम की आशा रखें बिना, हमारे इस काम में मदद करते थे | मुझे याद नहीं आता कि उनमें से किसी भी स्वयंसेवक ने किसी काम को अपनी प्रतिष्ठा के योग्य न मान कर कभी करने से इनकार किया हो-फिर वह नाम-पते लिखने का काम हो, नकलें करने का काम हो, टिकट चिपकाने का काम हो या पत्रों को डाक में छोड़ने का काम हो | लेकिन इन सबको एक और रख देने वाला सिमंड्ज नामक एक अंग्रेज मित्र था, जिससे पहले-पहल मैं दक्षिण अफ्रीका में मिला था और जो हिन्दुस्तान में रह चुका था | अंग्रेजी में एक कहावत हैं कि देवता जिसे प्रेम करते हैं उसे वे जल्दी ही अपने पास बुला लेते हैं | इस 'पर-दुःख-भंजन' अंग्रेज को यमदूत भर जवानी में ले गये | 'पर-दुःख-भंजन' विशेषण के उपयोग का एक विशेष कारण हैं | यह भला अंग्रेज नौजवान जब बम्बई में था उस समय – सन् १८९७ में – प्लेग के हिन्दुस्तानी रोगियों में निडर होकर घूमता-फिरता था और उनकी मदद करता था | छुतहे रोग से पीड़ित लोगों की सहायता और सेवा करते समय मृत्यु का रत्तीभर डर न रखने की बात उसके खून में समा गई थी | उसके भीतर जातिद्वेष या रंगद्वेष का नाम भी नहीं था | वह अतिशय स्वतंत्र मिजाज का आदमी था | उसका यह सिद्धान्त था कि सत्य सदा छोटे पक्ष अर्थात् 'माइनॉरिटी' के साथ ही रहता हैं | इसी सिद्धान्त के वश होकर वह जोहानिसबर्ग में मेरी ओर आकर्षित हुआ था | विनोद में उसने अनेक बार मुझसे कहा था कि यदि आपका पक्ष बड़ा हो जाएगा तो आप निश्चित मानिये कि मेरा साथ आपको बिलकुल नहीं मिलेगा, क्योंकि मेरा यह विश्वास है कि 'मेजॉरिटी' (बड़े पक्ष) के हाथ में सत्य भी असत्य का रूप ले लेता है | उसका वाचन बड़ा विस्तृत था | वह जोहानिसबर्ग के एक करोड़पती सर जॉर्ज फेरर का विश्वसनीय निजी सचिव था | शॉर्ट हैण्ड (लघु लेखन) लिखने में वह निष्णात था | जब हम इंग्लैंड में थे तब वह अचानक वहाँ आ पहुँचा था | मुझे उसके निवास-स्थान का कोई पता नहीं था | लेकिन हम सार्वजनिक कार्य करने वाले आदमी थे, इसलिए अखबारों में हमारा विज्ञापन हो गया था | उसके आधार पर सिमंड्ज ने हमें खोज निकाला और यथाशक्ति हमारी सहायता करने की तैयारी दिखाई | उसने कहा: "मुझे आप चपरासी का

काम देंगे, तो वह भी मैं करूँगा | और अगर आपको शॉर्ट हैण्ड की ज़रुरत हो, तब तो आप जानते ही हैं कि मेरे जैसा कुशल स्टेनोग्राफर आपको दूसरा कोई नहीं मिलेगा |" हमें दोनों प्रकार की सहायता की ज़रुरत थी | और यह कहने में मैं जरा भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूँ कि इस अंग्रेज नौजवान ने दिन-रात हमारे लिए बिना पैसे के कड़ा परिश्रम किया | रात के बारह-बारह और एक-एक बजे तक वह टाइप-राइटर पर टाइप किया करता था | संदेश ले जाने और डाक में पत्र डालने का काम भी सिमंड्ज ही करता था, और यह सब वह हँसते-हँसते करता था | मैं जानता था कि उसकी मासिक आय लगभग ४५ पौंड थी | परन्तु यह सारा पैसा वह मित्रों की मदद में खर्च कर देता था | उसकी उमर उस समय करीब ३० वर्ष की रही होगी | परन्तु वह अविवाहित था और जीवन भर अविवाहित रहना चाहता था | मैंने उससे कुछ रकम मेहनताने के रूप में लेने का बहुत आग्रह किया, परन्तु उसने स्पष्ट शब्दों में इनकार कर दिया | उसने कहा था: "अगर मैं इस सेवा का बदला स्वीकार करूँ, तो अपने धर्म से भ्रष्ट हो जाऊँ |" मुझे याद है कि आखिरी रात हमें अपना सारा काम समेटते और सामान वगैरा बाँधते-बाँधते रात के तीन बज गये थे | सिमंड्ज भी हमारे साथ तीन बजे तक जागा था | दूसरे दिन जहाज पर हमें बिदा करके ही वह हमसे अलग हुआ था | वह वियोग बड़ा दुःखद था | मैंने जीवन में बहुत बार यह अनुभव किया है कि परोपकार गेहुँए रंगवालों की ही विरासत नहीं है |

सार्वजनिक कार्य करने वाले नौजवानों के हित के लिए मैं यह भी बता दूँ कि प्रतिनिधि-मंडल के खर्च का हिसाब रखने का काम हमने इतनी निश्चितता से किया था कि जहाज पर सोड़ा-वाटर पिया हो और उसकी रसीद मिली हो, तो उसे भी हमने उतनी रकम के खर्च की निशानी के रूप में सँभाल कर रख छोड़ा था | इसी प्रकार किये गये तारों की रसीदें भी हमने सँभाल कर रखी थीं | मुझे याद नहीं कि हमने ब्योरेवार लिखे हुए हिसाब में विविध खर्च के नाम पर एक भी रकम लिखी हो | ऐसा कोई विभाग तो हमने अपनी हिसाब-बही में रखा ही नहीं था | 'याद नहीं' शब्द जोड़ने का कारण यही हैं कि शायद दिन के अंत में खर्च का हिसाब लिखते समय दो-चार शिलिंग का खर्च याद न रहा हो और उसे हमने विविध खर्च के रूप में लिख दिया हो | इसीलिए मैंने अपवाद के रूप में 'याद नहीं' शब्दों का प्रयोग किया है |

इस जीवन में एक बात मैंने स्पष्ट रूप से देखी है कि जब से हम समझदार बनते हैं तभी से हम ट्रस्टी अथवा जिम्मेदार व्यक्ति बन जाते हैं | माता-पिता के साथ रहें तब तक वे जो काम या जो पैसा हमें सौपें, उसका हिसाब हमें उन्हें देना ही चाहिए | हम पर विश्वास रखकर वे हमसे हिसाब न माँगे, तो इस कारण से हम अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो जाते | जब हम स्वतंत्र गृहस्थ बन जाते हैं उस समय स्त्री और संतान के प्रति हमारी जिम्मेदारी पैदा होती है | अपनी कमाई के स्वामी हम अकेले ही नहीं हैं | हमारे परिवार के लोगों का भी उसमें भाग है | उनके लिए हमें पाई-पाई का हिसाब रखना चाहिए | तब फिर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने के बाद की हमारी जिम्मेदारी का तो कहना ही क्या ? मैंने देखा है कि स्वयंसेवकों को एक आदत पड़ जाती है; वे ऐसा

मानकर चलते हैं कि उनके हाथ में जो काम या जो पैसा सौंपा गया है उसका ब्योरेवार हिसाब देने के लिए वे बंधे हुए नहीं हैं, क्योंकि वे कभी अविश्वास के पात्र हो ही नहीं सकते | यह घोर अज्ञान ही कहा जाएगा | हिसाब रखने की बात का अविश्वास या विश्वास के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है | हिसाब रखना भी एक स्वतंत्र कर्तव्य है | उसके बिना अपने काम को हमें स्वयं ही अशुद्ध और मलिन समझना चाहिए | और जिस संस्था के हम स्वयंसेवक हों उस संस्था के नेता अथवा प्रमुख कार्यकर्ता झूठी शिष्टता या डर के कारण हमसे अपने काम का या सौंपे हुए पैसे का हिसाब न माँगे, तो वे भी उतने ही दोषी माने जाएँगे | काम का और पैसा का हिसाब रखना जितना वेतन-भोगी नौकर का फ़र्ज़ है, उससे दुगुना फ़र्ज़ स्वयंसेवक का है; क्योंकि उसने तो अपने काम को ही अपना वेतन माना हैं | यह बड़े महत्त्व की बात हैं, लेकिन मैं जानता हूँ कि बहुतेरी संस्थाओं में सामान्यत: इस बात पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता | इसीलिए इस प्रकरण में मैंने इस बात की चर्चा के लिए इतना स्थान देने की हिम्मत की है |

१५. वक्र राजनीति अथवा क्षणिक हर्ष

केप टाउन में जहाज से उतरने पर और उससे भी अधिक जोहानिसबर्ग पहुँचने पर हमने देखा कि मदीरा में मिले हुए तार की हमने जो क़ीमत आंकी थी उतनी क़ीमत वास्तव में उसकी नहीं थी | इसमें दोष तार भेजने वाले श्री रिच का नहीं था | उन्होंने तो एशियाटिक एक्ट की अस्वीकृति के बारेमें जो कुछ सुना था उसी के अनुसार तार किया था | हम पहले बता चुके हैं कि उस समय – अर्थात् १९०६ में – ट्रान्सवाल एक शाही उपनिवेश था | ऐसे उपनिवेशों के राजदूत उपनिवेश-मंत्री को अपने अपने उपनिवेश के हितों से सम्बन्धित बातों से परिचित रखने के लिए सदा इंग्लैंड में रहते हैं | ट्रान्सवाल के राजदूत सर रिचर्ड सॉलोमन थे, जो दक्षिण अफ्रीका के एक प्रख्यात वकील थे | खूनी कानून को अस्वीकार करने का निश्चय लॉर्ड एल्गिन ने सर रिचर्ड सॉलोमन के साथ विचार-विमर्श करके ही किया था | १ जनवरी, १९०७ से ट्रान्सवाल को उत्तरदायी शासन की सत्ता प्राप्त होने वाली थी | इसलिए लॉर्ड एल्गिन से सर रिचर्ड सॉलोमन को यह विश्वास दिलाया था कि "यही कानून यदि ट्रान्सवाल की धारासभा में उत्तरदायी शासन की सत्ता मिलने के बाद पास होगा, तो बड़ी (साम्राज्य) सरकार उसे अस्वीकार नहीं करेगी | परन्तु जब तक ट्रान्सवाल शाही उपनिवेश माना जाता है तब तक ऐसे रंगभेद वाले कानून के लिए बड़ी सरकार सीधी जिम्मेदार मानी जाएगी | और बड़ी सरकार के संविधान में जातीय भेदभाव की राजनीति को स्थान नहीं दिया जाता | इसलिए इस सिद्धान्त का पालन करने के लिए मुझे फिलहाल तो इस खूनी कानून को अस्वीकार करने की ही सलाह सम्राट् को देनी होगी |"

इस प्रकार केवल नाम के लिए ही खूनी कानून रद हो और साथ ही ट्रान्सवाल के गोरों का काम भी बन जाए, तो सर रिचर्ड सॉलोमन को कोई आपत्ति नहीं थी – क्यों हो सकती थी ? इस राजनीति को मैंने 'वक्र' कहा है | परन्तु सच पूछा जाए तो इससे अधिक तीखे विशेषण का प्रयोग करने पर भी इस नीति के प्रवर्तकों के साथ कोई अन्याय नहीं होगा ऐसा मेरा विश्वास है | शाही उपनिवेशों के कानूनों के बारेमें साम्राज्य सरकार की सीधी जिम्मेदारी होती है | उसके संविधान में रंगभेद और जातिभेद के लिए कोई स्थान नहीं है | ये दोनों बातें बड़ी सुन्दर हैं | उत्तरदायी शासन की सत्ता भोगने वाले उपनिवेशों द्वारा बनाये गये कानूनों को बड़ी सरकार एकाएक रद नहीं कर सकती, यह भी समझ में आने जैसी बात हैं | लेकिन उपनिवेशों के राजदूतों के साथ गुप्त मंत्रणायें करना और उन्हें साम्राज्य सरकार के संविधान की भावना के विरुद्ध जाने वाले कानूनों को अस्वीकार न करने का पहले से वचन देना – यह क्या उन लोगों के साथ धोखा और अन्याय नहीं कहा जाएगा, जिनके अधिकार छीने जाते हों ? सच पूछा जाए तो लॉर्ड एल्गिन ने ऐसा वचन देकर ट्रान्सवाल के गोरों को अपना हिन्दुस्तानी-विरोधी आन्दोलन जारी रखने का प्रोत्साहन दिया था | यदि यही करना था तो हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों से स्पष्ट शब्दों में उन्हें ऐसा कह देना चाहिए था | वास्तव में उत्तरदायी सत्ता वाले उपनिवेशों के कानूनों के लिए भी

ब्रिटिश साम्राज्य जिम्मेदार तो हैं ही | ब्रिटिश संविधान के मूल सिद्धान्त उत्तरदायी शासन वाले उपनिवेशों को भी स्वीकार करने ही होते हैं | उदाहरण के लिए, कोई भी उत्तरदायी शासन-वाला उपनिवेश अपने यहाँ कानून-संमत गुलामी की प्रथा को पुनर्जीवित नहीं कर सकता | यदि लॉर्ड एल्गिन ने खूनी कानून अनुचित हैं ऐसा मान कर उसे अस्वीकार किया हो – और ऐसा मान कर ही वे उसे अस्वीकार कर सकते थे – तो उनका यह स्पष्ट कर्तव्य था कि वे सर रिचर्ड सॉलोमन को अकेले में बुलाकर यह कह देते कि उत्तरदायी शासन की सत्ता मिलने के बाद ट्रान्सवाल की सरकार ऐसा अन्यायी कानून न बनाये; और यदि उसका विचार ऐसा कानून बनाने का हो तो बड़ी सरकार को फिर से यह सोचना पड़ेगा कि ट्रान्सवाल को उत्तरदायी शासन की सत्ता सौंपी जाए या नहीं | अथवा हिन्दुस्तानियों के अधिकारों की संपूर्ण रक्षा करने की शर्त पर ही ट्रान्सवाल को उत्तरदायी शासन सौंपा जाना चाहिए था | ऐसा करने के बजाय लॉर्ड एल्गिन ने बाहर से तो हिन्दुस्तानियों की हिमायत करने का ढोंग किया और साथ ही भीतर से वस्तुत: ट्रान्सवाल सरकार की हिमायत की; और जिस कानून को उन्होंने स्वयं अस्वीकार कर दिया उसी को फिर पास करने के लिए उसे उत्तेजित किया | ऐसी वक्र राजनीति का यह एकमात्र या पहला ही उदाहरण नहीं हैं | ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास का सामान्य अभ्यासी भी ऐसे दूसरे उदाहरण याद कर सकता है |

इस कारण से जोहानिसबर्ग में हमने एक ही बात सुनी : लॉर्ड एल्गिन ने और साम्राज्य सरकार ने हमें धोका दिया | मदीरा में हमें जितनी प्रसन्नता हुई थी उतनी ही दक्षिण अफ्रीका में हमें निराशा हुई | फिर भी इस वक्रता का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तानियों में अधिक जोश फैंला | सब लोग यह कहने लगे : "अब हमें क्या चिन्ता हैं ? हमें कौन साम्राज्य सरकार की सहायता के बल पर लड़ना हैं ? हमें तो अपने बल पर और जिसके नाम पर हमने प्रतिज्ञा ली ही उस ईश्वर के आधार पर लड़ना हैं | और यदि हम सच्चे रहेंगे, तो टेढ़ी नीति भी सीधी हो जाएगी |"

ट्रान्सवाल में उत्तरदायी शासन की स्थापना हुई | नई धारासभा का पहला कानून बजट के सम्बन्ध में था; और दूसरा कानून खूनी कानून (एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट) था | वह एक या दो शब्दों के परिवर्तन के सिवा जैसा पहले बनाया गया था और पास किया गया था वैसा ही इस बार भी पास हुआ | वह परिवर्तन इस प्रकार था : कानून की एक धारा में तारीख दी गई थी; उसमें तो परिवर्तन करना अनिवार्य था | इसलिए केवल उस तारीख का ही परिवर्तन किया गया और २१ मार्च, १९०७ को एक ही बैठक में धारासभा ने खूनी कानून की सारी विधि पूरी करके उसे पास कर दिया | इस शाब्दिक परिवर्तन का कानून की सख्ती के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था | वह तो पहले जैसी हीं बनी रही | इसलिए कानून के अस्वीकृत होने की घटना केवल स्वप्नवत् हो गई | हिन्दुस्तानी कौम ने अपनी प्रथा के अनुसार अरजियाँ वगैरा भेजने का काम तो किया, लेकिन उनको तूती की आवाज कौन सुनता ? १ जुलाई १९०७ से इस कानून के अमल में आने की घोषणा की गई और ऐसा आदेश निकाला गया कि

हिन्दुस्तानियों को ३१ जुलाई से पूर्व परवाने लेने की अरजी पेश कर देनी चाहिए | बीच की इतनी अवधि रखने का कारण हिन्दुस्तानी कौम पर सरकार की कृपा नहीं थी | इसका कारण दूसरा था | उस कानून के लिए नियमानुसार साम्राज्य सरकार की संमति भी आवश्यक थी | इसमें कुछ समय तो जाता ही | इसके सिवा, परिशिष्टों के अनुसार पत्रक, पुस्तिकाएँ, परवाने आदि तैयार कराने और अलग-अलग स्थानों में परवानों के दफ़्तर खोलने में भी समय लगने वाला था | इसलिए ४-५ माह का समय ट्रान्सवाल सरकार ने अपनी ही सुविधा के लिए लिया था |

१६. अहमद मुहम्मद काछलिया

जब हमारा प्रतिनिधि-मंडल इंग्लैंड जा रहा था उस समय दक्षिण अफ्रीका में बसे हुए एक अंग्रेज यात्री ने मेरे मुँह से ट्रान्सवाल के खूनी कानून की बात और हमारे इंग्लैंड जाने का कारण सुना, तो वह बोल उठा : "तो आप कुत्ते का पट्टा (डॉग्स कॉलर) पहनने से इनकार करना चाहते हैं | उस अंग्रेज ने ट्रान्सवाल के परवाने की तुलना कुत्ते के पट्टे से की | वह वचन उसने पट्टे के बारेमें अपना हर्ष बताने और हिन्दुस्तानियों के प्रति अपना तिरस्कार प्रकट करने के लिए कहा था या अपनी सहानुभूति प्रकट करने के लिए कहा था – यह निर्णय मैं न तो उस समय कर सका था और न आज उस घटना का उल्लेख करते समय कर सकता हूँ | किसी भी मनुष्य के वचन का अर्थ हमें इस तरह नहीं करना चाहिए कि उसके साथ अन्याय हो, इस सुनीति का अनुसरण करके मैं ऐसा मान लेता हूँ कि उस अंग्रेज ने अपनी सहानुभूति प्रकट करने के लिए ही स्थिति का यथावत् चित्र प्रस्तुत करने वाले ये शब्द कहे थे | एक ओर ट्रान्सवाल सरकार हिन्दुस्तानियों को यह गलपट्टा पहनाने की तैयारी कर रही थी; और दूसरी ओर हिन्दुस्तानी कौम इस बात की तैयारी कर रही थी कि यह पट्टा गले में न पहनने के निश्चय पर वह कैसे अटल रहे और ट्रान्सवाल सरकार की वक्रनीति के खिलाफ कैसे लड़े | इंग्लैंड के और हिन्दुस्तान के सहायक मित्रों को पत्र आदि लिखने और वहाँ की वर्तमान स्थिति से परिचित रखने का काम तो चल ही रहा था | परन्तु सत्याग्रह की लड़ाई बाह्य उपचारों पर बहुत कम आधार रखती है | आंतरिक उपचार ही सत्याग्रह में रामबाण उपचार सिद्ध होते हैं | इसलिए कौम के सारे अंग ताजे और सक्रिय बने रहें, इसके उपाय ढूँढ़ने में ही कौम के नेताओं का समय जाता था |

कौम के सामने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह खड़ा हुआ कि सत्याग्रह का आन्दोलन करने के लिए किस संगठन का उपयोग किया जाय | ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन के सदस्यों की काफ़ी बड़ी संख्या थी | उसकी स्थापना के समय सत्याग्रह का जन्म भी नहीं हुआ था | उस संघ को एक नहीं परन्तु अनेक कानूनों के विरुद्ध लड़ना पड़ता था और आगे भी लड़ना था | कानूनों के विरुद्ध लड़ने के सिवा उसे राजनीतिक, सामाजिक और अन्य क्षेत्रों में भी विविध प्रकार के कार्य करने होते थे | इसके सिवा, उस संघ के सारे सदस्यों ने सत्याग्रह द्वारा खूनी कानून का विरोध करने की प्रतिज्ञा भी नहीं ली थी | साथ ही उस संघ के सम्बन्ध में हमें बाहरी खतरों का भी विचार करना था | सत्याग्रह की लड़ाई को ट्रान्सवाल सरकार यदि राजद्रोही माने तो ? और ऐसा मान कर यदि सरकार सत्याग्रह की लड़ाई चलाने वाली संस्थाओं को ग़ैर-क़ानूनी करार दे तो ? ऐसी स्थिति में उन संस्थाओं में काम करने वाले जो कार्यकर्ता सत्याग्रही न हों उनका क्या हो ? सत्याग्रह छिड़ने से पहले जिन्होंने संघ को धन दिया हो, उनके धन का क्या हो ? – इन बातों का भी विचार करना ज़रूरी था | अन्त में, सत्याग्रहियों का यह दृढ़ निश्चय था कि जो लोग अश्रद्धा के कारण, अशक्ति के कारण अथवा अन्य किसी कारण से सत्याग्रह में

शामिल न हो सकें, उनके प्रति द्वेष की भावना न रखी जाए; इतना ही नहीं, उनके साथ के स्नेहपूर्ण व्यवहार में जरा भी परिवर्तन न होने दिया जाए और सत्याग्रह के सिवा अन्य आन्दोलनों में उनके साथ मिलकर ही काम किया जाएँ |

इन सब प्रश्नों पर सोच-विचार करने के बाद समूची कौम इस निर्णय पर पहुँची कि किसी भी वर्तमान संगठन या संस्था के द्वारा सत्याग्रह का आन्दोलन ने चलाया जाए | दूसरी संस्थाएँ सत्याग्रह आन्दोलन को यथाशक्ति प्रोत्साहन दें | और दूसरी संस्थाएँ भी सत्याग्रह के सिवा अन्य जो भी कदम खूनी कानून के विरुद्ध उठा सकें वे उठायें | इसलिए सत्याग्रहियों ने 'पैसिव रेज़िस्टेन्स एसोसियेशन' अथवा सत्याग्रह-मंडल नामक एक नये मंडल की स्थापना की | अंग्रेजी नाम से पाठक यह समझ सखेंगे कि जिस समय यह नया मंडल अस्तित्व में आया उस समय सत्याग्रह नाम की खोज नहीं हुई थी | ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों यह मालूम होता गया कि नया मंडल स्थापित करने से हिन्दुस्तानी प्रजा को हर तरह से लाभ ही हुआ है और यदि वैसा न किया गया होता तो सत्याग्रह आन्दोलन को शायद नुकसान ही होता | लोग इस नये मंडल के बड़ी संख्या में सदस्य हो गये और पैसा भी कौम ने उसे खुले हाथों दिया |

मुझे तो अपने अनुभव ने यही सिखाया हैं कि कोई भी आन्दोलन पैसे के अभाव में न तो कभी बन्द होता, न कभी रुकता और न कभी निस्तेज जनता | इसका यह अर्थ नहीं कि दुनिया का कोई भी आन्दोलन पैसे के बिना चल सकता है | लेकिन इसका यह अर्थ अवश्य हैं कि जिस आन्दोलन के संचालक सच्चे और प्रमाणिक होते हैं, उसके लिए पैसा अपने आप चला आता हैं | इससे विपरीत, मुझे ऐसा भी अनुभव हुआ हैं कि जब किसी आन्दोलन में पैसे की बाढ़ आ जाती हैं तब उसकी अवनति आरंभ हो जाती हैं | इस कारण से मैंने अनुभव के आधार पर एक सिद्धान्त यह भी बनाया हैं : किसी भी सार्वजनिक संस्था का पूंजी जमा करके उसके व्याज से अपना कामकाज चलाना पाप हैं, ऐसा कहने की तो मेरी हिम्मत नहीं होती; परन्तु इतना मैं अवश्य कहूँगा कि ऐसा करना अनुचित हैं | जन-समुदाय ही सार्वजनिक संस्था की सच्ची पूँजी है | जब तक लोग चाहें तभी तक ऐसी संस्थायें चलनी चाहिए | पूँजी जमा करके उसके व्याज पर अपना काम चलाने वाली संस्था सार्वजनिक नहीं रह जाती; वह स्वच्छन्द और मनमानी करने वाली हो जाती हैं | वह सार्वजनिक टिका के अंकुश में नहीं रहती | व्याज पर चलने वाली अनेक धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं में कितनी संड़ाघ फैल गई हैं, इसकी चर्चा का यह स्थान नहीं हैं | यह तो लगभग स्वयंसिद्ध जैसी बात हैं |

परन्तु हम अपने मूल विषय पर लौटें | सूक्ष्म दलीलें करके बाल की खाल खींचने का और मीन-मेष निकालने का एकाधिकार केवल वकीलों का या अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए सभ्य लोगों का ही नहीं हैं | मैंने देखा कि दक्षिण अफ्रीका के अनाड़ी और अनपढ़ हिन्दुस्तानी भी बहुत ही सूक्ष्म दलीलें कर सकते थे | कुछ लोगों ने यह दलील

खोज निकाली कि पहली बार बना हुआ खूनी कानून अस्वीकार कर दिया गया, इसलिए यहूदियों की नाटक-शाला में ली हुई हमारी प्रतिज्ञा पूरी हो गई | जो लोग अपनी प्रतिज्ञा के पालन में शिथिल और कमजोर पड़ गये थे, उन्होंने इस दलील की शरण ली | इस दलील में कोई सत्य नहीं था, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता | परन्तु इस दलील का उन लोगों पर कोई असर नहीं हो सका, जो खूनी कानून का केवल कानून के रूप में विरोध नहीं करते थे, परन्तु उस कानून में निहित बुरे तत्त्व का विरोध करते थे | ऐसा होते हुए भी सुरक्षितता की दृष्टि से, कौम में अधिक जागृति उत्पन्न करने की दृष्टि से और लोगों में अगर कमजोरी आई है तो किस हद तक आई हैं इसकी चाँच करने की दृष्टि से एक बार फिर प्रतिज्ञा लिवाना मुझे आवश्यक मालूम हुआ | इसलिए स्थान-स्थान पर सभायें करके लोगों को परिस्थिति समझाई गई और फिर से प्रतिज्ञा भी लिवाई गई | लोगों के उत्साह और जोश में किसी तरह की कमी आई हो ऐसा देखने में नहीं आया |

इस बीच जुलाई के निर्णायक महीने का अंत निकट आ रहा था | जुलाई की आखिरी तारीख को ट्रान्सवाल की राजधानी प्रिटोरिया में हिन्दुस्तानियों की एक विशाल सभा करने के हमने निर्णय किया था | दूसरे शहरों से भी प्रतिनिधियों को निमंत्रित किया गया था | सभा प्रिटोरिया की मसजिद के खुले मैदान में की गई थी | सत्याग्रह शुरू होने के बाद सभाओं में लोग इतनी बड़ी संख्या में आने लगे थे कि किसी मकान के भीतर सभा करना असंभव हो गया था | पूरे ट्रान्सवाल में हिन्दुस्तानियों की आबादी १३००० से ज़्यादा नहीं थी | इनमें से १०००० से ज़्यादा तो जोहानिसबर्ग और प्रिटोरिया में ही रहते थे | इतनी संख्या में से पाँच-छह हजार लोग किसी सभा में हाजिर हों तो यह संख्या दुनिया के किसी भी भाग में बहुत बड़ी और बहुत संतोषकारक मानी जाएगी | सार्वजनिक सत्याग्रह की लड़ाई दूसरी किसी शर्त पर लड़ी भी नहीं जा सकती | जिस लड़ाई का आधार केवल सत्याग्रहियों की अपनी शक्ति पर ही होता हैं, उसमें यदि लड़ाई से सम्बन्धित विषयों की सार्वजनिक तालीम न दी जाए तो लड़ाई चल ही नहीं सकती | इसलिए इतनी बड़ी संख्या में लोगों की उपस्थिति हम कार्यकर्ताओं को आश्चर्यजनक नहीं लगती थी | हमने पहले से ही यह निश्चय कर लिया था कि सार्वजनिक सभायें खुले मैदान में ही की जाएँ, जिससे पैसा खर्च न करना पड़े और जगह की कमी के कारण किसी भी आदमी को वापिस न जाना पड़े | यहाँ इस बात का भी उल्लेख करना चाहिए कि ये सब सभायें प्राय: अत्यन्त शांत होती थीं | आने वाले लोग सारी बातें ध्यानपूर्वक सुनते थे | कोई सभा के छोरे पर खड़े होते और भाषण न सुन पाते, तो बोलने वाले से ऊँची आवाज में बोलने को कहते | पाठकों को यह बताना ज़रूरी नहीं होना चाहिए कि ऐसी सभाओं में कुर्सियों की व्यवस्था नहीं हो सकती थी | सब कोई ज़मीन पर ही बैठते थे | केवल एक छोटासा मंच खड़ा कर दिया जाता था, जिस पर सभा के सभापति, भाषण करने वाले वक्ता और दो चार अन्य लोग सभापति के पास बैठ सकें | उस मंच पर एक छोटी-सी टेबल और दो चार कुर्सियां या स्टूल रख दिये जाते थे |

प्रिटोरिया की इस सभा के सभापति थे ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन के अस्थायी अध्यक्ष यूसुफ इस्माइल मियाँ | खूनी कानून के अनुसार परवाने लेने का समय निकट आता जा रहा था | इस कारण से अपने सारे जोश के बावजूद जिस प्रकार हिन्दुस्तानी चिन्तातुर थे, उसी प्रकार जनरल बोथा और जनरल स्मट्स अपनी सरकार के पास अमोघ शक्ति होते हुए भी चिन्तातुर थे | एक संपूर्ण कौम को जबरन् झुकाना किसी को भी अच्छा नहीं लग सकता था | इसलिए जनरल बोथा ने श्री विलियम हॉस्किन को इस सभा में हमें समझाने के लिए भेजा | श्री हॉस्किन का परिचय मैं तेरहवें प्रकरण में दे चुका हूँ | सभा ने उनका हार्दिक स्वागत किया | उन्होंने अपने भाषण में कहा : "आप सब यह जानते हैं कि मैं आपका मित्र हूँ | यह कहना ज़रूरी नहीं कि मेरी सहानुभूति आपके साथ हैं | मुझ में शक्ति हो तो मैं आपकी सारी माँगे स्वीकार करवा दूँ | लेकिन यहाँ के साधारण गोरों के विरोध के बारेमें आपको चेताना ज़रूरी नहीं है | आज मैं आपके पास जनरल बोथा के कहने से आया हूँ | जनरल बोथा ने मुझसे कहा हैं कि इस सभा में आकर मैं उनका सन्देश आपको सुना दूँ | हिन्दुस्तानी कौम के लिए उनके मन में आदर हैं | कौम की भावनाओं को वे समझते हैं | लेकिन वे कहते हैं, 'मैं लाचार हूँ | ट्रान्सवाल के सभी गोरे ऐसे कानून की माँग करते हैं | मैं स्वयं भी इस कानून को आवश्यक मानता हूँ | हिन्दुस्तानी कौम ट्रान्सवाल सरकार की शक्ति से परिचित हैं | साम्राज्य सरकार ने इस कानून का समर्थन किया हैं | हिन्दुस्तानी कौम ने जितना किया जा सकता था उतना किया हैं और अपने सम्मान की रक्षा की हैं | परन्तु जब कौम का विरोध सफल न हुआ और कानून पास हो गया है, तो अब कौम को इस कानून के वश होकर अपनी वफादारी और शांति-प्रियता सिद्ध कर दिखानी चाहिए | इस कानून के अनुसार जो धारायें रची गई हैं उनमें कोई छोटा-मोटा परिवर्तन करना हो, तो इस सम्बन्ध में कौम की बात जनरल स्मट्स ध्यानपूर्वक सुनेंगे |' " इस तरह जनरल बोथा का सन्देश सुनाने के बाद श्री हॉस्किन ने कहा : "मैं भी आपको यह सलाह देता हूँ कि आप लोग जनरल बोथा के सन्देश को मान लें | मैं जानता हूँ कि सरकार इस कानून के सम्बन्ध में दृढ़ है | उसका विरोध करने का अर्थ होगा दीवाल से अपना सिर टकराना | मैं चाहता हूँ कि आपकी कौम उसका विरोध करके व्यर्थ ही दुःख न भोगे और बरबाद न हो |" इस भाषण का अक्षरश: अनुवाद करके मैंने कौम के लोगों को सुना दिया | अपनी ओर से भी मैंने उन्हें सावधान किया | श्री हॉस्किन तालियों की गड़गड़ाहट के बीच बिदा हुए |

अब सभा में हिन्दुस्तानियों के भाषण शुरू हुए | इस प्रकरण के और सच पूछा जाए तो इस इतिहास के नायक का परिचय अब मुझे कराना ही चाहिए | सभा में जिन वक्ताओं ने भाषण दिये उनमें स्व. अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे | मैं उन्हें अपने एक मुवक्किल के रूप में और दुभाषिये के रूप में जानता था | वे अभी तक सार्वजनिक कार्य में प्रमुख भाग नहीं लेते थे | उन्हें अंग्रेजी का कामचलाऊ ज्ञान था, परन्तु अनुभव से उन्होंने अपने इस ज्ञान को इतना बढ़ा लिया था कि जब वे अपने मित्रों को अंग्रेज वकीलों के पास ले जाते थे तब उनके दुभाषिये का काम वे स्वयं ही करते थे | लेकिन दुभाषिये का काम उनका धन्धा नहीं था; यह काम वे एक मित्र

के नाते ही करते थे | उनका धन्धा पहले कपड़े की फेरी लगाने का था और बाद में वे अपने भाई के साथ साझेदारी में छोटे पैमाने पर व्यापार करने लगे थे | वे सूरती मेमन थे | उनका जन्म सूरत जिले में हुआ था | सूरती मेमनों में उनकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा थी | उनका गुजराती का ज्ञान भी सीमित ही था, परन्तु अनुभव से उन्होंने इस ज्ञान को खूब बढ़ा लिया था | लेकिन उनकी बुद्धि इतनी तेज थी कि वे किसी भी बात को बड़ी आसानी से समझ लेते थे | मुकदमों की उलझनों को वे इस ढंग से सुलझा सकते थे कि मैं बहुत बार आश्चर्यचकित हो जाता था | वकीलों साथ कानूनी दलीलें करने में भी वे हिचकिचाते नहीं थे और अकसर उनकी दलीले वकीलों को भी विचार ने जैसी लगती थीं |

बहादुरी में और एकनिष्ठा में उनसे आगे बढ़ जाए ऐसे एक भी आदमी का अनुभव न तो मुझे दक्षिण अफ्रीका में हुआ और न हिन्दुस्तान में हुआ | कौम के भले के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था | जब कभी मैं उनके संपर्क में आया तब मैंने सदा ही उन्हें एकवचनी के रूप में पाया | वे एक कट्टर मुसलमान थे | सूरता ममनों का मसजिद के ट्रस्टियों में वे भी एक थे | परन्तु साथ ही वे हिन्दू-मुसलमान दोनों के प्रति समदर्शी भी थे | मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नहीं आता जब उन्होंने धर्मान्ध बनकर अथवा अनुचित रूप में हिन्दुओं के खिलाफ मुसलमानों का पक्ष लिया हो | पूरी तरह निडर और निष्पक्ष होने के कारण वे आवश्यक मालूम होने पर हिन्दू-मुसलमान दोनों को उनके दोष बताने में जरा भी संकोच नहीं करते थे | उनकी सादगी और उनकी निरभिमानता अनुकरण करने जैसी थीं | उनके साथ वर्षों के गाढ़ परिचय के बाद मेरा यह दृढ़ मत बन गया था कि स्व. अहमद मुहम्मद काछलिया जैसा पुरुष हिन्दुस्तानी कौम को मिलना दुर्लभ हैं |

प्रिटोरिया की सभा में बोलने वाले लोगों में एक यह नर-पुंगव भी था | उन्होंने बहुत छोटा भाषण दिया | उन्होंने कहा: "हर हिन्दुस्तानी इस खूनी कानून को जानता हैं | हम सब उसका अर्थ समझते हैं | श्री हॉस्किन का भाषण मैंने ध्यान से सुना हैं | आप सब ने भी उसे सुना हैं | मुझ पर उसका एक ही असर हुआ हैं | उसे सुनकर मेरी कसम (प्रतिज्ञा) और पक्की हुई हैं | हम जानते हैं कि ट्रान्सवाल सरकार कितनी शक्तिशाली हैं | लेकिन इस खूनी कानून के डर से ज़्यादा बड़ा डर वह हमें क्या दिखा सकती हैं ? वह हमें जेल में बन्द करेगी, हमारी जायदाद जप्त करके बेच देगी, हमें देशनिकाले की सजा देगी या फाँसी पर चढ़ायेगी | यह सब हम हँसते-हँसते बरदाश्त कर सकते हैं, लेकिन खूनी कानून को हम कभी भी बरदाश्त नहीं कर सकते |" मैं देख रहा था कि यह सब बोलते-बोलते अहमद मुहम्मद काछलिया अत्यन्त उत्तेजित हो गये थे | उनका चेहरा लाल हो गया था | उनके गले की और सिर की रगें खून की तीव्र गति के कारण फूल उठी थीं | उनका शरीर कांप रहा था | अपने दाहिने हाथ की खुली अंगुलियाँ गले पर फेरते-फेरते वे गरज उठे : "मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि मैं जानकी बाजी लगा दूँगा, लेकिन इस कानून के सामने सिर नहीं झुकाऊँगा | और मैं चाहता हूँ कि यह सभा भी ऐसा ही निश्चय करे |" इतना बोलकर वे बैठ गये | जब उन्होंने अपने गले पर दाहिने हाथ की अंगुलियाँ फिराई,

उस समय मंच पर बैठे कुछ लोग मुसकरा उठे थे | मुझे याद हैं कि मुसकराने में मैं भी उनके साथ जुड़ गया था | जितना बल काछलिया सेठ ने अपने शब्दों में प्रकट किया हैं उतना बल वे अपने कार्य में प्रकट कर सकेंगे या नहीं, इस विषय में मेरे मन में थोड़ी शंका थी | इस शंका के बारेमें मैं सोचता हूँ तब और यहाँ उसका उल्लेख करते समय भी मैं लज्जा का अनुभव करता हूँ | उस महान संग्राम में जिन अनेक हिन्दुस्तानियों ने अपनी प्रतिज्ञा का अक्षरश: पालन किया, उन सब में काछलिया सेठ सदा आगे रहे | किसी दिन उनका रंग बदला हो, ऐसा मैंने कभी नहीं देखा |

सभा ने इस भाषण का तालियों की गड़गड़ाहट से स्वागत किया | मैं जितना काछलिया सेठ को जानता था उसकी अपेक्षा दूसरे सदस्य उस समय उन्हें कहीं अधिक जानते थे; क्योंकि उनमें से अनेक लोगों को तो उस गुदड़ी के लाल का व्यक्तिगत परिचय था | वे जानते थे कि काछलिया जो करना चाहते हैं वही कहता हैं और जो कहता हैं वही करता हैं | सभा में दूसरे भी जोशीले भाषण हुए | मैंने काछलिया सेठ के ही भाषण को इसलिए चुना हैं कि उनके आगे के कार्यों के लिए यह भाषण भविष्यवाणी सिद्ध हुआ था | जोशीले भाषण करने वाले सभी लोग अपनी प्रतिज्ञा पर टिक नहीं पाये थे | इस पुरुष-सिंह की मृत्यु सन् १९१८ में, अर्थात् सत्याग्रह की लड़ाई समाप्त होने के चार वर्ष बाद, कौम की सेवा करते-करते ही हुई थी |

काछलिया सेठ का एक संस्मरण अन्य किसी स्थान पर देना संभव नहीं होगा, इसलिए उसे भी मैं यहीं दे देता हूँ | पाठक टॉल्स्टॉय फार्म की बात आगे पढ़ेंगे | उस फार्म पर सत्याग्रहियों के अनेक परिवार रहते थे | केवल कौम के लोगों के सामने एक उदाहरण रखने के लिए और अपने पुत्र को भी सादगी का सबक सिखाने और प्रजा-सेवक बनाने के लिए काछलिया सेठ ने उसे टॉल्स्टॉय फार्म में शिक्षा लेने के लिए भेजा था; और ऐसा कहा जा सकता है कि इसकी वजह से ही दूसरे मुसलमान बालकों को भी उनके माता-पिता ने फार्म में पढ़ने के लिए भेजा था | बालक काछलिया का नाम था अली | उस समय उसकी उमर १०-१२ वर्ष की रही होगी | अली स्वभाव से नम्र, चपल-चंचल, सत्यवादी और सरल लड़का था | काछलिया सेठ से पहले लेकिन सत्याग्रह की लड़ाई बन्द होने के बाद उस बालक को भी फरिश्ते खुदा के दरबार में ले गये | मेरा यह विश्वास है कि वह जीवित रहता तो अवश्य ही अपने पिता का सुयोग्य पुत्र सिद्ध होता |

१७. पहली फूट

१९०७ की पहली जुलाई आई | परवाने देने वाले सरकारी दफ़्तर खुले | कौम का आदेश था कि हर एक दफ़्तर के सामने खुले आम पिकेटिंग किया जाय – अर्थात् दफ़्तर जाने के मार्गों पर स्वयंसेवक रखे जाएँ और वे दफ़्तर में जाने वाले हिन्दुस्तानियों को वहाँ बिछाये गये जाल से सावधान करें | सब स्वयंसेवकों को एक निशानी रखनी होती थी | और सबको यह खास सूचना दी गई थीं कि परवाना लेने वाले किसी भी हिन्दुस्तानी के साथ वे असभ्यता से पेश न आयें | वे उसका नाम पूछें; और अगर वह अपना नाम न बताये तो उसके साथ जबरदस्ती या अशिष्टता का व्यवहार न करें | वे एशियाटिक ऑफिस में जाने वाले प्रत्येक हिन्दुस्तानी को खूनी कानून के सामने सिर झुकाने से होने वाले नुकसान का छपा हुआ परिपत्र दें, उसमें क्या-कुछ लिखा हैं यह समझायें और पुलिस के साथ भी सभ्यता से पेश आयें | पुलिस गाली दे या मार मारे, तो स्वयंसेवक शांति से सहन कर लें; और मार सहन न हो सके तो वहाँ से हट जाएँ | पुलिस उन्हें गिरफ्तार करे तो खुशी से गिरफ्तार हो जाएँ | जोहानिसबर्ग में ऐसा कुछ हो तो उसकी सूचना वे मुझे ही करें | अन्य स्थानों में वे उस-उस स्थान में नियुक्त किये हुए मंत्री को सूचना करें और उसकी सूचनाओं के अनुसार काम करें | पहरेदारों की हर टुकड़ी का एक नेता या नायक होता था | उस नेता के आदेशानुसार अन्य पहरेदारों (पिकेटों) को चलना होता था |

ऐसा अनुभव कौम को पहली ही बार हुआ था | १२ वर्ष से ऊपर के सब लोगों को पहरेदार (पिकेट) के रूप में पसंद किया जाता था, इसलिए १२ से १८ वर्ष तक के अनेक किशोर और नवयुवक भी स्वयंसेवकों के रूप में भारती हो गये थे | लेकिन ऐसे किसी व्यक्ति को किसी भी हालत में नहीं लिया जाता था, जो स्थानीय कार्यकर्ताओं से अपरिचित हो | इतनी सावधानी के सिवा प्रत्येक सभा में घोषणा करके और अन्य प्रकार से लोगों को यह बताया जाता था कि जिन्हें नुकसान के डर से या दूसरे किसी कारण से नया परवाना लेने की इच्छा हो, लेकिन पिकेट (पहरेदार) का डर लगता हो, उन्हें नेताओं की ओर से एक स्वयंसेवक दिया जाएगा; वह स्वयंसेवक उनके साथ जाकर उन्हें एशियाटिक ऑफिस में छोड़ आयेगा और वहाँ का काम पूरा हों जाने पर उन्हें फिर से स्वयंसेवकों के क्षेत्र से बाहर रख आयेगा | कुछ लोगों ने इस सुरक्षितता का लाभ उठाया भी था |

स्वयंसेवकों ने हर जगह अपना काम अपार उत्साह और लगन से किया था | वे अपने कर्तव्य-पालन में सदा जाग्रत और सावधान रहते थे | सामान्यत: ऐसा कहा जा सकता हैं कि पुलिस ने स्वयंसेवकों को बहुत नहीं सताया | और कभी-कभी पुलिस परेशान करती या सताती भी थी, तो स्वयंसेवक उसे चुपचाप सह लेते थे | इस कार्य में स्वयंसेवकों ने हास्यरस भी उंड़ेल दिया था | कभी-कभी उसमें पुलिस भी शरीक हो जाती थी | अपना समय आनंद में व्यतीत करने के लिए स्वयंसेवक अनेक तरह के चुटकले खोज निकालते थे | एक बार रास्ता रोकने का आरोप लगाकर यातायात के कानून के अनुसार उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था | वहाँ के सत्याग्रह में

असहयोग का समावेश नहीं किया गया था, इसलिए अदालतों में बचाव न करने का नियम नहीं रखा गया था | परन्तु यह सामान्य नियम अवश्य रखा गया था कि कौम के पैसे से वकील रखकर बचाव नहीं किया जा सकता | गिरफ्तार किये गये स्वयंसेवकों को निर्दोष ठहरा कर अदालत ने छोड़ दिया था | इससे उनका उत्साह और बढ़ गया था |

इस प्रकार सार्वजनिक रूप में तो स्वयंसेवकों की ओर से परवाना लेने की इच्छा रखने वाले हिन्दुस्तानियों के साथ किसी तरह की अशिष्टता या जबरदस्ती नहीं की जाती थी | परन्तु मुझे स्वीकार करना चाहिए कि सत्याग्रह की लड़ाई के सिलसिले में हिन्दुस्तानियों की ऐसी एक टोली खड़ी हो गई थी, जिसका काम स्वयंसेवक बने बग़ैर गुप्त रूप में परवाना लेने वालों को मार-पीट की धमकी देना या दूसरी तरह से उन्हें नुकसान पहुँचाना था | यह अत्यन्त दुःखद बात थी | इसका पता चलते ही इसे रोकने के लिए बहुत ही सख्त कदम उठाये गये | इसके फलस्वरूप धमकी देने की बात लगभग बन्द हो गई, यद्यपि जड़मूल से उसका नाश नहीं हुआ | धमकी का असर वातावरण में रह गया और मैंने देखा कि उस हद तक हमारी सत्याग्रह की लड़ाई को नुकसान पहुँचा | जिन हिन्दुस्तानियों को डर लगता था उन्होंने तुरन्त सरकार का संरक्षण माँगा और वह उन्हें मिला | इस तरह कौम में जहर पैठ गया और जो लोग कमजोर थे वे अधिक कमजोर बन गये | इससे जहर को पोषण मिला, क्योंकि कमजोरों की वृत्ति सदा बदला लेने की होती ही है |

कौम के लोगों पर इस धमकी का बहुत ही कम असर हुआ | परन्तु लोकमत के दबाव का और इस डर का कि स्वयंसेवकों की उपस्थिति के कारण परवाना लेने वाले लोगों के नाम कौम को मालूम हो जाएँगे, बड़ा गहरा असर पड़ा | मैं ऐसे एक भी हिन्दुस्तानी को नहीं जानता, जिसने यह मत प्रकट किया हो कि खूनी कानून के सामने झुकना अच्छा है | जो लोग नये परवाने निकलवाने गये वे केवल दुःख या नुकसान सहन करने की अपनी असमर्थता के कारण ही गये थे | इस कारण से वे बड़े लज्जित हुए थे |

एक ओर लज्जा और दूसरी ओर बड़े व्यापार वाले हिन्दुस्तानियों को अपने व्यापार में नुकसान पहुँचने का भय – इन दो कठिनाइयों से बाहर निकलने का रास्ता कुछ प्रमुख हिन्दुस्तानियों ने खोज लिया | उन्होंने एशियाटिक विभाग के साथ मिलकर ऐसी व्यवस्था की कि एक निजी मकान में रात के नौ-दस बजे बाद एशियाटिक विभाग का अधिकारी जाकर उन्हें परवाने दे-दे | उन्होंने सोचा कि इस व्यवस्था से कुछ समय तक तो उनके खूनी कानून के सामने झुकने का किसी को पता हीं नहीं चलेगा और वे स्वयं कौम के नेता हैं इसलिए उनकी देखादेखी दूसरे लोग भी कानून के सामने सिर झुका देंगे | इससे कुछ नहीं तो उनकी लज्जा का बोझ तो कम होगा ही | बाद में अगर उनकी पोल खुल जाए तो उसकी चिन्ता नहीं |

परन्तु स्वयंसेवक इतने जाग्रत और सावधान थे कि कौम को एक एक क्षण की घटनाओं का पता चल जाता था | एशियाटिक ऑफिस में भी कोई न कोई तो ऐसा रहता ही था, जो सत्याग्रहियों को ये बातें बता देता था | दूसरे कुछ लोग ऐसे थे जो स्वयं कमजोर होते हुए भी नेताओं का खूनी कानून के सामने झुकना बरदाश्त नहीं कर पाते थे | वे इस सद्भावना से सत्याग्रहियों को अपने नेताओं के पतन की सूचना दे देते थे कि अगर नेता दृढ़ रहेंगे तो वे स्वयं भी दृढ़ रह सकेंगे | इस तरह एक बार ऐसी सावधानी के कारण कौम को यह सूचना मिली कि अमुक रात को अमुक दुकान में अमुक लोग परवाने लेने वाले हैं | कौम ने पहले तो इस तरह का इरादा रखने वाले हिन्दुस्तानियों को समझाने का प्रयत्न किया | उस दुकान पर पिकेटिंग भी किया | लेकिन मनुष्य अपनी कमजोरी को कब तक दबा सकता हैं ? रात के दस-ग्यारह बजे ऊपर बताये मुताबिक कुछ हिन्दुस्तानी नेताओं ने परवाने लिए और इस घटना से एक स्वर से बजने वाली बांसुरी में दरार पड़ गई | दूसरे ही दिन कौम ने उन लोगों के नाम भी प्रकाशित कर दिये | लेकिन मनुष्य की लज्जा की भी एक मर्यादा होती हैं | स्वार्थ जब उसके सामने आकर खड़ा हो जाता हैं तब लज्जा नहीं टिकती और मनुष्य सही रास्ते से भटक जाता हैं | इस पहली फूट का लाभ उठा कर धीरे-धीरे लगभग पाँच सौ हिन्दुस्तानियों ने परवाने ले लिए | कुछ दिन तक परवाने देने का काम निजी मकानों में चला | लेकिन जैसे-जैसे लज्जा का भाव मंद पड़ता गया वैसे-वैसे इन पाँच सौ में से कुछ लोग खुले आम भी अपने नाम लिखवाने और परवाने लेने के लिए एशियाटिक ऑफिस में गये |

१८. प्रथम सत्याग्रही क़ैदी

अथक परिश्रम करने के बाद भी जब एशियाटिक ऑफिस को ५०० से अधिक नाम नहीं मिल सके, तो एशियाटिक विभाग के अधिकारी इस निर्णय पर आये कि किसी न किसी हिन्दुस्तानी को गिरफ्तार करना चाहिए | पाठक जर्मिस्टन के नाम से परिचित हैं | वहाँ बहुत से हिन्दुस्तानी रहते थे | उनमें से एक रामसुन्दर पंडित भी था | वह दिखने में बहादुर और वाचाल था | उसे कुछ संस्कृत श्लोक भी कंठस्थ थे | उत्तर भारत का होने से तुलसीदास की रामायण के दोहे-चौपाई तो वह जानता ही था | और पंडित कहलाने के कारण लोगों में उसकी थोड़ी प्रतिष्ठा भी थी | उसने जगह-जगह भाषण दिये | अपने भाषण को वह खूब जोशीले बना सकता था | जर्मिस्टन के कुछ विघ्न-संतोषी हिन्दुस्तानियों ने एशियाटिक ऑफिस से कहा कि यदि रामसुन्दर पंडित को गिरफ्तार कर लिया जाए, तो जर्मिस्टन के बहुत से हिन्दुस्तानी एशियाटिक ऑफिस से परवाने ले लेंगे | उस ऑफिस का अधिकारी रामसुन्दर पंडित को पकड़ने के प्रलोभन से अपने को रोक नहीं सका | रामसुन्दर पंडित गिरफ्तार कर लिया गया | इस तरह का यह पहला ही मुकदमा होने से सरकार और हिन्दुस्तानी कौम में बड़ी खलबली मच गई | जिस रामसुन्दर पंडित को कल तक केवल जर्मिस्टन ही जानता था, उसे एक क्षण में सारा दक्षिण अफ्रीका जानने लग गया | जिस प्रकार किसी महापुरुष पर मुकदमा चलता हैं और वह सब लोगों की दृष्टि अपनी ओर खींच लेता हैं, उसी तरह सबकी नजर रामसुन्दर पंडित की ओर लग गई | सरकार के लिए शांति की रक्षा का किसी भी तरह का बन्दोबस्त करना ज़रूरी नहीं था, फिर भी उसने ऐसा बन्दोबस्त किया | अदालत में भी रामसुन्दर को साधारण अपराधी न मानकर हिन्दुस्तानी कौम का प्रतिनिधि माना गया और उसके साथ आदर का व्यवहार किया गया | अदालत उत्सुक हिन्दुस्तानियों से खचाखच भर गई थी | रामसुन्दर को एक मास की सादी क़ैद मिली | उसे जोहानिसबर्ग के जेल में रखा गया था | वहाँ यूरोपियन वार्ड में एक अलग कमरा उसे दिया गया था | लोग बिना किसी कठिनाई के उससे मिल सकते थे | उसे बाहर से भोजन प्राप्त करने की इजाजत दी गई थी और कौम की ओर से हमेशा उसे सुन्दर भोजन बनाकर भेजा जाता था | उसकी हर एक इच्छा पूरी की जाती थी | जिस दिन उसे जेल की सजा मिली वह दिन कौम ने बड़ी धूमधाम से मनाया | कौम का एक भी आदमी उसके जेल जाने से निराश नहीं हुआ, बल्कि सारी कौम का उत्साह और जोश बढ़ गया | सैकड़ों हिन्दुस्तानी जेल जाने को तैयार हो गये | एशियाटिक ऑफिस की आशा पूरी नहीं हुई | जर्मिस्टन के हिन्दुस्तानी भी परवाना लेने नहीं गये | अधिकारियों के उपर्युक्त कदम से कौम को ही लाभ हुआ | एक महिना पूरा हुआ | रामसुन्दर पंडित छूट गया | उसे बाजेगाजे के साथ जुलूस में उस स्थान पर ले जाया गया जहाँ सभा करने का निश्चय हुआ था | सभा में जोशीले भाषण हुए | रामसुन्दर को फूलमालाओं से ढंक दिया गया | स्वयंसेवकों ने उसके सम्मान में एक दावत दी | और हजारों हिन्दुस्तानी यह सोचकर रामसुन्दर पंडित से मीठी ईर्ष्या करने लगे कि हम भी जेल में गये होते तो कितना अच्छा होता |

लेकिन रामसुन्दर पंडित खोटा सिक्का निकला | उसका बल झूठी सती के जैसा था | एक महीने की क़ैद से बचना तो संभव था ही नहीं, क्योंकि उसे एकाएक गिरफ्तार किया गया था | और, जेल में उसने जो साहबी भोगी उसके दर्शन भी बाहर उसे कभी नहीं हुए थे | फिर भी स्वच्छन्द घूमने वाला और साथ ही व्यसनी आदमी जेल के एकांतवास को तथा अनेक प्रकार का भोजन मिलने पर भी जेल के संयम को सहन नहीं कर सकता | यही स्थिति रामसुन्दर पंडित की हुई | कौम के लोगों का और जेल के अधिकारियों का इतना सम्मान मिलने पर भी जेल उसे कड़वा लगा और वह ट्रान्सवाल तथा सत्याग्रह की लड़ाई को अंतिम नमस्कार करके रातोंरात भाग खड़ा हुआ | प्रत्येक समाज में चतुर आदमी तो होते ही हैं; और जैसे वे किसी समाज में होते हैं वैसे ही किसी आन्दोलन में भी होते हैं | वे रामसुन्दर की रग-रग से परिचित थे | परन्तु उससे भी हिन्दुस्तानियों का हित हो सकता हैं, ऐसा समझ कर उन्होंने रामसुन्दर पंडित का गुप्त इतिहास – उसका भंडा फूटने से पहले – मुझे कभी जानने ही नहीं दिया | बाद में मुझे पता चला कि रामसुन्दर तो अपना गिरमिट पूरा किये बिना ही भागा हुआ एक गिरमिटिया मजदूर था | उसके गिरमिटिया होने की बात यहाँ मैं नफरत से नहीं लिख रहा हूँ | उसके गिरमिटिया होने में कोई दोष नहीं था | पाठक अंत में देखेंगे कि सत्याग्रह की लड़ाई को अतिशय सुशोभित करने वाले तो हिन्दुस्तानी गिरमिटिया मजदूर ही थे | यह लड़ाई जीतने में भी उनका बड़े से बड़ा हाथ था | लेकिन गिरमिट पूरा करने से पहले भाग आने में ज़रूर रामसुन्दर पंडित का दोष था |

परन्तु रामसुन्दर का पूरा इतिहास मैंने उसका दोष दिखाने के लिए यहाँ नहीं दिया है; यह इतिहास मैंने इस घटना के भीतर छिपे गूढ़ अर्थ को प्रकट करने के लिए ही दिया है | प्रत्येक शुद्ध आन्दोलन के नेताओं का यह कर्तव्य है कि वे शुद्ध आन्दोलन में शुद्ध आदमियों को ही भरती करें | परन्तु बड़ी से बड़ी सावधानी रखने पर भी अशुद्ध आदमियों को शुद्ध आन्दोलन से बाहर नहीं रखा जा सकता | फिर भी यदि संचालक निडर और सच्चे हों, तो अनजाने अशुद्ध लोगों के प्रवेश कर जाने से किसी शुद्ध आन्दोलन को अंत में हानि नहीं होती | रामसुन्दर पंडित का सच्चा रूप खुल जाने पर कौम के लोगों में उसकी कोई क़ीमत नहीं रह गई | वह बेचारा पंडित मिट गया और केवल रामसुन्दर रह गया | कौम उसे भूल गई, परन्तु उसकी वजह से भी लड़ाई का बल अवश्य बढ़ा | सत्याग्रह के ख़ातिर उसने क़ैद की जो सजा भोगी वह व्यर्थ नहीं गई | उसके जेल जाने से लड़ाई का जो बल बढ़ा वह टिका रहा | और उसके उदाहरण से लाभ उठा कर दूसरे कमजोर आदमी अपने-आप लड़ाई से दूर हट गये | ऐसी कमजोरी के दूसरे कुछ उदाहरण भी सामने आये | लेकिन उनका इतिहास मैं नाम-पते के साथ यहाँ देना नहीं चाहता | उसे देने से कोई लाभ नहीं होगा | कौम की कमजोरी और कौम की शक्ति पाठकों के ध्यान से बाहर न रहे, इस ख्याल से इतना कह देना आवश्यक है कि रामसुन्दर कोई अकेला ही रामसुन्दर नहीं था; परन्तु फिर भी मैंने देखा कि सभी रामसुन्दरों ने कौम की लड़ाई की तो सेवा ही की थी |

पाठक रामसुन्दर को दोषी न समझें | इस जगत में सभी मानव अपूर्ण हैं | किसी की अपूर्णता जब विशेष रूप से हमारे सामने आती हैं तब हम उसका दोष दिखाने के लिए उस पर अंगुली उठाते हैं | लेकिन वस्तुत: यह हमारी भूल हैं | रामसुन्दर जान-बूझकर कमजोर नहीं बना था | मनुष्य अपने स्वभाव को बदल सकता हैं, उस पर नियंत्रण रख सकता हैं, लेकिन उसे जड़मूल से मिटा नहीं सकता | जगत्कर्ता प्रभु ने इतनी स्वतंत्रता मनुष्य को दी ही नहीं हैं | बाघ यदि अपनी चमड़ी की विचित्रता को बदल सके, तो ही मनुष्य अपने स्वभाव की विचित्रता को बदल सकता हैं | भाग जाने पर भी रामसुन्दर को अपनी कमजोरी के लिए कितना पश्चात्ताप हुआ होगा, यह हम कैसे जान सकते हैं ? अथवा क्या उसका भाग जाना ही उसके पश्चात्ताप का एक प्रबल प्रमाण नहीं माना जा सकता ? अगर वह बेशरम होता तो उसे भागने की क्या ज़रुरत हो सकती थी ? परवाना लेकर और खूनी कानून को स्वीकार करके वह सदा जेलमुक्त रह सकता था | इतना ही नहीं, वह चाहता तो एशियाटिक ऑफिस का दलाल बन कर दूसरे हिन्दुस्तानियों को भुलावे में डाल सकता था और सरकार का प्रिय आदमी भी बन सकता था | यह सब करने के बजाय कौम को अपनी कमजोरी दिखाने में लज्जा अनुभव करने के कारण उसने अपना मुँह छिपा लिया और ऐसा करके भी उसने हिन्दुस्तानी कौम की सेवा ही की इस तरह का उदार अर्थ हम उसके भागने का क्यों न करें ?

१९. इंडियन ओपीनियन

मैं पाठकों के सामने सत्याग्रह की लड़ाई के बाहरी और भीतरी सभी साधन रखना चाहता हूँ, इसलिए *इंडियन ओपीनियन* नामक जो साप्ताहिक आज भी दक्षिण अफ्रीका से प्रकाशित हो रहा हैं उसका परिचय कराना भी ज़रूरी हैं | दक्षिण अफ्रीका में सर्वप्रथम हिन्दुस्तानी प्रेस खोलने का श्रेय श्री मदनजीत व्यावहारिक नामक एक गुजराती सज्जन को हैं | उस प्रेस को कुछ समय तक मुसीबतों के बीच चलाने के बाद उन्होंने एक अखबार निकालने का भी सोचा | इस सम्बन्ध में उन्होंने स्व. मनसुखलाल नाजर की और मेरी सलाह ली | अखबार डरबन से निकाला गया | श्री मनसुखलाल नाजर उसके अवैतनिक सम्पादक बने | अखबार में पहले से हीं घाटा आने लगा | अंत में उसमें काम करने वाले लोगों को साझेदार या साझेदार जैसे बनाकर और एक खेत खरीद कर उसमें उन सबको बसा कर वहाँ से यह अखबार निकालने का निश्चय किया गया | वह खेत डरबन से १३ मील दूर एक सुन्दर पहाड़ी पर हैं | उसके निकट से निकट का रेलवे स्टेशन खेत से ३ मील दूर हैं और उसका नाम फिनिक्स हैं | अखबार का नाम शुरू से ही *इंडियन ओपीनियन* रखा गया हैं | एक समय वह अंग्रेजी, गुजराती, तामिल और हिन्दी में प्रकाशित होता था | तामिल और हिन्दी का बोझ हर तरह से अधिक लगने के कारण, खेत पर रह सकें ऐसे तामिल और हिन्दी लेखक न मिलने के कारण और इन दो भाषाओं के लेखों पर अंकुश न रह सकने के कारण ये दो विभाग बन्द कर दिये गये और अंग्रेजी तथा गुजरती विभाग जारी रखे गये | सत्याग्रह की लड़ाई शुरू हुई तब इन्हीं दो भाषाओं में *इंडियन ओपीनियन* निकलता था | खेत पर बस कर संस्था में काम करने वाले लोगों में गुजराती, हिन्दी भाषी (उत्तर भारतीय), तामिल और अंग्रेज सभी थे | श्री मनसुखलाल नाजर की असामयिक मृत्यु के बाद एक अंग्रेज मित्र हर्बर्ट किचन *इंडियन ओपीनियन* के संपादक रहे | उसके बाद संपादक के पद पर श्री हेनरी पोलाक ने लम्बे समय तक कार्य किया | मेरे और श्री पोलाक के जेल-निवास के दिनों में भले पादरी स्व. जोसफ डोक भी अखबार के संपादक रहे | इस अखबार के द्वारा कौम के लोगों को हर सप्ताह के संपूर्ण समाचारों से अच्छी तरह परिचित रखा जा सकता था | साप्ताहिक के अंग्रेजी विभाग द्वारा ऐसे हिन्दुस्तानियों को सत्याग्रह की थोड़ी-बहुत तालीम मिलती थी, जो गुजराती नहीं जानते थे | और हिन्दुस्तान, इंग्लैंड तथा दक्षिण अफ्रीका के अंग्रेजों के लिए तो *इंडियन ओपीनियन* एक साप्ताहिक समाचारपत्र की गरज पूरी करता था | मेरा यह विश्वास हैं कि जिस लड़ाई का मुख्य आधार आंतरिक बल पर हैं, वह लड़ाई अखबार के बिना लड़ी जा सकती हैं; परन्तु इसके साथ मेरा यह अनुभव भी हैं कि *इंडियन ओपीनियन* के होने से हमें अनेक सुविधायें प्राप्त हुई, कौम को आसानी से सत्याग्रह की शिक्षा दी जा सकी, और दुनिया में जहाँ कहीं भी हिन्दुस्तानी रहते थे वहाँ सत्याग्रह-सम्बन्धी घटनाओं के समाचार फैलाये जा सके | यह सब अन्य किसी साधन से शायद संभव न होता | इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता हैं कि सत्याग्रह की लड़ाई लड़ने के साधनों में *इंडियन ओपीनियन* भी एक अत्यन्त उपयोगी और प्रबल साधन था |

जिस प्रकार लड़ाई के दिनों में और लड़ाई के अनुभवों के फलस्वरूप कौम में अनेक परिवर्तन हुए, उसी प्रकार *इंडियन ओपीनियन* में भी हुए | पहले उस साप्ताहिक में विज्ञापन लिए जाते थे | प्रेस में बाहर का फुटकर काम भी छापने के लिए स्वीकार किया जाता था | मैंने देखा कि इन दोनों कामों में हमारे अच्छे से अच्छे आदमियों को लगाना पड़ता था | विज्ञापन लेने ही हों तो कौन से विज्ञापन लिए जाएँ और कौन से न लिए जाएँ – इसका निर्णय करने में हमेशा ही धर्म-संकट खड़े होते थे | इसके सिवा, किसी आपत्तिजनक विज्ञापन को न लेने का मन हो, परन्तु विज्ञापन देने वाला कौम का कोई अग्रगण्य व्यक्ति हो, तो उसके बुरा मान जाने के भय से भी हमें न लेने योग्य विज्ञापन लेने के प्रलोभन में फँसना पड़ता था | विज्ञापन प्राप्त करने में और छपे हुए विज्ञापनों के पैसे वसूल करने में हमारे अच्छे से अच्छे आदमियों का समय खर्च होता था और विज्ञापन-दाताओं की खुशामद करनी पड़ती सो अलग | इसके साथ यह विचार भी आया कि यदि अखबार पैसा कमाने के लिए नहीं बल्कि केवल कौम की सेवा के लिए ही चलाना हो, तो वह सेवा जबरदस्ती नहीं की जानी चाहिए; कौम चाहे तो ही उसकी सेवा हमें करनी चाहिए | और कौम की इच्छा का स्पष्ट प्रमाण यही माना जाएगा कि कौम के लोग काफ़ी बड़ी संख्या में साप्ताहिक के ग्राहक बनकर उसका खर्च उठा लें | इसके सिवा, हमने यह भी सोचा कि अखबार चलाने के लिए उसका मासिक खर्च निकालने की दृष्टि से कुछ व्यापारियों को सेवाभाव के नाम पर अपने विज्ञापन देने की बात समझाने की अपेक्षा यदि कौम के आम लोगों को *इंडियन ओपीनियन* खरीदने का कर्तव्य समझाया जाए, तो वह ललचाने वाले लोगों और ललचाये जाने वाले लोगों दोनों के लिए कितनी सुन्दर शिक्षा हो सकती हैं ? इन सारी बातों पर हमने सोच-विचार किया और उस पर तुरन्त अमल भी किया | इसका नतीजा यह हुआ कि जो कार्यकर्ता विज्ञापन विभाग की झंझटों में फँसे रहते थे, वे अब अखबार को सुन्दर बनाने के प्रयत्नों में लग गये | कौम के लोग तुरन्त समझ गये कि *इंडियन ओपीनियन* की मालिकी और उसे चलाने की जिम्मेदारी दोनों उनके हाथ में है | इसके फलस्वरूप हम सब कार्यकर्ता निश्चिन्त हो गये | कौम अखबार की माँग करे तब तक उसे निकालने के लिए पूरी मेहनत करने की चिन्ता ही हमारे सिर पर रह गई; और किसी भी हिन्दुस्तानी का हाथ पकड़ कर उससे *इंडियन ओपीनियन* का ग्राहक बनने की बात कहने में न केवल हमें लज्जा नहीं आती थी, बल्कि ऐसा कहना हम अपना धर्म समझते थे | *इंडियन ओपीनियन* की आंतरिक शक्ति में और उसके स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ और वह एक महाशक्ति बन गया | उसकी ग्राहक-संख्या, जो सामान्यत: १२०० से १५०० तक रहती थी, दिनोंदिन बढ़ने लगी | उसका वार्षिक चन्दा हमें बढ़ाना पड़ा था, फिर भी जब सत्याग्रह की लड़ाई ने उग्र रूप धारण किया उस समय उसके ग्राहकों की संख्या ३५०० तक पहुँच गई थी | *इंडियन ओपीनियन* के पाठकों की संख्या अधिक से अधिक २०००० मानी जा सकती है | इतने पाठकों के बीच उसकी ३००० से ऊपर प्रतियाँ बिकना आश्चर्यजनक फैलाव कहा जाएगा | कौम ने *इंडियन ओपीनियन* को इस हद तक अपना बना लिया था कि यदि निश्चित समय पर उसकी प्रतियाँ जोहानिसबर्ग न पहुँचती, तो मुझ पर

शिकायतों की झड़ी लग जाती थी | प्राय: रविवार को सुबह साप्ताहिक जोहानिसबर्ग पहुँच जाता था | मैं जानता हूँ कि बहुतसे हिन्दुस्तानी अखबार पहुँचने पर सबसे पहला काम उसके गुजराती विभाग को आदि से अंत तक पढ़ जाने का करते थै | एक आदमी पढ़ता था और दस-पन्द्रह आदमी उसके आसपास बैठकर सुनते थे | हम गरीब ठहरे, इसलिए कुछ लोग साझे में भी *इंडियन ओपीनियन* खरीदते थे |

प्रेस में बाहर का फुटकर काम लेना उसी तरह बंद कर दिया गया था, जिस तरह विज्ञापन लेना बन्द कर दिया गया था | उसे बन्द करने के कारण प्राय: वैसे ही थे जैसे विज्ञापन ने लेने के थे | यह काम बन्द करने से कंपोजिटरों का जो समय बचा उसका उपयोग प्रेस द्वारा पुस्तकें प्रकाशित करने में हुआ | और कौम जानती थी कि पुस्तकें प्रकाशित करने का हमारा उद्देश्य धन कमाना नहीं था | चूँकि ये पुस्तकें केवल लड़ाई को सहायता पहुँचाने के लिए ही छपी जाती थीं, इसलिए उनको बिक्री भी अच्छी होने लगी | इस प्रकार *इंडियन ओपीनियन* और प्रेस दौनों ने सत्याग्रह की लड़ाई में भाग लिया | और यह स्पष्ट रूप से देखा गया था कि जैसे-जैसे सत्याग्रह की जड़ कौम में जमती गई वैसे-वैसे सत्याग्रह की दृष्टि से साप्ताहिक की और उसके प्रेस की नैतिक प्रगति भी होती गई |

२०. गिरफ़्तारियों का ताँता

हम देख चुके हैं कि रामसुन्दर पंडित की गिरफ़्तारी सरकार के लिए मददगार साबित नहीं हुई | दूसरी ओर अधिकारियों ने यह भी देखा कि कौम में उत्साह तेजी से बढ़ने लगा हैं | *इंडियन ओपीनियन* के लेखों को एशियाटिक विभाग के अधिकारी भी ध्यान से पढ़ते थे | कौम की लड़ाई के सम्बन्ध में कोई भी बात कभी गुप्त नहीं रखी जाती थी | कौम की कमजोरी और कौम की ताकत को जो भी जानना चाहता *इंडियन ओपीनियन* से जान सकता था – फिर वह शत्रु हो, मित्र हो या कोई तटस्थ व्यक्ति हो | कार्यकर्ता आरंभ से ही यह समझ गये थे कि जिस लड़ाई में कोई गलत काम करना ही नहीं है, जिसमें चालाकी अथवा धोखेबाजी के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं हैं और जिस लड़ाई में अपनी शक्ति के आधार पर ही विजय प्राप्त की जा सकती हैं, उसमें गुप्तता का कोई भी स्थान नहीं हो सकता | कौम के स्वार्थ का ही यह तकाजा हैं कि कमजोरी के रोग को यदि दूर करना हो, तो कमजोरी की परीक्षा करके उसे अच्छी तरह जाहिर कर दिया जाए | जब एशियाटिक विभाग के अधिकारियों ने देखा कि *इंडियन ओपीनियन* इसी नीति पर चलता हैं, तब वह उनके लिए हिन्दुस्तानी कौम के वर्तमान इतिहास का दर्पण बन गया; और इसलिए उन्होंने सोचा कि जब तक कौम के अमुक नेताओं को गिरफ्तार नहीं किया जाएगा तब तक लड़ाई का बल कभी टूट नहीं सकेगा | इसके फलस्वरूप दिसम्बर १९०७ में कुछ नेताओं को अदालत में हाजिर होने की नोटिस मिली | मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि ऐसी नोटिस देने में अधिकारियों ने सभ्यता दिखाई थी | वे चाहते तो वारंट निकाल कर नेताओं को गिरफ्तार कर सकते थे | पर ऐसा करने के बजाय उन्हें हाजिर रहने की नोटिस देकर अधिकारियों ने सभ्यता के साथ-साथ अपना यह विश्वास भी प्रकट किया था कि कौम के नेता गिरफ्तार होने को तैयार हैं | निश्चित किये हुए दिन-शनिवार, ता. २८-१२-१९०७ को – अदालत में जो नेता हाजिर रहे थे उन्हें इस तरह की नोटिस का उत्तर देना था: 'कानून के अनुसार आप लोगों को परवाने प्राप्त कर लेने चाहिए थे, फिर भी आपने प्राप्त नहीं किये | इसलिए आपको ऐसा हुक्म क्यों न दिया जाए कि अमुक समय के भीतर आप ट्रान्सवाल की सीमा छोड़ दें ?'

इन नेताओं में एक सज्जन का नाम क्किन था, जो जोहानिसबर्ग में रहने वाले चीनियों का नेता था | जोहानिसबर्ग में ३००-४०० चीनी रहते थे | वे सब व्यापार करते थे या छोटी-मोटी खेती का काम करते थे | हिन्दुस्तान खेती के लिए मशहूर देश है | लेकिन मेरा यह विश्वास है कि चीनी लोगों ने जिस हद तक खेती का विकास किया है उस हद तक हमने खेती का विकास नहीं किया है | अमेरिका आदि देशों में खेती की जो आधुनिक प्रगति हुई है, उसका तो वर्णन हीं नहीं किया जा सकता | फिर भी पश्चिम की खेती को अभी मैं प्रयोग के रूप में ही मानता हूँ | लेकिन चीन तो हमारे जैसा ही प्राचीन देश हैं और वहाँ पुराने जमाने से ही खेती का विकास किया गया है | इसलिए चीन और हिन्दुस्तान के बीच तुलना करके हम कुछ सीख सकते हैं | जोहानिसबर्ग के चीनियों की खेती

को देखकर और उनकी बातें सुनकर मुझे ऐसा लगा कि चीनियों का ज्ञान और उद्यम हमसे कहीं अधिक है | जहाँ हम ज़मीन को पड़ती मानकर उसका कोई भी उपयोग नहीं करते, वहाँ चीनी लोग विभिन्न प्रकार की मिट्टियों के अपने सूक्ष्म ज्ञान के कारण अच्छी-अच्छी फसलें पैदा कर सकते हैं |

इस उद्यमी और चतुर कौम पर भी खूनी कानून लागू होता था | इसलिए चीनियों ने भी हिन्दुस्तानियों की लड़ाई में सम्मिलित होना उचित माना | ऐसा होता हुए भी आरंभ से अंत तक दोनों जातियों की सारी प्रवृत्तियाँ सर्वथा अलग-अलग ही रहीं | दोनों जातियाँ अपनी-अपनी संस्थाओं द्वारा गोरी सरकार से लड़ रही थीं | इसका शुभ परिणाम यह आया कि जब तक दोनों जातियाँ टिकी रहीं तब तक दोनों को लाभ हुआ, लेकिन जब एक जाति गिरी तो दूसरी को नुकसान पहुँचने का कोई कारण नहीं रहा; नीचे गिरने की तो कोई बात हो ही नहीं सकती थी | अंत में बहुत से चीनी हार गये, क्योंकि उनके नेता ने उन्हें धोखा दिया | चीनियों का नेता खूनी कानून के सामने झुका तो नहीं, लेकिन एक दिन किसीने मुझे यह खबर सुनाई कि चीनियों का नेता चीनी संघ का हिसाब-किताब सौंपे बिना ही भाग गया हैं | नेता के अभाव में किसी लड़ाई में अनुयायियों का टिका रहना हमेशा ही कठिन होता हैं; और यदि नेता में कोई मलिनता देखने में आती है, तब तो उसके अनुयायियों में दुगुनी निराशा पैदा होती हैं | लेकिन जब गिरफ्तारियाँ शुरू हुई उस समय तो चीनी लोग अतिशय उत्साह में थे | उनमें से शायद हीं किसीने परवाने लिए हों | इसलिए जिस तरह हिन्दुस्तानी नेताओं को गिरफ्तार किया गया उसी तरह चीनियों के कर्ता-धर्ता श्री क्विन को भी गिरफ्तार किया गया | कुछ समय तक तो श्री क्विन ने बहुत ही सुन्दर काम किया, ऐसा कहा जा सकता हैं |

हिन्दुस्तानियों के जो नेता पकड़े गये थे, उनमें से मैं जिनका परिचय यहाँ कराना चाहता हूँ वे हैं श्री थंबी नायडू | थंबी नायडू तामिल थे | उनका जन्म मोरीशियस में हुआ था | लेकिन उनके माता-पिता मद्रास प्रान्त से आजीविका कमाने के लिए मोरीशियस गये थे | थंबी नायडू सामान्य व्यापारी थे | ऐसा कहा जा सकता हैं कि उन्हें शाला की कोई शिक्षा नहीं मिली थी | परन्तु उनका अनुभव-ज्ञान बहुत ऊँचा था | वे अंग्रेजी बहुत अच्छी बोल और लिख सकते थे, यद्यपि भाषाशास्त्री की दृष्टि से उनके अंग्रेजी बोलने-लिखने में दोष रहता था | तामिल भाषा का ज्ञान भी उन्होंने अनुभव से ही प्राप्त किया था | हिन्दुस्तानी भी वे अच्छी तरह समझते और बोलते थे | तेलुगु का भी उन्हें काफ़ी ज्ञान था, यद्यपि वे हिन्दी या तेलुगु लिपि बिलकुल नहीं जानते थे | मोरीशियस की भाषा का, जो 'क्रीओल' के नाम से पुकारी जाती हैं और जिसे फ्रेंच भाषा का अपभ्रंश कहा जा सकता हैं, उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था | दक्षिण भारत के लोगों में इतनी सारी भाषाओं का व्यावहारिक ज्ञान होना कोई अपवाद की बात नहीं थी | दक्षिण अफ्रीका में सैकड़ों हिन्दुस्तानी इन सब भाषाओं का साधारण ज्ञान रखने वाले मिलेंगे | इसके सिवा, उन्हें इन सब भाषाओं के साथ हबशी भाषा का ज्ञान तो होगा ही | यह सारा भाषाज्ञान वे अनायास प्राप्त कर लेते हैं और प्राप्त कर सकते हैं | इसका कारण मैं तो यह मानता हूँ कि किसी विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा ग्रहण

करके उनके दिमाग थकते नहीं | उनकी स्मरण-शक्ति तेज होती हैं और इन सब भाषाओं के बोलने वाले लोगों के साथ बातचीत करके और अवलोकन करके ही वे विभिन्न भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं | इससे उनके दिमागों को बहुत कष्ट नहीं होता; बल्कि दिमाग के ऐसे सरल व्यायाम से उनकी बुद्धि स्वाभाविक रूप में ही खिल उठती हैं | यही बात थंबी नायडू के विषय में भी सच थी | उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी | वे नये प्रश्नों को बड़ी जल्दी समझ लेते थे | उनकी हाजिरजवाबी सबको आश्चर्य में डाल देती थी | उन्होंने हिन्दुस्तान कभी देखा नहीं था, फिर भी हिन्दुस्तान पर उनका अगाध प्रेम था | स्वदेशाभिमान उनकी रग-रग में समाया हुआ था | उनकी दृढ़ता उनके मुख पर चित्रित रहती थी | उनके शरीर की गठन अत्यन्त मजबूत और कसी हुई थी | वे परिश्रम करने में कभी थकते ही नहीं थे | किसी सभा में कुरसी पर बैठकर कौम का नेतृत्व करना हो, तो उस पद को वे भलीभाँति सुशोभित कर सकते थे; और उतनी ही स्वाभाविकता से वे हमाल का काम भी कर सकते थे | आम रास्ते पर बोझ ढो कर ले जाने में थंबी नायडू कभी शरमाते नहीं थे | मेहनत करते समय वे रात और दिन का भेद मानते ही नहीं थे | और हिन्दुस्तानी कौम के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने में वे हर किसी के साथ होड़ लगा सकते थे | यदि थंबी नायडू आवश्यकता से अधिक साहसी न होते और यदि वे स्वभाव से क्रोधी न होते, तो आज उनके जैसा वीर पुरुष ट्रान्सवाल में काछलिया की अनुपस्थिति में कौम का नेतृत्व आसानी से कर सकता था | ट्रान्सवाल में सत्याग्रह की लड़ाई चली तब तक उनके क्रोध का विपरीत परिणाम नहीं आ पाया था और उनके भीतर जो अमूल्य गुण थे वे रत्नों के समान चमकते रहे | परन्तु बाद में मैंने सुना कि उनका क्रोध और साहसिकता उनके प्रबल शत्रु सिद्ध हुए और उन्होंने उनके सारे गुणों को ढंक दिया | जो भी हो, किन्तु दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की लड़ाई के इतिहास में तो थंबी नायडू का नाम सदा प्रथम श्रेणी में ही रहेगा |

हम सबको अदालत में एक साथ ही हाजिर होना था | लेकिन सबके केस अलग-अलग चलाये गये थे | मजिस्ट्रेट ने कुछ लोगों को ४८ घंटों के भीतर और बाकी लोगों को ७ या १४ दिन में ट्रान्सवाल छोड़ देने का आदेश दिया | इस आदेश की अवधि १० जनवरी, १९०८ को पूरी होती थी | उसी दिन हमें सजा सुनने के लिए अदालत में उपस्थित होने का आदेश मिला था |

हम में से किसी को अपना बचाव तो करना ही नहीं था | कानून के अनुसार परवाने न लेने के कारण निश्चित अवधि में ट्रान्सवाल की सीमा छोड़ देने का मजिस्ट्रेट ने जो आदेश दिया था, उसका सविनय अनादर करने का अपराध हम सबको स्वीकार करना था |

मैंने अदालत से एक छोटासा वक्तव्य देने की इजाजत माँगी | वह इजाजत मुझे मिली | मैंने इस आशय का वक्तव्य दिया : मेरे मुकदमे में और मेरे बाद आने वाले लोगों के मुकदमे में भेद किया जाना चाहिए | मुझे अभी-अभी प्रिटोरिया से ये समाचार मिले हैं कि वहाँ मेरे देशबन्धुओं को तीन मास की कड़ी क़ैद की सजा और भारी

जुर्माना हुआ हैं और जुर्माना न देने पर तीन मास की कड़ी क़ैद की और सजा दी गई हैं | अगर उन लोगों ने अपराध किया हैं, तो मैंने उनसे कहीं बड़ा अपराध किया हैं इसलिए मजिस्ट्रेट से मेरी प्रार्थना हैं कि वे मुझे कड़ी से कड़ी सजा दें |

परन्तु मजिस्ट्रेट ने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया और मुझे दो मास की सादी क़ैद की सजा दी | जिस अदालत में मैं वकील के रूप में सैकड़ों बार खड़ा हुआ था और वकील-मंडल के बीच उठता-बैठता था, उसी अदालत में आज मैं अभियुक्त के रूप में कठघरे में खड़ा हूँ, यह विचार मुझे थोड़ा विचित्र अवश्य लगा | किन्तु इतना मुझे अच्छी तरह याद हैं कि वकील-मंडल की सभा में बैठने में मैंने जो सम्मान और प्रतिष्ठा मानी होगी उसकी अपेक्षा अपराधी के कठघरे में खड़े होने में मैंने कहीं अधिक सम्मान और प्रतिष्ठा मानी | मुझे स्मरण नहीं आता कि कठघरे में प्रवेश करते समय मैंने जरा भी संकोच अनुभव किया हो | अदालत में मैं सैकड़ों हिन्दुस्तानी भाइयों, वकीलों और मित्रों आदि के सामने खड़ा था | ज्यों ही मुझे सजा सुनाई गई त्यों ही एक सिपाही मुझे क़ैदियों को ले जाने के दरवाजे से वहाँ ले गया जहाँ जेल में ले जाने के पहले उन्हें रखा जाता हैं |

उस समय मैंने पाने आसपास का वातावरण सुनसान पाया | वहाँ क़ैदियों के बैठने की जो बेंच पड़ी थी उस पर मुझे बैठने को कहकर पुलिस अधिकारी दरवाजा बंद करके चलता बना | यहाँ मुझे ज़रूर थोड़ी घबराहट हुई | मैं गहरे विचारों में डूब गया | कहाँ मेरा घर-बार है ! कहाँ मेरी बैरिस्टरी हैं ! और कहाँ वे सार्वजनिक साभायें हैं ! वह सब स्प्नवत् हो गया हैं और आज में क़ैदी बनकर यहाँ बैठा हूँ | दो महीनों में क्या होने वाला हैं ? क्या मुझे दो माह की पूरी क़ैद भोगनी ही पड़ेगी ? कौम के लोग अगर अपने वचन के अनुसार बड़ी संख्या में जेल में चले आयें, तो मुझे दो महीने की क़ैद भोगनी ही न पड़े | लेकिन अगर वे जेलों को भरने की हिम्मत न दिखायें, तो ये दो महीने कितने लम्बे मालूम होंगे ? इन विचारों और ऐसे ही दूसरे विचारों को लिखवाने में मुझे जितना समय लगा हैं, उसके सौवें भाग का समय भी इन विचारों के आने में नहीं लगा होगा | इन विचारों के मन में उठते ही मैं लज्जित हो गया | मैं कितना बड़ा मिथ्याभिमानी हूँ ? मैंने जेल को महल मानने की बात कौम के लोगों से कही थी ! मैंने लोगों से कहा था कि खूनी कानून का विरोध करने के फलस्वरूप जो भी दुःख सहना पड़े उसे दुःख नहीं परन्तु सुख मानना चाहिए | उसका विरोध करते-करते अपनी सम्पत्ति और प्राण भी अर्पण करने पड़े, तो वह सत्याग्रह में आनन्द का विषय माना जाना चाहिए | यह सब मेरा ज्ञान आज कहाँ चला गया ? ये विचार आते ही मैं दृढ़ बन गया और अपनी मूर्खता पर हँसने लगा | मैं व्यावहारिक दृष्टि से सोचने लगा : दूसरे मित्रों को कैसी क़ैद मिलेगी ? क्या उन्हें मेरे साथ ही रखा जाएगा ? जब मैं इस सारी उधेड़बुन में पड़ा था उसी समय दरवाज खुला और पुलिस अधिकारी ने मुझे उसके पीछे पीछे चलने का हुक्म दिया | जब मैं उसके पीछे चलने लगा तो उसने मुझे आगे कर दिया और खुद मेरे पीछे हो गया | वह मुझे जेल की पिंजरागाड़ी के सामने ले गया और बोला कि इसमें बैठ जाओ | बैठ जाने पर मुझे जोहानिसबर्ग जेल में ले जाया गया |

जेल में पहुँच जाने के बाद मेरे अपने कपड़े उतरवा लिए गये | मैं जानता था कि जेल में क़ैदियों को नंगा कर दिया जाता है | हम सब ने सत्याग्रहियों के नाते इसे अपने धर्म माना था कि जेल के नियम जब तक व्यक्तिगत अपमान करने वाले न हों अथवा धर्म के विरूद्ध न हों तब तक स्वेच्छा से उनका पालन किया जाए | वहाँ जो कपड़े मुझे पहनने के लिए मिले वे बहुत मैले थे | उन्हें पहनना मुझे बिलकुल अच्छा न लगा | उन कपड़ों को पहनने में और मन को ऐसा करने के लिए समझाने में मुझे दुःख हुआ | लेकिन थोड़ा मैलापन तो जेल में बरदाश्त करना ही पड़ेगा, ऐसा समझ कर मैंने मन पर नियंत्रण रखा | मेरा नाम-पता वगैरा लिखकर मुझे एक बड़ी कोठरी में ले जाया गया | कुछ समय मैं उसमें रहा | उसके बाद मेरे साथी भी हँसते-बोलते वहाँ आ पहुँचे | उन्होंने मुझे सुनाया कि मेरे बाद उनका मुकदमा कैसे चला और उसमें क्या क्या हुआ | उनकी बातों से मालूम हुआ कि मेरा मुकदमा पूरा हो जाने के बाद कुछ हिन्दुस्तानियों ने काले झंडे हाथ में लेकर जुलूस निकाला था, कुछ लोग उत्तेजित भी हुए थे | पुलिस ने जुलूस को रोका था और दो-चार को मारा-पीटा भी था | हम सबको एक ही जेल में और एक ही कोठरी में रखा गया, इससे हम लोग बहुत खुश हुए |

शाम के ६ बजे हमारी कोठरी का दरवाजा बन्द कर दिया गया | दक्षिण अफ्रीका में जेलों की कोठरियों के दरवाजों में लोहे के सीकचे नहीं होते | दीवाल में ठेठ ऊपर एक छोटासा जाली वाला झरोखा हवा के आने-जाने के लिए बना होता हैं | इसलिए दरवाजा बन्द होने पर हमें ऐसा लगा, मानो हम किसी तिजोरी में बन्द कर दिये गये हों | पाठक देखेंगे कि जेल के अधिकारियों ने जो आदर-सत्कार रामसुन्दर पंडित का किया था वैसा हम लोगों का नहीं किया | इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं हैं | रामसुन्दर तो प्रथम सत्याग्रही क़ैदी था | इससे सत्ताधारियों को इस बात का पूरा ख्याल भी नहीं रहा होगा कि उसके साथ कैसा बरताव किया जाए | हमारी संख्या काफ़ी बड़ी थी और दूसरों को पकड़ने का इरादा सरकार का था ही, इसलिए हमें हबशियों के वार्ड में रखा गया था | दक्षिण अफ्रीका में क़ैदियों के दो ही विभाग होते हैं : गोरे और काले (हबशी); और हिन्दुस्तानी क़ैदियों की गिनती हबशी विभाग में होती हैं | मेरे साथियों को भी मेरे जितनी ही सादी क़ैद की सजा मिली थी |

दूसरे दिन सुबह हमें पता चला कि सादी क़ैद वालों को अपने कपड़े पहन रखने का अधिकार होता हैं; और यदि वे अपने कपड़े नहीं पहनना चाहें तो सादी क़ैद वालों के लिए जो खास पोशाक होती हैं वह उन्हें दे दी जाती हैं | हमने यह निर्णय किया था कि घर की पोशाक जेल में पहनना अनुचित होगा, वहाँ जेल की पोशाक पहनने में ही हमारी शोभा हैं | अपना यह निर्णय हमने जेल-अधिकारियों को बता दिया | इसलिए हमें सादी क़ैद वाले हबशी क़ैदियों की पोशाक दी गई | लेकिन सादी क़ैद वाले सैकड़ों क़ैदी दक्षिण अफ्रीका के जेलों में कभी होते ही नहीं | इसलिए जब सादी क़ैद वाले दूसरे हिन्दुस्तानी जेल में आने लगे तब सादी क़ैद के कपड़े कम पड़ गये ! कपड़ों के बारेमें हमें कोई झगड़ा नहीं करना था, इसलिए कड़ी क़ैद की सजा पाने वाले क़ैदियों के कपड़े पहनने में

हमने कोई आनाकानी नहीं की | बाद में आने वाले कुछ लोगों ने ऐसे कपड़े पहनने के बजाय अपने ही कपड़े पहनना पसंद किया | यह मुझे अच्छा तो नहीं लगा, परन्तु ऐसे मामले में आग्रह करना मुझे उचित न लगा |

दूसरे अथवा तीसरे दिन से सत्याग्रही क़ैदी बड़ी संख्या में आने लगे थे | वे जान-बूझकर गिरफ्तार होते थे | उनमें से अधिकतर लोग फेरी लगाने वाले ही थे | दक्षिण अफ्रीका में हर फेरी लगाने वाले व्यक्ति को-फिर वह गोरा हो या काला – फेरी का परवाना लेना होता हैं, वह परवान हमेशा अपने साथ रखना होता हैं और पुलिस माँगे तब उसे दिखाना होता हैं | लगभग रोज ही कोई न कोई पुलिस का जवान ऐसे परवाने माँगता था और न बताने वालों को गिरफ्तार करता था | हमारी गिरफ़्तारी के बाद कौम ने जेलों को सत्याग्रही क़ैदियों से भर देने का निश्चय किया | फेरी वाले लोग इसमें सबसे आगे रहे | उनके लिए गिरफ्तार होना आसान भी था | उन्हें केवल परवाने बताने से इनकार करना होता था; उसके बाद उनका गिरफ्तार होना निश्चित था | एक हफ्ते में इस तरह गिरफ्तार होने वाले सत्याग्रही क़ैदियों की संख्या १०० से अधिक हो गई | और थोड़े-बहुत क़ैदी तो रोज ही आते थे, इसलिए हमें बग़ैर अखबार के ही सारे समाचार मिल जाते थे | वे रोज के समाचार अपने साथ लाते थे | जब बड़ी संख्या में सत्याग्रही गिरफ्तार किये जाने लगे तब या तो मजिस्ट्रेटों का धीरज खूट गया अथवा – जैसा कि हमने माना – सरकार की ओर से मजिस्ट्रेटों को सूचना की गई कि आगे से सत्याग्रहियों को सादी क़ैद की सजा दी ही न जाए, केवल कड़ी क़ैद की सजा ही दी जाए | जो भी हो, लेकिन अब सबको सख्त मेहनत की क़ैद ही मिलने लगी | आज भी मुझे ऐसा लगता हैं कि कौम का अनुमान सही था | क्योंकि शुरू-शुरू के जिन मामलों में सादी क़ैद की सजा मिली उन्हें यदि छोड़ दें, तो उनके बाद उसी समय की लड़ाई में और भविष्य में भी समय-समय पर कौम द्वारा लड़ी गई लड़ाइयों में पुरुषों और स्त्रियों की भी किसी समय ट्रान्सवाल या नेटाल की किसी अदालत में सादी क़ैद की सजा नहीं दी गई | जब तक सारे मजिस्ट्रेटों को एक है प्रकार की सूचना या आदेश न मिलें हों तब तक प्रत्येक मजिस्ट्रेट का हर बार प्रत्येक पुरुष और स्त्री को कड़ी क़ैद की ही सजा देना केवल आकस्मिक संयोग माना जाए, तो यह लगभग एक चमत्कार ही कहा जाएगा |

जोहानिसबर्ग की जेल में सादी क़ैद की सजा वाले क़ैदियों को भोजन में सवेरे मक्का के आटे की लपसी या काँजी मिलती थीं | उसमें नमक डाला नहीं जाता था, परन्तु हर क़ैदी को अलग से थोड़ा नमक काँजी में मिलाने के लिए दिया जाता था | दोपहर बारह बजे चार औंस भात, ऊपर से नमक और एक औंस घी और चार औंस डबल-रोटी दी जाती थी | शाम को मक्का के आटे की कांजी और उसके साथ थोड़ा साग और साग में भी मुख्यत: आलू दिये जाते थे | आलू छोटे होते तो दो दिये जाते और बड़े होते तो एक दिया जाता था | इतने भोजन से किसी का भी पेट नहीं भरता था | चावल चिकने और गीले पकाए जाते थे | हमने जेल के डॉक्टर से थोड़े मसाले की माँग की और कहा कि हिन्दुस्तान की जेलों में क़ैदियों को मसाला मिलता हैं | डॉक्टर ने कड़ा उत्तर दिया : "यह हिन्दुस्तान नहीं हैं | क़ैदी के लिए स्वाद नहीं होता, इसलिए मसाला भी नहीं हो सकता |" हमने दाल

की माँग की और कारण में यह बताया कि जेल के भोजन में स्नायुओं को पुष्ट करने वाले कोई तत्त्व नहीं हैं | इस पर डॉक्टर ने कहा : "क़ैदियों को डॉक्टरी दलील नहीं करनी चाहिए | आपको स्नायु-पोषक भोजन दिया जाता हैं, क्योंकि सप्ताह में दो बार आपको मक्का के बदले में शाम के भोजन में उबली हुई मटर दी जाती है |" यदि मनुष्य का पेट एक हफ्ते या पखवारे में अलग-अलग समय पर मिलने वाले अलग-अलग तत्वों से युक्त भोजन में से शरीर के लिए आवश्यक तत्व खींच लेने की शक्ति रखता हों, तब तो डॉक्टर का यह तर्क सही था | सच पूछा जाए तो डॉक्टर की इच्छा हमारी सुविधा का ख्याल करने की थी ही नहीं | जेल-सुपरिन्टेन्डेन्ट ने हमारी माँग के अनुसार अपना भोजन हमें स्वयं बनाने की इजाजत दे दी | अपने रसोइये के रूप में हमने थंबी नायडू का चुनाव किया | हमारा खाना बनाने के सिलसिले में उन्हें जेल-अधिकारियों से अनेक बार झगड़ना पड़ता था | साग तौल में कम दिया जाता तो वे पुरे तौल की माँग करते थे, दूसरी चीजों के बारेमें भी यही होता था | सागवाले दिनों में, जो सप्ताह में दो दिन होते थे, हम दो बार अपना भोजन बनाते थे और दूसरे दिनों में एक बार बनाते थे, क्योंकि केवल दोपहर के भोजन के लिए ही हमें दूसरी चीजें पकाने की इजाजत दी गई थी | भोजन बनाने का काम हमारे हाथ में आया उसके बाड़ा हम कुछ संतोष से भोजन करने लगे |

परन्तु ऐसी सुविधायें प्राप्त करने में हमें सफलता मिली या न मिली, फिर भी हम में से कोई जेल की अवधि पूर्ण प्रसन्नता और शांति से व्यतीत करने के निश्चय से डिगा नहीं | सत्याग्रही क़ैदियों की संख्या बढ़ते बढ़ते १५० से ऊपर चली गई थी | हम सब सादी क़ैद की सजा पाये हुए क़ैदी थे, इसलिए अपनी कोठरी वगैरा साफ रखने के सिवा दूसरा कोई काम हमें करना नहीं पड़ता था | इसलिए हमने जेल-सुपरिन्टेन्डेन्ट से कोई काम माँगा | उसने कहा : "यदि मैं आपको काम दूँ, तो वह मेरा अपराध माना जाएगा | इसलिए मैं लाचार हूँ | लेकिन आप लोग अपने स्थान को साफ-सुथरा रखने में चाहे जितना समय लगा सकते हैं |" इस पर हमने कवायद जैसी कसरत की माँग की, क्योंकि हमने देखा था कि सख्त मेहनत की सजा पाये हुए हबशी क़ैदियों से भी कवायद कराई जाती थी | सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उत्तर में कहा : "आपके वार्डर को समय मिले और वह आपसे यह कसरत कराये, तो मैं विरोध नहीं करूँगा | परन्तु मैं ऐसा करने के लिए उसे मजबूर नहीं कर सकता | उसे बहुत काम करना पड़ता हैं और आप लोगों के आशातीत संख्या में आ जाने से उसका काम और ज़्यादा बढ़ गया हैं |" हमारा वार्डर बहुत भला आदमी था | उसे तो केवल सुपरिन्टेन्डेन्ट की इजाजत ही चाहिए थी | वह बड़ी दिलचस्पी से हमें रोज सुबह कवायद कराने लगा | कवायद की कसरत हम अपनी कोठरियों के छोटे से आँगन में ही कर सकते थे, इसलिए हमें सिर्फ चौगिर्द चक्कर ही लगाना होता था | वह भला वार्डर जो कुछ सिखा जाता उसके अनुसार हमें कवायद कराना एक पठान साथी नवाबखान जारी रखते थे | वे कवायद के अंग्रेजी शब्दों का उर्दू उच्चारण करके हमें खूब हँसाते थे | 'स्टैन्ड एट ईज' का उच्चारण वे 'टंडलीस' करते थे ! कुछ दिनों तक तो

हमारी समझ में ही नहीं आया कि वह कौन-सा हिन्दुस्तानी शब्द होगा | बाद में हम समझ गये कि वह हिन्दुस्तानी नहीं बल्कि नवाबखानी अंग्रेजी थी !

२१. पहला समझौता

इस तरह जेल में हम लगभग १५ दिन रहे होंगे कि बाहर से आने वाले नये लोग यह समाचार लाने लगे कि सरकार के साथ समझौता करने की कोई बातचीत चल रही हैं | दो तीन दिन बाद जोहानिसबर्ग के *ट्रान्सवाल लीडर* नामक दैनिक के संपादक श्री आल्बर्ट कार्टराइट मुझसे जेल में मिलने आये | उस समय जोहानिसबर्ग से निकलने वाले सारे दैनिकों का स्वामित्व सोने की खान के किसी न किसी गोरे मालिक के हाथ में था | उनके विशेष स्वार्थ का विषय ने हो ऐसे हर एक सार्वजनिक प्रश्न पर संपादक अपने स्वतंत्र विचार प्रकट कर सकते थे | इन अखबारों के संपादक विद्वान और प्रख्यात व्यक्तियों में से ही चुने जाते थे | उदाहरण के लिए, *दि डेली स्टार* नामक दैनिक के संपादक एक समय लॉर्ड मिल्नर के निजी सचिव रह चुके थे | और बाद में वे *दि टाइम्स* के संपादक श्री बकल का स्थान ग्रहण करने के लिए इंग्लैंड गये थे | श्री आल्बर्ट कार्टराइट सुयोग्य होने के साथ ही अत्यन्त उदार मन के पुरुष थे | उन्होंने अपने अग्रलेखों में भी लगभग हमेशा हिन्दुस्तानियों का समर्थन किया था | उनके और मेरे बीच गहरी मित्रता हो गई थी और मेरे जेल जाने के बाद वे जनरल स्मट्स से मिले थे | जनरल स्मट्स ने समझौते की बातचीत के लिए उनकी मध्यस्थता स्वीकार की थी | हिन्दुस्तानी कौम के नेताओं से भी वे मिल चुके थे | नेताओं ने उन्हें एक ही उत्तर दिया "कानून की बारीकियों को हम समझ नहीं सकते | यह हो ही नहीं सकता कि गांधी जेल में रहे और हम समझौते की बातचीत करें | हम सरकार के साथ समझौता करना तो चाहते है | लेकिन अगर हमारे कौम के लोगों को जेल में बन्द रखकर सरकार समझौता करना चाहती हो, तो आपको गांधी से जेल में मिलना चाहिए | वे जो कुछ करेंगे उसे हम स्वीकार कर लेंगे |"

इस प्रकार श्री कार्टराइट मुझसे मिलने आये | अपने साथ वे जनरल स्मट्स द्वारा तैयार किया हुआ या उनका पसन्द किया हुआ समझौते का मसौदा भी लाये थे | वह मसौदा मुझे पसन्द नहीं आया | उसकी भाषा अस्पष्ट थी | फिर भी एक परिवर्तन के साथ मैं स्वयं तो उस मसौदे पर हस्ताक्षर करने को तैयार था | लेकिन मैंने श्री कार्टराइट से कहा कि बाहर के हिन्दुस्तानियों की इजाजत होते हुए भी जेल के अपने साथियों का मत लिए बिना मैं समझौते के मसौदे पर हस्ताक्षर नहीं कर सकता |

उस मसौदे का आशय इस प्रकार था : हिन्दुस्तानियों को स्वेच्छा से अपने परवाने बदल लेने चाहिए | यह बात कानून के मातहत नहीं कराई जा सकती | परवाने का रूप हिन्दुस्तानियों के साथ सलाह-मशविरा करके सरकार तैयार करेगी और यदि हिन्दुस्तानी कौम का मुख्य भाग स्वेच्छा से परवाने ले लेगा, तो सरकार खूनी कानून रद कर देगी और स्वेच्छा से लिए गये परवानों को कानूनी मान्यता देने के लिए नया कानून पास करेगी | समझौते के इस मसौदे में खूनी कानून रद करने की बात स्पष्ट नहीं थी | अपनी दृष्टि से यह बात स्पष्ट करने जितना परिवर्तन मैंने मसौदे में सुझाया |

श्री आल्बर्ट कार्टराइट को इतना-सा परिवर्तन करना भी अच्छा नहीं लगा | उन्होंने कहा : "इस मसौदे को जनरल स्मट्स ने अंतिम माना है | मैंने स्वयं भी इसे पसंद किया हैं | पर इतना मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप सब स्वेच्छा से परवाने ले लेंगे, तो खूनी कानून रद हुआ ही समझिए |"

मैंने उत्तर में कहा : "समझौता हो या न हो, किन्तु आपकी सहानुभूति और सहायता के लिए हम सदा ही आपके ऋणी रहेंगे | मैं मसौदे में एक भी अनावश्यक परिवर्तन नहीं करना चाहता | जिस भाषा से सरकार की प्रतिष्ठा की रक्षा हो, उसका मैं विरोध नहीं करूँगा | परन्तु जहाँ मुझे स्वयं अर्थ के बारेमें शंका हो, वहाँ तो मुझे भाषा का परिवर्तन सुझाना ही चाहिए | और अंत में यदि समझौता होना ही हो, तो दोनों पक्षों को मसौदे में परिवर्तन करने का अधिकार अवश्य होना चाहिए | जनरल स्मट्स को ऐसा कहकर हमारे सामने पिस्तौल नहीं रखनी चाहिए कि 'समझौते का यह मसौदा अंतिम हैं |' खूनी कानून के रूप में एक पिस्तौल तो हम पर तनी ही हुई हैं; तब फिर इस दूसरी पिस्तौल का हम पर क्या असर होने वाला है ?"

श्री कार्टराइट मेरे इस तर्क का विरोध नहीं कर सके और उन्होंने मसौदे में मेरा सुझाया हुआ परिवर्तन जनरल स्मट्स के सामने रखने की बात स्वीकार की |

मैंने जेल के अपने साथियों के साथ विचार-विमर्श किया | उन्हें भी मसौदे की भाषा पसंद नहीं आई | परन्तु इस बात से वे सहमत हुए कि मेरा सुझाया हुआ परिवर्तन यदि जनरल स्मट्स स्वीकार करें, तो सरकार से समझौता कर लिया जाएँ | जो नये सत्याग्रही क़ैदी जेल में आये थे, वे मेरे लिए कौम के बाहरी नेताओं का यह संदेश लाये थे कि उचित समझौता होता हो, तो उनकी संमति की राह देखे बिना मैं समझौता कर लूँ | उस मसौदे पर मैंने श्री क्विन और थंबी नायडू के हस्ताक्षर कराये और हम तीनों के हस्ताक्षरों वाला मसौदा श्री कार्टराइट को सौंप दिया |

दूसरे या तीसरे दिन, ३० जनवरी १९०८ को, जोहानिसबर्ग के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री वर्नन मुझे जनरल स्मट्स से मिलने के लिए प्रिटोरिया ले गये | हम दोनों के बीच खूब बातें हुई | श्री कार्टराइट के साथ जनरल स्मट्स की जो बातचीत हुई थी वह भी उन्होंने मुझे कह सुनाई | मेरे जेल जाने के बाद भी हिन्दुस्तानी कौम अपनी बात पर ड़टी रही, इसके लिए उन्होंने मुझे बधाई दी और कहा : "मेरे मन में कभी आपके लोगों के लिए नाराजी या नफरत हो ही नहीं सकती | आप जानते ही है कि मैं भी बैरिस्टर हूँ | मेरे समय में कुछ हिन्दुस्तानी भी मेरे साथ पढ़ते थे | मुझे केवल अपने कर्तव्य का पालन करना हैं | गोरे इस कानून की माँग करते हैं | और आप यह भी स्वीकार करेंगे कि इस कानून की माँग करने वालों में मुख्यत: बोअर नहीं परन्तु अंग्रेज हैं | आपने जो परिवर्तन मसौदे में सुझाया हैं, उसे मैं स्वीकार करता हूँ | मैंने जनरल बोथा के साथ भी इस विषय में बात कर ली हैं | और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप में से अधिकांश लोग यदि स्वेच्छा से परवाने ले लेंगे तो मैं एशियाटिक

एक्ट को रद कर दूँगा | स्वेच्छा से लिए हुए परवानों को कानूनी रूप देनेवाले कानून का मसौदा मैं तैयार करूँगा तब उसकी एक प्रति आपकी आलोचना के लिए भेजूँगा | मैं नहीं चाहता कि यह लड़ाई फिर छिड़े; और मैं आप लोगों की भावनाओं का आदर करना चाहता हूँ |"

इस प्रकार हमारी बातचीत होने के बाद जनरल स्मट्स उठे | मैंने उनसे पूछा : "अब मुझे कहाँ जाना हैं ? और मेरे साथ के दूसरे सत्याग्रही क़ैदियों को क्या होगा ?"

तो जनरल स्मट्स हँसते हुए बोले : "आप तो अभी से मुक्त हैं | और आपके साथियों को कल छोड़ देने का टेलीफोन मैं करता हूँ | लेकिन मेरी इतनी सलाह ज़रूर हैं कि आप लोग ज़्यादा सभायें और प्रदर्शन ने करें | आप ऐसा करेंगे तो उससे सरकार की स्थिति विषम हो जाएगी |"

मैंने उत्तर दिया : "आप विश्वास रखें कि सिर्फ जलसे के लिए एक भी जलसा मैं नहीं होने दूँगा | लेकिन सरकार के साथ कैसे समझौता हुआ है, उसका स्वरूप क्या है और समझौता होने से हिन्दुस्तानियों की जिम्मेदारी कितनी ज़्यादा बढ़ गई हैं, ये सब बातें कौम के लोगों को समझाने के लिए सभायें तो मुझे करनी ही पड़ेगी |"

जनरल स्मट्स ने कहा : "ऐसी सभायें तो आप जितनी चाहे उतनी कर सकते हैं | मेरे आशय को आपने समझ लिया, इतना बस हैं |"

उस समय शाम के लगभग ७ बजे होंगे | मेरे पास एक पाई भी नहीं थी | जनरल स्मट्स के सचिव ने मुझे जोहानिसबर्ग जाने के लिए रेल-किराये के पैसे दिये | प्रिटोरिया के हिन्दुस्तानियों के पास रूककर उनके समक्ष समझौते की घोषणा करना ज़रूरी नहीं था | कौम के नेता सब जोहानिसबर्ग में थे | हमारा केन्द्रीय कार्यालय भी वहीं था | जोहानिसबर्ग जाने वाली एक ही ट्रेन बाकी थी; और मैं उसे पकड़ सका था |

२२. समझौते का विरोध और मुझ पर हमला

रात करीब ९ बजे मैं जोहानिसबर्ग पहुँचा | सीधा अध्यक्ष सेठ ईसप मियां के घर गया | मुझे प्रिटोरिया ले जाने का पता उन्हें चल गया था, इसलिए शायद वे मेरी प्रतीक्षा कर ही रहे थे | लेकिन मुझे अकेला आया देखकर सब लोगों को आश्चर्य और आनन्द भी हुआ | मैंने सुझाया कि जितने भी लोगों को बुलाया जा सके उतनों को बुलाकर इसी समय एक सभा करनी चाहिए | ईसप मियाँ और दूसरे मित्रों को भी मेरा सुझाव पसन्द आया | अधिकांश लोग एक ही मुहल्ले में रहने वाले थे, इसलिए सबको सभा की सूचना करना कठिन नहीं था | अध्यक्ष का मकान मसजिद के पास ही था | और हमारी सभायें सामान्यत: मसजिद के मैदान में ही होती थीं | इसलिए सभा की कोई खास व्यवस्था करना ज़रूरी नहीं था | मंच पर केवल एक बत्ती प्रकाश के लिए रखना काफ़ी था | रात के लगभग ११ या १२ बजे यह सभा हुई | समय बहुत थोड़ा था, फिर भी करीब एक हजार आदमी सभा में आ गये थे |

सभा से पहले कौम के जो नेता उपस्थित थे उन्हें मैंने समझौते की शर्तें समझाई थीं | कुछ नेताओं ने समझौते का विरोध किया | लेकिन मेरी सारी बातें सुनने के बाद सब लोग समझौते को समझ सके थे | परन्तु एक शंका सबके मन में थी : "जनरल स्मट्स अगर दगा करें तो क्या होगा ? खूनी कानून अमल में भले न आये, लेकिन हमारे सिर पर वह तलवार की तरह लटकता तो रहेगा ही | इस बीच स्वेच्छा से परवाने लेकर अपने हाथ कटवा देने का अर्थ होगा हमारे पास उस कानून का विरोध करने के लिए जो एक महान शस्त्र हैं उसे स्वयं छोड़ देना ! यह तो जान-बूझकर शत्रु के पंजे में फँसने जैसा होगा | सच्चा समझौता तो यह कहा जाएगा कि पहले खूनी कानून रद हो और बाद में हम स्वेच्छा से परवाने लें |" यह दलील मुझे अच्छी लगी | दलील करने वालों की तीक्षण बुद्धि और हिम्मत के लिए मैंने गौरव अनुभव किया और मुझे लगा कि सत्याग्रही ऐसे ही होने चाहिए |

कौम के इन नेताओं की दलील के जवाब में मैंने कहा : "आपकी दलील बहुत सुन्दर है | उस पर गंभीर विचार किया जाना चाहिए | खूनी कानून रद होने के बाद ही हम स्वेच्छा से परवाने लें, इसके जैसी सुन्दर बात और क्या हो सकती है ? लेकिन इसे मैं समझौते का लक्षण नहीं मानूँगा | समझौते का अर्थ ही यह है कि जहाँ सिद्धान्त के विषय में मतभेद न हो वहाँ दोनों पक्ष एक-दूसरे को काफ़ी रिआयतें और छूट दें | हमारा सिद्धान्त यह है कि हम खूनी कानून के सामने सिर झुकाकर उसके अनुसार तो ऐसा भी कोई काम न करें, जिसे करना आपत्तिजनक न हो | इस सिद्धान्त पर हमें अटल और अचल रहना हैं | दूसरी ओर, सरकार का सिद्धान्त यह है कि ट्रान्सवाल में हिन्दुस्तानियों के नाजायज प्रवेश को रोकने के लिए परिचय की निशानियों वाले ऐसे परवाने बहुसंख्यक हिन्दुस्तानी स्वेच्छा से ले लें, जिनकी अदला-बदली न हो सके; और इस तरह गोरों की शंका को मिटा कर उन्हें निर्भय कर दें | सरकार इस सिद्धान्त को कभी नहीं छोड़ सकती | सरकार के इस सिद्धान्त को हमने आज तक

अपने आचरण से स्वीकार भी किया हैं | इसलिए इस सिद्धान्त का विरोध करने जैसा हमें लगे, तो भी जब तक कोई नये कारण पैदा नहीं होते तब तक हम उसके खिलाफ लड़ नहीं सकते | हमारी सत्याग्रह की लड़ाई इस सिद्धान्त को काटने के लिए नहीं हैं, परन्तु खूनी कानून के काले कलंक को मिटाने के लिए हैं | इसलिए अब यदि हम अपनी कौम में प्रकट हुए नये और प्रचंड बल का उपयोग कोई नई वस्तु प्राप्त करने में करें, तो उससे सत्याग्रहियों के नाते हमारे सत्य को कलंक लगेगा | अत: सच पूछा जाए तो हम इस समझौते का विरोध नहीं कर सकते |

"अब हम इस दलील पर विचार करें कि खूनी कानून रद हो उसके पहले स्वेच्छा से परवाने लेकर हम अपने हाथ क्यों कटवा दें, शस्त्रहीन क्यों बन जाएँ ? इसका उत्तर तो बहुत सीधा हैं | सत्याग्रही डर को सदा के लिए नमस्कार कर देता हैं | इसलिए वह विरोधी पर विश्वास करने में कभी नहीं डरता | बीस बार विश्वासघात किया गया हो तो भी सत्याग्रही इक्कीसवीं बार विरोधी पर विश्वास करने को तैयार रहता हैं; क्योंकि सत्याग्रही तो अपनी नाव विश्वास से ही चलाता हैं | और विरोधी पर विश्वास रखने से सत्याग्रही अपने हाथ कटवा देता हैं, यह कहना सत्याग्रह के सिद्धान्त को न समझने के बराबर हैं |

"मान लीजिए की हम लोग स्वेच्छा से नये परवाने ले लेते हैं; और उसके बाद सरकार विश्वासघात करती हैं और खूनी कानून को रद नहीं करती | तो क्या उस समय हम सत्याग्रह नहीं कर सकेंगे ? ऐसे परवाने ले लेने के बाद भी यदि हम उन्हें ठीक समय पर बताने से इनकार कर दें, तो उन परवानों की क्या क़ीमत रह जाएगी ? और यदि हम ऐसा करें तो जो हजारों हिन्दुस्तानी गुप्त रीति से ट्रान्सवाल में घुस जाएँ उनके बीच और हम लोगों के बीच सरकार भेद कैसे कर सकेगी ? इसलिए कोई कानून हो या न हो, किसी भी स्थिति में सरकार हमारी सहायता और सहयोग के बिना हम पर कभी अंकुश नहीं रख सकती | कानून का अर्थ इतना ही हैं कि सरकार जो अंकुश हम पर लगाना चाहती हैं उसे हम स्वीकार न करें, तो हम सजा के पात्र माने जाते हैं | और सामान्यत: यह होता हैं कि सजा के डर से मानव प्राणी अंकुश के वश में हो जाता हैं | परन्तु सत्याग्रही इस सामान्य नियम का उल्लंघन करता हैं | यदि वह अंकुश के अधीन होता भी हैं तो कानून की सजा के डर से नहीं, परन्तु यह समझ कर स्वेच्छा से ऐसा करता हैं कि सरकारी अंकुश को मानने में लोक-कल्याण हैं | और यही स्थिति आज हमारी इन नये परवानों के बारेमें हैं | इस स्थिति को सरकार बड़े से बड़ा विश्वासघात करके भी बदल नहीं सकती | इस स्थिति को उत्पन्न करने वाले हम लोग हैं और इसे बदल भी हमी सकते हैं | जब तक हमारे हाथों में सत्याग्रह का हथियार हैं तब तक हम स्वतंत्र और निर्भय हैं |

"और यदि कोई मुझसे यह कहे कि आज कौम में जो बल आया हैं वह फिर से आने वाला नहीं हैं, तो मैं उसे यह उत्तर दूंगा कि वह सत्याग्रह को नहीं समझता | उसके कहने का अर्थ तो यह होगा कि आज कौम के लोगों में

जो बल प्रकट हुआ हैं वह सच्चा नहीं हैं, बल्कि नशे जैसा झूठा और क्षणिक हैं | यदि यह बात सच हो, तो हम जीतने के बिलकुल अधिकारी नहीं हैं | और यदि जीतेंगे तो हम जीती हुई बाजी भी हार जाएँगे | मान लीजिए कि सरकार खूनी कानून को रद कर देती है और उसके बाद हम स्वेच्छा से परवाने लेते हैं | यह भी मान लीजिए कि उसके बाद सरकार वही खूनी कानून दुबारा पास करती हैं और हिन्दुस्तानियों को परवाने लेने के लिए मजबूर करती हैं | तो उस समय सरकार को ऐसा करने से कौन रोक सकता हैं ? और यदि आज हमें अपने बल के बारेमें शंका हो, तो उस समय भी हमारी ऐसी ही दुर्दशा होगी | इसलिए चाहे जिस दृष्टि से हम इस समझौते की जाँच करें, फिर भी यह कहा जा सकता हैं कि ऐसा समझौता करने में हमारी कौम को कोई नुकसान नहीं होगा, बल्कि लाभ ही होगा | मैं तो यह भी मानता हूँ कि हमारी नम्रता और नयायबुद्धि को समझने के बाद हमारे विरोधी भी अपना विरोध छोड़ देंगे अथवा उसे कम कर देंगे |"

इस प्रकार उस छोटे से दल में जिन एक-दो व्यक्तियों ने समझौते का विरोध किया, उनके मनका तो मैं पूरी तरह समाधान कर सका | लेकिन जो तूफान मध्यरात्रि की बड़ी सभा में फूटने वाला था, उसकी तो मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी | सभा में आये हुए लोगों को मैंने समझौते की सारी शर्तें समझायी और कहा :

"इस समझौते से कौम की जिम्मेदारी बहुत अधिक बढ़ गई हैं | हम धोके से या गलत ढंग से एक भी हिन्दुस्तानी को ट्रान्सवाल में दाखिल नहीं करना चाहते, यह दिखाने के लिए हमें स्वेच्छा से परवाने लेने होंगे | अगर कोई आदमी परवाना न ले, तो अभी तो उसे कोई सजा भी नहीं होगी | लेकिन परवाने न लेने का अर्थ यही होगा कि कौम समझौते को स्वीकार नहीं करती | बेशक, यह ज़रूरी हैं कि आप लोग इस समय सभा में अपने हाथ ऊँचे करके इस समझौते का स्वागत करें | मैं यह चाहता भी हूँ | परन्तु इसका अर्थ यही होगा, और मैं यही करूँगा, कि सभा में हाथ ऊँचे करने वाले सब लोग नये परवाने देने की व्यवस्था होते ही परवाने लेने लग जाएँगे | और आज तक जिस प्रकार आप में से अनेक लोग परवाना न लेने की बात समझाने के लिए स्वयंसेवक बने थे, उसी प्रकार अब परवान लेने की बात समझाने के लिए स्वयंसेवक बनेंगे | जब अपना कर्तव्य हम पूरा कर चुकेंगे, तभी हम इस जीत का फल वास्तव में भोग सकेंगे |"

ज्यों ही मैंने अपना भाषण पूरा किया, एक पठान मित्र (मीर-आलम) खड़े हुए और उन्होंने मुझ पर प्रश्नों की झड़ी लगा दी : "क्या इस समझौते के अनुसार हमें दस अंगुलियों की छाप देनी पड़ेगी ?"

"हाँ भी और नहीं भी | मेरी सलाह तो यही होगी कि सब लोगों को दस अंगुलियों की छाप देनी चाहिए | लेकिन जिनका इस बात से धार्मिक विरोध हो या जो अंगुलियों की छाप देने में अपना अपमान मानते हों, वे छाप न दें तो भी चलेगा |"

"आप खुद क्या करेंगे ?"

"मैंने तो दस अंगुलियों की छाप देने का निश्चय कर ही लिया हैं | मैं छाप न दूँ और दूसरों को छाप देने की सलाह दूँ, यह मुझसे कभी नहीं हो सकता |"

"आप दस अंगुलियों की छाप के बारेमें बहुत लिखते थे | अंगुलियों की ऐसी छाप तो केवल गुनहगारों से ही ली जाती हैं, ऐसा सिखाने वाले भी आप ही थे | और कौम की यह लड़ाई दस अंगुलियों की छाप की लड़ाई हैं, यह बात भी अपने ही कही थी | वह सब आज कहाँ चला गया ?"

"मैंने दस अंगुलियों की छाप के बारेमें पहले जो-जो बातें लिखी थीं उन्हें आज भी मैं वैसी ही मानता हूँ | मैं आज भी यह कहता हूँ कि दस अंगुलियों की छाप हिन्दुस्तान में गुनहगार जातियों से ही ली जाती हैं | खूनी कानून के मातहत दस अंगुलियों की छाप देना तो दूर रहा, परन्तु दस्तखत देने में भी पाप हैं – ऐसा मैंने पहले भी कहा हैं और आज भी कहता हूँ | यह बात भी सच हैं कि दस अंगुलियों की छाप पर मैंने बहुत ज़्यादा जोर दिया था; और मेरा विश्वास हैं कि वह जोर देने में भी मैंने बुद्धिमानी की थी | खूनी कानून की जिन छोटी-छोटी बातों पर हम आज तक अमल करते आये हैं, उन पर जोर देकर कौम को समझाने के बजाय दस अंगुलियों की छाप जैसी महत्त्वपूर्ण और नई बात पर जोर देना ज़्यादा आसान था | और मैंने देखा कि कौम इस बात को तुरन्त समझ गई |

"लेकिन आज की परिस्थितियाँ दूसरी हैं | जो बात कल तक एक अपराध थी वह आज की नई और बदली हुई परिस्थितियों में सज्जनता अथवा कुलीनता की निशानी बन गई हैं, यह मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ | अगर आप मुझे सलाम करने के लिए मजबूर करें और मैं आपको सलाम करूँ, तो मैं आपकी, लोगों की और खुद अपनी नजर में भी गिर जाऊँगा | लेकिन अगर मैं आपको अपना भाई या मनुष्य मानकर स्वेच्छा से सलाम करूँ, तो उससे मेरी नम्रता और कुलीनता प्रकट होगी और खुदा के दरबार में भी वह मेरी नेकी हीं मानी जाएगी | इसी दलील के आधार पर मैं कौम को दस अंगुलियों की छाप देने की सलाह देता हूँ |"

"हमने सुना हैं कि आपने कौम को धोखा दिया हैं और १५००० पौंड लेकर कौम को जनरल स्मट्स के हाथों बेच दिया हैं | न तो हम कभी दस अंगुलियों की छाप देंगे और न दूसरे किसी को कभी देने देंगे | मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि जो आदमी एशियाटिक ऑफिस में सबसे पहले जाएगा, उसे मैं जान से मार दूँगा|"

मैंने कहा : "पठान मित्रों की भावनाओं को मैं समझ सकता हूँ | मेरा विश्वास हैं कि कौम का एक भी आदमी इस बात को नहीं मानेगा कि मैं रिश्वत खाकर कौम को बेच सकता हूँ | यह बात मैं पहले ही समझा चुका हूँ कि जिन लोगों ने दस अंगुलियों की छाप न देने की सौगंध खाई हैं, उन्हें कोई छाप देने के लिए मजबूर नहीं कर सकता | और जो पठान या दूसरे लोग अंगुलियों की छाप दिये बिना परवाना लेना चाहेंगे, उन्हें ऐसे परवाने दिलाने में मैं

पूरी-पूरी मदद करूँगा | मैं इस बात का विश्वास दिलाता हूँ कि दस अंगुलियों की छाप दिये बिना वे ऐच्छिक परवाने ले सकेंगे |

"लेकिन मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि जान से मार डालने की धमकी मुझे पसंद नहीं हैं | मैं यह भी मानता हूँ कि किसी को मार डालने की कसम खुदा के नाम पर नहीं खाई जा सकती | इसलिए मैं तो यही समझूँगा कि इन मित्र ने गुस्से के क्षणिक आवेश में आकर ही जान से मार डालने की कसम खाई हैं | लेकिन वे मित्र अपनी कसम पर अमल करें या न करें, फिर भी यह समझौता करने वाले एक मुख्य व्यक्ति के नाते और कौम के सेवक के नाते मेरा यह स्पष्ट कर्तव्य है कि अंगुलियों की छाप सबसे पहले मैं ही दूँ | और मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगा कि वह मुझे ही सबसे पहले यह काम करने दे | मरना तो सबके नसीब में लिखा ही हैं | रोग से मरने या ऐसे अन्य किसी कारण से मरने की अपेक्षा अपने किसी भाई के हाथों मरने में मुझे दुःख हो ही नहीं सकता | और यदि उस समय भी मैं जरा क्रोध न करूं या मारने वाले से द्वेष न करूं, तो मैं जानता हूँ कि मेरा तो भविष्य हीं सुधरेगा; और मुझे मारने वाला भी बाद में समझ लेगा कि मैं बिलकुल निर्दोष था |"

उपर्युक्त प्रश्न मुझसे क्यों किये गये, इसका कारण समझाना ज़रूरी हैं | जो हिन्दुस्तानी खूनी कानून के वश हो गये थे उनके प्रति किसी तरह का वैरभाव तो नहीं रखा गया था, परन्तु उनके इस काम के खिलाफ स्पष्ट और कड़े शब्दों में बहुत कुछ कहा गया था और *इंडियन ओपीनियन* में खूब लिखा गया था | इससे कानून के वश हो जाने वालों का जीवन दुःखद अवश्य हो गया था | उन्होंने कभी यह सोचा हीं नहीं था कि कौम का बहुत बड़ा भाग अपनी प्रतिज्ञा पर अडिग खड़ा रहेगा और इस हद तक शक्ति दिखायेगा कि अंत में सरकार के साथ समझौता होने का भी दिन आयेगा | परन्तु जब १५० से अधिक सत्याग्रही जेल चले गये और सरकार तथा कौम के नेताओं के बीच समझौते की बातें चलने लगी, तब कानून के वश हो जाने वाले लोगों को और भी बुरा लगा, और उनमें कुछ ऐसे भी थे जो यह नहीं चाहते थे कि समझौता हो और यदि हो ही जाए तो उसे तोड़ने की भी वृत्ति रखते थे |

ट्रान्सवाल में रहने वाले पठानों की संख्या बहुत थोड़ी थी | मेरा ख्याल हैं कि सब मिलाकर वे ५० से ज़्यादा नहीं रहे होंगे | उनमें से अनेक पठान बोअर-युद्ध के समय सैनिकों के रूप में आये थे | और जिस प्रकार युद्ध के समय आये हुए अनेक गोरे सैनिक दक्षिण अफ्रीका में ही बस गये थे, उसी प्रकार सैनिकों के रूप में आये हुए पठान और अन्य हिन्दुस्तानी भी वहीं बस गये थे | इन पठानों में से कुछ मेरे मुवक्किल हो गये थे और दूसरी तरह भी मैं उनसे भलीभाँती परिचित हो गया था | पठान स्वभाव से बहुत ही भोले होते हैं; बहादुर तो वे होते ही हैं | मारना और मरना – यह उनकी नजर में बहुत मामूली बात हैं | और अगर उन्हें किसी पर गुस्सा आ जाए तो वे उसे पीटते हैं – उनकी अपनी भाषा में उसकी पीठ गरम करते हैं – और कभी-कभी तो जान से भी मार देते

हैं | और, ऐसा करने में वे बिलकुल निष्पक्ष रहते हैं | सगे भाई के साथ भी वे ऐसा ही बरताव करते हैं | ट्रान्सवाल में पठानों का समाज इतना छोटा था, फिर भी जब उनके बीच झगड़ा हो जाता था तब वे आपस में मार-पीट करते हीं थे | ऐसे मार-पीट के मामलों में कभी-कभी दोनों पक्षों के बीच मुझे शांति कायम करानी पड़ती थीं | उसमें भी जब कोई पठान किसी दूसरे पठान के साथ विश्वासघात करता, उस समय तो वे अपने गुस्से को काबू में रख ही नहीं पाते थे | तब न्याय पाने के लिए एकमात्र मार-पीट ही उनका कानून बन जाती थी |

ये पठान कौम की सत्याग्रह की लड़ाई में पूरा पूरा भाग लेते थे | उनमें से एक भी पठान खूनी कानून के सामने झुका नहीं था | उन्हें भुलावे में डालना आसान था | दस अंगुलियों की छाप के बारेमें उन लोगों में गलतफहमी पैदा करके उन्हें उभाड़ना जरा भी कठिन नहीं था | अगर मैंने रिश्वत न खाई हो, तो मैं दस अंगुलियों की छाप देने की बात उनसे क्यों कहूँ ? – इतना-सा संकेत उन पठानों में शंका पैदा करने के लिए काफ़ी था |

इसके सिवा, एक दूसरा पक्ष भी ट्रान्सवाल में था | वह पक्ष ऐसे हिन्दुस्तानियों का था, जो परवाना लिए बिना गुप्त रीति से ट्रान्सवाल में घुस आये थे अथवा जो गुप्त रीति से परवानों के बिना या झूठे परवाना के साथ हिन्दुस्तानियों को ट्रान्सवाल में दाखिल कराते थे | इस पक्ष का स्वार्थ इसी में था कि सरकार के साथ कौम का समझौता न हो | जब तक कौम की लड़ाई जारी रहती तब तक किसी को परवाना दिखाने की ज़रुरत नहीं थी, इसलिए यह पक्ष निर्भय बन कर अपना गंदा व्यापार चला सकता था और कौम की लड़ाई जारी रहे तब तक जेल में जाने से भी आसानी से बच सकता था | इस कारण से लड़ाई जितनी लम्बी चले उतना ही इस पक्ष के लोगों का लाभ था | इस प्रकार ये लोग भी पठानों के समझौते के खिलाफ भड़का सकते थे | अब पाठक समझ सकेंगे कि ये पठान एकाएक क्यों भड़क उठे थे |

परन्तु मध्यरात्रि के इन व्यंगपूर्ण प्रश्नों का सभा पर कोई असर नहीं हुआ | मैंने समझौते के बारेमें लोगों का मत माँगा था | अध्यक्ष और दूसरे नेता दृढ़ थे | पठानों के साथ हुए मेरे संवाद के बाद अध्यक्ष ने समझौते की शर्तें समझाने वाला और उसे स्वीकार करने की आवश्यकता बताने वाला अपना भाषण किया | इसके बाद उन्होंने सभा का मत लिया | जो दो चार पठान उस समय सभा में हाजिर थे, उनके सिवा सभी ने एकमत से समझौते को स्वीकार कर लिया | मैं दो या तीन बजे रात को घर पहुँचा | सोने का तो प्रश्न ही नहीं था, क्योंकि मुझे जल्दी उठकर दूसरे लोगों को छुड़वाने के लिए जेल पर जाना था | सुबह ७ बजे मैं वहाँ पहुँच गया | जेल-सुपरिन्टेन्डेन्ट को टेलीफोन से हुक्म मिल गया था और वे मेरी राह ही देख रहे थे | एक घंटे के भीतर सारे सत्याग्रही क़ैदी रिहा कर दिये गये | अध्यक्ष और दूसरे हिन्दुस्तानी उन सबको लिवाने आये थे | जेल से हमारा जुलूस पैदल ही सभास्थान पर गया | वहाँ फिर सभा हुई | वह दिन और दूसरे दों-चार दिन भोजन-समारंभों में और लोगों को समझौते की शर्तें समझाने में बीते |

जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे-वैसे एक ओर यदि समझौते के गूढ़ार्थ स्पष्ट से स्पष्टतर होते गये, तो दूसरी ओर गलतफहमी भी बढ़ती गई | उत्तेजना के कारणों की चर्चा तो हम ऊपर कर ही चुके हैं | उनके सिवा जनरल स्मट्स को कौम की ओर से लिखे गये पत्र में भी गलतफहमी का कारण मौजूद ही था | इसलिए लोगों द्वारा अनेक तरह की जो आपत्तियाँ उठाई जाती थीं उन्हें दूर करने में मुझे जितनी कठिनाई हुई, वह सत्याग्रह की लड़ाई के दिनों में अनुभव की हुई कठिनाई से कहीं ज़्यादा बड़ी थी | लड़ाई के समय हम जिसे अपना विरोधी या शत्रु मानते हैं, उसके साथ के हमारे व्यवहार में कठिनाइयाँ खड़ी होती हैं | लेकिन मेरा अनुभव यह हैं कि ऐसी कठिनाइयाँ आसानी से दूर की जा सकती हैं | उस समय आपस के झगड़े, अविश्वास, फूट आदि या तो होते ही नहीं, या तुलना में बहुत मामूली होते हैं | लेकिन लड़ाई खतम होने के बाद आपसी विरोध, अविश्वास, ईर्ष्या-द्वेष आदि – जो सामने खड़े संकट के कारण दबे हुए रहते हैं – बाहर आते हैं; और यदि लड़ाई का अन्त समझौते से हुआ हो तब तो उसमें दोष निकालने का काम हमेशा आसान होने से अनेक लोग इस काम को अपने हाथ में ले लेते हैं | और जहाँ संगठन लोकतंत्रात्मक होता हैं वहाँ छोटे-बड़े सब लोगों के प्रश्नों का उत्तर देना होता हैं और उन्हें संतोष दिलाना होता हैं | यही पद्धति सच्ची हैं | मनुष्य जितना अनुभव ऐसे समय – अर्थात् मित्रों के बीच पैदा होने वाली गलतफहमी या झगड़ों के समय – प्राप्त कर सकता हैं, उतना विरोधी पक्ष के साथ लड़ी जाने वाली लड़ाई में नहीं प्राप्त कर सकता | विरोधी से लड़ी जाने वाली लड़ाई में एक प्रकार का नशा रहता हैं और इसलिए लड़नेवालों में उत्साह और उल्लास बना रहता हैं | लेकिन जब मित्रों के बीच गलतफहमी या विरोध उत्पन्न होता हैं तब वह असामान्य घटना मानी जाती हैं और सदा दुःखद ही होती हैं | फिर भी मनुष्य की परीक्षा ऐसे ही समय होती हैं | मेरा यह सदा का अनुभव हैं, और मुझे यह लगता हैं कि ऐसे ही समय मैं ऊँची से ऊँची आध्यात्मिक संपत्ति प्राप्त कर सका हूँ | जो लोग लड़ते समय सत्याग्रह की लड़ाई का शुद्ध स्वरूप समझ नहीं सके थे, वे समझौते के दिनों में और समझौते के बाद उसके शुद्ध स्वरूप को अच्छी तरह समझ गये | सच्चा और गंभीर विरोध पठानों तक ही सीमित रहा, उनसे आगे नहीं बढ़ा |

ऐसा करते-करते दो-तीन माह में एशियाटिक ऑफिस ऐच्छिक परवाने देने के लिए तैयार हो गया | परवानों का रूप पूरी तरह बदल गया था | उनका नया रूप तैयार करते समय सत्याग्रह-मंडल के साथ सलाह-मशविरा किया गया था |

ता. १०-२-१९०८ के सवेरे हम में से कुछ लोग परवाने लेने के लिए एशियाटिक ऑफिस में जाने को तैयार हो गये | कौम के लोगों को अच्छी तरह समझा दिया गया था कि परवाने लेने का काम यथासंभव जल्दी से जल्दी पूरा कर देना चाहिए | और सलाह-मशविरे के बाद यह बात भी तय हो गई थी कि पहले दिन कौम के नेता ही सबसे पहले परवाने लेने जाएँगे | इसके पीछे उद्देश्य लोगों का संकोच दूर करना, एशियाटिक विभाग के अधिकारी अपना काम शिष्टता से करते हैं या नहीं यह जानना और अन्य प्रकार से उस काम की सारी व्यवस्था

पर देखरेख रखना था | मेरा ऑफिस सत्याग्रह-मंडल का भी ऑफिस था | वहाँ पहुँचते ही मैंने ऑफिस की दीवाल के बाहर मीर आलम और उसके साथियों को खड़ा देखा |

मीरआलम मेरा पुराना मुवक्किल था | अपने हर काम में वह मेरी सलाह लेता था | अनेक पठान ट्रान्सवाल में घास के या नारियल के रेशों के गद्दे मजदूरों से बनवाते थे और फिर अच्छा मुनाफा लेकर उन्हें बेचते थे | मीरआलम भी यहीं धन्धा करता था | उसकी ऊँचाई ६ फुट से अधिक थी | वह कद्दावर और दोहरे शरीर का आदमी था | आज पहली ही बार मैंने मीरआलम को ऑफिस के अन्दर न देखकर बाहर खड़ा देखा और हम दोनों की आँखें मिलने पर भी उसने पहली ही बार मुझे सलाम नहीं किया | लेकिन मैंने उसे सलाम किया, इसलिए उसने भी मुझे सलाम किया | अपनी आदत के अनुसार मैंने उससे पूछा : "कैसे हो ?" मेरा ऐसा ख्याल हैं कि उसने जवाब में कहा था : "अच्छा हूँ |" परन्तु आज उसके चेहरे पर हमेशा की मुसकान नहीं थी | मैंने देखा कि उसकी आँखों में गुस्सा भरा हैं | यह बात मैंने मन में लिख ली | मुझे यह भी लगा कि आज कुछ न कुछ होने वाला हैं | मैंने ऑफिस में प्रवेश किया | अध्यक्ष ईसप मियाँ और दूसरे मित्र भी आ पहुँचे और हम एशियाटिक ऑफिस की ओर चल पड़े | मीरआलम और उसके साथी भी हमारे पीछे पीछे आये |

एशियाटिक ऑफिस की इमारत वॉन ब्रेन्डिस स्क्वेअर में थी | मेरे ऑफिस से उसकी दूरी एक मील से कम थी | वहाँ जाने के लिए हमें मुख्य सड़कों पर से गुजरना पड़ा | वॉन ब्रेन्डिस स्ट्रीट में चलते चलते हमने मेसर्स आरनॉट और गिब्सन की सीमा छोड़ी | वहाँ से एशियाटिक ऑफिस तीनेक मिनट के फासले पर रहा होगा कि मीरआलम मेरी बगल में आ गया | उसने मुझसे पूछा : "कहाँ जाते हो ?" मैंने उत्तर दिया : "मैं दस अंगुलियों की छाप देकर रजिस्टर (परवाना) निकलवाना चाहता हूँ | अगर तुम भी चलोगे तो तुम्हें दस अंगुलियों की छाप देने की ज़रुरत नहीं हैं | तुम्हारा परवाना (सिर्फ दो अंगूठों की छाप के साथ) पहले निकलवाने के बाद मैं अंगुलियों की छाप देकर अपना निकलवाऊँगा |"

अंतिम वाक्य मैंने मुश्किल से पूरा किया होगा कि मेरी खोपड़ी पर पीछे से लाठी का एक वार हुआ | मैं 'हे राम' बोलते-बोलते बेहोश होकर ज़मीन पर लुढ़क गया | बाद में क्या हुआ, इसका मुझे कोई भान नहीं था | लेकिन मीरआलम ने और उसके साथियों ने मुझ पर लाठियों के अधिक वार किये और लाते भी मारीं | उनमें से कुछ ईसप मियाँ और थंबी नायडू ने झेलीं | इस कारण से ईसप मियाँ और थंबी नायडू पर भी थोड़ी मार पड़ी | इतने में शोरगुल मचा | आने-जाने वाले गोरे इकट्ठे हो गये | मीरआलम और उसके साथ भागे, लेकिन गोरों ने उन्हें पकड़ लिया | इस बीच पुलिस भी आ पहुँची | उसने पठानों को हिरासत में ले लिया |

पास ही श्री जे. सी. गिब्सन का ऑफिस था | मुझे उठाकर वहाँ ले जाया गया | कुछ देर बाद मुझे होश आया तब मैंने रेवरेंड डोक को अपने चेहरे पर झुके हुए देखा | उन्होंने मुझसे पूछा : "आपको कैसा लगता हैं ?"

मैंने हंसकर जवाब दिया : "अब ठीक हूँ | लेकिन मेरे दाँतों में और पसलियों में दर्द होता हैं |" फिर मैंने पूछा : "मीरआलम कहाँ हैं ?"

डोक बोले : "उसे और उसके साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया हैं |

मैंने कहा : "वे छूटने चाहिए |"

डोक : "वह सब तो होता रहेगा | लेकिन आप यहाँ एक अपरिचित के ऑफिस में पड़े हैं | आपका होंठ फट गया हैं | पुलिस आपको अस्पताल ले जाने को तैयार हैं | लेकिन अगर आप मेरे यहाँ चलें तो मैं और श्रीमती डोक आपकी यथाशक्ति सार-सँभाल करेंगे |"

मैंने कहा : "मुझे आपके ही घर ले चलिए | पुलिस के प्रस्ताव के लिए उसे धन्यवाद दीजिए | लेकिन उससे कहिए कि मुझे आपके यहाँ जाना ज़्यादा पसंद हैं |

इतने में एशियाटिक विभाग के अधिकारी श्री चमनी भी आ पहुँचे | मुझे एक गाडी में लिटा कर भले पादरी श्री डोक के स्मित स्ट्रीट स्थित निवास-स्थान पर ले जाया गया | मेरी जाँच के लिए एक डॉक्टर को बुलाया गया | इस बीच मैंने श्री चमनी से कहा : "मेरी आशा तो यह थी कि आपके ऑफिस में आकर और दस अंगुलियों की छाप देकर पहला परवाना में लूँगा | लेकिन ईश्वर को यह स्वीकार नहीं था | अब मेरी आपसे प्रार्थना हैं कि आप इसी समय जाकर ज़रूरी कागजात ले आइये और पहला परवाना मुझे दीजिए | मैं आशा रखता हूँ कि मेरे पहले आप दूसरे किसी को परवाना नहीं देंगे |"

उन्होंने कहा : "ऐसी क्या जल्दी हैं ? अभी डॉक्टर आयेगा | आप आराम करें | बाद में सब कुछ हो जाएगा | दूसरों को परवाना दूंगा तो भी आपका नाम सबसे पहला रखूँगा |"

मैं बोला : "ऐसा नहीं | मेरी यह प्रतिज्ञा हैं कि यदि मैं जिन्दा रहूँ और ईश्वर को मंजूर हो, तो सबसे पहले मैं ही परवान लूँगा | इसीलिए मेरा आग्रह हैं कि आप कागजात ले आइये |"

इस पर श्री चमनी कागजात लाने के लिए ऑफिस गये |

मेरा दूसरा काम एटर्नी-जनरल अर्थात् सरकारी वकील को यह तार करना था कि "मीरआलम और उसके साथियों ने मुझ पर जो हमला किया, उसके लिए मैं उन लोगों को दोषी मानता ही नहीं | जो भी हो, लेकिन मैं नहीं चाहता कि उन पर फौजदारी मुकदमा चले | मैं आशा करता हूँ कि मेरे ख़ातिर आप उन्हें छोड़ देंगे |" इस तार के उत्तर में मीरआलम और उसके साथियों को छोड़ दिया गया |

लेकिन जोहानिसबर्ग के गोरों ने एटर्नी-जनरल को इस आशय का एक कड़ा पत्र लिखा : "अपराधी को सजा देने के बारेमें गांधी के चाहे जो विचार हों, लेकिन इस देश में उन पर अमल नहीं किया जा सकता | गांधी को जो

मार पड़ी हैं उसके बारेमें वे भले ही कुछ न करें, लेकिन हमला करने वाले लोगों ने यह मार उन्हें किसी निजी मकान में नहीं मारी हैं | यह अपराध पठानों ने आम रास्ते पर किया हैं | इसलिए यह एक सार्वजनिक अपराध माना जाएगा | कुछ अंग्रेज भी इस अपराध का गवाही देने की स्थिति में हैं | अपराधियों को पकड़ना ही चाहिए |" इस आन्दोलन के कारण एटर्नी-जनरल ने फिर मीरआलम और उसके एक साथी को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें तीन-तीन महीने की कड़ी क़ैद की सजा दी | केवल मुझे गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया |

लेकिन हम बीमार के कमरे की ओर लौटें | श्री चमनी कागजात लेने गये इतने में डॉ. थ्वेट्स आ पहुँचे | उन्होंने मेरी जाँच की | मेरा ऊपर का होंठ फट गया था | एक गाल में भी घाव हो गया था | इसलिए टाँके लगा कर डॉक्टर ने दोनों को जोड़ दिया | पसलियों की जाँच करके उन पर लगाने की दवा दी; और जहाँ तक वे टाँके न तोड़े वहाँ तक बोलने की मनाही कर दी | भोजन में तरल पदार्थो के सिवा दूसरा कुछ खाने की मनाही कर दी | डॉक्टर का निदान यह था कि मुझे शरीर के किसी भी हिस्से में गंभीर चोट नहीं लगी हैं | एक ही हफ्ते में मैं बिस्तर छोड़ सकूँगा और साधारण कामकाज कर सकूँगा; केवल इतना ध्यान रखना होगा कि दो-एक माह तक शरीर पर काम का बहुत बोझ न पड़े – इतना कह कर डॉक्टर चले गये |

इस प्रकार मेरा बोलना बन्द हो गया, परन्तु मेरे हाथ चल सकते थे | अध्यक्ष के द्वारा कौम के लोगों को सम्बोधित करते हुए मैंने एक छोटासा गुजराती पत्र लिखकर छपने के लिए भेज दिया | पत्र इस प्रकार था :

"मेरी तबीयत अच्छी हैं | श्री डोक और श्रीमती डोक हृदय का सारा प्रेम उंड़ेल कर मेरी सेवा-शुश्रूषा कर रहे हैं | मैं कुछ हीं दिनों में अपना काम सँभाल लूँगा | जिन लोगों ने मुझे मारा हैं, उन पर मेरे मन में जरा भी गुस्सा नहीं हैं | उन्होंने बेसमझी से यह काम किया हैं | उन पर मुकदमा चलाने की कोई ज़रुरत नहीं | अगर दूसरे लोग शांत रहेंगे, तो इस घटना से भी हमें लाभ ही होगा |

"हिन्दुओं को चाहिए कि वे मन में जरा भी रोष न रखें | मैं चाहता हूँ कि इस घटना से हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच खटास पैदा होने के बदले मिठास पैदा हो | खुदा से – ईश्वर से मैं यही याचना करता हूँ |

"मुझ पर मार ज़रूर पड़ी; लेकिन इससे ज़्यादा मार पड़े तो भी मैं एक ही सलाह आपको दूँगा | वह यह कि लगभग सभी हिन्दुस्तानियों को दस अंगुलियों की छाप देनी चाहिए | ऐसा करने में जिन्हें सचमुच धार्मिक आपत्ति हो, उन्हें सरकार छूट देगी | इसी में कौम का और गरीबों का भला तथा उनकी रक्षा समाई हुई हैं |

"यदि हम सच्चे सत्याग्रही होंगे, तो मारके या भविष्य में होने वाले विश्वासघात के डर से घबरायेंगे नहीं | जो लोग दस अंगुलियों की छाप न देने की बात को पकड़े हुए हैं, उन्हें मैं अज्ञानी मानता हूँ |

"मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह कौम का भला करे, उसे सत्य के मार्ग पर लगाये और हिन्दुओं तथा मुसलमानों के दिलों को मेरे खून की पट्टी से जोड़ दे |"

श्री चमनी कागजात लेकर आये | बड़ी कठिनाई से और जैसे-तैसे मैंने अपनी दस अंगुलियों की छाप उन्हें दी | उस समय मैंने उनकी आँखों में आँसू देखे | उनके खिलाफ मुझे अकसर कड़ी बातें लिखनी पड़ती थीं | लेकिन इस घटना से मेरे सामने इस बात का प्रत्यक्ष चित्र खड़ा हुआ कि मौका आने पर मानव का हृदय कितना कोमल बन सकता है |

पाठक आसानी से कल्पना कर सकते हैं कि यह विधि पूरी करने में कुछ मिनट से ज़्यादा समय नहों लगा होगा | श्री डोक और उनकी भली पत्नी मुझे पूर्ण शांत और स्वस्थ देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे | हमले से घायल होने के बाद मेरे मानसिक कार्य को देखकर दोनों को दुःख होता था | उन्हें भय था कि इसका बुरा असर कहीं मेरी तबीयत पर न पड़े | इसलिए संकेत देकर और दूसरी तरकीबें काम में लेकर वे सब लोगों को मेरे पलंग से दूर हटा ले गये और मुझे लिखने की या कुछ करने की मनाही कर दी | मैंने उनसे विनती की (और लिख कर की) कि मैं बिलकुल शांति से सो जाऊँ इससे पहले, और इसके लिए, उनकी लड़की ऑलिव – जो उस समय छोटी बालिका ही थी – मुझे अपना प्रिय अंग्रेजी भजन 'लीड, काइंड्ली लाइट' गाकर सुनाये | श्री डोक को मेरी यह विनती बहुत पसंद आई | यह बात अपने मधुर हास्य द्वारा उन्होंने मुझे समझा दी और ऑलिव को इशारे से बुला कर दरवाजे के बाहर खड़े-खड़े धीमे स्वर में वह भजन गाने के लिए कहा | यह लिखाते समय वह संपूर्ण दृश्य मेरी आँखों के सामने तैर रहा हैं और ऑलिव के दिव्य स्वर की गुँज अभी भी मेरे कानों में गुँज रही हैं |

इस प्रकरण में मैं ऐसी बहुत सी बातें लिख गया हूँ, जिन्हें मैं स्वयं और पाठक भी मेरे विषय के साथ असंगत मानेंगे | फिर भी एक और संस्मरण जोड़े बिना मैं यह प्रकरण पूरा नहीं कर सकता | उस काल के सारे ही संस्मरण मेरी दृष्टि में इतने अधिक पवित्र हैं कि उन्हें मैं छोड़ ही नहीं सकता | डोक-परिवार की सेवा-शुश्रूषा का वर्णन मैं किन शब्दों में करूँ ?

श्री जोसेफ डोक बैप्टिस्ट संप्रदाय के पादरी थे | उस समय उनकी उमर ४६ वर्ष की थी | दक्षिण अफ्रीका आने से पहले वे न्यूज़ीलैण्ड में रहते थे | मुझ पर पठानों का हमला हुआ उसके कोई छह महीने पहले वे मेरे ऑफिस में आये और मेरे पास अपना नाम भिजवाया | उसमें 'रेवरेंड' विशेषण का उपयोग किया गया था | उसके आधार पर मैंने यह गलत कल्पना कर ली कि जिस तरह कुछ पादरी मुझे ईसाई बनाने के लिए अथवा सत्याग्रह की लड़ाई बन्द करने की बात समझाने के लिए अथवा आश्रयदाता बन कर कौम की लड़ाई के साथ सहानुभूति बताने के लिए आते थे, उसी प्रकार डोक भी आये होंगे | लेकिन डोक भीतर आये और हम दोनों की बातचीत कुछ ही मिनट चली कि मैं अपनी भूल को समझ गया और मैंने मन ही मन उनसे क्षमा माँगी

| उसी दिन से हम दोनों घनिष्ट मित्र बन गये | कौम की लड़ाई के बारेमें अखबारों में जो भी बातें छपती थीं उन सबसे मैंने उन्हें परिचित पाया | उन्होंने कहा : "आप इस लड़ाई में मुझे अपना मित्र ही समझिए | मुझसे जो भी सेवा बन पड़ेगी वह मैं अपना धर्म समझ कर करना चाहता हूँ | ईसा मसीह के जीवन का चिन्तन करके यदि मैंने कुछ सीखा हैं, तो यही कि दुःखियों के दुःख में मनुष्य को हिस्सा लेना चाहिए |" इस प्रकार हमारा परिचय हुआ और हमारे बीच का स्नेह और घनिष्ठता दिनोंदिन बढ़ती ही गई |

आगे चल कर पाठक इस इतिहास में डोक का नाम अनेक स्थानों पर देखेंगे | लेकिन डोक-परिवार ने मेरी जो सेवा-शुश्रूषा की, उसका वर्णन करने से पहले श्री डोक का इतना परिचय देना आवश्यक था | रात और दिन परिवार का कोई न कोई सदस्य मेरे पास हाजिर ही रहता था | जितने समय मैं उनके घर में रहा उतने समय तक वह घर धर्मशाला बना रहा ! हिन्दुस्तानी कौम में फेरी लगाने वाले आदमी मजदूरों जैसे कपड़े पहनते थे, जो मैले भी काफ़ी होते थे; उनके जूतों पर धूल की परत चढ़ी रहती थी; और उनकी माल की गठरी या टोकरी भी उनके साथ हीं होती थीं | ऐसे हिन्दुस्तानियों से लेकर ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन के अध्यक्ष जैसे लोगों तक का श्री डोक के घर में तांता बंधा रहता था | सब तरह के लोग वहाँ मेरे हाल-चाल पूछने और डॉक्टर की इजाजत के बाद मुझसे मिलने आते थे | श्री डोक सभी को समान आदर और समान प्रेम से अपने दीवान-खाने में बैठाते थे | जब तक मैं डोक परिवार के साथ रहा तब तक उनका सारा समय मेरी सेवा-शुश्रूषा में और मुझे देखने आने वाले सैकड़ों लोगों के आदर-सत्कार में ही व्यतीत होता रहा | रात में भी दो तीन बार डोक चुपचाप मेरे कमरे में आकर मुझ पर एक नजर डाल जाते थे | उनके घर में रहते हुए मुझे किसी भी दिन ऐसा ख्याल न आया कि यह मेरा घर नहीं है या मेरे प्रिय से प्रिय जन भी डोक-परिवार से मेरी अधिक सार-सँभाल करते |

पाठक यह भी न माने कि हिन्दुस्तानी कौम की लड़ाई का इतने खुले रूप में समर्थन करने के लिए या मुझे अपने घर में रखने के लिए डोक को कोई मुसीबत न उठानी पड़ी | वे अपने बैप्टिस्ट सम्प्रदाय के गोरों के लिए एक गिरजाघर चलाते थे | उनकी जीविका इसी सम्प्रदाय के लोगों द्वारा चलती थी | उस सम्प्रदाय के सभी अनुयायी उदार थे, ऐसा नहीं मानना चाहिए | हिन्दुस्तानियों के लिए सामान्य अरुचि तो उनके मन में भी थी ही | लेकिन डोक ने इसकी बिलकुल परवाह नहीं की | हमारे परिचय के आरम्भ में ही मैंने इस नाजुक विषय की चर्चा उनके साथ की थी | उनका उत्तर यहाँ देने जैसा हैं | उन्होंने कहा था : "मेरे प्रिय मित्र, ईसा के धर्म को आप कैसा मानते हैं ? मैं उस महापुरुष का अनुयायी हूँ, जो अपने धर्म के पालन के लिए सूली पर चढ़ा था और जिसका प्रेम इस विश्व जैसा ही विशाल था | जिन गोरों के बारेमें आपको डर हैं कि वे मेरा त्याग कर देंगे, उनके सामने यदि मैं ईसा का प्रतिनिधित्व करने की थोड़ी भी अभिलाषा रखता हूँ, तो हिन्दुस्तानी कौम की लड़ाई में मुझे सार्वजनिक रूप में भाग लेना ही चाहिए; और ऐसा करने से मेरा मंडल यदि मुझे त्याग दे, तो मुझे जरा भी

दु:खी नहीं होना चाहिए | यह सच हैं कि मेरी जीविका उनके द्वारा चलती हैं | लेकिन आप ऐसा तो नहीं मानेंगे कि जीविका के ख़ातिर मैं उनसे सम्बन्ध रखता हूँ अथवा वे मेरी रोजी के देने वाले हैं | मेरी रोजी तो मुझे ईश्वर देता हैं | वे केवल उसके निमित्त-मात्र हैं | उनके साथ मेरे सम्बन्ध की बिना कहे समझ ली गई शर्त यह हैं कि उनमें से कोई मेरी धार्मिक स्वतंत्रता से बाधक बन ही नहीं सकता | इसलिए आप मेरे विषय में जरा भी चिन्ता न करें | मैं कोई हिन्दुस्तानियों पर मेहरबानी करने के लिए इस लड़ाई में शरीक नहीं हुआ हूँ | इसे अपना धर्म मान कर मैं इसमें शरीक हुआ हूँ | लेकिन सत्य यह हैं कि अपने डीन (गिरजे के मुखिया) के साथ इस विषय में मैंने स्पष्ट बात कर ली हैं | मैंने उन्हें नम्रता से कह दिया हैं कि यदि हिन्दुस्तानी कौम के साथ मेरा सम्बन्ध उन्हें पसंद न हो, तो वे बिना किसी संकोच के मुझे नौकरी से अलग कर सकते हैं और दूसरा पादरी (मिनिस्टर) रख सकते हैं | परन्तु डीन ने मुझे इस विषय में बिलकुल निश्चिन्त कर दिया हैं; इतना ही नहीं, मुझे प्रोत्साहन दिया हैं | इसके सिवा, आपको यह भी नहीं समझना चाहिए कि सभी गोरे हिन्दुस्तानी कौम के लोगों को एक-सी तिरस्कार की नजर से देखते हैं | आपको इस बात की कल्पना नहीं हो सकती कि परोक्ष रूप में अनेक गोरे आपके दु:खों के प्रति कितनी सहानुभूति रखते हैं; परन्तु मुझे इसका अनुभव होना चाहिए, यह आप स्वीकार करेंगे |"

इतनी स्पष्ट बातचीत होने के बाद दुबारा मैंने यह विषय डोक के सामने कभी नहीं छेड़ा | और बाद में जब कौम की लड़ाई चल रही थी उसी बीच डोक अपना धर्म कार्य करते-करते रोडेशिया में देवलोक सिधारे, उस समय उनके सम्प्रदाय के अनुयायियों ने अपने गिरजे में एक सभा की थी; उस सभा में स्व. काछलियां के साथ मुझे और दूसरे कई हिन्दुस्तानियों को बुलाया गया था और उसमें भाषण करने का निमंत्रण मुझे भी मिला था |

लगभग १० दिन में मैं अच्छी तरह घुमने-फिरने लगा | इस स्थिति में पहुँचने के बाद मैंने इस ममतालु परिवार से बिदा ली | हम दोनों के लिए यह वियोग दु:खद सिद्ध हुआ था |

२३. गोरे सहायक

कौम की लड़ाई में इतने अधिक प्रतिष्ठित गोरों ने हिन्दुस्तानियों का पक्ष लेकर प्रमुख भाग लिया था कि इस स्थान पर उन सबका एक साथ परिचय कराना अनुचित नहीं होगा | इससे आगे चलकर जब स्थान-स्थान पर उनके नाम आएँगे तब पाठकों को वे अपरिचित नहीं लगेंगे और लड़ाई का वर्णन करते हुए मुझे उनका परिचय कराने के लिए बीच-बीच में रुकना भी नहीं पड़ेगा | जिस क्रम में उनके नाम मैं यहाँ दूँगा उस क्रम को पाठक न तो उनकी प्रतिष्ठा के अनुसार मानें और न लड़ाई में उनकी सहायता के मूल्य के अनुसार मानें | कुछ हद तक पाठक इस क्रम को गोरे मित्रों के परिचय-काल के अनुसार और लड़ाई के उप-विभागों में प्राप्त उनकी सहायता के अनुसार मानें |

इनमें सबसे पहला नाम श्री आल्बर्ट वेस्ट का आता है | कौम के साथ उनका सम्बन्ध लड़ाई के पहले ही स्थापित हो चुका था | और मेरे साथ तो उनका सम्बन्ध इससे भी पहले बंध गया था | मैंने जोहानिसबर्ग में अपना ऑफिस खोला उस समय मेरा परिवार मेरे साथ नहीं था | पाठकों को स्मरण होगा कि मैं १९०३ में दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों का तार मिलने से एकाएक हिन्दुस्तान से दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हो गया था | मन में यह आशा थी कि एक वर्ष के भीतर हिन्दुस्तान लौट आऊँगा | जोहानिसबर्ग में एक शाकाहार देने वाला भोजन-गृह था | उसमें मैं सुबह और शाम नियमित रूप से भोजन करने जाता था | वेस्ट भी वहाँ आते थे | वहीं हम दोनों का परिचय हुआ था | वे एक अन्य गोरे के साथ साझेदारी में प्रेस चलाते थे |

१९०४ में जोहानिसबर्ग के हिन्दुस्तानियों में जोर का प्लेग फैला | मैं रोगियों की सेवा-शुश्रूषा में लग गया, इसलिए उस भोजन-गृह में मेरा जाना अनियमित हो गया | और जब जाता भी था तो दूसरे जीमने वालों के आने से पहले ही मैं भोजन कर आता, ताकि दूसरे लोगों को मुझसे प्लेग की छूत लगने का कोई भय न रहे | जब लगातार दो दिन तक वेस्ट ने मुझे भोजन-गृह में नहीं देखा तो वे घबराये | अखबारों से उन्हें पता चल गया था कि मैं प्लेग के रोगियों की सेवा-शुश्रूषा में लगा हूँ | तीसरे दिन सुबह ६ बजे, जब मैं हाथ-मुँह ही धो रहा था, वेस्ट ने आकर मेरे कमरे का दरवाजा खट-खटाया | मैंने दरवाज खोला तो सामने वेस्ट का हँसता चेहरा देखा |

वे खुश होकर बोल उठे : "आपको देखकर मैं निश्चिन्त हो गया | भोजन-गृह में आपको देखा नहीं, इसलिए मैं घबरा गया था | अगर मेरी मदद की कोई ज़रुरत आपको हो तो ज़रूर कहिए |"

मैंने मजाक के स्वर में पूछा : "रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करेंगे ?"

"क्यों नहीं ? मैं बिलकुल तैयार हूँ |"

इतने-से विनोद में मैंने अपनी योजना सोच ली थी | मैंने कहा : "आपसे दूसरे किसी उत्तर की आशा मैं रख ही नहीं सकता था | परन्तु रोगियों की सेवा-शुश्रूषा में मदद देने वाले कई लोग हैं | आपसे मैं इससे अधिक कठिन काम लेना चाहता हूँ | मदनजीत यहाँ प्लेग के कार्य में लगे हुए हैं, इसलिए *इंडियन ओपीनियन* का प्रेस निराधार हो गया है | मदनजीत को तो मैंने प्लेग के कार्य में रोक ही लिया हैं | इसलिए यदि आप डरबन जाएँ और प्रेस को सँभाल लें, तो सचमुच बड़ी मदद हो जाए | पर उस काम में ललचाने जैसा कुछ नहीं हैं | मैं आपको बहुत थोड़ा पैसा दे सकूँगा-अर्थात् महीने के सिर्फ १० पौंड | और प्रेस में यदि कोई लाभ हो, तो उसमें आधा हिस्सा आपका |"

"यह काम थोड़ा अटपटा ज़रूर है | मुझे अपने साझेदार से इजाजत लेनी होगी | कुछ उगाही भी वसूल करनी हैं | लेकिन कोई चिन्ता नहीं | आज शाम तक का समय आप मुझे देंगे ?"

"ज़रूर ! ६ बजे हम पार्क में मिलेंगे |"

"मैं ज़रूर पहुँच जाऊँगा |"

पार्क में हम मिले | वेस्ट ने अपने साझेदार की इजाजत ले ली | उगाही वसूल करने का काम मुझे सौंप दिया | और दूसरे दिन शाम की ट्रेन से वे डरबन के लिए रवाना हो गये | एक महीने के भीतर उनकी रिपोर्ट आई : "इस प्रेस में मुनाफा बिलकुल नहीं है | घाटा बहुत हैं | उगाही का कोई पार नहीं हैं; लेकिन बहीखाते में हिसाब ठीक से नहीं रखा गया हैं | न तो ग्राहकों के पूरे नाम हैं, न उनके पूरे पते हैं | दूसरी अव्यवस्था भी बहुत ज़्यादा हैं | यह मैं शिकायत के रूप में नहीं लिख रहा हूँ | यहाँ मैं मुनाफा कमाने के लिए नहीं आया हूँ | इसलिए आप निश्चित मानिये कि हाथ में लिया हुआ काम मैं छोड़ूँगा नहीं | लेकिन इतनी आगाही मैं अभी से कर दूँ कि आपको लम्बे समय तक घाटे की पूर्ति करते ही रहना होगा |"

मदनजीत *इंडियन ओपीनियन* के ग्राहक बनाने और प्रेस की व्यवस्था के बारेमें मुझसे बातचीत करने जोहानिसबर्ग आये थे | मैं हर महीने थोड़ा-बहुत घाटा तो पूरा करता ही रहता था | इसलिए मैं निश्चित रूप से जानना चाहता था कि मुझे किस हद तक यह पूर्ति करनी पड़ेगी | पाठकों को मैं यह बता चुका हूँ कि प्रेस आरंभ करते समय भी मदनजीत को प्रेस चलाने का कोई अनुभव नहीं था | इसलिए मैं सोचा करता था कि प्रेस में किसी अनुभवी आदमी को उनके साथ रखा जाए तो अच्छा हो | इसी बीच यह प्लेग फूट पड़ा | ऐसे काम में मदनजीत बहुत कुशल और निर्भय माने जाते थे | इसलिए मैंने उन्हें जोहानिसबर्ग में रोक लिया | यही कारण हैं कि वेस्ट के अनसोचे प्रस्ताव को मैंने स्वीकार कर लिया और प्लेग के दौरान कुछ समय के लिए नहीं परन्तु हमेशा के लिए उन्हें डरबन जाना हैं, ऐसा मैंने वेस्ट को समझा दिया | इसलिए उनकी उपर्युक्त रिपोर्ट मेरे पास आई |

पाठक जानते हैं कि अंत में *इंडियन ओपीनियन* और उसका प्रेस फिनिक्स ले जाया गया था | वहाँ वेस्ट महीने के १० पौंड के बदले ३ पौंड लेने लगे थे | इन सारे परिवर्तनों में वेस्ट पूरी तरह सहमत थे | उनकी जीविका कैसे चलेगी, इसका किसी दिन भी वेस्ट को भय लगा हो ऐसा मैंने नहीं देखा | उन्होंने धर्म का अध्ययन नहीं किया था, फिर भी मैं उन्हें अत्यंत धार्मिक पुरुष मानता था | वे अतिशय स्वतंत्र स्वभाव के आदमी थे | किसी बात को वे जैसी मानते थे वैसा ही उसके बारेमें स्पष्ट कह देते थे | काले को कृष्णवर्ण का कहने के बजाय वे काला ही कहते थे | उनका रहन-सहन बहुत ही सादा था | हम दोनों का परिचय हुआ उस समय वे ब्रह्मचारी थे और मैं जानता हूँ कि वे ब्रह्मचर्य का पालन करते थे | उसके कुछ वर्ष बाद वे अपने माता-पिता से मिलने इंग्लैंड गये और वहाँ से विवाहित होकर लौटे | मेरी सलाह से वे अपनी पत्नी को, सास को और कुंआरी बहन को अपने साथ ले आये थे | वे सब फिनिक्स में बहुत सादगी से रहते थे और हर तरह से हिन्दुस्तानियों के साथ घुलमिल गये थे |

कुमारी एडा वेस्ट (हम उन्हें देवी बहन कहते थे) अब ३५ वर्ष की हुई होंगी, लेकिन अभी तक कुँआरी अवस्था में ही हैं और अत्यन्त पवित्र जीवन बिता रही हैं | उन्होंने भी फिनिक्सवासियों की कोई कम सेवा नहीं की | फिनिक्स में रहने वाले बाल-शिष्यों को सँभालना, उन्हें अंग्रेजी की शिक्षा देना, सार्वजनिक रसोईघर में खाना बनाना, मकानों की सफाई करना, बहीखाते में हिसाब लिखना, प्रेस में कंपोज करना या प्रेस का दूसरा कोई काम करना – कोई भी काम क्यों न हो, उसे करने में उन बहन ने किसी दिन आनाकानी नहीं की | आज वे फिनिक्स आश्रम में नहीं हैं, इसका एकमात्र कारण यह हैं कि उनका मामूली खर्च भी प्रेस मेरे हिन्दुस्तान आ जाने के बाद उठा नहीं सका था | वेस्ट की सास की आयु इस समय ८० से ऊपर होगी | वे सिलाई का काम बड़े सुन्दर ढंग से करती हैं | इसलिए बूढ़ी होने पर भी वे सिलाई के काम में आश्रम की पूरी मदद करती थीं | फिनिक्स में सब कोई उन्हें दादीमाँ (ग्रेनी) कहते और मानते थे | श्रीमती वेस्ट के बारेमें तो कुछ कहना ज़रूरी हैं ही नहीं | जब फिनिक्स के अधिकतर निवासी जेल चले गये तब वेस्ट-परिवार ने मगनलाल गांधी के साथ मिलकर फिनिक्स की सारी व्यवस्था चलाई थी | वेस्ट *इंडियन ओपीनियन* और प्रेस से सम्बन्ध रखने वाले अनेक काम करते थे | मेरी और अन्य लोगों की अनुपस्थिति में डरबन से गोखले को भेजे जाने वाले तार वेस्ट ही भेजते थे | अंत में जब वेस्ट भी गिरफ्तार कर लिए गये (यद्यपि उन्हें तुरन्त ही छोड़ दिया गया था) तब गोखले घबरा उठे थे, और उन्होंने हिन्दुस्तान से एंड्रूज़ और पियर्सन को दक्षिण अफ्रीका भेज दिया था |

दूसरे सहायक थे श्री रिच | इनके बारेमें मैं पहले लिख चुका हूँ | वे सत्याग्रह की लड़ाई से पहले ही मेरे ऑफिस में काम करने लगे थे | मेरी अनुपस्थिति में वे मेरा काम सँभाल सकें, इस आशा से वे बैरिस्टरी का अध्ययन करने के लिए इंग्लैंड गये थे | वहाँ लंदन की साउथ आफ्रिकन ब्रिटिश इंडियन कमेटी की सारी जिम्मेदारी उन्हीं के हाथ में थी |

तीसरे सहायक थे श्री पोलाक | वेस्ट की तरह पोलाक का परिचय भी मुझे अचानक भोजन-गृह में ही हुआ था | वे भी एकाएक *दि ट्रान्सवाल क्रिटिक* पत्र के उपसंपादक के पद छोड़कर *इंडियन ओपीनियन* में चले गये थे | सब कोई जानते हैं कि उन्होंने सत्याग्रह की लड़ाई के सम्बन्ध में इंग्लैंड में और पूरे हिन्दुस्तान में यात्रा की थी | रिच इंग्लैंड चले गये इसलिए मैंने पोलाक को फिनिक्स से जोहानिसबर्ग मेरे ऑफिस में बुला लिया | वहाँ पहले वे मेरे 'आर्टिकल्ड' क्लार्क हुए और बाद में पूरे वकील बन गये | कुछ समय बाद उन्होंने विवाह कर लिया | श्रीमती पोलाक को भी हिन्दुस्तान पहचानता हैं | उस महिला ने सत्याग्रह की लड़ाई के काम में अपने पति की पूरी सहायता की, उसमें किसी भी दिन विघ्न नहीं डाला | और पोलाक दम्पती आज भी हिन्दुस्तान की यथाशक्ति सेवा करते हैं, यद्यपि वे असहयोग की लड़ाई में हमारे सहयोगी नहीं हैं |

इसके बाद आते हैं हर्मन कैलनबैक | उनके साथ भी मेरा परिचय कौम की लड़ाई छिड़ी उससे पहले हो चुका था | वे जर्मन हैं | और यदि अंग्रेजों और जर्मनों के बीच युद्ध न छिड़ा होता, तो आज कैलनबैक हिन्दुस्तान में होते | उनका हृदय विशाल हैं | उनकी सरलता और भोलेपन का पार नहीं है | उनकी भावनायें अत्यन्त तीव्र हैं | वे शिल्पी का धन्धा करते हैं | ऐसा एक भी काम नहीं था, जिसे करने में उन्होंने कभी आनाकानी की हो – फिर वह कितना ही हलका क्यों न हो | जब मैंने जोहानिसबर्ग का अपना घर तोड़ दिया, तब हम दोनों साथ ही रहते थे | इसलिए मेरा खर्च वे ही उठाते थे | घर तो उनका अपना था | भोजनखर्च में जब मैं अपने हिस्से का खर्च देने की बात उनसे कहता तो वे नाराज हो जाते थे और यह कहकर मुझे रोक देते थे कि 'उड़ाऊपन से मुझे बचाने वाले तो तुम्हीं हो |' उनका यह कथन सत्य था | लकिन गोरों के साथ मेरे व्यक्तिगत सम्बन्धों का वर्णन करने का यह स्थान नहीं हैं | जब हमने सत्याग्रहियों के परिवारों को जोहानिसबर्ग में एक स्थान पर रखने की बात सोची, तब कैलनबैक ने किराया लिए बिना अपना ११०० बीघे का विशाल फार्म उपयोग के लिए दे दिया था | इसका विस्तृत वर्णन पाठक आगे पढ़ेंगे | जब गोखले दक्षिण अफ्रीका में आये थे तब जोहानिसबर्ग में उन्हें कौम की ओर से कैलनबैक के बंगले पर ठहराया गया था | वह बंगला गोखले को बहुत पसंद आया था | उन्हें बिदा करने के लिए कैलनबैक झाँझीबार तक मेरे साथ आये थे | लड़ाई के सिलसिले में पोलाक के साथ उन्हें भी गिरफ्तार किया गया था और उन्हें भी जेल की सजा काटनी पड़ी थीं | और अंत में जब दक्षिण अफ्रीका छोड़कर मैं इंग्लैंड में गोखले से मिलने गया तब कैलनबैक मेरे साथ थे | प्रथम विश्वयुद्ध के कारण ही उन्हें इंग्लैंड से मेरे साथ हिन्दुस्तान आने की इजाजत नहीं मिली | दूसरे सब जर्मनों की तरह उन्हें भी इंग्लैंड में नजरक़ैद में रखा गया था | युद्ध समाप्त हो जाने के बाद वे वापस जोहानिसबर्ग चले गये थे और अपना शिल्पी का धन्धा उन्होंने फिर शुरू कर दिया था |

अब मैं पाठकों को एक पवित्र बाला का परिचय देता हूँ | गोखले ने उसे जो प्रमाणपत्र दिया था उसे पाठकों के समक्ष रखने का लोभ मैं रोक नहीं सकता | उस बाला का नाम था कुमारी सोनजा श्लेसिन | गोखले में मनुष्यों

को पहचानने की अद्भुत शक्ति थी | डेलागोआ बेसे झाँझीबार तक मैं उनके साथ गया था | उस समय मुझे उनके साथ शांति से बातें करने का सुन्दर अवसर मिला था | दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी और गोरे नेताओं के साथ भी उनका काफ़ी अच्छा परिचय हो गया था | उनमें से सभी मुख्य नेताओं के चरित्र का विश्लेषण उन्होंने मेरे लिए कर दिया था | और मुझे अच्छी तरह याद हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तानियों और गोरों में सबसे पहला पद कुमारी श्लेसिन को दिया था | उन्होंने कहा था : "श्लेसिन के जैसा निर्मल अंत:करण, कार्य की एकाग्रता और दृढ़ निश्चय मैंने बिरले ही आदमियों में पाया हैं | और हिन्दुस्तानियों की लड़ाई में किसी भी लाभ की आशा रखे बिना उसका इतना सर्वार्पण देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया था | इसके सिवा, इन सब गुणों के साथ उसकी कुशलता और स्फूर्ति आपकी इस लड़ाई में उसे एक अमूल्य सेविका बना देती हैं | मुझे कहने की ज़रुरत तो नहीं होनी चाहिए, फिर भी मैं कहता हूँ कि आप उसे अपने पास ही रखना |"

मेरे पास एक स्कॉच कुमारी, मिस डिक, स्टेनो-टाइपिस्ट का काम करती थी | उसकी वफादारी और नैतिकता का कोई पार नहीं था | इस जीवन में कड़वे अनुभव तो मुझे अनेक हुए हैं | परन्तु मेरे संपर्क में इतने अधिक सुन्दर चरित्रवाले अंग्रेज और भारतीय लोग आये हैं कि इसे मैं सदा अपने जीवन का सौभाग्य ही मानता रहा हूँ | इस स्कॉच कुमारी के विवाह का अवसर उपस्थित होने पर वह मुझे छोड़कर चली गई | तब श्री कैलनबैक कुमारी श्लेसिन को ले आये और मुझसे बोले : "इस बाला को इसकी माँ ने मुझे सौंपा हैं | यह चतुर हैं, प्रामाणिक हैं; लेकिन यह बड़ी नटखट और स्वतंत्र मिजाज की हैं | शायद इसे उद्धत भी कहा जा सकता हैं | आप इससे काम ले सकें तो इसे अपने पास रखें | केवल वेतन के लिए मैं इसे आपके पास नहीं रखता |" मैं किसी अच्छी स्टेनो-टाइपिस्ट को २० पौंड माहवार तक देने के लिए तैयार था | परन्तु कुमारी श्लेसिन की योग्यता का मुझे कोई पता नहीं था | श्री कैलनबैक ने कहा : "आप अभी तो इसे महीने के ६ पौंड देना |" मैंने तुरन्त स्वीकार कर लिया |

कुमारी श्लेसिन के नटखटपन का मुझे तुरन्त ही अनुभव हुआ | लेकिन एक महीने के भीतर तो उसने ही मुझे अपने वश में कर लिया | रात हो या दिन, वह हर समय काम करने को तैयार रहती थी | कोई काम उसके लिए असंभव या कठिन तो था ही नहीं | उस समय उसकी उमर १६ वर्ष की थी | अपनी पवित्रता, स्पष्टवादिता और सेवा करने की तत्परता से उसने मेरे मुवक्किलों और सत्याग्रहियों के मन भी हर लिए थे | वह कुमारिका मेरे ऑफिस की और कौम की लड़ाई की नीति की प्रहरी और रक्षिका बन गई थीं | जब किसी कार्य के नैतिक औचित्य के बारेमें उसे शंका होती, तब वह अत्यन्त स्वतंत्रता से मेरे साथ वाद-विवाद करती थी; और जब तक मैं उस कार्य के नैतिक औचित्य के बारेमें उसे प्रतीति न करा देता, तब तक उसे कभी संतोष होता ही नहीं था |

जब सेठ काछलिया के सिवा कौम के सारे नेता जेल में चले गये उस समय कुमारी श्लेसिन ने लाखों रुपयों का हिसाब रखा और अलग-अलग स्वभाव के लोगों से काम लिया | काछलिया भी उसका सहारा लेते थे और उसकी सलाह से काम करते थे | जब हम सब जेल चले गये तब श्री डोक ने *इंडियन ओपीनियन* का काम सँभाल लिया | लेकिन वह सफेद बालों वाला अनुभवी वृद्ध पुरुष *इंडियन ओपीनियन* के लिए लिखे गये लेख कुमारी श्लेसिन से पास कराता था ! और एक बार तो उन्होंने मुझसे कहा था : "यदि कुमारी श्लेसिन न होती, तो मैं नहीं जानता कि मैं खुद को भी अपने काम से कैसे संतोष दे पाता | उसकी सहायता और सूचनाओं का मूल्य आंकना मेरे लिए संभव नहीं हैं | अकसर उसके सुझाये हुए संशोधन और परिवर्धन उपर्युक्त हैं ऐसा समझ कर ही मैंने उन्हें स्वीकार किया था |" पठान, पटेल, गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी-हर वर्ग के और हर उमर के लोग कुमारी श्लेसिन को घेरे रहते थे, उसकी सलाह लेते थे और उसके कहे अनुसार चलते थे |

दक्षिण अफ्रीका में गोरे मुसाफिर अधिकतर हिन्दुस्तानियों के साथ रेल के एक ही डिब्बे में कभी नहीं बैठते | ट्रान्सवाल में तो ऐसा करने की गोरों को मनाही भी हैं | और सत्याग्रही तो नियम से रेल के तीसरे दरजे में ही मुसाफिरी करते थे | ऐसा होते हुए भी कुमारी श्लेसिन जान-बूझ कर हिन्दुस्तानियों के ही डिब्बे में बैठती थी और उसे रोकने वाले गार्डों से झगड़ा भी करती थी | मुझे डर था और कुमारी श्लेसिन को आशा थी कि किसी दिन वह भी ऐसा करने के लिए पकड़ ली जाएगी | उसकी योग्यता, कौम की लड़ाई के बारेमें उसका संपूर्ण ज्ञान और सत्याग्रहियों के हृदयों पर स्थापित उसका साम्राज्य – ये तीनों बातें ट्रान्सवाल सरकार के ध्यान में थीं, फिर भी उसने कभी कुमारी श्लेसिन को न पकड़ने की नीति का और अपनी शालीनता का त्याग नहीं किया |

कुमारी श्लेसिन ने किसी दिन अपने मासिक ६ पौंड के वेतन में बढ़ती माँगी या चाही ही नहीं | जब मुझे उसकी कुछ ज़रूरतों का ज्ञान हुआ तब मैं उसे १० पौंड वेतन देने लगा | यह भी उसने बड़ी आनाकानी के बाद स्वीकार किया | लेकिन इससे अधिक वेतन लेने से उसने साफ इनकार कर दिया : "इससे अधिक वेतन मुझे चाहिए ही नहीं | फिर भी यदि मैं अधिक वेतन आपसे लूं, तो जिस निष्ठा से मैं आपके पास आई हूँ वह निष्ठा झूठी सिद्ध होगी |" उसके इस जवाब ने मुझे चुप कर दिया | पाठक शायद जानना चाहेंगे कि कुमारी श्लेसिन ने कहाँ तक शिक्षा पाई थी | उसने केप युनिवर्सिटी की इंटरमीडियेट परीक्षा पास की थी; शॉर्ट-हैण्ड, टाइपिंग वगैरा में प्रथम श्रेणी के प्रमाणपत्र प्राप्त किये थे | कौम की लड़ाई बन्द होने के बाद वह युनिवर्सिटी की स्नातक हुई और इस समय ट्रान्सवाल की लड़कियों की किसी सरकारी शाला में प्रधान शिक्षिका का कार्य करती हैं |

श्री हर्बर्ट किचन एक शुद्ध हृदय के अंग्रेज थे, जो बिजली का काम जानते थे | उन्होंने बोअर-युद्ध में हमारे साथ काम किया था | कुछ समय तक वे *इंडियन ओपीनियन* के संपादक भी रहे थे | उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया था |

अभी तक मैंने जिन व्यक्तियों का उल्लेख किया हैं वे ऐसे थे, जो मेरे घनिष्ठ संपर्क में आये थे | उन्हें ट्रान्सवाल के प्रमुख गोरों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता | फिर भी यह कहा जा सकता हैं कि उनकी बहुत बड़ी सहायता हमें कौम की लड़ाई में प्राप्त हुई थी | प्रतिष्ठा की दृष्टि से श्री हॉस्किन का स्थान सबसे ऊँचा था | वे दक्षिण अफ्रीका के चेम्बर्स ऑफ कॉमर्स के संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष थे और ट्रान्सवाल विधानसभा के सदस्य थे | उनका परिचय मैं पहले करा चुका हूँ | उनकी अध्यक्षता में सत्याग्रह की लड़ाई में सहायता करने वाले गोरों की एक स्थायी समिति भी स्थापित की गई थी | उस समिति ने यथाशक्ति लड़ाई में सहायता दी थी | लड़ाई का रंग खूब जम जाने के बाद स्थानीय सरकार के साथ चर्चाओं का अथवा विचार-विमर्श का व्यवहार तो भला कैसे रह पाता ? इसका कारण असहयोग का सिद्धान्त नहीं था, परन्तु यह था कि सरकार खुद ही अपने कानून को तोड़नेवाले लोगों के साथ विचार-विमर्श का व्यवहार रखना पसंद नहीं करती थीं | ऐसे समय सहायक गोरों की उपर्युक्त समिति ने सत्याग्रहियों और सरकार के बीच मध्यस्थ का काम किया था |

श्री आल्बर्ट कार्टराइट का परिचय भी मैं पहले करा चुका हूँ | रेवरेंड डोक के जैसा ही सम्बन्ध रखने वाले और हमारी बहुत मदद करने वाले एक दूसरे पादरी भी थे | उनका नाम था रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स | वे ट्रान्सवाल में वर्षों से 'कॉन्ग्रिगेशनल मिनिस्टर' थे | उनकी भली पत्नी भी हमारी मदद करती थी | एक तीसरे प्रसिद्ध पादरी थे रेवरेंड डुडनी डु, जिन्होंने पादरी का पद छोड़ कर ब्लुमफॉटीन से प्रकाशित होनेवाले *दि फ्रेन्ड* नामका दैनिक का संपादक-पद स्वीकार किया था | उन्होंने गोरों की अवगणना सहकर भी अपने दैनिक में हिन्दुस्तानियों की लड़ाई का समर्थन किया था | उनकी गणना दक्षिण अफ्रीका के प्रसिद्ध वक्ताओं में होती थी|

इसी प्रकार स्वतंत्रता से हमारी सहायता करने वाले एक सज्जन थे *दि प्रिटोरिया न्यूज* के संपादक श्री वेर स्टेन्ट | एक बार प्रिटोरिया के टाउन-हॉल में मेयर के सभापतित्व में वहाँ के गोरों ने एक बड़ी सभा की थी | सभा का हेतु हिन्दुस्तानियों के सत्याग्रह-आन्दोलन की निन्दा करना और खूनी कानून की प्रशंसा करना था | श्री वेर स्टेंट ने अकेले ही सभा में खड़े होकर गोरों का विरोध किया था | सभापति ने उनसे बैठ जाने को कहा, परन्तु उन्होंने बैठने से इनकार किया | गोरों ने उन पर हाथ चलाने की धमकी दी, फिर भी वह नरसिंह के समान गर्जना करता हुआ टाउन-हॉल में अडिग खड़ा रहा | और गोरों की सभा को अपना प्रस्ताव पास किये बिना ही बिखर जाना पड़ा !

मैं ऐसे अन्य गोरों के नाम भी गिना सकता हूँ, जो किसी मंडल या समिति के सदस्य हुए बिना भी हमारी सहायता करने का एक भी अवसर नहीं चूकते थे | लेकिन मैं अधिक विस्तार न करके केवल तीन गोरी महिलाओं का परिचय करा कर ही यह प्रकरण समाप्त करना चाहता हूँ | उनमें से एक थीं कुमारी हॉबहाउस | वे लॉर्ड हॉबहाउस की पुत्री थीं | बोअर-युद्ध के समय यह महिला लॉर्ड मिल्नर का विरोध होने पर भी ट्रान्सवाल पहुँची

थी | जब लॉर्ड किचनर ने सारे जगत में प्रशंसित अथवा निन्दित 'कान्सेन्ट्रेशन कैम्प' – अर्थात् युद्ध करने वाले बोअरों की स्त्रियों को इकट्ठा करके क़ैद में रखने की छावनियाँ – ट्रान्सवाल और फ्री स्टेट में खोली थीं तब तक यह महिला अकेली बोअर स्त्रियों के बीच घूमती थी, उन्हें दृढ़ रहने को समझाती थी और उनमें वीरता का संचार करती थी | बोअर-युद्ध से सम्बन्धित अंग्रेजों की नीति बिलकुल गलत हैं, ऐसा विश्वास रखने के कारण कुमारी हॉबहाउस स्व. श्री स्टेट की तरह यह चाहती और ईश्वर से प्रार्थना करती थीं कि बोअर-युद्ध में अंग्रेजों की हार हो | बोअरों की इतनी अधिक सेवा करने के बाद जब उन्हें पता चला कि बोअर लोग – जो अंग्रेजों के अन्याय के विरुद्ध यथाशक्ति लड़े थे वे ही बोअर लोग – अपने अज्ञान से भरे पूर्वग्राह के कारण हिन्दुस्तानियों के साथ अन्याय करने को तैयार हो गये हैं, तो उन्हें गहरा आघात लगा था | बोअर प्रजा उनके प्रति बड़ा आदर और प्रेम रखती थी | जनरल बोथा के साथ उनका अत्यन्त निकट का सम्बन्ध था | जनरल बोथा के यहाँ वे ठहेरती थीं | उन्होंने बोअरों को यह समझाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया कि खूनी कानून रद कर किया जाना चाहिए |

दूसरी महिला थीं कुमारी ऑलिव श्राइनर | इन महिला के विषय में मैं पाँचवें प्रकरण में लिख चुका हूँ | वे दक्षिण अफ्रीका के प्रसिद्ध श्राइनर परिवार में जन्मी विदुषी महिला थीं | श्राइनर नाम दक्षिण अफ्रीका में इतना प्रख्यात था कि जब कुमारी श्राइनर का विवाह हुआ तब उनके पति को उनका नाम ग्रहण करना पड़ा, जिससे ऑलिव का श्राइनर परिवार के साथ का सम्बन्ध दक्षिण अफ्रीका के गोरों में लुप्त न हो जाए | इसका कारण कुमारी श्राइनर का झूठा स्वाभिमान नहीं था, क्योंकि वे जितनी विदुषी थीं उतनी ही सादी और नम्र भी थीं | मेरा उनके साथ बहुत अच्छा परिचय था, ऐसा मैं मानता हूँ | उन्होंने किसी दिन यह नहीं माना कि उनके हबशी नौकरों और उनके बीच कोई भेद हैं | जहाँ-जहाँ अंग्रेजी भाषा बोली जाती हैं वहाँ वहाँ उनकी *ड्रीम्स* नामक पुस्तक बड़े आदर से पढ़ी जाती हैं | वह गद्य में लिखी गई हैं, फिर भी उसकी गणना काव्य में होती हैं | दूसरी तो अनेक पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं | लेखनी पर इतना अधिकार होते हुए भी वे घर का खाना अपने हाथ से बनाने में, घर की सफाई खुद करने में और बरतन वगैरा स्वयं ही धोने में कभी सकुचाती या शरमाती नहीं थीं | वे ऐसा मानती थीं कि इस तरह का उपयोगी शरीरश्रम उनकी लेखन-शक्ति को मन्द बनाने की अपेक्षा उसे उत्तेजित करता हैं तथा उनकी भाषा में और विचारों में एक प्रकार का विवेक और प्रौढ़ता लाता हैं | कुमारी श्राइनर ने भी दक्षिण अफ्रीका के गोरों पर हिन्दुस्तानियों के पक्ष में यथाशक्ति अपना वजन डाला था |

तीसरी महिला थीं कुमारी मोल्टीनो | वे दक्षिण अफ्रीका के प्राचीन मोल्टीनो परिवार की एक बुजुर्ग सदस्या थीं | उन्होंने भी यथाशक्ति हिन्दुस्तानियों की सहायता की थी |

पाठक प्रश्न कर सकते हैं कि इन गोरे सहायकों की सहायता का परिणाम क्या हुआ ? मेरा उत्तर यह हैं कि परिणाम बताने के लिए यह प्रकरण नहीं लिखा गया हैं | कुछ मित्रों के कार्य ही, जिनका वर्णन किया जा चुका

हैं, परिणाम के साक्षी हैं | परन्तु इन हितेच्छुओं की संपूर्ण प्रवृत्ति का क्या परिणाम आया ? – यही प्रश्न उत्पन्न हो सकता हैं | सत्याग्रह की लड़ाई ऐसी थी, जिसका परिणाम उस लड़ाई में ही समाया हुआ था | वह आत्म-सहायता की, आत्मत्याग की और ईश्वर-श्रद्धा की लड़ाई थी |

गोरे सहायकों के नामों का उल्लेख करने का एक हेतु यह हैं कि यदि दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास में उनके द्वारा की गई सहायता की स्तुति का समावेश न हो, तो यह इतिहास अधूरा माना जाएगा | मैंने सभी गोरे सहायकों के नाम यहाँ नहीं दिये हैं | परन्तु जितने नाम दिये हैं उनके द्वारा सभी सहायकों के प्रति हिन्दुस्तानियों का आभार प्रकट किया हैं | दूसरा हेतु यह बताना हैं कि एक सत्याग्रही के नाते मेरी इस सिद्धान्त में पूरी श्रद्धा हैं कि शुद्ध मन से किये गये कार्य का परिणाम शुभ ही होता है, फिर वह दृश्य हो या अदृश्य | और तीसर प्रबल हेतु यह बताना हैं कि सत्य पर आधारित आन्दोलन ऐसी अनेक प्रकार की शुद्ध और नि:स्वार्थ सहायता को बिना प्रयास के अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहता | यदि इस प्रकरण में अभी भी यह बात पाठकों की समझ में न आई हो, तो मैं यह सपष्ट करना चाहता हूँ कि सत्याग्रह की लड़ाई में सत्य की रक्षा को ही यदि एक प्रयास मानें, तो इस प्रयास के सिवा दूसरा कोई भी प्रयास गोरे मित्रों की सहायता प्राप्त करने के लिए नहीं किया गया था | वे लोग हमारे आन्दोलन के प्रति उसके आंतरिक बल के कारण ही आकर्षित हुए थे |

२४. भीतर की और ज़्यादा मुसीबतें

बाईस वें प्रकरण में हमें अपनी भीतरी मुसीबतों की थोड़ी कलपना हुई थी | जोहानिसबर्ग में मुझ पर पठानों का हमला हुआ उस समय मेरा परिवार फिनिक्स में रहता था | हमले के कारण मेरी पत्नी और बच्चों के मन में चिन्ता होना स्वाभाविक था | मुझे देखने के लिए पैसे खर्च करके फिनिक्स से जोहानिसबर्ग तक दौड़ आना उनके लिए संभव नहीं था | इसलिए अच्छा होने के बाद मेरा हीं उनके पास जान ज़रूरी था |

कामकाज के सिलसिले में नेटाल और ट्रान्सवाल के बीच मेरा आना-जाना होता ही रहता था | यह बात मेरी जानकारी से बाहर नहीं थी कि नेटाल में भी सरकार के साथ हुए कौम के समझौते के बारेमें भारी गलत-फहमी फैली हुई थी | मुझे और दूसरों को जो पत्र नेटाल से लिखे जाते थे, उनसे मुझे इसका पता चलता था | और *इंडियन ओपीनियन* के नाम तीखे व्यंग से भरे हुए जो पत्र भेजे जाते थे, उनका ढेर भी मेरे पास था ही | यद्यपि अभी तक सत्याग्रह की लड़ाई ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों तक ही सीमित थी, फिर भी नेटाल के हिन्दुस्तानियों की संमति प्राप्त करना और उनकी भावनाओं का ख्याल रखना ज़रूरी था | ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानी ट्रान्सवाल के निमित्त से समस्त दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की लड़ाई लड़ रहे थे | अत: नेटाल में फैली हई गलतफहमी को दूर करने के लिए भी डरबन जाना मेरे लिए आवश्यक था | इसलिए पहले ही मौके से लाभ उठाकर मैं वहाँ पहुँच गया |

डरबन में हिन्दुस्तानियों की एक सार्वजनिक सभा बुलाई गई | कुछ मित्रों ने पहले से मुझे बता दिया था कि इस सभा में मुझे पर आक्रमण होने वाला हैं; इसलिए या तो मैं इस सभा में उपस्थित ही न रहूँ या अपनी रक्षा के कुछ उपाय करूँ | लेकिन दोनों में से एक भी मार्ग मेरे लिए खुला नहीं था | सेवक को उसका स्वामी बुलाये और सेवक डर के मारे न जाएँ, तो उसका सेवा धर्म भंग हो जाता हैं | और जो सेवक स्वामी की सेवा से डरे, वह सेवक कैसा ? सेवा के ख़ातिर जनता की सेवा करना तो तलवार की धार पर चलने जैसा हैं | यदि जनसेवक प्रशंसा को स्वीकार करने के लिए तैयार हो, तो निन्दा से वह कैसे भाग सकता है ? इसलिए मैं निश्चित समय पर सभा में उपस्थित हो गया | वहाँ लोगों को मैंने समझाया कि सरकार के साथ समझौता कैसे हुआ | उनके प्रश्नों के उत्तर भी मैंने दिये |

यह सभा रात के लगभग ८ बजे हुई थी | सभा का कामकाज लगभग पूरा होने को आया था कि एक पठान बड़ी लाठी लेकर मंच पर आया | उसी समय सारी बत्तियाँ बुझ गई | मैंने तुरंत सारी स्थिति समझ ली | सभा के अध्यक्ष सेठ दाऊद मुझम्मद टेबल पर चढ़कर लोगों को समझाने और शांत करने लगे | मेरी रक्षा करने वालों ने मुझे घेर लिया | मैंने अपनी रक्षा के लिए कोई उपाय नहीं किये थे | लेकिन बाद में मैंने देखा कि जिन लोगों को मुझ पर हमला होने का डर था, वे तो पूरी तरह मेरी रक्षा की तैयारी करके आये थे | उनमें से एक मित्र तो जेब में पिस्तौल

रख कर आये थे और उन्होंने हवा में पिस्तौल का एक धड़ाका भी किया था | इस बीच पारसी रुस्तमज, जिन्होंने हमले की सारी तैयारियाँ देखी थीं, बिजली की गति से दौड़ कर पुलिस-थाणे पर पहुँच गये और पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट एलेक्ज़ेन्डर को सारी स्थिति बता दी | उन्होंने पुलिस का एक दस्ता भेज दिया | पुलिस भीड़ में से रास्ता निकालते हुए मुझे अपने बीच रख कर पारसी रुस्तमजी के घर ले गई |

दूसरे दिन सुबह पारसी रुस्तमजी ने डरबन के पठानों को एकत्र किया और उनसे कहा कि मेरे खिलाफ उन्हें जो भी शिकायत हो वह मेरे सामने रखें | मैं उन लोगों से मिला | मैंने समझा कर उन्हें शांत करने का प्रयत्न किया | लेकिन मैं नहीं मानता कि मैं उन्हें शांत कर पाया था | शक की दवा दलीलों से या समझाने से नहीं हो सकती | उनके मन में यह बात बैठ गई थी कि मैंने हिन्दुस्तानी कौम को धोखा दिया हैं | जब तक शक का यह जहर उनके मन से निकले नहीं तब तक मेरा समझाना बेकार ही था |

उसी दिन मैं डरबन से फिनिक्स के लिए रवाना हुआ | जिन मित्रों ने पिछली रात को मेरी रक्षा की थी, उन्होंने मुझे अकेला छोड़ने से साफ इनकार कर दिया और मुझसे कह दिया कि वे फिनिक्स में आकर डेरा डालेंगे | मैंने उनसे कहा : "आप मेरी 'ना' की परवाह न करके फिनिक्स आना चाहेंगे, तो मैं आपको रोक तो नहीं सकूँगा; लेकिन वहाँ जंगल हैं और अगर वहाँ बसने वाले हम लोग आपको खाना भी न दें तो आप क्या करेंगे?" उनमें से एक ने उत्तर दिया : "हमें ऐसा डर दिखाने की ज़रुरत नहीं | अपनी सुविधायें हम स्वयं खड़ी कर लेंगे | और जब तक हम सिपाहीगीरी करेंगे तब तक आपके कोठार को लूटने से भी हमें कौन रोक सकेगा ?"

इस प्रकार विनोद करते-करते हम फिनिक्स पहुँचे | इस रक्षक-दल का नेता जैक मुडली था, जो हिन्दुस्तानियों में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था | वह नेटाल में तामिल माता-पिता से जन्मा था | उसने घूसेबाजी की (बॉक्सिंग की) खास तालीम पाई थी | वह ऐसा मानता था, और उसके साथी भी ऐसा मानते थे, कि घूंसेबाजी में गोरों या कालों में से कोई भी उसका प्रतिस्पर्धी नहीं हो सकता |

दक्षिण अफ्रीका में, बरसात न हो तब, मेरी आदत वर्षों से घर के बाहर बिलकुल खुले में सोने की थी | उसमें इस समय कोई फेरबदल करने को मैं तैयार नहीं था | इसलिए रक्षकों के स्वनिर्मित दल ने रात में मेरे बिस्तर के आसपास पहरा देने का निर्णय किया | यद्यपि डरबन में इस रक्षक-दल का मैंने मजाक उड़ाया था और मेरे साथ आने से रोकने का भी प्रयत्न किया था, फिर भी मुझे अपनी यह कमजोरी स्वीकार करनी चाहिए कि जब उन लोगों ने पहरा देना शुरू किया तब मुझे अधिक निर्भयता अनुभव हुई और मन में यह विचार भी आया कि यदि ये लोग न आये होते तो मैं इतना निर्भय बनकर सो नहीं पाता | मैं मानता हूँ कि किसी भी तरह की आवाज से मैं अवश्य ही चमक उठता |

मेरा विश्वास है कि ईश्वर पर मेरी अटल श्रद्धा हैं | वर्षों से मेरी बुद्धि यह भी स्वीकार करती आई हैं कि मृत्यु मनुष्य के जीवन में होने वाला एक बड़ा परिवर्तन ही हैं और वह जब भी आये तब स्वागत करने योग्य हैं | हृदय से मृत्यु के भय को और दूसरे प्रकार के भयों को दूर करने के लिए मैंने समझ-बूझ कर महान प्रयत्न किया हैं | इसके बावजूद अपने जीवन के ऐसे अवसर मुझे याद आते हैं जब मैं मृत्यु के आलिंगन का विचार करते हुए वैसी प्रसन्नता अनुभव नहीं कर सका, जैसी प्रसन्नता हम किसी दीर्घ काल से बिछुड़े हुए मित्र से मिलने का विचार करते समय अनुभव करते हैं | इस तरह बलवान बनने का महान प्रयत्न करने पर भी मनुष्य प्राय: निर्बल रहता हैं और केवल बुद्धि तक पहुँचा हुआ उसका ज्ञान अनुभव का अवसर आने पर उसके जीवन में बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हो पाता | इसमें भी जब मनुष्य को बाहरी सहारा मिलता हैं और उसको वह स्वीकार कर लेता हैं, तब तो वह बहुत हद तक अपना आंतरिक बल खो देता हैं | सत्याग्रही को ऐसे भयों से सदा बचते रहना चाहिए |

फिनिक्स में रहते हुए मैंने एक ही काम किया | कौम के लोगों की गलतफहमी दूर करने के लिए मैंने *इंडियन ओपीनियन* में खूब लिखा | संपादक और शंकाशील पाठक वर्ग के बीच होने वाला एक काल्पनिक संवाद मैंने लिख डाला | उसमें समझौते के विषय में जो-जो शंकाये और आक्षेप मैंने सुने थे, उन सबका यथासंभव अधिक से अधिक विस्तार से मैंने समाधान किया | मेरा विश्वास हैं कि इसका फल अच्छा आया | यह मालूम हो गया कि ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों ने लम्बे समय तक समझौते को गलत नहीं समझा; उनमें यदि समझौते के बारेमें गलतफहमी बनी रहती, तो उसका परिणाम सचमुच विनाशक होता | समझौते को मानना या न मानना केवल ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों का काम था | इसलिए उनके कार्यों से स्वयं उनकी कसौटी और उनके नेता तथा सेवक के नाते मेरी भी कसौटी होने वाली थी | अंत में ऐसे बहुत ही कम हिन्दुस्तानी रहे होंगे, जिन्होंने स्वेच्छा से परवाने न लिए हों | इतने अधिक लोग परवाने लेने के लिए एशियाटिक ऑफिस जाते थे कि परवाने देने वाले अधिकारियों को क्षणभर का भी आराम नहीं मिलता था | कौम ने बड़ी शीध्रता से समझौते की ऐसी शर्तों का पालन कर दिखाया, जिनका पालन उसे स्वयं करना था | यह बात सरकार को भी स्वीकार करनी पड़ी; और मैं यह देख सका था कि गलतफहमी का क्षेत्र अत्यन्त संकुचित रहा, यद्यपि उसने बड़ा उग्र रूप धारण कर लिया था | कुछ पठानों ने जब कानून को अपने हाथ में ले लिया और हिंसा का रास्ता अपनाया, तब कौम के लोगों में बड़ी खलबली मच गई थीं | लेकिन ऐसी खलबली का विश्लेषण करें तो पता चल जाता हैं कि उसका कोई आधार या बुनियाद नहीं होती; और प्राय: ऐसी खलबली क्षणिक ही होती हैं | ऐसा होते हुए भी आज तक उसकी ताकत दुनिया में बनी हुई हैं, क्योंकि रक्तपात और हिंसा से हम सब काँप उठते हैं | परन्तु धैर्य के साथ इस प्रश्न पर विचार करें, तो मालूम हो जाता हैं कि हिंसा से काँप उठने का कोई भी कारण नहीं हैं | मान लीजिए कि मीर आलम और उसके साथियों के आक्रमण से घायल होने के बजाय मेरा शरीर नष्ट हो गया होता और यह भी मान लीजिए कि हिन्दुस्तानी कौम जान-बूझ कर निश्चिन्त और शांत रही होती और यह समझ कर कि मीर आलम

अपनी बुद्धि का अनुसरण करके केवल हिंसक आचरण ही कर सकता था, कौम ने उसके प्रति मित्रता का और क्षमा का भाव दिखाया होता, तो कौम को कोई नुकसान न हुआ होता; बल्कि कौम को ऐसे उदात्त और उदार व्यवहार से बहुत बड़ा लाभ हुआ होता; क्योंकि कौम की सारी गलतफहमी मिट जाती, जिससे वह दुगुने जोश और दुगुने उत्साह से अपनी प्रतिज्ञा पर ड़टी रहती और अपने कर्तव्य का पालन करती | और मुझे तो केवल लाभ ही लाभ होता, क्योंकि सत्याग्रह के सम्बन्ध में अपने सत्य का आग्रह रखते हुए अनायास सत्याग्रही मृत्यु का आलिंगन करे, इससे अधिक मंगलमय परिणाम की कल्पना वह कर ही नहीं सकता |

ऊपर की दलीलें केवल सत्याग्रह जैसी लड़ाई को ही लागू हो सकती हैं, क्योंकि उसमें वैर या घृणा के लिए कोई स्थान नहीं होता | आत्म-शक्ति या स्वावलम्बन ही उसका एकमात्र साधन होता हैं | उसमें कोई किसी की और मदद की आशा से नहीं देखता | उसमें कोई नेता नहीं होता, इसलिए कोई सेवक – अनुयायी नहीं होता | अथवा यों कहा जाय कि उसमें सब नेता होते हैं और सब सेवक होते हैं | इसलिए चाहे जितने प्रसिद्ध व्यक्ति की मृत्यु भी सत्याग्रह की लड़ाई को शिथिल नहीं बनाती, बल्कि उसके वेग को बढ़ाती हैं |

सत्याग्रह का शुद्ध और मूलभूत स्वरूप ऐसा हैं | अनुभव में हम उसके इस स्वरूप को देख नहीं पाते, क्योंकि हम सब ने वैर और घृणा का त्याग नहीं किया हैं | प्रत्यक्ष अनुभव और व्यवहार में सब लोग सत्याग्रह का रहस्य नहीं समझते और कुछ लोगों का आचरण देख कर अनेक लोग उसका मूढ़ अनुकरण करते हैं | इसके सिवा, ट्रान्सवाल में किया गया सामुदायिक और सामाजिक सत्याग्रह का प्रयोग, टॉल्स्टॉय के कथनानुसार, पहला ही माना जाएगा | मैं स्वयं तो शुद्ध सत्याग्रह के कोई ऐतिहासिक उदाहरण नहीं जानता | इतिहास का मेरा ज्ञान बहुत हीं मामूली हैं, इसलिए मैं इस विषय में कोई निश्चित मत नहीं बना सकता | लेकिन सच पूछा जाएँ तो हमारा ऐसे उदाहरणों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं हैं | यदि हम सत्याग्रह के मूलभूत सिद्धान्तों को स्वीकार करें, तो यह देखा जा सकेगा कि मेरे बताये हुए परिणाम उसमें से निकलते ही हैं | सत्याग्रह का प्रयोग करना कठिन अथवा असंभव हैं, ऐसा कहकर सत्याग्रह के समान अमूल्य शक्ति को छोड़ा नहीं जा सकता | शस्त्रबल के प्रयोग तो हजारों वर्षों से होते ही आये हैं | उसके कड़वे परिणाम हम अपनी आँखों के सामने देखते हैं | भविष्य में भी उससे मीठे परिणाम उत्पन्न होने की शायद ही कोई आशा रखी जा सकती हैं | अंधकार से यदि प्रकाश उत्पन्न किया जा सकता हो, तो ही वैरभाव से प्रेमभाव किया जा सकता हैं |

द्वितीय खण्ड

१. जनरल स्मट्स का विश्वासघात (?)

पाठकों ने हमारी आंतरिक मुसीबतों का थोड़ा दर्शन किया | उनका वर्णन करने में मुझे अधिकतर अपनी आत्मकथा ही देनी पड़ी | परन्तु यह अनिवार्य था, क्योंकि सत्याग्रह से सम्बन्धित मेरी मुसीबतें सत्याग्रहियों की भी मुसीबतें हो गई थीं | अब हम फिर से बाहरी मुसीबतों का विचार करें |

इस प्रकरण का शीर्षक लिखते हुए मुझे शर्म आई हैं और यह प्रकरण लिखते समय भी शर्म आती हैं, क्योंकि इसमें मानव-स्वभाव की वक्रता का वर्णन हुआ हैं | सन् १९०८ में भी जनरल स्मट्स दक्षिण अफ्रीका के सबसे होशियार नेता माने जाते थे | और आज वे सारी दुनिया में न सही परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य में तो ऊँची श्रेणी के कार्य-कुशल पुरुष माने जाते हैं | उनकी महान शक्तियों और योग्यताओं के बारेमें मुझे कोई शंका नहीं हैं | वे जितने कुशल वकील हैं उतने ही कुशल सेनापति हैं और उतने ही कुशल शासक हैं | दक्षिण अफ्रीका में दूसरे तो अनेक शासक आये और गये | परन्तु सन् १९०७ से लेकर आज तक यह पुरुष दक्षिण अफ्रीकी सरकार की लगाम अपने हाथ में सँभाले हुए हैं | और आज भी ऐसा कोई पुरुष दक्षिण अफ्रीका में नहीं हैं, जो उनकी स्पर्धा में खड़ा हो सके | यह प्रकरण लिखते समय मुझे दक्षिण अफ्रीका को छोडे ९ वर्ष हो चुके हैं | आज जनरल स्मट्स के लिए दक्षिण अफ्रीका किस विशेषण का प्रयोग करता हैं, यह मैं नहीं जानता | उनका अपना (क्रिश्चियन) नाम जेन हैं और दक्षिण अफ्रीका के लोग उन्हें 'स्लिम जेनी' के नाम से पुकारते हैं | यहाँ 'स्लिम' का अर्थ हैं 'छटक जाए ऐसा', 'पकड़ में न आये ऐसा' | गुजराती भाषा का (और हिन्दी भाषा का) इससे मिलता-जुलता शब्द हैं 'धूर्त' अथवा मीठा विशेषण काम में ले तो उलटे अर्थ में हैं 'चालाक' | अनेक अंग्रेज मित्रों ने मुझसे कहा था : "जनरल स्मट्स से तुम सावधान रहना | वे बड़े घाघ हैं | उन्हें बदल जाने में देर नहीं लगती | उनके शब्दों का अर्थ वे ही समझ सकते हैं | वे प्राय: कुछ ऐसे ढंग से बोलते हैं कि दोनों पक्ष उनके शब्दों का खुद को प्रिय लगने वाला अर्थ कर सकते हैं | इसके सिवा, मौका आने पर वे स्वयं दोनों पक्षों के अर्थ को एक ओर रख कर कोई तीसरा ही अर्थ बताते हैं, उस पर अमल करते हैं और उसके समर्थन में ऐसी चतुराई भरी दलील देते है कि दोनों पक्ष थोड़ी देर के लिए तो यहीं मानने लगते हैं कि उन्होंने अर्थ करने में भूल की होगी और जनरल स्मट्स अपने शब्दों का जो अर्थ करते हैं वही सच्चा हैं ! "इस प्रकरण में मुझे जिस विषय का वर्णन करना हैं उसे – यह घटना जब घटी तब – हमने विश्वासघात माना और कहा था | आज भी कौम की दृष्टि से मैं उसे विश्वासघात ही मानता हूँ | इसके बावजूद शीर्षक में विश्वासघात शब्द के बाद मैंने प्रश्न का चिह्न रखा है | इसका कारण यह हैं कि वास्तव में शायद जनरल स्मट्स का कार्य जान-बूझ कर किया हुआ विश्वासघात न हो; और जहाँ घात का इरादा न हो वहाँ विश्वास का भंग कैसे माना जाय ? १९१३-१४ में जनरल स्मट्स का मुझे जो अनुभव हुआ था उसे मैंने

उस समय कड़वा नहीं माना था और आज भी, जब मैं उस पर अधिक तटस्थता से सोच सकता हूँ, मैं उसे कड़वा नहीं मान सकता | यह सर्वथा संभव हैं कि जनरल स्मट्स द्वारा १९०८ में हिन्दुस्तानियों के प्रति किया हुआ व्यवहार जान-बूझ कर किया हुआ विश्वासभंग न हो |

इतनी प्रस्तावना जनरल स्मट्स के प्रति न्याय करने के लिए और फिर भी उनके नाम के साथ मैंने शीर्षक में विश्वासघात शब्द का जो उपयोग किया हैं उसका तथा इस प्रकरण में मुझे जो कुछ कहना हैं उसका बचाव करने के लिए मैंने यहाँ दी हैं |

पिछले प्रकरण में हमने देखा कि हिन्दुस्तानियों ने ट्रान्सवाल सरकार को संतोष हो इस तरीके से खुद होकर परवाने ले लिए थे | अब उस सरकार को खूनी कानून रद करना चाहिए था; और यदि वह ऐसा करती तो सत्याग्रह की लड़ाई बंद हो जाती | इसका अर्थ यह नहीं कि ट्रान्सवाल में हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध जो भी कानून अमल में थे वे सब रद हो जाते अथवा हिन्दुस्तानियों के सारे दुःख दूर हो जाते | उन्हें दूर कराने के लिए तो पहले की तरह हिन्दुस्तानियों को वैधानिक लड़ाई चलानी ही थी | सत्याग्रह खूनी कानून रूपी नये काले भयंकर बादल को दूर कराने तक ही सीमित था | इस कानून को यदि स्वीकार कर लिया जाता, तो कौम के नाम पर कलंक लगता तथा पहले ट्रान्सवाल से और अंत में संपूर्ण दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तानियों का अस्तित्व ही मिट जाता | लेकिन खूनी कानून रद करने के बजाय जनरल स्मट्स ने नया ही कदम उठाया | उन्होंने विधान-सभा में जो नया बिल पेश किया उसके द्वारा खूनी कानून को बहाल रखा और स्वेच्छा से लिए गए परवानों को कानूनी करार दिया | साथ ही, उस बिल में यह धारा भी जोड़ी कि जिन हिन्दुस्तानियों ने स्वेच्छा से परवाने ले लिए हैं, उन पर खूनी कानून लागू नहीं किया जा सकता | इसका मतलब यह हुआ कि एक हीं हेतु सिद्ध करने वाले दो कानून साथ-साथ चलें और ट्रान्सवाल में नये आने वाले हिन्दुस्तानियों पर या नये परवाने लेने वाले हिन्दुस्तानियों पर भी खूनी कानून लागू हो |

इस नये बिल को पढ़कर मैं तो हक्का-बक्का हो गया | कौम को मैं क्या जवाब दूँगा ? जिन पठान भाइयों ने जोहानिसबर्ग में हुई मध्य-रात्रि की सभा में मुझ पर भयंकर आरोप लगाये थे, उन्हें कितना बढ़िया भोजन मिल गया ? लेकिन मुझे कहना चाहिए कि इस गंभीर आघात से सत्याग्रह पर मेरा विश्वास शिथिल पड़ने की अपेक्षा अधिक दृढ़ हुआ | मैंने हमारी कमेटी की सभा बुलाई और उसके सदस्यों को नई परिस्थिति समझाई | कुछ ने मुझे ताना भी मारा : "हम तो आपसे कहते ही आये हैं कि आप बड़े भोले हैं | कोई आदमी जो भी कहता है उस पर आप विश्वास कर लेते हैं | आप अगर अपने निजी कामकाज में ही इतने भोले रहें, तो हमें उसकी चिन्ता नहीं | लेकिन आप कौम के काम में भी भोलापन दिखाते हैं, इससे कौम को मुसीबतें भोगनी पड़ती हैं | अब कौम के लोगों में पहले का जोश और उत्साह फिर पैदा हो, यह हमें तो बहुत कठिन मालूम होता हैं | हमारी कौम को तो

आप अच्छी तरह जानते हैं | वह सोडा वाटर की बोतल जैसी हैं | उसके भीतर क्षणिक जोश का जो उफान आता हैं उसका हमें यथासंभव अच्छे से अच्छा उपयोग करना चाहिए | वह उफान ठंडा पड़ा की सब कुछ खतम हुआ |"

इन शब्दबाणों में कोई जहर नहीं था | ऐसी बातें मैंने दूसरे अवसरों पर भी सुनी थीं | इसलिए मैंने हँसते-हँसते उत्तर दिया : "आप लोग जिसे मेरा भोलापन कहते हैं, वह तो मेरा अभिन्न अंग बना गया हैं | वह भोलापन नहीं किन्तु विश्वास हैं | और मैं मानता हूँ कि अपने मानव-बन्धुओं पर विश्वास रखना मेरा और आपका भी कर्तव्य हैं | फिर भी अगर आप इसे मेरा दोष समझते हैं और ऐसा मानते हैं कि मेरी सेवा से कौम को कोई लाभ होता हैं, तो फिर मेरे दोष से होने वाला नुकसान भी आपको सहन करना चाहिए | इसके सिवा, आपकी तरह मैं यह भी नहीं मानता कि कौम का जोश सोडा वोटर के उफान जैसा हैं | कौम में आपका और मेरा भी समावेश होता हैं | मेरे उत्साह और जोश के लिए आप ऐसा विशेषण लगायें, तो उसे मैं अवश्य हीं अपना अपमान समझूँगा और मेरा विश्वास हैं कि आप लोग भी अपने को इसका अपवाद हीं मानते होंगे | और यदि आप अपने को इसका अपवाद न मानते हों और अपने गज से ही कौम का माप निकालते हों, तो आप कौम का अपमान करते हैं | ऐसी महान लड़ाइयों में उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं | आपने विरोधी से चाहे जितनी स्पष्टता कर ली हो, फिर भी अगर वह विश्वास को तोड़ने पर ही तुल जाएँ, तो आप उसे कैसे रोक सकते हैं ? इस मंडल में ऐसे अनेक लोग हैं, जो मेरे पास दावा करने के लिए प्रामिसरी नोट लेकर आते हैं | प्रामिसरी नोट पर अपने दस्तखत करके हाथ कटवा देने से अधिक स्पष्टता और असंदिग्धता दूसरी क्या हो सकती हैं ? लेकिन ऐसे लोगों के खिलाफ भी अदालत में लड़ना पड़ता हैं | ऐसे लोग मुकदमों का विरोध करते हैं, अनेक प्रकार से अपना बचाव करते हैं, उनके खिलाफ फैसले होते हैं और जब्तियाँ निकाली जाती हैं | ऐसी अनुचित और अशोभनीय घटनाओं के लिए क्या गारंटी हैं, जिससे वे दुबारा न हो सकें ? इसलिए मेरी तो आपको यही सलाह है कि जो समस्या खड़ी हुई है उसे हम धैर्य और शान्ति से हल करने का प्रयत्न करें | हमें इस बात का ही विचार करना चाहिए कि यदि फिर से लड़ाई लड़नी पड़े तो हम क्या कर सकते हैं – अर्थात् दूसरे लोग क्या करेंगे इसका विचार न करके प्रत्येक सत्याग्रही को यह सोचना चाहिए कि वह स्वयं क्या करेगा या क्या कर सकेगा | मुझे तो लगता हैं कि यदि हम इतने लोग सच्चे रहेंगे तो दूसरे भी सच्चे रहेंगे, और यदि कोई कमजोरी उनमें पैदा हुई होगी तो हमारे उदाहराण से वे अपनी कमजोरी को दूर करके बल प्राप्त करेंगे |"

मुझे लगता हैं कि फिर से लड़ाई छिड़ने की संभावना के बारेमें जिन लोगों ने शुभ हेतु से ताना मार कर अपनी शंका प्रकट की थीं वे समझ गये थे | इस अवसर पर सेठ काछलिया दिनोंदिन अधिक मात्रा में अपना तेज और बल प्रकट कर रहे थे | वे हर प्रश्न पर कम से कम बोलकर अपना विश्वास बता देते थे और उस पर अटल रहते थे | मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नहीं हैं जब उन्होंने कमजोरी दिखाई हो या अंतिम परिणाम के विषय में शंका

भी प्रकट की हो | एक समय ऐसा आया जब ईसप मियाँ ने तूफानी समुद्र में कौम का कर्णधार बनने से इनकार कर दिया | उस समय हम सब ने एकमत से काछलिया का अपने कर्णधार के रूप में स्वागत किया | तब से लेकर लड़ाई की अंतिम घड़ी तक उन्होंने अपना हाथ पतवार से कभी हटाया नहीं | और जो मुसीबतें शायद ही कोई मनुष्य बरदाश्त कर सके, वे सब उन्होंने निश्चिन्त और निर्भय होकर बरदाश्त की | जब लड़ाई आगे बड़ी तब एक समय ऐसा भी आया कि कुछ लोगों के लिए जेल में जाना तो बहुत आसान था – एक तरह का आराम था, जब कि बाहर रहकर सारी बातों की सूक्ष्मता से जाँच करना, उनकी व्यवस्था करना और अनेक तरह के लोगों को समझाना और उनके साथ व्यवहार करना बहुत कठिन था |

आगे चलकर गोरे साहूकारों ने काछलिया को अपने शिकंजे में पकड़ा | दक्षिण अफ्रीका में अनेक हिन्दुस्तानी व्यापारी गोरे व्यापारियों की पेढ़ियों पर आधार रखते हैं | वे बिना किसी जमानत के लाखों रूपये का माल हिन्दुस्तानी व्यापारियों को उतार देती हैं | हिन्दुस्तानी व्यापारी गोरे व्यापारियों का ऐसा विश्वास प्राप्त कर सके, यह हिन्दुस्तानियों के व्यापार की सामान्य प्रामाणिकता का एक सुन्दर प्रमाण हैं | काछलिया सेठ पर भी बहुत सी गोरी पेढ़ियों का कर्ज था | गोरे व्यापारियों ने, ट्रान्सवाल सरकार के प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में भड़काने की वजह से, काछलिया से अपना पैसा तुरन्त चुका देने की माँग की | उन्होंने काछलिया को बुला कर कहा भी : "अगर आप सत्याग्रह की लड़ाई से हट जाएँ, तो हमें अपने पैसे की कोई जल्दी नहीं हैं | लेकिन अगर आप लड़ाई से न हटें, तो हमें डर हैं कि सरकार आपको कभी भी गिरफ्तार कर सकता हैं | उस हालत में हमारे पैसे का क्या होगा ? इसलिए आप अगर इस लड़ाई से हट ही न सकें; तो हमारे पैसे आपको तुरन्त चुका देने चाहिए |" वीर काछलिया ने उत्तर दिया : "हिन्दुस्तानियों की लड़ाई में भाग लेना मेरा व्यक्तिगत मामला हैं | उसका मेरे व्यापार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं | उस लड़ाई में मेरा धर्म, मेरी कौम का सम्मान और मेरा अपना स्वाभिमान समाया हुआ हैं | आपने मुझे माल उधार दिया, इसके लिए मैं आपका आभार मानता हूँ | परन्तु इस बात को या अपने व्यापार को मैं सर्वोपरि नहीं मान सकता | आपके पैसे मेरे पास सोने की मुहरों की तरह सुरक्षित है | मैं जिन्दा हूँ तब तक खुद बिक कर भी आपके पैसो की भरपाई करूँगा | और मान लीजिए कि मुझे कुछ हो गया, तो भी आप समझ रखें कि मेरा माल और उगाही तो आपके हाथ में ही हैं | इसलिए मैं चाहता यह हूँ कि जिस तरह आज तक आपने मुझ पर विश्वास रखा हैं, उसी तरह आगे भी रखें |" यद्यपि यह दलील बिलकुल उचित थी और काछलिया की दृढ़ता गोरे व्यापारियों के लिए विश्वास का एक अधिक कारण थी, फिर भी उसका प्रभाव उस समय व्यापारियों पर नहीं पड़ा | हम सोते आदमी को तो जगा सकते हैं, लेकिन जो आदमी जागते हुए भी सोने का ढोंग करता हो उसे नहीं जगा सकते | यही हाल गोरे व्यापारियों का था | उन्हें तो काछलिया को दबाना था, झुकाना था; वर्ना उनका पैसा बिलकुल सुरक्षित था |

२२ जनवरी, १९०९ को मेरे ऑफिस में गोरे साहूकारों की एक सभा हुई | उनसे मैंने स्पष्ट शब्दो में कहा कि काछलिया पर वे जो दबाव डाल रहे हैं, उसमें व्यापार की नीति नहीं परन्तु राजनीति हैं | रजनीतिक चाल व्यापारियों को शोभा नहीं देती | लेकिन वे नाराज हो गये | मेरे पास काछलिया सेठ के माल की और उनकी उगाही की फेहरिस्त थी | वह मैंने उन लोगों को दिखाई और उसके आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि उनका शत-प्रतिशत पैसा उन्हें मिल सकता हैं | और अगर वे काछलिया का व्यापार किसी दूसरे को बेचना चाहें, तो काछलिया अपना सारा माल और सारी उगाही भी खरीदार को सौंप देने के लिए तैयार हैं | अगर ऐसा न करना चाहें तो गोरे व्यापारी जो माल काछलिया की दुकान में हैं उसे मूल भाव से ले लें; और ऐसा करने पर भी कुछ पैसा कम मिले, तो उसके बदले वे पसंद करें वैसी उगाही ले लें | पाठक समझ सकेंगे की मेरा यह प्रस्ताव स्वीकार करने से गोरे व्यापारियों को कुछ भी खोना न पड़ता (और मेरे अनेक मुवक्किलों के लिए आर्थिक संकट के समय साहूकारों के साथ मैं ऐसी व्यवस्था कर सका था) | लेकिन इस अवसर पर गोरे व्यापारी न्याय नहीं चाहते थे | वे तो काछलिया को झुकाना चाहते थे | पर काछलिया झुके नहीं, इसलिए दिवालिया कर्जदार घोषित कर दिये गये |

यह दिवालियापन काछलिया के लिए कलंक-रूप नहीं था, बल्कि उनका भूषण था | इससे कौम के लोगों में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और उनकी दृढ़ता तथा वीरता के लिए सब लोगों ने उन्हें बधाई दी | परन्तु इस प्रकार की वीरता अलौकिक कही जाएगी | सामान्य मनुष्य उसे समझ ही नहीं सकता | दिवालियापन दिवालियापन न रहकर, बदनामी न रह कर, आदर और प्रतिष्ठा की वस्तु भी बन सकती हैं, इसकी कल्पना भी सामान्य मानव को नहीं आ सकती | परन्तु काछलिया को यही बात स्वाभाविक लगी | अनेक हिन्दुस्तानी व्यापारी केवल दिवालियेपन के डर से ही खूनी कानून के सामने झुक गये थे | काछलिया चाहते तो दिवालियेपन से बच सकते थे | सत्याग्रह की लड़ाई से हट जाना तो इससे बचने का उपाय था ही | लेकिन यहाँ मैं उसकी बात नहीं कर रहा हूँ | काछलिया के बहुत से हिन्दुस्तानी मित्र ऐसे थे, जो इस संकट के समय उन्हें पैसे उधार दे सकते थे | लेकिन ऐसी व्यवस्था करके यदि उन्होंने अपने व्यापार को बचाया होता, तो उनकी बहादुरी लज्जित होती | जेल जाने का जो खतरा उनके सिर पर था, वह तो सभी सत्याग्रहियों के सिर पर था | इसलिए किसी सत्याग्रही से पैसे लेकर वे गोरों को चुकाते, तो यह उन्हें शोभा न देता | लेकिन जिस प्रकार सत्याग्रही व्यापारी उनके मित्र थे उसी प्रकार खूनी कानून के सामने झुकने वाले व्यापारी भी उनके मित्र थे | मैं जानता हूँ कि इनकी मदद काछलिया को मिल सकती थी | जहाँ तक मुझे याद है, ऐसे एक-दो मित्रों ने उनसे कहलवाया भी था | लेकिन उनकी मदद लेना यह स्वीकार करने के बराबर था कि खूनी कानून के सामने झुकने में बुद्धिमानी हैं | इसलिए हम दोनों ने यह निर्णय किया कि ऐसी मदद कभी नहीं ली जा सकती | इसके सिवा, हम दोनों ने यह भी सोचा कि अगर काछलिया खुद को दिवालिया घोषित होने दें, तो उनका दिवालियापन दूसरों के लिए एक ढाल का काम करेगा;

क्योंकि दिवालियेपन के शत-प्रतिशत नहीं तो ९९ प्रतिशत मामलों में तो लेनदारों को कुछ न कुछ खोना ही पड़ता हैं | यदि ५० प्रतिशत रकम भी मिल जाए तो वे खुश होते हैं और ७५ प्रतिशत मिल जाय तब तो शत-प्रतिशत मिली जैसा ही मान लेते हैं; क्योंकि दक्षिण अफ्रीका के बड़े-बड़े व्यापारी सामान्यत: ६(१/४) प्रतिशत मुनाफा नहीं लेते, परन्तु २५ प्रतिशत लेते हैं | इसलिए ७५ प्रतिशत रकम मिल जाए तब तक वे उसे घाटे का व्यापार मानते ही नहीं | लेकिन दिवालियेपन में शत-प्रतिशत रकम तो शायद ही कभी मिलती हैं, इसलिए कोई भी लेनदार कर्जदार को दिवालिया बनाने की कभी इच्छा नहीं रखता |

इसलिए काछलिया के दिवालियेपन से इस बात की संभावना थीं कि गोरे व्यापारी दूसरे सत्याग्रही व्यापारियों को धमकी देना बन्द कर दें | और हुआ भी ऐसा ही | गोरे व्यापारियों का उद्देश्य काछलिया को सत्याग्रह की लड़ाई से हटाना था और अगर वे ऐसा न करें तो उनसे शतप्रतिशत नकद पैसा वसूल करना था | लेकिन दोनों में से उनका एक भी उद्देश्य पूरा न हुआ, बल्कि उनकी आशा से उलटा ही परिणाम आया | किसी प्रतिष्ठित हिन्दुस्तानी व्यापारी द्वारा दिवालियेपन का स्वागत होने का यह पहला उदाहरण देख कर गोरे व्यापारी स्तब्ध रह गये और सदा के लिए शांत हो गये | एक वर्ष के भीतर गोरे व्यापारियों को काछलिया सेठ के माल शत-प्रतिशत पैसा मिला गया | दिवालियेपन में शत-प्रतिशत पैसा मिलने का मेरी जानकारी में तो दक्षिण अफ्रीका में यह पहला ही उदाहरण था | इस कारण से सत्याग्रह की हमारी लड़ाई चल रही थी उसी बीच गोरे व्यापारियों में भी काछलिया का सम्मान खूब बढ़ गया और उन्हीं व्यापारियों ने लड़ाई के चालू रहते हुए भी काछलिया को चाहे जितना माल उधार देने की तैयारी दिखाई | परन्तु काछलिया का बल तो उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता था | सत्याग्रह के रहस्य को भी वे समझ ही चुके थे | अब तो कोई भी यह नहीं कह सकता था कि लड़ाई कब तक चलेगी; इसलिए दिवालियापन घोषित हो जाने के बाद हमने निश्चय कर लिया था कि लड़ाई के दौरान सेठ काछलिया बड़े व्यापार में न पड़े | कोई गरीब आदमी अपना खर्च चला सके इतना ही पैसा पैदा करने लायक व्यापार करना और बाकी व्यापार लड़ाई के समय में नहीं करना-ऐसा निश्चय काछलिया ने किया था | इसलिए गोरे व्यापारियों ने जो सुविधायें उन्हें दीं, उनका उपयोग उन्होंने नहीं किया |

पाठक यह बात तो समझ लेंगे कि काछलिया सेठ के जीवन की जिन घटनाओं का वर्णन मैंने यहाँ किया हैं, वे सब इस प्रकरण में उल्लिखित कमेटी की बैठक के बाद हुई ऐसा नहीं हैं | लेकिन उनका वर्णन एक ही स्थान पर देना ठीक होगा, ऐसा मानकर इस प्रकरण में मैंने उन्हें स्थान दिया है | तारीख के हिसाब से देखा जाए तो सत्याग्रह की दूसरी लड़ाई शुरू हुई (१० सितम्बर, १९०८) उसके कुछ समय बाद काछलिया सेठ अध्यक्ष बने और उसके लगभग पाँच महीने बाद उन्हें दिवालिया घोषित किया गया |

लेकिन अब हम कमेटी की बैठक के परिणामों पर आयें | उस बैठक के बाद मैंने जनरल स्मट्स को पत्र लिखा कि नया बिल सरकार और कौम के बीच हुए समझौते को भंग करता हैं | अपने पत्र में मैंने जनरल के उस भाषण की ओर भी उनका ध्यान खींचा था, जो उन्होंने समझौता होने के एक सप्ताह के भीतर रिचमन्ड में दिया था | उस भाषण में उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग किया था : "ये लोग (एशियावासी) एशियाटिक कानून रद करने के लिए मुझसे कहते हैं | लेकिन जब तक वे लोग स्वेच्छा से परवाने न ले लें तब तक वह कानून रद करने से मैंने इनकार कर दिया हैं |" राजनीतिज्ञ ऐसी किसी बात का उत्तर नहीं देते, जो उन्हें उलझन में डाल दे | और यदि वे उत्तर देते भी हैं, तो वह गोल-गोल होता हैं | जनरल स्मट्स ने इस कला का पूर्ण विकास किया था | उन्हें आप चाहे जितना लिखें, चाहे जितने भाषण आप करें, लेकिन जब उनकी इच्छा उत्तर देने की न हो तब आप उनसे उत्तर निकलवा ही नहीं सकते | प्राप्त होने वाले पत्रों का उत्तर उन्हें देना ही चाहिए, यह सामान्य शिष्टाचार उनके लिए बन्धनकारक नहीं था | इसलिए मेरे लिखे पत्रों का उनकी ओर से मुझे कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिल सका |

मैं श्री आल्बर्ट कार्टराइट से मिला, जिन्होंने समझौते के समय सरकार के और हमारे बीच मध्यस्थ का काम किया था | उन्हें जनरल स्मट्स द्वारा प्रस्तुत नये बिल से गहरा आघात लगा | वे बोले : "सचमुच, मैं इस आदमी को बिलकुल नहीं समझ सकता | मुझे अच्छी तरह याद हैं कि उसने एशियाटिक एक्ट रद करने का वचन दिया था | मैं अपनी शक्तिभर सब कुछ करूँगा | परन्तु आप जानते हैं कि जब एक बार वह आदमी कोई निश्चय कर लेता हैं तो फिर उसके सामने किसी की कुछ नहीं चलती | अखबारों के लेखों की तो वह जरा भी परवाह नहीं करता | इसलिए मुझे पूरा डर हैं कि मेरी सहायता से आपको कोई लाभ नहीं होगा |" मैं श्री हॉस्किन आदि से भी मिला | उन्होंने जनरल स्मट्स को पत्र लिखा | उन्हें भी अत्यन्त असंतोषजनक उत्तर मिला | मैंने 'विश्वासघात' शीर्षक से *इंडियन ओपीनियन* में लेख भी लिखे | लेकिन जनरल स्मट्स उनकी परवाह क्यों करने लगे ? तत्वज्ञानी अथवा क्रूर आदमी के लिए आप चाहे जितने कड़वे विशेषणों का प्रयोग करें, उस पर उनका कोई असर नहीं पड़ता | वह तो अपना सोचा हुआ काम करने में जुटा रहता हैं | मैं नहीं जानता कि जनरल स्मट्स के लिए इन दो में से कौन से विशेषण का उपयोग किया जा सकता हैं | उनकी वृत्ति में एक प्रकार की दार्शनिकता हैं, यह तो मुझे स्वीकार करना ही चाहिए | जिस समय हम दोनों के बीच पत्र-व्यवहार चलता था और अखबारों में मेरे लेख छपते थे, उस समय तो मुझे याद है कि मैंने उन्हें निर्दय ही माना था | लेकिन उस समय सत्याग्रह की लड़ाई की पहली ही मंजिल थी | वह लड़ाई का दूसरा ही वर्ष था, जब कि लड़ाई तो पूरे ८ वर्ष चली थी | इस बीच मैं जनरल स्मट्स से कई बार मिला था | बाद की हमारी बातचीत पर से मुझे ऐसा लगने लगा था कि जनरल स्मट्स के कांइयांपन के बारेमें जो सामान्य मान्यता दक्षिण अफ्रीका में प्रचालित हैं उसमें परिवर्तन होना चाहिए | दो बातें मुझे स्पष्ट रूप से मालूम हुई : (१) अपनी राजनीति में उन्होंने कुछ सिद्धान्त अपनाये हैं; और (२) वे सिद्धान्त

सर्वथा अनीतिमय तो नहीं ही हैं | लेकिन इसके साथ ही मैंने यह भी देखा कि उनके राजनीतिशास्त्र में चालाकी के लिए, और अवसर आने पर सत्याभास के लिए भी, स्थान है|[१]

_____

१. यह छापते समय हमें पता चल गया है कि जनरल स्मट्स की सरदारी का भी अंत आ सका है |

- **मो. क. गांधी**

२. लड़ाई की पुनरावृत्ति

एक ओर हम जनरल स्मट्स को समझौते की शर्तें पालने के लिए मना रहे थे, तो दूसरी ओर कौम को फिर से जाग्रत करने का कार्य भी उत्साहपूर्वक चला रहे थे | हमें यह अनुभव हुआ कि हर जगह कौम के लोग फिर से लड़ाई छेड़ने के लिए और जेल जाने के लिए तैयार ही हैं | हर जगह सभायें की गईं | सभाओं में हमने कौम के लोगों को सरकार के साथ चल रहे पत्रव्यवहार की बातें समझाई | *इंडियन ओपीनियन* में तो हर सप्ताह की डायरी छपती ही थी, जिससे कौम सारी गतिविधि से अच्छी तरह परिचित रहती थी | सभाओं में सबको यह भी समझाया और चेताया गया कि स्वेच्छा से लिए हुए परवाने निष्फल जाने वाले हैं | लोगों से यह भी कहा गया कि यदि किसी भी उपाय से खूनी कानून रद न हो, तो हमें उन परवानों को जला ही डालना चाहिए | इससे ट्रान्सवाल की सरकार यह समझ जाएगी कि कौम अपनी बात पर दृढ़ और निश्चिन्त है तथा जेल जाने को भी तैयार हैं | परवानों की होली जलाने के लिए हर जगह से परवाने इकट्ठे भी किये गये थे |

जिस नये बिल के बारेमें हम पिछले प्रकरण में पढ़ चुके हैं, उसे पास करने की सरकार तैयारियाँ करने लगी | ट्रान्सवाल की विधान-सभा में भी कौम ने अरजी भेजी | लेकिन उसका कोई नतीजा नहीं आया | अन्त में सत्याग्रहियों का 'अल्टिमेटम' सरकार के पास भेजा गया | 'अल्टिमेटम' का अर्थ हैं निश्चय-पत्र या धमकी का पत्र, जो लड़ाई के हेतु से ही भेजा जाता हैं | 'अल्टिमेटम' शब्द का उपयोग कौम की ओर से नहीं किया गया था | परन्तु कौम का निश्चय बताने वाला जो पत्र भेजा गया था, उसे जनरल स्मट्स ने ही विधान-सभा में 'अल्टिमेटम' कहा था | साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि, "जो लोग ऐसी धमकी सरकार को दे रहे हैं, उन्हें सरकार की शक्ति की कल्पना नहीं हैं | मुझे दुःख ही इस बात का होता हैं कि कुछ आन्दोलन कारी (एजिटेटर) गरीब हिन्दुस्तानियों को भड़काते हैं, और उन गरीबों पर अगर आन्दोलनकारियों का प्रभाव होगा, तो वे बरबाद हो जाएँगे |" अखबारों के रिपोर्टरों ने उस अवसर का वर्णन करते हुए लिखा था कि विधान-सभा के अनेक सदस्य 'अल्टिमेटम' की बात सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो गये थे | उनकी आँखें लाल हो गई थीं | उन्होंने जनरल स्मट्स द्वारा प्रस्तुत किये गये नये बिल को एकमत और उत्साह से पास कर दिया |

उपर्युक्त 'अल्टिमेटम' में इतनी ही बात थी : "हिन्दुस्तानी कौम और जनरल स्मट्स के बीच जो समझौता हुआ था, उसमें स्पष्ट रूप से यह कहा गया था कि यदि हिन्दुस्तानी लोग स्वेच्छा से परवाने ले लेंगे, तो उन्हें कानूनी मानने के लिए एक बिल विधान-सभा में पेश किया जाएगा और एशियाटिक कानून रद कर दिया जाएगा | यह बात तो प्रसिद्ध है कि सरकारी अधिकारियों को संतोष हो इस ढंग से कौम ने ऐच्छिक परवाने निकलवा लिए हैं | इसलिए अब एशियाटिक कानून रद होना ही चाहिए | इस विषय में कौम ने जनरल स्मट्स को कई पत्र लिखे हैं; न्याय पाने के लिए दूसरे भी आवश्यक कानूनी उपाय किये हैं | लेकिन अभी तक कौम के सारे प्रयत्न असफल

रहे हैं | विधान-सभा में जब बिल लगभग पास होने की स्थिति में पहुँच गया हैं, उस समय हिन्दुस्तानी लोगों में फैली हुई घबराहट और उत्तेजना से सरकार को परिचित कराना कौम के नेताओं का फ़र्ज़ हैं | और हमें दुःख के साथ यह कहना पड़ता हैं कि यदि समझौते की शर्तों के अनुसार एशियाटिक कानून रद नहीं किया जाएगा और यदि वैसा करने की सूचना कौम को अमुक समय तक नहीं दी जाएगी, तो कौम के लोगों ने जो परवाने स्वेच्छा से लिए हैं उन्हें जला डाला जाएगा; और ऐसा करने के फलस्वरूप उन पर जो भी मुसीबतें आएँगी, उन्हें वे नम्रता से और दृढ़ता से सहन कर लेंगे |"

ऐसे पत्र को 'अल्टिमेटम' मानने का एक कारण तो यह था कि उसमें उत्तर के लिए सरकार को एक अवधि दे दी गई थी | दूसरा कारण यह था कि गोरे लोग हिन्दुस्तानियों को सामान्यत: जंगली कौम मानते थे | यदि गोरे हिन्दुस्तानियों को अपने जैसे मानते, तो इस पत्र को उन्होंने पूरी तरह सभ्यतापूर्ण माना होता और उस पर ध्यान भी दिया होता | लेकिन गोरे हिन्दुस्तानियों को जंगली मानते थे, यही बात हिन्दुस्तानियों के लिए सरकार को उपर्युक्त पत्र लिखने का पर्याप्त कारण थी | हिन्दुस्तानियों को इन दो स्थितियों में से किसी एक को स्वीकार करना था : एक, जंगली होने की बात कबूल करके दबे रहना; और दूसरी, जंगली होने की बात का इनकार करने की दिशा में व्यावहारिक कदम उठाना | ऐसे कदमों में उपर्युक्त पत्र पहला कदम था | यदि इस पत्र के पीछे उस पर अमल करने का दृढ़ निश्चय न होता, तो वह उद्धतातापूर्ण माना जाता और कौम विचारशून्य तथा मूर्ख सिद्ध होती |

पाठकों के मन में शायद यह शंका उठेगी कि जंगलीपन के आक्षेप से इनकार करने का पहला कदम तो १९०६ में ही उठाया गया था, जब सत्याग्रह का प्रतिज्ञा ली गई थीं; और यदि यह ठीक हो तब तो इस पत्र में ऐसा नया क्या था कि उसे मैं इतना महत्त्व देता हूँ और यह मानता हूँ कि उस समय से कौम ने जंगलीपन के आरोप से इनकार करना शुरू किया था ? एक दृष्टि से ऐसा तर्क सही माना जाएगा | लेकिन अधिक विचार करने से पता चलेगा कि कौम के इनकार का सच्चा आरंभ उपर्युक्त निश्चय-पत्र से ही हुआ था | यह बात पाठकों को याद रखनी चाहिए कि सत्याग्रह की प्रतिज्ञा की घटना अकस्मात् हो गई थी | उसके बाद की जेल वगैरा उसका अनिवार्य परिणाम था | उससे अनजाने ही कौम की प्रतिष्ठा बड़ी थी | परन्तु यह पत्र सरकार को लिखते समय कौम को पूरा ज्ञान था और प्रतिष्ठा का दावा करने का उसका पूरा इरादा था | ध्येय तो पहले की तरह इस समय भी खूनी कानून रद कराने का हीं था | परन्तु इस पत्र में लिखी गई भाषा की शैली में, कार्य-पद्धति के चुनाव में तथा अन्य कई बातों में भेद था | कोई गुलाम अपने मालिक को सलाम करे और कोई मित्र अपने मित्र को सलाम करे – ये दोनों हैं तो सलाम ही, परन्तु दोनों के बीच इतना बड़ा भेद हैं कि उस भेद के कारण ही तटस्थ दर्शक एक आदमी को गुलाम के रूप में और दूसरे को मित्र के रूप में पहचान लेगा |

सरकार को 'अल्टिमेटम' भेजते समय ही हमारे बीच काफ़ी चर्चा हुई थी | अवधि तय करके सरकार से उत्तर माँगना अविनय अथवा अशिष्टता नहीं मानी जाएगी ? कहीं इसका परिणाम यह तो न आये कि सरकार हमारी माँग स्वीकार करना चाहती हो, तो भी इसके कारण स्वीकार न करे ? क्या कौम का निश्चय परोक्ष रूप में सरकार को बताना पर्याप्त नहीं होगा ? ऐसे अनेक प्रश्नों पर गहरा विचार करने के बाद हम सब ने एकमत से यह निश्चय किया कि हम जिसे सच्चा और उचित मानते हैं वही हमें करना चाहिए | इससे अशिष्टता का झूठा आरोप हमारे सिर मढ़ा जाए, तो वह खतरा भी हमें उठाना चाहिए; और जो कुछ सरकार देना चाहती हैं वह झूठे क्रोध के कारण यदि हमें न दे, तो वह खतरा भी मोल लेना चाहिए | यदि हम किसी भी रूप में मनुष्य के नाते अपनी हीनता स्वीकार न करते हों और यह मानते हों कि चाहे जितना दुःख चाहे जितने समय तक उठाना पड़े तो भी उसे उठाने की शक्ति हम में है, तब तो जो मार्ग सीधा और सही हैं वही हमें ग्रहण करना चाहिए |

अब शायद पाठक यह समझ सकेंगे कि इस बार जो कदम उठाया गया था, उसमें कुछ नवीनता और विशेषता थी | उसकी प्रतिध्वनि विधान-सभा में और बाहर के गोरे मंडलों में भी उठी | कुछ ने हिन्दुस्तानियों के साहस की प्रशंसा की और कुछ बहुत गुस्सा हुए | उन्होंने ऐसे उद्गार भी प्रकट किये कि इस उद्धतता के लिए हिन्दुस्तानियों को पूरी सजा मिलनी चाहिए | दोनों पक्षों ने अपने व्यवहार से हिन्दुस्तानियों के इस कदम की नवीनता स्वीकार की | जिस समय सत्याग्रह आरंभ हुआ था उस समय यद्यपि वास्तव में वह बिलकुल नया कदम था, फिर भी उससे गोरों में जितनी खलबली मची थी उसकी अपेक्षा इस पत्र से कहीं अधिक खलबली मची | इसका एक कारण तो स्पष्ट ही हैं | सत्याग्रह आरंभ हुआ उस समय किसी को कौम की शक्ति का अंदाज नहीं था | उस समय इस प्रकार का पत्र अथवा ऐसी भाषा उचित नहीं मानी जाती | लेकिन अब कौम की थोड़ी-बहुत कसौटी हो चुकी थी और सब कोई यह देख चुके थे कि सामुदायिक कष्टों का विरोध करने में जो दुःख आये उन्हें बरदाश्त करने की शक्ति कौम में हैं | इसलिए निश्चय-पत्र की भाषा स्वाभाविक रूप में ही विकसित हुई थी और इस कारण वह अशोभनीय मालूम नहीं हुई |

३. ऐच्छिक परवानों की होली

जिस दिन नया एशियाटिक बिल विधान-सभा में पास होने वाला था, उसी दिन 'अल्टिमेटम' अथवा निश्चय-पत्र की अवधि पूरी होती थी | अवधि बीतने के दो-एक घंटे बाद परवाने जलाने की सार्वजनिक विधि पूरी करने के लिए एक सभा बुलाई गई थी | सत्याग्रह-समिति ने यह माना था कि आशा के विपरीत कहीं सरकार का अनुकूल उत्तर मिल जाए तो भी सभा बुलाना व्यर्थ नहीं होगा, क्योंकि उस स्थिति में सभा का उपयोग सरकार का अनुकूल निर्णय कौम को सुनाने में कर लिया जाएगा |

लेकिन समिति का विश्वास यह था कि कौम के निश्चय-पत्र का सरकार कोई उत्तर ही नहीं देगी | हम सब समय से पहले सभास्थान पर पहुँच गये थे | हमने ऐसी व्यवस्था भी कर रखी थीं कि यदि सरकार का तार से कोई उत्तर आये, तो वह तुरन्त ही सभा में पहुँच जाए | सभा का समय ४ बजे का रखा गया था | नियमानुसार सभा जोहानिसबर्ग की हमीदिया मसजिद के मैदान में १६ अगस्त, १९०८ को हुई | सारा मैदान हिन्दुस्तानियों से खचाखच भर गया था | दक्षिण अफ्रीका के हबशी अपना खाना बनाने के लिए ज़रुरत के मुताबिक चार पैरों वाली छोटी या बड़ी लोहे की कड़ाही का उपयोग करते हैं | परवाने जलाने के लिए ऐसी ही एक बड़ी से बड़ी कड़ाई, जो उपलब्ध हो सकी, एक हिन्दुस्तानी व्यापारी की दुकान से मँगवा ली गई थी | उसे एक कोने में मंच पर रख दिया गया था |

सभा शुरू होने ही वाली थी कि एक स्वयंसेवक साइकल पर आ पहुँचा | उसके हाथ में तार था | उसमें सरकार का उत्तर था | उत्तर में हिन्दुस्तानी कौम के निश्चय के लिए खेद प्रकट किया गया था और यह भी कहा गया था कि सरकार अपना निश्चय बदलने में असमर्थ हैं | तार पढ़कर सभा में सबको सुना दिया गया | सभा ने उसका स्वागत किया, मानो सभा के लोगों को इस बात का हर्ष हुआ कि सरकार द्वारा निश्चय-पत्र की माँग स्वीकार कर लिए जाने से परवानों की होली जलाने का जो शुभ अवसर उनके हाथ से चला जाता वह चला नहीं गया ! ऐसा हर्ष उचित था या अनुचित, यह निश्चय के साथ कहना बहुत कठिन हैं | जिन-जिन लोगों ने तालियाँ बजाकर सरकारी उत्तर का स्वागत किया, उनका उद्देश्य जाने बिना उचित या अनुचित निर्णय नहीं किया जा सकता | लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता हैं कि यह हर्ष सभा के उत्साह का सुन्दर चिह्न था | सभा के लोगों को अब अपनी ताकत का थोड़ा भान हुआ था |

सभा का कार्य आरंभ हुआ | सभापति ने सभा को सावधान किया और उसे सारी परिस्थिति समझाई | अवसर के अनुरूप प्रस्ताव पास किये गये | मैंने जो विभिन्न परिस्थितियाँ सरकार के साथ की गई लम्बी बातचीत में खड़ी हुई थीं, उन पर स्पष्ट प्रकाश डाला और कहा : "जिन लोगों ने अपने परवाने जलाने के लिए दिये हैं, उनमें से कोई वापिस लेना चाहें तो ले सकते हैं | केवल परवाने जलाने से ही कोई अपराध नहीं होता और इतना कार्य

कर डालने से ही जेल जाने की उमंग रखने वालों को जेल नहीं मिलेगा | परवाने जलाकर तो हम केवल अपना यह निश्चय प्रकट करते हैं कि हम सरकार के खूनी कानून के सामने नहीं झुकेंगे और परवाना दिखाने जितनी शक्ति भी हम अपने हाथ में नहीं रखना चाहते | लेकिन जो आदमी आज परवाने जलाने की क्रिया में शरीक होता हैं वह यदि कल ही जाकर नया परवाना ले-ले, तो कोई उसका हाथ नहीं पकड़ सकता | जिनका इरादा ऐसा कुकर्म करना का हो अथवा जिन्हें कसौटी के समय अडिग रहने की अपनी शक्ति पर अविश्वास हो, उनके लिए अभी भी अपने परवाने वापिस लेने का मौका हैं और ये परवाने उन्हें वापिस दिये जा सकते हैं | इस समय अपना परवान वापिस लेने वाले को शरमाने की ज़रुरत नहीं | मैं तो इसे एक तरह की हिम्मत भी मानूँगा | लेकिन बाद में परवाने लेने में शरम और बदनामी हैं और उससे कौम को नुकसान होगा | इसके सिवा, इस बार कौम को यह भी समझ लेना चाहिए कि लड़ाई लम्बी चलेगी | हम यह भी जानते हैं कि हम में से कुछ लोग अपनी प्रतिज्ञा से डिग गये हैं और उस हद तक कौम की गाड़ी खींचने वाले जो लोग बाकी रहे हैं उन्हें खींचने में अधिक जोर लगाना पड़ेगा, यह भी स्पष्ट हैं | मेरी सलाह यह हैं कि इन सब बातों का विचार करने के बाद ही हमें आज का यह साहस करना चाहिए |"

मेरा भाषण चल रहा था उसी बीच सभा में ऐसी आवाजें उठती रही थीं : "हमें परवाने वापिस नहीं चाहिए | आप उन्हें जला डालिये |" अंत में मैंने कहा कि जिन्हें इस प्रस्ताव का विरोध करना हो, वे लोग खड़े हो जाएँ | लेकिन एक भी आदमी खड़ा न हुआ | इस सभा में मीर आलम भी हाजिर था | उसने सभा में यह घोषणा की कि मुझ पर हमला करने में उससे भूल हुई थी; और अपना असल परवाना भी उसने मुझे जलाने के लिए दे दिया ! नया परवाना तो उसने स्वेच्छा से लिया ही नहीं था | मैंने मीर आलम का हाथ पकड़ा और हर्ष से उसे दबाया | मैंने दुबारा मीर आलम से कहा कि मेरे मन में तो उसके प्रति कभी रोष था ही नहीं | मीर आलम ने अपनी भूल स्वीकार करके परवाना जलाने के लिए दिया, इससे सभी की खुशी का पार न रहा |

कमेटी के पास जलाने के लिए २००० से ऊपर परवाने आ चुके थे | परवानों का ढेर कड़ाही में डाला गया, ऊपर से घासलेट उंड़ेला गया और ईसप मियाँ ने उसे दियासलाई दिखाई | सारी सभा खड़ी हो गई और जब तक परवाने जलते रहे तब तक उसकी तालियों से मैदान गूँजता रहा | जिन कुछ लोगों ने अभी तक परवाने अपने पास रख छोड़े थे, उनके परवानों की भी अब मंच पर वर्षा होने लगी | वे परवाने भी कड़ाही में डाल दिये गये | जब उनसे पूछा गया कि होली जलने तक आपने परवाने क्यों नहीं दिये, तो कुछ लोगों ने कहा कि होली जल रही हो उस समय परवाने देना अधिक उपर्युक्त होगा और दूसरों पर उसका अधिक असर होगा, ऐसा मानकर हमने पहले परवाने नहीं दिये | अन्य कुछ लोगों ने सच्चे मन से कबूल किया : "परवाने देने की हमारी हिम्मत ही नहीं हो रही थी | अंतिम क्षण तक हमारे मन में यह विचार बना रहा कि परवाने शायद न भी जलें | लेकिन

परवानों की यह होली देखने के बाद हमसे रहा ही नहीं गया | हमने सोचा कि जो सबका होगा वही हमारा होगा |" सत्याग्रह की लड़ाई के सिलसिले में मन की ऐसी सचाई और स्पष्टवादिता के अनेक अनुभव मुझे हुए थे |

इस सभा में अंग्रेजी अखबारों के संवाददाता आये थे | उन पर भी सभा के संपूर्ण दृश्य का बड़ा गहरा असर पड़ा | उन्होंने अपने अखबारों में सभा का हूबहू वर्णन किया | इंग्लैंड के *डेली मेल* नामक अंग्रेजी दैनिक के जोहानिसबर्ग स्थित संवाददाता ने अपने अखबार को इस सभा का विवरण भेजा था | अपने वर्णन में उसने परवानों की होली की तुलना अमेरिका के अंग्रेजों के उस कार्य से की थी, जिसमें उन्होंने इंग्लैंड से भेजी हुई चाय की पेटियों को बोस्टन बंदरगाह के समुद्र में डूबा दिया था और इंग्लैंड के अधीन न रहने का अपना निश्चय घोषित किया था | दक्षिण अफ्रीका की स्थिति इस प्रकार थी : एक ओर १३००० हिन्दुस्तानियों का निराधार समुदाय था और दूसरी ओर ट्रान्सवाल का शक्तिशाली राज्य था | और, अमेरिका में एक ओर थे वहाँ के सब प्रकार से कुशल लाखों गोरे तथा दूसरी ओर थी अत्यन्त शक्तिशाली ब्रिटिश सल्तनत | इन दो स्थितियों की तुलना करने पर *डेली मेल* के संवाददाता ने हिन्दुस्तानियों के बारेमें कोई अतिशयोक्ति की हो ऐसा मुझे नहीं लगता | हिन्दुस्तानियों का एकमात्र शस्त्र था सत्य पर और ईश्वर पर उनकी श्रद्धा | इसमें कोई शंका नहीं कि श्रद्धालु मनुष्य के लिए यह शस्त्र सर्वोपरि हैं | लेकिन जब तक जन-साधारण में यह दृष्टि उत्पन्न नहीं होती तब तक तो शस्त्र-रहित १३००० हिन्दुस्तानी शस्त्रबल वाले अमरीकी गोरों की तुलना में तुच्छ ही माने जाएँगे | परन्तु ईश्वर तो निर्बल का ही बल हैं, इसलिए जगत उन्हें तुच्छ और निर्बल समझे यह ठीक ही हैं |

४. कौम पर नई बात उठाने का आक्षेप

ट्रान्सवाल विधान-सभा की जिस बैठक में एशियाटिक कानून (दूसरा) पास हुआ था, उसी बैठक में जनरल स्मट्स ने एक दूसरा बिल भी पेश किया था | उसका नाम था 'इमिग्रैन्ट्स रेस्ट्रिक्शन एक्ट' (१९०७ का पन्द्रहवाँ एक्ट) – अर्थात् नये आने वालों पर अंकुश लगाने वाला कानून | यह कानून वैसे तो सभी पर लागू होता था, परन्तु उसका मुख्य उद्देश्य नये आने वाले हिन्दुस्तानियों पर प्रतिबन्ध लगाना था | यह कानून बनाने में नेटाल के ऐसे ही एक कानून का अनुकरण किया गया था | लेकिन इसमें एक धारा ऐसी थी जिसकी वजह से उन लोगों का भी निषिद्ध आगंतुकों की व्याख्या में समावेश हो जाता था, जिन पर एशियाटिक कानून लागू होता था | अत: इस कानून में परोक्ष रूप में ऐसी युक्ति निहित थी, जिससे एक भी नया हिन्दुस्तानी ट्रान्सवाल में दाखिल न हो सके | इसका विरोध करना कौम के लिए नितान्त आवश्यक था | लेकिन कौम के सामने प्रश्न यह खड़ा हुआ कि सत्याग्रह में इस नये कानून का समावेश किया जाएँ या नहीं | सत्याग्रह कब किया जाएँ और किन विषयों के सम्बन्ध में किया जाएँ, इस बारेमें कौम किसी के साथ बंधी हुई नहीं थी | इस प्रश्न की मर्यादा केवल कौम के विवेक और शक्ति में ही निहित थी | बात-बात में यदि कोई सत्याग्रह करे, तो वह दुराग्रह होगा | इसी प्रकार जो मनुष्य अपनी शक्ति का अंदाज लगाये बिना सत्याग्रह के शस्त्र का उपयोग करता हैं और फिर हार जाता हैं, वह स्वयं तो कलंकित होता ही है, परन्तु ऐसे अविवेक के कारण सत्याग्रह के शस्त्र को भी दूषित करता हैं |

सत्याग्रह-समिति ने देखा कि हिन्दुस्तानी कौम का सत्याग्रह केवल खूनी कानून के विरुद्ध है | यदि खूनी कानून रद हो जाए, तो 'इमिग्रैन्ट्स रेस्ट्रिक्शन एक्ट' में रहे जिस जहर का मैंने ऊपर उल्लेख किया है वह अपने-आप खतम हो जाएगा | फिर भी कौम यदि यह सोचकर चुप बैठी रहे कि खूनी कानून जब रद कराना ही है तो फिर 'इमिग्रेशन एक्ट' के सम्बन्ध में अलग से चर्चा या आन्दोलन करना ज़रूरी नहीं है, तो उसका अर्थ यह माना जाएगा कि कौम ने नये आने वाले हिन्दुस्तानियों पर लगाये जा रहे संपूर्ण प्रतिबन्ध को स्वीकार कर लिया है | इसलिए 'इमिग्रेशन एक्ट' का विरोध करना आवश्यक था | सोचना केवल इतना ही था कि सत्याग्रह की लड़ाई में उसे सम्मिलित किया जाए या नहीं | कौम का मत यह था कि सत्याग्रह के चलते-चलते ही कौम पर जो नये आक्रमण हों, उन आक्रमणों का भी सत्याग्रह में समावेश करना उसका धर्म है | कौम की निर्बलता के कारण यदि ऐसा न किया जा सके, तो वह अलग बात है | कौम के नेताओं को लगा कि शक्ति के अभाव का अथवा शक्ति की कमी का बहाना बनाकर जहरीले 'इमिग्रेशन एक्ट' को छोड़ा नहीं जा सकता; इसलिए उसे भी सत्याग्रह में सम्मिलित करना ही चाहिए | अत: इस विषय में ट्रान्सवाल सरकार के साथ पत्र-व्यवहार किया गया | उसकी वजह से कानून में तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ, लेकिन जनरल स्मट्स को उसमें कौम की – और सच पूछा जाए तो मेरी –

निन्दा का नया साधन मिल गया | जनरल स्मट्स जानते थे कि जितने गोरे खुले तौर पर हिन्दुस्तानी कौम की सहायता करते हैं, उनसे कहीं अधिक गोरों की छिपी सहानुभूति कौम के साथ हैं | अत: यह भाव उनके मन में उठना स्वाभाविक ही था कि गोरों की यह सहानुभूति खतम की जा सके तो करना चाहिए | इसलिए उन्होंने मुझ पर यह आरोप लगाया कि मैंने एक नई बात उठाई हैं | और अपने साथ हुई बातचीत में तथा पत्र-व्यवहार में भी कौम के गोरे सहायकों से उन्होंने कहा : 'गांधी को जितना मैं पहचानता हूँ उतना आप लोग नहीं पहचानते | वह ऐसा आदमी हैं कि अगर आप उसे एक इंच ज़मीन दें, तो वह एक गज ज़मीन की माँग करेगा | मैं यह सब जानता हूँ इसीलिए तो मैं एशियाटिक कानून रद नहीं करता | उसने जब सत्याग्रह शुरू किया था उस समय नये आने वालों की तो कोई बात ही नहीं थी | अब हम ट्रान्सवाल की रक्षा की दृष्टि से नये हिन्दुस्तानियों को आने से रोकने का कानून बनाते हैं, तो इसमें भी वह हमें सत्याग्रह करने की धमकी देता हैं | ऐसी चालाकी (कनिंग) को कब तक बरदाश्त किया जाए ? उसे जो कुछ करना हो करे | एक एक हिन्दुस्तानी बरबाद हो जाए, तो भी मैं यह एशियाटिक कानून रद नहीं करूँगा | और ट्रान्सवाल सरकार ने हिन्दुस्तानियों के बारेमें जो नीति अपनाई है उसे भी मैं नहीं छोडूँगा | इस न्यायपूर्ण नीति का समर्थन करने के लिए प्रत्येक गोरे को संमत होना चाहिए |"

थोड़ा विचार करने से ही पता चल जाएगा कि जनरल स्मट्स की यह दलील बिलकुल अनुचित और नीति-विरुद्ध थीं | जब नये आने वाले हिन्दुस्तानियों को रोकने वाले कानून का जन्म हीं नहीं हुआ था, उस समय मैं या कौम उसका विरोध कैसे करती ? उन्होंने मेरी चालाकी (कनिंग) के अनुभव की बात कही हैं | परन्तु उसका एक भी उदाहरण वे नहीं दे सके | और मैं स्वयं तो जानता ही हूँ कि दक्षिण अफ्रीका के इतने वर्षों के निवास-काल में मैंने कभी चालाकी से काम लिया हो ऐसा मुझे स्मरण नहीं हैं | बल्कि इस अवसर पर तो मुझे आगे बढ़कर यह कहने में भी कोई संकोच नहीं होता कि मैंने सारी जिन्दगी में कभी चालाकी का उपयोग किया ही नहीं | मेरा यह विश्वास हैं कि चालाकी का उपयोग न केवल नीति के विरुद्ध हैं, बल्कि राजनीति के विरुद्ध भी हैं | इसलिए व्यवहार की दृष्टि से भी मैंने उसके उपयोग को सदा नापसंद किया हैं | अपने बचाव में इतना लिखना भी मैं आवश्यक नहीं मानता | जिस पाठक-वर्ग के लिए मैं यह इतिहास लिख रहा हूँ, उसके समक्ष अपने मुँह से अपना बचाव करने में मुझे लज्जा आयेगी | मैं चालाकी से मुक्त हूँ, इस बात का अनुभव यदि पाठकों को अभी भी न हुआ हो, तो अपने बचाव से मैं यह बात कभी सिद्ध कर ही नहीं सकूँगा | ऊपर के वाक्य लिखने का हेतु इतना ही हैं कि उन्हें पढ़कर पाठकों को इस बात की कल्पना हो जाए कि कैसे संकटों के बीच हमें सत्याग्रह की लड़ाई लड़नी पड़ी थी और वे यह समझें कि कौम अगर नीति के राजमार्ग से जरा भी विचलित होती तो लड़ाई कैसे खतरे में पड़ जाती | कोई नट जब २० फुट ऊँचे बाँसों पर लटकाई हुई रस्सी पर चलता हैं तब उसे अपनी दृष्टि को रस्सी पर एकाग्र रखकर चलना पड़ता हैं; और यदि वह ऐसा करने में जरा भी चूक जाए तो उसकी मौत निश्चित हैं, फिर वह किसी भी ओर क्यों न गिरे | दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के ८ वर्ष के लम्बे अनुभव ने मुझे

यह सिखाया हैं कि सत्याग्रही को संभव हो तो नट से भी अधिक एकाग्र दृष्टि रखकर चलना चाहिए | जिन गोरे मित्रों के समक्ष जनरल स्मट्स ने मुझ पर उपर्युक्त आरोप लगाया था, वे मित्र मुझे अच्छी तरह पहचानते थे | इसलिए उन पर जनरल स्मट्स की आशा से उलटा ही असर पड़ा | उन्होंने न सिर्फ मेरा या कौम की लड़ाई का त्याग नहीं किया, बल्कि अधिक उत्साह से हमारी सहायता की | और कौम ने आगे चलकर समझ लिया कि 'इमिग्रेशन एक्ट' को भी यदि सत्याग्रह में सम्मिलित न कर दिया गया होता, तो उसे भारी मुसीबतों में फँसना पड़ता |

मेरा व्यक्तिगत अनुभव मुझे यह सिखाता हैं कि प्रत्येक शुद्ध लड़ाई को वृद्धि का नियम लागू होता हैं | परन्तु सत्याग्रह के विषय में तो मैं इसे सिद्धान्त के रूप में मानता हूँ | गंगा नदी ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती जाती हैं त्यों-त्यों उसमें अनेक नदियाँ मिलती जाती हैं और मुहाने पर तो उसका पाट इतना विशाल हो जाता हैं कि दायीं और बायीं किसी भी ओर उसका किनारा नहीं दीखता और नाव में बैठे हुए मुसाफिर को विस्तार की दृष्टि से समुद्र और गंगा नदी में कोई भेद नहीं मालूम होता | इसी प्रकार सत्याग्रह की लड़ाई ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती जाती हैं त्यों-त्यों उसमें अनेक बातें मिलती जाती हैं और इसलिए उससे उत्पन्न होने वाले परिणामों में वृद्धि होती रहती हैं | मेरा विश्वास हैं कि सत्याग्रह का यह परिणाम अनिवार्य हैं | इसका कारण सत्याग्रह के मूल सिद्धान्तों में ही निहित हैं | सत्याग्रह में अल्पतम ही अधिकतम होता हैं, अत: अल्पतम में से कुछ घटाने की तो बात ही नहीं रहती | इस कारण उससे पीछे हटा ही नहीं जा सकता; तब स्वाभाविक क्रिया केवल वृद्धि की ही हो सकती हैं | दूसरी लड़ाइयाँ शुद्ध हों तो भी उनमें जो माँग की जाती हैं उसमें कुछ कमी करने की गुंजाइश पहले से ही रख ली जाती हैं | इसलिए उन पर वृद्धि का नियम निरपवाद रूप से लागू करने में मैंने शंका प्रकट की हैं | परन्तु यह समझाना बाकी रह जाता हैं कि जब अल्पतम अधिकतम भी होता हैं तब फिर वृद्धि का नियम सत्याग्रह की लड़ाई को कैसे लागू हो सकता हैं | जैसे गंगा नदी वृद्धि को (सहायक नदियों को) खोजने में अपनी गति नहीं छोड़ती वैसे ही सत्याग्रही भी वृद्धि की खोज में अपना तलवार की धार जैसा रास्ता नहीं छोड़ता | परन्तु जैसे जैसे गंगा नदी का प्रवाह आगे बढ़ता जाता हैं वैसे-वैसे अन्य नदियों का प्रवाह अपने-आप उसमें मिलता जाता हैं; यही बात सत्याग्रहरूपी गंगा के बारेमें भी सच है | 'इमिग्रेशन एक्ट' सत्याग्रह में शामिल किया गया उसके बाद सत्याग्रह के सिद्धान्तों को न जानने वाले हिन्दुस्तानियों ने आग्रह किया कि ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध जितने भी कानून हैं उन सबको सत्याग्रह की लड़ाई में शामिल कर लेना चाहिए | अन्य कुछ लोगों ने यह भी कहा कि ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों की लड़ाई चल रही है तब तक नेटाल, केप कॉलोनी, ऑरेंज फ्री स्टेट आदि के सारे हिन्दुस्तानियों को आमंत्रित करके दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध बनाये गये सभी कानूनों के खिलाफ सत्याग्रह करना चाहिए | इन दोनों प्रस्तावों में सत्याग्रह के सिद्धान्त का भंग होता था | मैंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि सत्याग्रह के आरंभ के समय हमने जो स्थिति खड़ी नहीं की, उसे अब मौका देखकर खड़ा

करना ईमानदारी नहीं होगी | हमारी शक्ति कितनी ही बड़ी क्यों न हो, फिर भी जिस माँग के लिए सत्याग्रह आरंभ किया गया था उसके स्वीकृत होने पर सत्याग्रह बन्द होना ही चाहिए | यदि इस सिद्धान्त पर हम दृढ़ न रहे होते, तो मेरा पक्का विश्वास हैं कि जीत के बजाय हमारी हार ही होती, इतना ही नहीं, जो सहानुभूति हम प्राप्त कर सके थे उसे भी हम खो देते | इसके विपरीत, जब सत्याग्रह चल रहा हो उस बीच विरोधी यदि स्वयं ही नई कठिनाइयाँ पैदा करे, तो वे अपने-आप ही सत्याग्रह में सम्मिलित हो जाती हैं | सत्याग्रही अपनी दिशा में आगे बढ़ रहा हो तब मार्ग में आ मिलने वाली कठिनाइयों की, अपने सत्याग्रह का त्याग किये बिना, वह कभी उपेक्षा कर ही नहीं सकता | और विरोधी सत्याग्रही होता ही नहीं (क्योंकि सत्याग्रह के विरुद्ध सत्याग्रह असंभव ही है), इसलिए उसे तो कम या अधिक का कोई बन्धन नहीं होता | वह कोई नई बातें खड़ी करके सत्याग्रही को डराना चाहे तो डरा सकता हैं | परन्तु सत्याग्रही तो सब प्रकार के भय का त्याग कर देता हैं | इसलिए जब विरोधी नई कठिनाइयाँ पैदा करता हैं तब उनके सामने भी, वह सत्याग्रह का मंत्रोच्चार करता हैं और मन में यह श्रद्धा रखता हैं कि मार्ग में आने वाली समस्त कठिनाइयों को दूर करने में उसका मंत्रोच्चार अवश्य ही सफल होगा | इसीलिए सत्याग्रह जितना लम्बा चलता हैं – अर्थात् विरोधी उसे जितना लम्बा करता हैं – उतना विरोधी को स्वयं उसकी दृष्टि से तो नुकसान ही होता हैं और सत्याग्रही को अधिक लाभ होता हैं | इस नियम की प्रक्रिया के अन्य उदाहरण हम सत्याग्रह के इस इतिहास में ही आगे देखेंगे |

५. सोराबजी शापुरजी अडाजणिया

अब जब 'इमिग्रेशन एक्ट' की बात भी सत्याग्रह की लड़ाई में सम्मिलित कर ली गई, तो शिक्षित हिन्दुस्तानियों के ट्रान्सवाल में प्रवेश करने के अधिकार की कसौटी भी सत्याग्रहियों को ही करनी पड़ी | सत्याग्रह-समिति ने यह निर्णय किया था कि चाहे जिस हिन्दुस्तानी के द्वारा यह कसौटी न कराई जाए | सोचा यह गया था कि 'इमिग्रेशन एक्ट' में प्रतिबन्ध की जो दूसरी शर्तें हैं और जिनसे हमारा कोई भी विरोध नहीं हैं, उन शर्तों का पलान कर सकनेवाले किसी हिन्दुस्तानी को ट्रान्सवाल में दाखिल करके जेल-महल में बैठा दिया जाए | ऐसा करके हमें यह सिद्ध करना था कि सत्याग्रह एक मर्यादा-धर्म हैं | 'इमिग्रेशन एक्ट' में एक धारा ऐसी थी कि ट्रान्सवाल में नये दाखिल होने वाले आदमी को यूरोप की किसी भी एक भाषा का ज्ञान होना चाहिए | इसलिए समिति किसी ऐसे हिन्दुस्तानी को ट्रांसवाल में दाखिल करना चाहती थी, जिसे अंग्रेजी भाषा का ज्ञान हो और जो पहले ट्रान्सवाल में न रह चूका हो | कुछ हिन्दुस्तानी नौजवानों ने इसके लिए समिति से कहलवाया, परन्तु उनमें से सोराबजी शापुरजी अडाजणिया का प्रस्ताव ही कसौटी के केस (टेस्ट केस) के लिए स्वीकार किया गया |

पाठक नाम से ही समझ लेंगे कि सोराबजी पारसी थे | सारे दक्षिण अफ्रीका में पारसियों की आबादी सौ से ज़्यादा नहीं रही होगी | पारसियों के विषय में जो मत मैंने हिन्दुस्तान में व्यक्त किया हैं, वही मैं दक्षिण अफ्रीका में भी रखता था | सारी दुनिया में एक लाख से अधिक पारसी नहीं होंगे | इतनी छोटी-सी जाति लम्बे समय से अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करती आई हैं, अपने धर्म पर अडिग हैं और उदारता में दुनिया की एक भी जाति उसकी बराबरी नहीं कर सकती | इतनी ही बातें इस कौम का उच्चता का प्रमाणपत्र है | लेकिन सोराबजी तो अनुभव से शुद्ध रत्न सिद्ध हुए | जब वे सत्याग्रह की लड़ाई में शरीक हुए तब मुझे उनका बहुत थोड़ा परिचय था | लड़ाई में शामिल होने के बारेमें उन्होंने जो पत्र-व्यवहार किया था, उसकी मुझ पर अच्छी छाप पड़ी थी | जिस प्रकार मैं पारसियों के गुणों का पुजारी हूँ, उसी प्रकार एक कौम के नाते उनके कुछ दोषों से भी मैं अनभिज्ञ नहीं था और नहीं हूँ | इसलिए संकट के समय सोराबजी टिक सकेंगे या नहीं, इस विषय में मुझे शंका थी | लेकिन जब सामने वाला आदमी इसके खिलाफ बात कहता हो, तब अपनी शंका को कोई महत्त्व न देने का मेरा नियम था | इसलिए मैंने सत्याग्रह-समिति से सिफ़ारिश की कि सोराबजी ने जो दृढ़ता अपने पत्रों में बताई हैं उसे स्वीकार कर लिया जाए | और अंत में तो सोराबजी प्रथम कोटि के सत्याग्रही सिद्ध हुए | लम्बी से लम्बी जेल भोगने वाले सत्याग्रहियों में वे भी एक थे | इतना हीं नहीं, उन्होंने कौम की लड़ाई का इतना गहरा अध्ययन किया था कि वे लड़ाई के सम्बन्ध में जो भी बात कहते वह सबको सुननी पड़ती थीं | उनकी सलाह में सदा दृढ़ता, विवेक, उदारता, शांति आदि का दर्शन होता था | वे जल्दी में कोई मत नहीं बनाते थे; और जब वे एक बार कोई मत बना लेते थे तो उसे छोड़ते नहीं थे | जिस हद तक उनमें पारसीपन था – और वह खुद ज़्यादा था – उसी हद

तक हिन्दुस्तानीपन भी था | संकुचित जाति-अभिमान की तो गंध भी उनमें नहीं थीं | सत्याग्रह की लड़ाई पूरी हो जाने के बाद अच्छे सत्याग्रहियों में से किसी को इंग्लैंड भेजकर बैरिस्टर बनाने के लिए डॉ. मेहता ने एक छात्रवृत्ति दी थी | ऐसे आदमी का चुनाव मुझे ही करना था | दो-तीन सुयोग्य हिन्दुस्तानी ऐसे थे, जिन्हें इंग्लैंड भेजा जा सकता था | लेकिन सभी मित्रों को लगा कि विचारों की प्रौढ़ता और समझदारी में सोराबजी की बराबरी दूसरा कोई नहीं कर सकता | इसलिए उन्हीं का चुनाव हुआ | ऐसे एक हिन्दुस्तानी को चुनने के पीछे उद्देश्य यह था कि वह बैरिस्टर होका दक्षिण अफ्रीका लौटने पर मेरा स्थान ग्रहण कर सके और कौम की सेवा करे | कौम के लोगों के आशीर्वाद और उनका सम्मान प्राप्त करके सोराबजी इंग्लैंड गये | बैरिस्टर बने | गोखले से उनका संपर्क दक्षिण अफ्रीका में हो हो चुका था, लेकिन इंग्लैंड में वे गोखले के अधिक निकट पहुँच गये थे | उनका मन सोराबजी ने हर लिया था | गोखले ने उनसे यह आग्रह भी किया था कि जब वे हिन्दुस्तान लौटें तब 'भारत सेवक समाज' (सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी) में शरीक हो जाएँ | सोराबजी अपने साथ के विद्यार्थियों में अत्यन्त प्रिय बन गये थे | वे प्रत्येक विद्यार्थी के दुःख में भाग लेते थे | इंग्लैंड की तड़क-भड़क और ऐश-आराम का उन पर कोई असर नहीं हुआ | सोराबजी इंग्लैंड गये तब उनकी उमर तीस से ऊपर थी | अंग्रेजी का उनका अध्ययन अधिक नहीं था | उनके व्याकरण वगैरा के ज्ञान को जंग लग चुका था | लेकिन मनुष्य की लगन के सामने ऐसी असुविधायें टिक नहीं सकतीं | शुद्ध विद्यार्थी-जीवन बिताकर सोराबजी अपनी परीक्षाओं में पास होते गये | मेरे जमाने में बैरिस्टर की परीक्षा तुलना में सरल थी | आज के बैरिस्टरों को उस समय के बैरिस्टरों की अपेक्षा बहुत अधिक अध्ययन करना होता हैं | परन्तु सोराबजी ने हार नहीं मानी | इंग्लैंड में जब 'एम्बुलेन्स कोर' की स्थापना हुई तब सोराबजी उसका आरंभ करने वालों में से एक थे और अंत तक वे उसमें बने रहे | उस दल को भी सत्याग्रह करना पड़ा था | अनेक लोग उसमें पीछे हट गये थे | लेकिन जो लोग उसमें अडिग रहे, उनमें सबसे आगे सोराबजी थे | यहाँ मैं यह भी कह दूँ कि उस एम्बुलेन्स दल के सत्याग्रह में भी विजय ही मिली थी |

इंग्लैंड में बैरिस्टर हो जाने के बाद सोराबजी जोहानिसबर्ग लौट आये | वहाँ उन्होंने कौम की सेवा और वकालत दोनों का आरंभ किया | दक्षिण अफ्रीका से मुझे जो पत्र मिलते थे, उनमें सोराबजी की प्रशंसा ही होती थी | उनमें लिखा होता था : "वे (सोराबजी) जैसे सादे पहले थे वैसे ही आज भी हैं | आडंबर तो उनमें नाम की भी नहीं है | वे छोटे-बड़े सबके साथ घुलमिल जाते हैं |" लेकिन ईश्वर जितना दयालु मालूम होता हैं उतना ही वह निर्दय भी मालूम होता है | सोराबजी को तीव्र क्षयरोग (गैलपिंग थाइसिस) हो गया और कुछ ही महीनों में कौम का नया प्रेम संपादन करके उसे रोती छोड़ सोराबजी चले गये | इस प्रकार ईश्वर ने थोड़े समय में कौम से दो पुरुष-रत्न छीन लिए – काछलिया सेठ और सोराबजी |

यदि चुनाव करना हो तो इन दोनों में मैं प्रथम पद किसे दूंगा ? मैं चुनाव कर हीं नहीं सकता | दोनों अपने अपने क्षेत्र में अद्वितीय थे | काछलिया जितने शुद्ध मुसलमान थे उतने ही शुद्ध हिन्दुस्तानी थे; उसी प्रकार सोराबजी जितने शुद्ध पारसी थे उतने ही शुद्ध हिन्दुस्तानी थे |

ये सोराबजी पहले सरकार को नोटिस देकर कसौटी के ख़ातिर ही ट्रान्सवाल में दाखिल हुए थे | सरकार इस कदम के लिए बिलकुल तैयार नहीं थीं | इसलिए वह तुरन्त यह निर्णय नहीं कर सकी कि सोराबजी के साथ कैसा व्यवहार किया जाए | सोराबजी ने खुले तौर पर ट्रान्सवाल की सीमा को लांघकर अंदर प्रवेश किया | परवानों की जाँच करने वाला सीमा-अधिकारी उन्हें जानता था | सोराबजी ने उससे कहा : "मैं कसौटी के ख़ातिर जान-बुझकर ट्रान्सवाल में प्रवेश कर रहा हूँ | मेरी अंग्रेजी की परीक्षा लेना हो तो आप ले लें; और मुझे गिरफ्तार करना चाहें तो गिरफ्तार कर लें |" अधिकारी ने उत्तर दिया : "आप अंग्रेजी जानते हैं, यह मुझे मालूम हैं | इसलिए परीक्षा लेने का प्रश्न ही नहीं उठता | और आपको गिरफ्तार करने का मुझे हुक्म नहीं हैं | इसलिए आप खुशी से अंदर जा सकते हैं | आप जहाँ जाएँगे वहाँ सरकार आपको गिरफ्तार करना चाहेगी तो कर लेगी|"

इस प्रकार हमारी आशा के विपरीत सोराबजी जोहानिसबर्ग तक पहुँच गये | हम सब ने हर्ष से उनका स्वागत किया | हम में से किसीने भी यह आशा नहीं रखी थीं कि सरकार सोराबजी को ट्रान्सवाल की सीमा के स्टेशन वॉक्सरस्ट से जरा भी आगे बढ़ने देगी | अकसर ऐसा होता है कि जब हम अपने कदम सोच-विचार कर और निर्भयता से तुरन्त उठाते हैं तब सरकार उनका विरोध करने के लिए तैयार नहीं रहती | यह प्रत्येक सरकार का स्वभाव माना जा सकता हैं | और सामान्य आंदोलनों में सरकार का कोई भी अधिकारी अपने विभाग को इस हद तक अपना नहीं बना लेता कि हर मामले पर अपने विचारों को पहले से ही व्यवस्थित कर सके और उसका सामना करने की तैयारी रख सके | इसके सिवा, अधिकारी के पास एक नहीं परन्तु अनेक कार्य है | उन कार्यों में उसका ध्यान बँट जाता है | फिर, अधिकारी को सत्ता का मद होता है, इसलिए वह बेफिक्र रहता है और यह मानकर चलता है कि चाहे जैसे आन्दोलन से निबटना सत्ताधारी के लिए बायें हाथ का खेल हैं | इसके विपरीत, आन्दोलन चलाने वाला सार्वजनिक कार्यकर्ता अपने ध्येय को जानता हो, उसके साधनों का उसे ज्ञान हो और अपनी योजना के बारेमें निश्चित विचार रखता हो, तो वह पूरी तरह तैयार रहता है; और चूँकि उसे एक ही कार्य का विचार रात-दिन करना होता हैं इसलिए अगर वह प्रभावकारी ढंग से सही कदम उठा सके तो सरकार से सदा आगे ही आगे चलता हैं | अनेक आन्दोलन जो असफल सिद्ध होते हैं उसका कारण सरकार की असाधारण सत्ता नहीं होती; उसका कारण होता हैं संचालकों में उपर्युक्त गुणों का अभाव |

संक्षेप में, सरकार की असावधानी के कारण अथवा जान-बुझकर निश्चित की हुई योजना के कारण सोराबजी जोहानिसबर्ग तक पहुँच सके थे; और सोराबजी के जैसे मामले में अधिकारी का क्या कर्तव्य हैं, इसकी कोई

कल्पना या उस सम्बन्ध में ऊपरी अधिकारी की कोई सूचनायें स्थानीय अधिकारी को नहीं थीं | इस तरह सोराबजी के जोहानिसबर्ग तक पहुँच जाने से कौम का उत्साह खूब बढ़ गया | कुछ नौजवानों ने तो यह माना कि सरकार हार गई हैं और वह कुछ ही समय में कौम के साथ समझौता कर लेगी | लेकिन इस युवक-मंडल ने जल्दी ही देख लिया कि उनका ऐसा मानना गलत था, बल्कि उन्होंने यह भी समझ लिया कि ऐसा समझौता होने से पहले शायद बहुत से नौजवानों को अपना बलिदान देना पड़ेगा |

सोराबजी ने अपने जोहानिसबर्ग आने की सूचना जोहानिसबर्ग के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट को दे दी और उसमें बताया कि 'इमिग्रेशन एक्ट' के अनुसार वे अपने को ट्रान्सवाल में रहने का अधिकारी मानते हैं | इसके कारण में उन्होंने अंग्रेजी भाषा के अपने सामान्य ज्ञान का उल्लेख किया और यदि अधिकारी अंग्रेजी की परीक्षा लेना चाहें तो परीक्षा देने की तैयारी बताई | इस पत्र का कोई उत्तर नहीं मिला; अथवा यों कहें कि इस पत्र के उत्तर में सोराबजी को कुछ दिन बाद एक समन मीला |

८ जुलाई, १९०८ को कोर्ट में उन पर मुकदमा चला | हिन्दुस्तानी दर्शकों से कोर्ट खचाखच भर गया | मुकदमा शुरू होने से पहले कोर्ट के आँगन में ही वहाँ आये हुए हिन्दुस्तानियों को एकत्र करके एक सभा की गई | उस सभा में सोराबजी ने वीरतापूर्ण भाषण दिया | भाषण में उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि कौम की जीत न हो तब तक जितनी बार जेल जाना पडे उतनी बार जेल जाने को और बड़े से बड़े संकट झेलने को मैं तैयार रहूँगा | इस बीच मैं सोराबजी से अच्छी तरह परिचित हो गया था और समझ गया था कि सोराबजी निश्चित रूप से शुद्ध रत्न सिद्ध होंगे | मुकदमा शुरू हुआ | मैंने वकील के रूप में सोराबजी का बचाव किया | समन में जो थोड़े दोष थे उनकी ओर मैंने मजिस्ट्रेट का ध्यान खींचा और उनके आधार पर यह माँग की कि सोराबजी को जो समन दिया गया हैं वह रद कर दिया जाए | सरकारी वकील ने अपनी दलीलें पेश कीं | लेकिन ९ जुलाई को कोर्ट ने मेरी दलीलें स्वीकार करके समन रद कर दिया और सोराबजी को रिहा कर दिया | कौम के लोग हर्ष से पागल हो उठे |

परन्तु सोराबजी का यह छुटकारा स्थायी नहीं था | उन्हें तुरन्त ही दुसरे दिन – १० जुलाई, १९०८ को –कोर्ट के सामने हाजिर होने की नोटिस मिली | १० जुलाई को मजिस्ट्रेट ने सोराबजी को सात दिन के भीतर ट्रान्सवाल छोड़ देने का हुक्म दिया | कोर्ट का हुक्म मिलने के बाद सोराबजी ने पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री वरनॉन को सूचना दी कि मेरी इच्छा ट्रान्सवाल छोड़ने की नहीं हैं | इसलिए उन्हें एक बार फिर कोर्ट में लाया गया और २० जुलाई को यह अभियोग लगाकर कि उन्होंने मजिस्ट्रेट के हुक्म की तामील नहीं की, उन्हें एक माह की सख्त क़ैद की सजा दी गई |

लेकिन स्थानीय हिन्दुस्तानियों को सरकार ने नहीं पकड़ा | सरकार ने देख लिया था कि जितने अधिक लोगों को वह पकड़ती हैं, उतना ही कौम का जोश और उत्साह अधिक बढ़ता हैं | इसके सिवा, कानून की किसी बारीकी

के कारण जब हिन्दुस्तानी छूट जाते हैं, तो उसकी वजह से भी कौम में जोश बढ़ जाता हैं | हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध सरकार को जो भी कानून पास करने थे उन्हें वह पास कर चुकी थी | बेशक, अनेक हिन्दुस्तानियों ने अपने परवाने जला दिये थे, लेकिन परवाने लेकर वे ट्रान्सवाल में रहने का अपना अधिकार सिद्ध कर चुके थे | इसलिए उन्हें केवल जेल भेजने के लिए ही उन पर मुकदमा चलाने में सरकार ने कोई लाभ नहीं देखा और यह सोचा कि यदि वह खामोश रहेगी तो आन्दोलान कारी आन्दोलान करने का कोई मार्ग खुला न रहने से अपने-आप शान्त हो जाएँगे | परन्तु सरकार का यह अनुमान गलत था | कौम ने सरकार के धीरज की थाह लेने के लिए एक नया कदम उठाया, जिससे वह थाह मिल गई | सरकार का धीरज जल्दी ही खुट गया |

६. सेठ दाऊद मुहम्मद आदि का लड़ाई में प्रवेश

कौम ने जब देखा कि सरकार कोई भी कदम न उठाकर उसे थका देना चाहती हैं तब नये कदम उठाना उसके लिए अनिवार्य हो गया | सत्याग्रही में जब तक दुःख सहन करने की शक्ति होती हैं तब तक वह कभी नहीं थकता | इसलिए कौम सरकार की धारणा को गलत सिद्ध करने में समर्थ थी |

नेटाल में ऐसे अनेक हिन्दुस्तानी थे, जिन्हें ट्रान्सवाल में बसने के पुराने अधिकार थे | उन्हें व्यापार के लिए ट्रान्सवाल में प्रवेश करने की ज़रुरत नहीं थी, लेकिन कौम यह मानती थी कि उन्हें ट्रान्सवाल में आने का अधिकार हैं | इसके सिवा, उन्हें थोड़ा-बहुत अंग्रेजी का ज्ञान तो था ही | और, सोराबजी के जितनी शिक्षा पाये हुए हिन्दुस्तानियों को भी ट्रान्सवाल में दाखिल करने में सत्याग्रह के नियमों का कोई भंग नहीं होता था | इसलिए हमने दो प्रकार के हिन्दुस्तानियों को ट्रान्सवाल में दाखिल करने का निश्चय किया : एक, ऐसे हिन्दुस्तानी जो पहले ट्रान्सवाल में रह गये थे; दूसरे, वे हिन्दुस्तानी जिन्होंने खास तौर पर अंग्रेजी की शिक्षा ली थी और इसलिए जो 'शिक्षित' कहे जाते थे |

इनमें से सेठ दाऊद मुहम्मद और पारसी रुस्तमजी बड़े व्यापारी थे और सुरेन्द्रराय मेढ, प्रागजी खंडुभाई देसाई, हरिलाल गांधी तथा रतनशी सोढा आदि 'शिक्षित' हिन्दुस्तानी थे | दाऊद सेठ की पत्नी गंभीर बीमारी की शिकार थी, फिर भी वे लड़ाई में शरीक हुए थे |

अब मैं सेठ दाऊद मुहम्मद का परिचय पाठकों से कराऊँ | वे नेताल इंडियन काँग्रेस के अध्यक्ष थे | दक्षिण अफ्रीका में आये हुए हिन्दुस्तानी व्यापारियों में वे एक सबसे पुराने व्यापारी थे | वे सूरत की सुन्नी जमात के बोहरा थे | ऐसे बहुत थोड़े हिन्दुस्तानी मैंने दक्षिण अफ्रीका में देखे थे, जो चतुराई में दाऊद सेठ की बराबरी कर सकें | किसी बात को समझने की उनमें सुन्दर शक्ति थीं | उन्होंने बहुत थोड़ी शिक्षा पाई थीं, लेकिन अनुभव से वे अंग्रेजी और डच भाषा अच्छी तरह बोल लेते थे | वे अंग्रेज व्यापारियों के साथ अपना कामकाज भलीभाँति चला लेते थे | उनकी उदारता और दानशीलता प्रसिद्ध थी | रोज लगभग पचास मेहमान तो उनके वहाँ भोजन करते ही थे | कौम के काम के लिए एकत्र किये जानेवाले फंडों में उनका नाम सदा प्रमुख दाताओं में ही रहता था | उनका एक अमूल्य पुत्र था, जो चरित्र में सेठ से कहीं ज़्यादा बढ़ा-चढ़ा था | उसका हृदय स्फटिक मणि के समान था | अपने इस पुत्र के चरित्र-विकास में दाऊद सेठ ने कभी बाधा नहीं डाली | यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं कि सेठ अपने पुत्र की पूजा करते थे | वे चाहते थे कि उनका एक भी दोष उनके पुत्र हसन में न आये | उन्होंने हसन को इंग्लैंड भेज कर अच्छी शिक्षा दिलाई थी | लेकिन दाऊद सेठ उस पुत्ररत्न को भरी जवानी में खो बैठे | हसन को क्षय रोग ने घेर लिया और उसके प्राण हर लिए | यह घाव कभी भरा नहीं | हसन के साथ

हिन्दुस्तानी कौम की बड़ी-बड़ी आशायें भी डूब गई | हिन्दू और मुसलमान हसन की दायी और बायी आँख थे | उसका सत्य तेजस्वी था | आज तो दाऊद सेठ भी नहीं रहे | काल कब किसी को छोड़ता हैं ?

पारसी रुस्तमजी का परिचय मैं करा चुका हूँ | शिक्षित हिन्दुस्तानियों में से अधिकतर को पाठक जानते हैं | मैं कोई साहित्य या सामग्री अपने पास रखे बिना ये प्रकरण लिख रहा हूँ | इसलिए कई ऐसे मित्रों के नाम रह गये होंगे, जिन्होंने इस आन्दोलन में भाग लिया था | इसके लिए वे मित्र मुझे क्षमा कर दें | ये प्रकरण नामों को अमर बनाने के लिए नहीं लिखे जा रहे हैं; परन्तु सत्याग्रह का रहस्य समझाने के लिए और यह बताने के लिए लिखे जा रहे हैं कि सत्याग्रह की विजय कैसे हुई, उसमें कैसे-कैसे विघ्न आये और उन विघ्नों को किस प्रकार दूर किया गया | जहाँ-जहाँ मैं नाम और नामधारियों का परिचय देता हूँ वहाँ भी मेरा उद्देश्य यही दिखाना हैं कि निरक्षर माने जाने वाले हिन्दुस्तानियों ने दक्षिण अफ्रीका में कैसे-कैसे पराक्रम कर दिखाये; वहाँ भी मैं पाठकों को यही बताना चाहता हूँ कि कौम की लड़ाई में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि कैसे एक साथ मिल सके और कैसे हिन्दुस्तानी व्यापारियों, शिक्षितों आदि ने अपना कर्तव्य पूरा किया | जहाँ-जहाँ मैंने गुणी का परिचय दिया है वहाँ-वहाँ गुणी का नहीं परन्तु केवल उसके गुणों का ही मैंने स्तवन किया हैं |

इस प्रकार दाऊद सेठ जब अपनी सत्याग्रही फौज को लेकर ट्रान्सवाल की सीमा पर पहुँचे उस समय सरकार उनका स्वागत करने के लिए तैयार थी | इतने बड़े दल को यदि सरकार ट्रान्सवाल में प्रवेश करने देती तो उसकी हँसी होती | इसलिए उसे पकड़ना अनिवार्य था | सब लोग पकड़ लिए गये | १८ अगस्त, १९०८ को उन्हें कोर्ट में मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया | मजिस्ट्रेट ने उन्हें सात दिन में ट्रान्सवाल छोड़ने का हुक्म दिया | इस हुक्म का पालन सत्याग्रही दल ने नहीं किया, इसलिए २८ अगस्त को उन्हें प्रिटोरिया में फिर पकड़ा गया और बिना मुकदमा चलाये ट्रान्सवाल से बाहर कर दिया गया | ३१ अगस्त को उन्होंने पुन: ट्रान्सवाल में प्रवेश किया | अन्त में ८ सितम्बर को सरहदी शहर वॉक्सरस्ट में उन पर मुकदमा चला और उन्हें ५० पौंड के जुर्माने की या ३ माह की सख्त क़ैद की सज़ा मिली | कहने की आवश्यकता नहीं कि सत्याग्रहियों ने खुशी-खुशी जेल जाना ही पसंद किया और वे वॉक्सरस्ट की जेल में दाखिल हुए |

इससे ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों का जोश खूब बढ़ा | नेटाल से हमारी सहायता के लिए आये हुए मित्रों को यदि हम जेल से छुड़ा न सके, तो कम से कम जेल जाने में तो उनका साथ दें – यह सोचकर ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानी भी जेल का मार्ग खोजने लगे | गिरफतार होने के लिए उनके सामने कई रास्ते थे | अगर ट्रान्सवाल में रहने वाला हिन्दुस्तानी अपना परवाना न दिखायें, तो उसे व्यापार का परवाना नहीं मिलता था | और व्यापार का परवाना लिए बिना यदि वह व्यापार करता, तो वह उसका अपराध माना जाता था | इसके सिवा, अगर किसी हिन्दुस्तानी को नेटाल से ट्रान्सवाल की सीमा में प्रवेश करना हो, तो उसे परवाना दिखाना होता था | और अगर वह परवाना

न दिखायें, तो उसे गिरफ्तार किया जा सकता था | लेकिन परवाने तो पहले ही जलाये जा चुके थे | इसलिए उनके सामने रास्ता साफ था | उन्होंने दोनों पद्धतियाँ आजमाई | कोई बिना परवाने के फेरी लगाने लगे, तो कोई परवाने दिखाये बिना ट्रान्सवाल की सीमा में प्रवेश करने लगे | और दोनों ही प्रकार के लोग पकड़े जाने लगे |

अब आन्दोलन पूरे जोर पर था | प्रत्येक सत्याग्रही की कसौटी होने लगी | नेटाल से दूसरे हिन्दुस्तानी भी ट्रान्सवाल में आये | जोहानिसबर्ग में भी कई लोग गिरफ्तार किये गये | ऐसी स्थिति खड़ी हो गई कि जो हिन्दुस्तानी चाहे वही गिरफ्तार हो सकता था | जेलें भरने लगीं | नेटाल से आये हुए लोगों को तीन तीन मास की जेल मिलती थी; ट्रान्सवाल के फेरीवालों को चार दिन से लेकर तीन महीने तक की जेल मिलती थी |

इस तरह जिन लोगों को जेल की सजा मिली उनमें हमारे इमाम साहब – इमाम अब्दुल कादिर बावजीर –भी थे | वे बिना परवाने फेरी लगाने के कारण पकड़े गये थे और २१ जुलाई, १९०८ को उन्हें चार दिन की सख्त क़ैद की सजा मिली थी | उनका शरीर इतना नाजुक था कि जब उन्होंने जेल जाने की इच्छा प्रकट की तो लोग हंसने लगे | कुछ लोग आकर मुझसे कह जाते : "भाई, इमाम साहब को न लें तो अच्छा | वे कौम के नाम को लजाएँगे |" मैंने उन लोगों की इस चेतावनी की परवाह नहीं की | इमाम साहब की शक्ति को आंकने वाला मैं कौन होता था ? इमाम साहब कभी खुले पांव नहीं चलते थे | वे बड़े शौकीन थे | उनकी पत्नी मलायी थी | वे अपने घर को साज-सामान से सजा-धजा रखते थे और घोड़ागाड़ी पर सवार हुए बिना कहीं जाते नहीं थे | यह सब सच था | परन्तु उनके मन को कौन जान सकता था ? ऐसे इमाम साहब चार दिन की सख्त जेल भोग कर छूटे | वे फिर जेल गये | जेल में वे एक आदर्श क़ैदी के रूप में रहते थे और कड़ी मेहनत करने के बाद भोजन करते थे | उन्हें नित्य नई वानगियाँ खाने की आदत थी, परन्तु जेल में उन्होंने मक्के की लपसी पीकर खुदा का एहसान माना | जेल-जीवन से उन्होंने कभी हार नहीं मानी | उससे उन्होंने सादगी ग्रहण की | क़ैदी के रूप में उन्होंने जेल में पत्थर फोड़े, झाड़ू लगाया और दूसरे क़ैदियों की पंक्ति में खड़े रहे | अंत में फिनिक्स आश्रम में उन्होंने कांवर से पानी भरा और प्रेस में कंपोज करने की कला भी सीखी | फिनिक्स आश्रम के निवासियों के लिए कंपोज की कला सीखना लाजिमी था | यह कला इमाम साहब ने यथाशक्ति सीख ली थी | आजकल वे हिन्दुस्तान में रहकर सेवा कार्य कर रहे हैं |

परन्तु ऐसे तो अनेकों लोग जेल में जाकर शुद्ध हो गये थे |

जोसेफ रॉयपेन बैरिस्टर थे | कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी के ग्रेजुएट थे | नेटाल में गिरमिटिया माता-पिता के घर जन्मे थे, परन्तु पूरे साहब बन गये थे | वे तो घर में भी बूट के बिना नहीं चलते थे | इमाम साहब को वजू करते समय पैर धोने पड़ते थे, नमाज खुले पाँव रहकर पढ़नी होती थी | लेकिन बेचारे रॉयपेन तो इतना भी नहीं करते थे | ऐसे आदमी ने बैरिस्टरी का त्याग करके सागभाजी की टोकनी बगल में रखी, बिना परवाने के फेरी लगाकर जेल में

गये और वहाँ के भारी कष्ट भोगी | "लेकिन क्या मुझे तीसरे दरजे में रेल की मुसाफिरी करनी होगी ?" रॉयपेन ने एक समय मुझसे पूछा | मैंने उत्तर दिया : "अगर आप पहले या दूसरे दरजे में मुसाफिरी करें, तो तीसरे दरजे की मुसाफिरी मैं किससे कराऊँ ? जेल में आपको बैरिस्टर के रूप में कौन पहचानेगा ?" जोसेफ रॉयपेन के लिए इतना उत्तर काफ़ी था |

सोलह सोलह वर्ष के नौजवान तो कितने ही जेल में जा पहुँचे | मोहनलाल मानजी घेलानी नमाक एक सत्याग्रही तो चौदह वर्ष का ही था |

जेल में अधिकारियों ने सत्याग्रही क़ैदियों को दुःख देने में कोई कोशिश बाकी न रखी | उनसे पाखाने साफ कराये; क़ैदियों ने हँसते – हँसते पाखाने साफ किये | क़ैदियों से पत्थर फुड़वाये; उन्होंने खुदा या राम का नाम ले लेकर पत्थर फोड़े | अधिकारियों ने क़ैदियों से तालाब खुदवाये, पथरीली ज़मीनें खुदवाई, जिससे उनके हाथों में घट्टे पड़ गये, कुछ तो असह्य कष्ट से मूर्च्छित भी हो गये; परन्तु उन्होंने हार नहीं मानी |

पाठकों को यह नहीं मान लेना चाहिए कि जेल के भीतर क़ैदियों में परस्पर झगड़े-टंटे नहीं होते थे या ईर्ष्या-द्वेष नहीं होता था | अधिक जोर के झगड़े खाने-पीने के बारेमें होते थे, परन्तु हम उनमें से भी उबर गये |

मुझे भी दूसरी बार गिरफ्तार किया गया था | एक बार वॉक्सरस्ट की जेल में हम लगभग ७५ सत्याग्रही क़ैदी इकट्ठे हो गये थे | अपना खाना हम खुद ही बनाते थे | मैं रसोइया बन गया था, क्योंकि खाने से सम्बन्ध रखने वाले झगड़े केवल मैं ही निबटा सकता था | मेरे साथी प्रेम वश होकर मेरे हाथों बनी कच्ची-पक्की और बिना शक्कर की लपसी भी किसी शिकायत के बिना पी लेते थे |

सरकार ने सोचा कि मुझे वह साथियों से अलग कर दे तो मेरी भी थोड़ी कसौटी होगी और दूसरे सत्याग्रही क़ैदी भी हार जाएँगे | लेकिन ऐसा सुन्दर मौका उसे मिला नहीं | इसलिए मुझे प्रिटोरिया की जेल में ले जाया गया | वहाँ उत्पाती क़ैदियों के लिए रखी हुई एक एकांत कोठरी में मुझे बन्द कर दिया गया | केवल कसरत के लिए ही दिन में दो बार मुझे बाहर निकाला जाता था | वॉक्सरस्ट में भोजन के साथ घी दिया जाता था; प्रिटोरिया में घी नहीं दिया जाता था | लेकिन इस जेल के छोटे-मोटे दुःखों की चर्चा मैं नहीं करना चाहता | जो लोग जानना चाहें वे दक्षिण अफ्रीका की जेलों के मेरे अनुभव *मेरे जेल के अनुभव* नामक पुस्तक में पढ़ लें |

इन सब कष्टों के बावजूद हिन्दुस्तानी हारे नहीं | सरकार गहरे विचार में पड़ गई | आखिर कितने हिन्दुस्तानियों को जेल में भरा जाए ? उससे खर्च कितना बढ़ेगा ? इसलिए सरकार परिस्थिति का सामना करने के लिए दूसरे साधनों की खोज करने लगी |

७. देश-निकाला

खूनी कानून में तीन प्रकार की सजा देने की व्यवस्था थी : जुर्माना, क़ैद और देश-निकाल | ये तीनों सजायें एकसाथ देने का भी कोर्ट को अधिकार था | यह अधिकार छोटे मजिस्ट्रेटो को भी दिया गया था | पहले-पहले देश-निकाले का अर्थ था ट्रान्सवाल की सीमा से बाहर नेटाल या फ्री स्टेट की सीमा में अथवा डेलागोआ बे (पुर्तगाली पूर्व अफ्रीका) की सीमा में अपराधी को छोड़ आना | उदाहरण के लिए, नेटाल की ओर से आने वाले हिन्दुस्तानियों को वॉक्सरस्ट स्टेशन की सीमा से बाहर ले जाकर छोड़ दिया जाता था | इस तरह के देश-निकाले में असुविधा के सिवा लोगों का अन्य कोई कष्ट नहीं होता था | यह तो निरा मजाक था | इससे हिन्दुस्तानियों का जोश उलटा अधिक बढ़ता था |

इसलिए हिन्दुस्तानियों को परेशान करने की नई युक्तियाँ ट्रान्सवाल सरकार को खोजनी पड़ीं | जेलों में तो जगह रह ही नहीं गई थी | इसलिए सरकारने सोचा कि यदि हिन्दुस्तानियों को हिन्दुस्तान तक का देश-निकाल दिया जाए, तो वे ज़रूर घबरा कर हमारी शरण में आ जाएँगे | सरकार की इस धारणा में कुछ सत्य अवश्य था | उसने हिन्दुस्तानियों के एक बड़े समूह को हिन्दुस्तान भेज दिया | उन लोगों को मार्ग में बड़े-बड़े कष्ट झेलने पड़े | खाने-पीने को बड़ी से बड़ी असुविधा उठानी पड़ी | सरकार ने जहाज पर जो भी व्यवस्था खानेकी की उसी से उन्हें काम चलाना पड़ा | सबको उसने डेक पर ही भेजा था | इसके सिवा, उनमें से कुछ लोगों की दक्षिण अफ्रीका में अपनी ज़मीनें थीं, दूसरी जायदाद भी थी | उनका अपना धन्धा था, बाल-बच्चे थे, कुछ लोगों के सिर कर्ज भी था | शक्ति होते हुए भी इस तरह सब-कुछ खाने के लिए –दिवालिया बनने के लिए – बहुत लोग तैयार नहीं हो सकते थे |

इस सबके बावजूद अनेक हिन्दुस्तानी पूरी तरह दृढ़ और अडिग रहे | बहुत से ढीले भी पड़ गये | जो लोग ढीले पड़ गये, वे जान-बुझकर गिरफ्तार होने से बचने लगे | इनमें से अधिकतर हिन्दुस्तानियों ने जलाये हुए परवानों के स्थान पर दूसरे परवाने लेने की हद तक तो कमजोरी नहीं दिखाई | लेकिन कुछ दूसरों ने डर के मारे फिर से परवाने ले लिए |

फिर भी जो लोग दृढ़ बने रहे, उनकी संख्या ध्यान खींचने जितनी तो थी ही | उनकी बहादुरी का कोई पार न था | मेरा विश्वास हैं कि उनमें से कुछ हिन्दुस्तानी तो हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ जाने की भी ताकत रखते थे | संपत्ति या ज़मीन-जायदाद की परवाह तो उन्होंने छोड़ ही दी थी |

परन्तु जिन लोगों को हिन्दुस्तान भेज दिया गया, उनमें से अनेक गरीब और भोले थे | वे लोग केवल श्रद्धा से ही सत्याग्रह की लड़ाई में शरीक हुए थे | उन पर सरकार इतना भारी जुल्म करे, यह हमें असह्य मालूम हुआ | लेकिन उनकी मदद कैसे की जाए, यह भी समझ में नहीं आता था | पैसा तो हमारे पास बहुत थोड़ा था | ऐसी

लड़ाई में लड़ने वालों को पैसे की मदद देने जाएँ, तो लड़ाई हार जाने की नौबत आ जाए | उसमें लालची आदमी घुस जाएँ | इसलिए पैसे के लोभ से तो एक भी आदमी को लड़ाई में शामिल नहीं किया जाता था | हाँ, ऐसे लोगों को सहानुभूति की मदद देना हम अपना धर्म मानते थे |

मैंने अनुभव से देखा कि जो काम सहानुभूति, मीठे बोल और मीठी नजर कर सकती है, वह पैसा नहीं कर सकता | पैसे के लोभी को भी अगर पैसे के साथ हृदय की सहानुभूति न मिले, तो अंत में वह पैसा देने वाले को छोड़ देता हैं | इसके विपरीत, प्रेम के वश बने हुए लोग प्रेम करने वाले के साथ अनेकों संकट सहने के लिए तैयार रहते हैं |

इसलिए हमने इन देश-निकाले की सजा पाये हुए हिन्दुस्तानियों के लिए प्रेम और सहानुभूति की भावना से जो कुछ करना संभव हो करने का निश्चय किया | हमने उन्हें आश्वासन दिया कि हिन्दुस्तान में उनके लिए आवश्यक व्यवस्था की जाएगी | पाठकों को याद रखना चाहिए कि इन लोगों में अनेक तो गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी थे | उनके कोई सगे-सम्बन्धी हिन्दुस्तान में नहीं थे | कुछ लोग तो दक्षिण अफ्रीका में ही पैदा हुए थे | सभी के लिए हिन्दुस्तान पराये देश जैसा तो था हीं | ऐसे निराधार मानवों को हिन्दुस्तान के किनारे उतार कर लाचार हालत में छोड़ देना ट्रान्सवाल सरकार की घोर क्रूरता और अमानुषिकता ही थी | इसलिए हमने उन्हें विश्वास दिलाया कि हिन्दुस्तान में उनके लिए सारी व्यवस्था की जाएगी |

यह सब करने के बावजूद अगर उनके साथ कोई मददगार न भेजा जाता, तो उन्हें शान्ति नहीं मिल पाती | यह देश-निकाला पाये हुए हिन्दुस्तानियों का पहला दल था | उनका जहाज कुछ ही घंटो में रवाना होने वाला था | चुनाव करने का हमारे पास समय नहीं था | अपने साथियों में से भाई पी. के. नायडू पर मेरी नजर गई | मैंने उनसे पूछा :

“आप इन गरीब भाइयों को हिन्दुस्तान तक ले जाएँगे ?”

“क्यों नहीं?”

“लेकीन जहाज तो कुछ ही देर में रवाना होने वाला हैं |”

“भले ही रवाना हो |”

“लेकिन आपके कपड़े-लत्तों का क्या होगा ? भोजन का क्या करेंगे ?”

“कपड़े जो पहना हूँ वे काफ़ी हैं | भोजन जहाज पर मिल जाएगा |”

मेरे हर्ष और आश्चर्य का कोई पार न रहा | पारसी रुस्तमजी के मकान पर यह बात हुई थी | वही नायडू के लिए कपड़े, कम्बल वगैरा माँग कर उन्हें रवाना किया |

मैंने नायडू से कहा : "देखना, रास्ते में इन सब भाइयों का अच्छी तरह देखभाल करना | पहले इनके आराम का ख्याल रखना, फिर अपने आराम का | मैं मद्रास श्री नटेसन को तार करता हूँ | वे कहे वैसा करना |"

"मैं सच्चा सिपाही सिद्ध होने का प्रयत्न करूँगा |" इतना कहकर नायडू रवाना हो गये | मैंने मन में कहा, जहाँ ऐसे वीर पुरुष हों वहाँ कभी हार हो हीं नहीं सकती | श्री नायडू का जन्म दक्षिण अफ्रीका में ही हुआ था | उन्होंने हिन्दुस्तान कभी देखा नहीं था | मैंने श्री नटेसन के लिए एक सिफ़ारिशी पत्र नायडू को दिया था और उन्हें तार भी किया था |

उस समय हिन्दुस्तान में प्रवासी हिन्दुस्तानियों के दुःखों का अध्ययन करने वालें उनकी सहायता करने वाले और उनके बारेमें व्यवस्थित रूप में ज्ञानपूर्वक लिखने वाले एकमात्र भी नटेसन ही थे, ऐसा कहा जा सकता है | उनके साथ मेरा नियमित पत्र-व्यवहार चलता था | जब देश-निकाले की सजा पाये हुए ये हिन्दुस्तानी मद्रास पहुँचे तब श्री नटेसन ने उनकी पूरी मदद की | श्री नायडू जैसे योग्य पुरुष के साथ होने से श्री नटेसन को भी अपने इस काम में काफ़ी मदद रही | उन्होंने मद्रास के लोगों से फंड इकट्ठा किया और दक्षिण अफ्रीका से आये हुए हिन्दुस्तानियों को यह अनुभव न होने दिया कि वे देश-निकाले की सजा पाकर हिन्दुस्तान आये हैं |

ट्रान्सवाल सरकार का यह काम जितना निर्दयतापूर्ण था उतना ही **ग़ैर**-कानूनी भी था | सरकार भी यह जानती थी | सामान्यत: लोगों को इस बात का पता नहीं रहता कि उनकी सरकार जान-बुझकर अपने कानूनों को तोड़ती रहती हैं | कोई संकट खड़ा होने पर नये कानून बनाने का समय नहीं रहता, इसलिए कानूनों को तोड़ कर सरकार मन-माना काम कर लेती हैं; और बाद में या तो नये कानून पास करवा लेती हैं या ऐसा कुछ करती हैं कि जिससे जनता उसके द्वारा किये गये कानून-भंग को भूल जाए |

ट्रान्सवाल सरकार की इस अराजकता के विरुद्ध हिन्दुस्तानियों ने जोरदार आन्दोलन किया | हिन्दुस्तान में भी उसके विरुद्ध शोरगुल मचा | इसके परिणाम-स्वरूप सरकार के लिए ऐसी निर्दयता के साथ गरीब हिन्दुस्तानियों को देश-निकाले की सजा देना कठिन हो गया | हिन्दुस्तानियों ने सरकार की इस नीति के खिलाफ आवश्यक कानूनी कदम भी उठाये | उन्होंने देश-निकाले के खिलाफ जो अपीलें की, उनमें, भी उनकी जीत हुई | अन्त में हिन्दुस्तान तक हिन्दुस्तानियों को देश-निकाले की सजा देने की प्रथा तो बन्द हो गई |

लेकिन देश-निकाले की इस सरकारी नीति का असर सत्याग्रही फौज पर पड़े बिना न रहा | अब तो जो लोग उसमें रहे वे सच्चे लड़वैये ही रहे | 'कहीं सरकार हिन्दुस्तान भेज दे तो क्या होगा ?'-इस भय का सब सैनिक त्याग नहीं कर सके |

कौम का जोश और उत्साह तोड़ने के लिए सरकार ने ऊपर का एक ही कदम नहीं उठाया | पिछले प्रकरण में मैं बता चुका हूँ कि सत्याग्रही क़ैदियों को दुःख देने में सरकार ने कोई कोशिश बाकी न रखी | जेल में उनसे

पत्थर फोड़ने तक का काम कराया जाता था | लेकिन इतना पर्याप्त नहीं माना गया | पहले सब सत्याग्रही क़ैदियों को साथ में रखा जाता था | अब सरकार ने उन्हें अलग रखने की नीति अपनाई और हर जेल में उन्हें अतिशय कष्ट दिये | ट्रान्सवाल में कड़ाके की सरदी पड़ती हैं | इतनी अधिक सरदी में सवेरे काम करते-करते क़ैदियों के हाथ ठंडे होकर ठिठुर जाते थे | इसलिए सरदी का मौसम क़ैदियों के लिए बड़ा दुखदायी सिद्ध होता था | ऐसी स्थिति में कुछ क़ैदियों को एक छोटी-सी जेल में रखा गया, जहाँ कोई उनसे मिलने भी नहीं जा सकता था | इस दल में स्वामी नागप्प नाम का एक १८ वर्ष का नौजवान सत्याग्रही था | उसने जेल के नियमों का पूरा पालन किया और जितना काम उसे सौंपा जाता था उतना मन लगाकर किया | बड़े सवेरे उसे सड़कों पर मिट्टी वगैरा डालने के लिए ले जाया जाता था | इससे उसे डबल निमोनिया का रोग हो गया और अंत में जेल से छूटने के बाद ७ जुलाई, १९०९ को उसने अपने प्रिय प्राणों की बलि दे दी | नागप्प के साथी कहते हैं कि जीवन के अंतिम क्षण तक उसने सत्याग्रह की लड़ाई का ही स्तवन किया | जेल जाने का उसे कभी पश्चाताप नहीं हुआ | देश के ख़ातिर प्राप्त हुई मृत्यु का उसने मित्र के समान आलिंगन किया | हम अपने पैमाने से नापे तो नागप्प निरक्षर माना जाएगा | वह जूलू और अंग्रेजी भाषा अनुभव से बोल लेता था | शायद टूटी-फूटी अंग्रेजी वह लिख भी लेता हो, परन्तु उसे विद्वानों की पंक्ति में नहीं रखा जा सकता था | फिर भी यदि हम नागप्प के धैर्य, उसकी शांति, उसकी देशभक्ति और मृत्यु पर्यन्त बनी रही उसकी दृढ़ता का विचार करें, तो उसके विषय में अधिक क्या चाहने लायक रह जाता हैं ? बड़े-बड़े विद्वान कौम की लड़ाई में शरीक न हुए तो भी ट्रान्सवाल की लड़ाई चल सकी | लेकिन अगर नागप्प जैसे सैनिक न मिले होते, तो क्या वह लड़ाई चल सकती थी ?

जिस प्रकार नागप्प की मृत्यु जेल के दुःखों से हुई उसी प्रकार देश-निकाले की कठिनाइयाँ नारायण स्वामी के लिए मृत्युरूप सिद्ध हुई (१६ अक्तूबर, १९१०) | इन घटनाओं से कौम हारी नहीं – वह दृढ़ बनी रही केवल कमजोर लोग ही लड़ाई से हट गये | पर इन कमजोर लोगों ने भी यथाशक्ति कुरबानी की थीं | इसलिए कमजोर समझ कर हम उनकी अवगणना न करें | ऐसा रिवाज हो गया हैं कि जो लोग आगे बढ़ जाते हैं वे पीछे रहने वालों का तिरस्कार करते हैं और अपने को बहुत बहादुर मानते हैं | परन्तु सत्य अकसर इससे उलटा होता हैं | जिसमें ५० रूपये देने की शक्ति हैं वह यदि २५ रूपये देकर बैठ जाए और ५ रूपये देने की शक्ति वाला पूरे ५ रूपये दे-दे, तो हम यही समझेंगे कि ५ रूपये देने वाले आदमी ने अधिक दिया हैं | फिर भी २५ रूपये देने वाला आदमी ५ रूपये देनेवाले के सामने अकसर घमंड दिखाता हैं | लेकिन हम समझते हैं कि उसके लिए घमंड करने का कोई भी कारण नहीं हैं | इसी प्रकार अपनी कमजोरी के कारण आगे नहीं चल सकने वाला आदमी यदि अपनी सारी शक्ति खर्च कर चुका हो, तो मन में चोरी रखने वाला व्यक्ति मात्रा की दृष्टि से भले ही अधिक शक्ति खर्च करता हो, फिर भी वस्तुत: उसका अपेक्षा अपनी संपूर्ण शक्ति खर्च कर डालने वाला व्यक्ति अधिक योग्य हैं | इसलिए जो लोग लड़ाई के उग्र रूप धारण करने पर उससे हट गये, उन्होंने भी देश सेवा तो की ही |

अब ऐसा समय आ गया था जब अधिक सहन-शक्ति और अधिक साहस की आवश्यकता थी | इसमें भी ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानी पीछे न हटे | लड़ाई चलाने के लिए जितनों की आवश्यकता थीं उतने लोग तो बहादुरी से मोर्चे पर डटे ही रहें |

इस प्रकार हिन्दुस्तानियों की कसौटी दिनोंदिन तीव्र से तीव्रतर होती चली गई | कौम के लोग जितना अधिक बल दिखाने लगे, सरकार उतना ही अधिक हिंसक रूप धारण करने लगी | उत्पाती क़ैदियों के लिए अथवा जिन्हें सरकार खास तौर पर झुकाना चाहती हैं ऐसे क़ैदियों के लिए हर देश में हमेशा कुछ खास जेलें रखी जाती हैं | यह बात ट्रान्सवाल को भी लागू होती थी | ऐसी एक जेल का नाम था 'डायक्लुफ' | वहाँ का जेलर भी सख्त था और वहाँ क़ैदियों से कराया जाने वाला काम भी सख्त था | परन्तु वहाँ ऐसे हिन्दुस्तानी क़ैदी थे, जिन्होंने इतने सख्त काम को भी सफलतापूर्वक पूरा कर दिखाया | वे कड़ी मेहनत करने को तैयार थे, परन्तु जेलर द्वारा किये जाने वाले अपमान को बरदाश्त करने के लिए तैयार नहीं थे | जेलर ने उनका अपमान किया, इसलिए जेल में क़ैदियों ने उपवास शुरू कर दिया | उनकी शर्त इस प्रकार थी : "जब तक आप (सरकार) इस जेलर को यहाँ से नहीं हटाते या हमारी जेल नहीं बदलते तब तक हम खाना नहीं खाएँगे |" यह उपवास शुद्ध था | उपवास करने वाले क़ैदी छिपे-छिपे कुछ खा लें, ऐसे नहीं थे | पाठकों को जानना चाहिए कि ऐसे मामले में जो ऊहापोह अथवा सार्वजनिक आन्दोलन यहाँ भारत में हो सकता हैं, उसके लिए ट्रान्सवाल में बहुत गुंजाइश नहीं थीं | इसके सिवा, वहाँ के नियम भी कठोर थे | ऐसे अवसरों पर भी वहाँ क़ैदियों से मिलने जाने का रिवाज नहीं था | सत्याग्रही एक बार जेल में गया कि बाद में तो प्राय : उसे ही अपनी सँभाल रखनी पड़ती थी | सत्याग्रह की लड़ाई गरीबों की लड़ाई थी और गरीबी से हीं लड़ी जाती थीं | इसलिए क़ैदियों की ऐसी प्रतिज्ञा के साथ भारी खतरा जुड़ा हुआ था | फिर भी सत्याग्रही दृढ़ रहे | उस समय का उनका यह कार्य आज से अधिक प्रशंसनीय माना जाएगा, क्योंकि उस समय लोग ऐसे उपवासों के आदि नहीं हो पाये थे | परन्तु सत्याग्रही अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहे और अंत में उन्हें सफलता मिली | सात दिन के उपवास के बाद उन्हें दूसरी जेल में भेजने का हुक्म निकला |

८. दूसरा प्रतिनिधि-मंडल

इस प्रकार सरकार हिन्दुस्तानी सत्याग्रहियों को जेल में भेजती रही और देश-निकाले की सजा भी देती रही | इसमें उतार-चढ़ाव आता रहता था | दोनों पक्ष कुछ हद तक शिथिल भी पड़ गये थे | सरकार ने देखा कि जेल में बन्द करने से वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने वाले हिन्दुस्तानी सत्याग्रहियों को हरा नहीं सकती और उन्हें देश-निकाले की सजा देने से सरकार की अवगणना होती हैं | अदालतों में जाने वाले कुछ मामलों में सरकार की हार भी होती थी | हिन्दुस्तानी भी उग्रता से सरकार का सामना करने को तैयार नहीं थे | इतनी बड़ी संख्या में अब सत्याग्रही रह भी नहीं गये थे | कुछ लोग कायर बन गये थे; लड़ते लड़ते थक गये थे | कुछ बिलकुल हार गये थे और सत्याग्रह पर दृढ़ रहने वालों को 'मूर्ख' समझते थे | और 'मूर्ख' अपने को बुद्धिमान समझ कर ईश्वर पर, लड़ाई की सभ्यता पर और अपने साधनों की सत्यता पर संपूर्ण श्रद्धा रखते थे | उनका विश्वास था कि अंत में सत्य की ही विजय होगी |

इस बीच दक्षिण अफ्रीका की राजनीति तो एक क्षण के लिए भी रुकी नहीं थी – वह निरन्तर गतिशील बनी रही थी | बोअर और अंग्रेज लोग दक्षिण अफ्रीका के सब उपनिवेशों को एकत्र करके अधिक स्वतंत्रता चाहते थे | जनरल हर्टज़ोग ब्रिटेन के साथ बिलकुल सम्बन्ध तोड़ देना चाहते थे | दूसरे लोग ब्रिटिश साम्राज्य के साथ नाम का सम्बन्ध बनाये रखना चाहते थे | अंग्रेज इसे कभी बरदाश्त नहीं कर सकते थे कि ब्रिटिश साम्राज्य के साथ संपूर्ण रूप से सम्बन्ध तोड़ दिया जाएँ; और जो कुछ बोअरों और अंग्रेजों को प्राप्त करना था वह ब्रिटिश पार्लियामेंट के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता था | इसलिए दोनों ने यह निश्चय किया कि ब्रिटिश मंत्रि-मंडल के समक्ष दक्षिण अफ्रीका का मामला पेश करने के लिए एक प्रतिनिधि-मंडल इंग्लैंड भेजा जाए |

दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों ने देखा कि यदि सारे उपनिवेशों का एक यूनियन (संघ) बन गया, तो उनकी स्थिति जैसी हैं उससे अधिक बुरी हो जाएगी | सभी उपनिवेश हिन्दुस्तानियों को सदा अधिकाधिक दबाने की इच्छा रखते थे | अत: यह बात स्पष्ट थी कि सारे हिन्दुस्तानी-विरोधी उपनिवेश अधिक एकत्र हो जाते, तो हिन्दुस्तानी लोगों को अधिक दबाया जाता | हिन्दुस्तानियों की आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज जैसी थी | फिर भी यह सोचकर कि एक भी प्रयत्न बाकी नहीं रहना चाहिए, इस समय हिन्दुस्तानियों का एक प्रतिनिधि-मंडल फिर से इंग्लैंड भेजने का कौम ने निश्चय किया | इस बार प्रतिनिधि-मंडल में मेरे साथ पोरबन्दर के मेमन सेठ हाजी हबीब की नियुक्ति की गई थी | ट्रान्सवाल में उनका बहुत पुराने समय से व्यापार चल रहा था | उनका अनुभव बड़ा व्यापक था | उन्होंने अंग्रेजी की शिक्षा नहीं पाई थी, फिर भी वे अंग्रेजी, डच, जूलू वगैरा भाषायें आसानी से समझ लेते थे | सत्याग्रहियों के प्रति उनकी सहानुभूति थी, परन्तु उन्हें संपूर्ण सत्याग्रही नहीं कहा जा सकता था | हम दोनों मित्र केप टाउन से २३ जून, १९०९ को जिस जहाज (केनिलवर्थ कैसल) में रवाना हुए,

उसमें दक्षिण अफ्रीका के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्री मेरीमैन भी थे | वे दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेशों को जोड़कर एक कराने के उद्देश्य से जा रहे थे | जनरल स्मट्स और दूसरे लोग पहले से ही इंग्लैंड पहुँच गये थे | नेटाल के हिन्दुस्तानियों की ओर से एक अलग प्रतिनिधि-मंडल भी इस बार इंग्लैंड गया था | वह सत्याग्रह के सम्बन्ध में नहीं परन्तु नेटाल के हिन्दुस्तानियों की विशेष कठिनाइयों के सम्बन्ध में गया था |

उस समय लॉर्ड क्रू उपनिवेश-मंत्री थे और लॉर्ड मोर्ले भारत-मंत्री थे | उनसे हमारी खूब चर्चायें हुई | हम दोनों अनेक लोगों से मिले | ऐसा एक भी संपादक अथवा लोकसभा और लॉर्डसभा का ऐसा एक भी सदस्य नहीं था, जिससे मिलना संभव होने पर भी हम न मिले हों | ऐसा कहा जा सकता हैं कि लॉर्ड एम्प्टहिल की मदद का कोई पार न था | वे महोदय श्री मेरीमैन, जनरल बोथा आदि से मिला करते थे | अंत में वे जनरल बोथा का एक सन्देश हमारे लिए लाये | उन्होंने हमसे कहा : "जनरल बोथा आपकी भावनाओं को समझते हैं | वे आपकी छोटी माँगें स्वीकार करने को तैयार हैं, परन्तु एशियाटिक एक्ट को रद करने और दक्षिण अफ्रीका में नये आने वालों पर प्रतिबन्ध लगाने वाले कानून में परिवर्तन करने के लिए वे तैयार नहीं हैं | कानून में काले-गोरे का जो भेद हैं, उसे आप दूर कराना चाहते हैं; परन्तु इस भेद को दूर करने के लिए भी वे तैयार नहीं हैं | इस रंगभेद को जनरल बोथा सिद्धान्त की वस्तु मानते है और यदि उन्हें यह भेद दूर करने जैसा लगे, तो भी इस बात को दक्षिण अफ्रीका के गोरे कभी बरदाश्त नहीं करेंगे | जनरल स्मट्स का मत श्री जनरल बोथा के जैसा हीं हैं | वे दोनों कहते हैं कि यह उनका अंतिम निर्णय हैं और अंतिम प्रस्ताव हैं | इससे अधिक की माँग आप करेंगे, तो आप दुखी होंगे और आपकी कौम भी दुःखी होगीं | इसलिए आप जो भी निर्णय करें वह सोच-समझ कर करें | जनरल बोथा ने यह बात आपसे कहने और आपकी जिम्मेदारी का चित्र आपके सामने प्रस्तुत करने के लिए मुझे आपके पास भेजा है |"

यह संदेश हमें सुनाकर लॉर्ड एम्प्टहिल बोले : "देखिये, जनरल बोथा आपकी सारी व्यावहारिक माँगें स्वीकार करते हैं | और इस दुनिया में हमें किसी बात में देना और किसी बात में लेना तो पड़ता ही हैं | हम जो कुछ चाहते हैं वह हमें नहीं मिल सकता | इसलिए, अब आपको मेरी यह आग्रहपूर्ण सलाह हैं कि आप इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लें | सिद्धान्त के लिए आपको सरकार से लड़ना हो, तो आप भविष्य में लड़ सकते हैं | पहले आप दोनों इस बात पर अच्छी तरह सोच लें और फिर सुविधा से अपना उत्तर मुझे दें |"

यह सुनकर मैंने सेठ हाजी हबीब की ओर देखा | वे बोले : "मेरी ओर से आप इनसे कहिए कि मैं समझौता-पक्ष की ओर से जनरल बोथा का प्रस्ताव स्वीकार करता हूँ | अगर इतना वे हमें दें-दें तो अभी हम संतोष मानेंगे और सिद्धान्त के लिए बाद में लड़ेंगे | अब कौम ज़्यादा बरबाद हो, यह मुझे पसन्द नहीं | जिस पक्ष की ओर से मैं बोल रहा हूँ उस पक्ष की संख्या भी ज़्यादा हैं और उसके पास पैसा भी ज़्यादा है |"

मैंने सेठ हबीब के वाक्यों का अक्षरश: अनुवाद करके लॉर्ड एम्प्टहिल को सुना दिया | फिर मैंने सत्याग्रहियों की ओर से उनसे कहा : "आपने जो कष्ट किया उसके लिए हम दोनों आपके हृदय से आभारी हैं | मेरे साथी ने जो बात कही वह सच हैं | वे संख्या में और पैसे में अधिक बलवान पक्ष की ओर से बोल रहे हैं | मैं जिन लोगों को ओर से बोल रहा हूँ, वे तुलना में गरीब हैं और संख्या में कम है | लेकिन वे प्राणों की बाजी लगाने वाले लोग हैं | उनकी लड़ाई व्यवहार और सिद्धान्त दोनों के लिए हैं | यदि दोनों में से किसी एक को छोड़ना ही पड़े, तो वे व्यवहार को छोड़ कर सिद्धान्त के लिए लड़ेंगे | जनरल बोथा की शक्ति से हम लोग परिचित हैं | परन्तु अपनी प्रतिज्ञा को हम उससे अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं | अत: प्रतिज्ञा के पालन के लिए हम बरबाद होने को तैयार हैं | हम धीरज रखेंगे | हमारा विश्वास हैं कि यदि हम अपने निश्चय पर डटे रहेंगे, तो जिस ईश्वर के नाम पर हमने यह प्रतिज्ञा ली हैं वह उसे अवश्य पूरी करेगा |

"आपकी स्थिति को मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ | आपने हमारे लिए बहुत कुछ किया हैं | अब यदि आप हम मुट्ठीभर सत्याग्रहियों का ज़्यादा साथ न दे सकें, तो हम आपको गलत नहीं समझेंगे | और उसकी वजह से आपके उपकारों को भी हम नहीं भूलेंगे | हम आशा करते हैं कि आपकी सलाह को मानने में हम असमर्थ हैं, इसके लिए आप हमें क्षमा करेंगे | जनरल बोथा को आप हम दोनों की बात अवश्य कह सुनायें और उनसे कहें कि हम सत्याग्रही संख्या में यद्यपि कम हैं, फिर भी हम हर हालत में अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेंगे और यह आशा रखेंगे कि हमारी दुःख सहन करने की शक्ति अंत में उनके हृदय को भी पिघला देगी और वे एशियाटिक एक्ट रद कर देंगे |"

लॉर्ड एम्प्टहिल ने उत्तर में कहा :

"आप ऐसा न समझें कि मैं आप लोगों को छोड़ दूँगा | मुझे भी अपनी सज्जनता की रक्षा तो करनी ही चाहिए | अंग्रेज जिस काम को हाथ में लेते हैं, उसे एकाएक छोड़ते नहीं | आपकी लड़ाई शुद्ध और उचित हैं | आप लोग शुद्ध साधनों से लड़ते हैं | मैं आपको कैसे छोड़ सकता हूँ ? लेकिन मेरी स्थिति को आप समझ सकते हैं | दुःख तो आपको ही भोगना हैं | इसलिए आज की परिस्थितियों में यदि कोई समझौता हो सके, तो उसे स्वीकार करने की आपको सलाह देना मेरा धर्म माना जाएगा | परन्तु आप, जो दुःख सहन करने वाले हैं, अपनी टेक के लिए बड़े से बड़ा दुःख सहने को तैयार हो, तो मैं आपको क्यों रोकूँ ? मैं तो इसके लिए आपको बधाई ही दूंगा | इसलिए आपकी कमेटी का अध्यक्ष तो मैं रहूँगा ही और यथाशक्ति आपकी सहायता भी अवश्य करता रहूँगा | लेकिन इतना आपको ज़रुर याद रखना चाहिए कि मैं लॉर्डसभा का एक जूनियर सदस्य ही हूँ | मेरा प्रभाव बहुत नहीं माना जा सकता | फिर भी इस बारेमें आप कोई शंका न रखिये कि जो कुछ मेरा प्रभाव हैं उसका उपयोग मैं आपके लिए करता ही रहूँगा |"

प्रोत्साहन के ये वचन सुनकर हम दोनों प्रसन्न हुए |

इस बातचीत में रही एक मधुर वस्तु को शायद पाठक नहीं देख पाये होंगे | जैसा कि मैंने ऊपर बताया हैं, मेरे और सेठ हाजी हबीब के बीच मतभेद था, फिर भी हम दोनों के बीच इतने मीठे सम्बन्ध थे और दोनों का एक-दूसरे पर इतना विश्वास था कि सेठ हाजी हबीब ने अपनी विरोधी बात मेरे द्वारा ही लॉर्ड एम्प्टहिल से कहलवाने में कोई हिचकिचाहट अनुभव नहीं की | वे मुझ पर इतना विश्वास रख सकते थे कि उनका केस मैं लॉर्ड एम्प्टहिल के सामने सही रूप में ही प्रस्तुत करूँगा |

यहाँ पाठकों से मैं एक अप्रस्तुत बात भी कह दूँ | इंग्लैंड के अपने निवास-काल में अनेक भारतीय अराजकतावादियों के साथ मेरी बातें हुई थीं | उन सबके तर्कों का खण्डन करने तथा दक्षिण अफ्रीका में अराजकतावादी विचारधारा रखने वाले हिन्दुस्तानियों का समाधान करने की आवश्यकता से मेरी पुस्तक *हिन्द स्वराज्य* का जन्म हुआ था | यह पुस्तक नवम्बर १९०९ में 'किल्डोनन कैसल' नामक जहाज पर इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए लिखी गई थी और उसके बाद तुरन्त *इंडियन ओपीनियन* में छपी थीं | इस पुस्तक के मुख्य सिद्धान्तों की चर्चा मैंने लॉर्ड एम्प्टहिल के साथ भी की थीं | इसमें मेरा आशय यही था कि उन्हें एक क्षण के लिए भी ऐसा न लगे कि मैंने अपने विचारों को दबाकर उनके नाम और उनकी सहायता का दक्षिण अफ्रीका के अपने कार्य के लिए दुरूपयोग किया | इस सम्बन्ध में उनके साथ मेरी जो चर्चा हुई, वह मुझे सदा याद रही हैं | उनके परिवार में बीमारी थी, फिर भी वे मुझसे मिले थे; और यद्यपि *हिन्द स्वराज्य* में व्यक्त किये गये मेरे विचारों से वे सहमत नहीं थे, फिर भी दक्षिण अफ्रीका की हमारी लड़ाई का उन्होंने अंत तक पूरा समर्थन किया और उनके साथ मेरा सदा मीठा सम्बन्ध बना रहा |

९. टॉल्स्टॉय फार्म – १

इस बार जो प्रतिनिधि-मंडल इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका लौटा, वह अच्छे समाचार नहीं लाया था | कौम के लोग लॉर्ड एम्प्टहिल की कही हुई बातों का क्या अर्थ लगायेंगे, इसकी मुझे अधिक चिन्ता नहीं थी | मेरे साथ सत्याग्रह की लड़ाई में अंत तक कौन खड़ा रहेगा, यह मैं जानता था | अब सत्याग्रह के विषय में मेरे विचार परिपक्व हो गये थे | सत्याग्रह की व्यापकता और अलौकिकता को मैं अधिक समझ सका था, इसलिए मैं शांत था | इंग्लैंड से लौटते समय मैंने जहाज पर *हिन्द स्वराज्य* लिखा था | उसका उद्देश्य केवल सत्याग्रह की भव्यता दिखाना था | वह पुस्तक सत्याग्रह की सफलता में निहित मेरी श्रद्धा का सच्चा मापदंड हैं | इसलिए लड़ने वाले सत्याग्रहियों की संख्या का मेरी नजर में कोई भी महत्त्व नहीं था |

परन्तु लड़ाई के सम्बन्ध में पैसे की चिन्ता मुझे सताती थी | पैसे के अभाव में लम्बे समय तक लड़ाई को चलाना मेरे लिए बड़े दुःख का विषय हो गया | पैसे के बिना कोई शुद्ध लड़ाई चल सकती है, पैसा प्राय: सत्य की लड़ाई को दूषित बना देता है और ईश्वर सत्याग्रही को – मुमुक्षु को – आवश्यकता से अधिक साधन कभी देता ही नहीं, यह बात मैं उस समय इतनी स्पष्ट नहीं समझता था जितनी आज समझता हूँ | परन्तु मैं आस्तिक मनुष्य हूँ | ईश्वर ने उस समय भी मेरा साथ दिया, मेरा संकट दूर किया | एक ओर मुझे दक्षिण अफ्रीका के किनारे उतर कर कौम के लोगों को असफलता की खबर सुनानी थी, तो दूसरी ओर ईश्वर ने मेरा आर्थिक संकट दूर कर दिया था | केप टाउन पर उतरते ही मुझे इंग्लैंड से तार मिला कि सर रतन टाटा ने सत्याग्रह के फंड में रु. २५००० का दान दिया है | इतनी रकम उस समय की ज़रूरतों के लिए काफ़ी थी | हमारा काम आगे बढ़ा |

परन्तु इतने धन से अथवा अधिक से अधिक धन से भी सत्याग्रह की – सत्य की, आत्मशुद्धि की, आत्मबल की लड़ाई नहीं चल सकती | ऐसी लड़ाई के लिए चरित्र की पूँजी आवश्यक होती है | जिस प्रकार स्वामी के बिना कोई महल भी खंडहर जैसा मालूम होता हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी चरित्र के बिना खंडहर जैसा लगता हैं – भले उसके पास कितनी ही संपत्ति क्यों न हो | अब कौम के सत्याग्रहियों ने देखा कि लड़ाई कितनी लम्बी चलेगी, इसका अनुमान कोई लगा नहीं सकता | कहाँ जनरल बोथा और जनरल स्मट्स की एक इंच भी पीछे न हटने की प्रतिज्ञा और कहाँ सत्याग्रहियों की मरण-पर्यंत जूझने की प्रतिज्ञा ! वह तो हाथी और चींटी का युद्ध था | हाथी के एक पाँव के नीचे असंख्य चींटियों का कचूमर निकल सकता हैं | फिर, सत्याग्रही अपने सत्याग्रह की कोई अवधि नहीं बाँध सकते थे | एक वर्ष लगे या अनेक वर्ष लगें, उनके मन तो सब समान था | उनके लिए तो लड़ना ही विजय थी | लड़ने का अर्थ था जेल जाना या देश-निकाले की सजा पाना | उस बीच परिवार का क्या हो ? हमेशा जेल जाने वाले को नौकरी तो कोई दे हीं नहीं सकता था | जेल से रिहा होने पर खुद क्या खाये, परिवार को क्या खिलाये ? कहाँ रहे ? मकान का किराया कौन दे ? आजीविका के अभाव में सत्याग्रही भी परेशान हो

सकता हैं | खुद भूखों मर कर और अपने प्रियजनों को भूखों मारकर भी सत्य की लड़ाई लड़ने वाले इस जगत में अधिक लोग हो ही नहीं सकते |

आज तक जेल जाने वाले सत्याग्रहियों के परिवारों का भरण-पोषण उन्हें हर महीने पैसा देकर होता था | सबको उनकी आवश्यकता के अनुसार पैसा दिया जाता था | चींटी को कन और हाथी को मन | सबको एकसी रकम तो दी ही नहीं जा सकती थी | पाँच बालकों वाले सत्याग्रही को और ब्रह्मचारी को, जिसका कोई आश्रित न हो, एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता था | अथवा केवल ब्रह्मचारी को ही सत्याग्रही सेना में भरती करना भी संभव नहीं था | तक किस सिद्धान्त के आधार पर पैसा दिया जाता ? अकसर प्रत्येक परिवार पर विश्वास रखकर वह कम से कम जितनी रकम माँगे उसके अनुसार उसे खर्च दिया जाता था | इसमें धोके के लिए काफ़ी गुंजाइश रहती थी | धोखेबाज लोगों ने इस पद्धति का किसी हद तक दुरूपयोग भी किया | दुसरे शुद्ध हृदय वाले लोग भी अमुक जीवन-स्तर को निभाने के लिए आर्थिक सहायता की आशा रखते थे | मैंने देखा कि इस तरह सत्याग्रहियों के परिवारों को आर्थिक सहायता देकर लम्बे समय तक लड़ाई चलाना असंभव हैं | इसमें पात्र के साथ अन्याय होने का और कुपात्र के अपने पाखंड में सफल होने का भय बना रहता था | यह कठिनाई एक ही तरह से हल हो सकती थी – सारे परिवारों को एक स्थान पर रखा जाए और वहाँ सब साथ मिलकर काम करें | इसमें किसी परिवार के साथ अन्याय होने का डर नहीं रह जाता, पाखंड के लिए जरा भी गुंजाइश नहीं रह जाती, ऐसा भी कहा जा सकता हैं | इससे सार्वजनिक पैसे का बचाव होता तथा सत्याग्रहियों के परिवारों को नये और सादे जीवन की तथा अनेक लोगों के साथ हिल-मिलकर रहने की तालीम मिलती | इस व्यवस्था से अनेक प्रान्तों और अनेक धर्मों के हिन्दुस्तानियों को एकसाथ रहने का मौका मिलता |

लेकिन प्रश्न यह था कि इसके लिए अनुकूल स्थान कहाँ से प्राप्त किया जाए ? शहर में रहने का अर्थ होता चूल्हे में से निकल कर भाड़ में पड़ना | भोजन के मासिक खर्च जितना तो शायद मकान-किराया ही शहर में देना पड़ता और शहर में रहकर सादगी से जीवन बिताने में परिवारों को कई मुसीबतें उठानी पड़तीं | इसके सिवा, शहर में ऐसी जगह तो मिल हीं नहीं सकती थीं, जहाँ बहुत से परिवार घर बैठे कोई उपयोगी धंधा कर सकें | इसलिए हमने यह समझ लिया कि इसके लिए कोई ऐसा क्षेत्र पसंद करना चाहिए, जो शहर से न तो बहुत दूर हो और न बहुत नजदीक हो | फिनिक्स आश्रम तो था हीं | वहाँ से *इंडियन ओपीनियन* निकलता था और थोड़ी खेती भी वहाँ होती थी | फिनिक्स में दूसरी अनेक सुविधायें भी मौजूद थीं | लेकिन फिनिक्स जोहानिसबर्ग से ३०० मील दूर था और वहाँ तक की मुसाफिरी में ३० घंटे का समय लगता था | इतनी दूर परिवारों को लाने ले जाने का काम बड़ा कठिन और खर्चीला था | इसके सिवा, सत्याग्रहियों के परिवार अपने घरबार छोड़कर इतनी दूर जाने को तैयार भी न होते | और अगर तैयार भी हो जाते, तो उन्हें और जेल से छूटने वाले सत्याग्रही क़ैदियों को फिनिक्स भेजने का काम असंभव-सा मालूम हुआ |

इसलिए तय यह किया कि परिवारों को रखने का स्थान ट्रान्सवाल में ही होना चाहिए और वह भी जोहानिसबर्ग के नजदीक होना चाहिए | श्री कैलनबैक का परिचय मैं पहले करा चुका हूँ | उन्होंने ११०० एकड़ ज़मीन खरीदी और कोई पैसा लिए बिना सत्याग्रहियों के उपयोग के लिए दे दी (३० मई, १९१०) |

उस ज़मीन पर करीब १००० फल के झाड़ थे और एक छोटासा मकान था, जिसमें पाँच सात आदमी रह सकते थे | पानी के लिए दो कुँए और एक झरना था | निकटतम रेलवे स्टेशन लॉले वहाँ से एक मील दूर था | जोहानिसबर्ग वहाँ से २१ मील पर था | इसी ज़मीन पर मकान बनवाने और सत्याग्रहियों के परिवारों को बसाने का हमने निश्चय किया |

१०. टॉल्स्टॉय फार्म – २

फार्म के ज़मीन पर फलों के जो लगभग १००० झाड़ थे, उनमें नारंगी, एप्रिकोर्ट (खूबानी) और प्लम (बेर) बहुतायत से होते थे – इतने कि मौसम में सत्याग्रही पेट भर कर खा लें उसके बाद भी बच जाते थे | पानी का एक छोटासा झरना था, जो रहने के स्थान से करीब ५०० गज दूर था | इसलिए पानी झरने से कांवरों में भरकर लाने की मेहनत करनी पड़ती थी |

इस स्थान में हमने यह आग्रह रखा था कि नौकरों से कोई भी घरेलू काम न कराया जाए; और जहाँ तक संभव हो खेतीबाड़ी का तथा मकान बाँधने का काम भी उनसे न लिया जाए | इसलिए पाखाना-सफाई से लेकर रसोई बनाने तक का सारा काम हमें अपने ही हाथों से करना था | जहाँ तक परिवारों को रखने का सवाल था, हमने पहले से ही यह निश्चय कर लिया था कि स्त्रियों और पुरुषों को अलग-अगल रखा जाए | इसलिए दोनों के मकान अलग और एक-दूसरे से थोड़ी दूरी पर बनाने की बात तय हुई | दस स्त्रियाँ और साठ पुरुष रह सकें इतने मकान तुरन्त बनाने का निर्णय हुआ | श्री कैलनबैक के रहने का भी एक मकान बनवाना था और उसके पास शाला का एक मकान खड़ा करना था | इसके सिवा, एक कारखाना भी बढ़ई-काम और मोची-काम के लिए बनवाया था |

जो लोग इस स्थान पर रहने आने वाले थे, वे गुजरात के, मद्रास के, आंध्र देश के और उत्तर भारत के थे | धर्म से वे हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई थे | उनमें लगभग चालीस नौजवान थे, दो-तीन वयोवृद्ध थे, पाँच स्त्रियाँ थीं और बीस से तीस की संख्या में बालक थे | इन बालकों में चार-पाँच लड़कियाँ थीं |

स्त्रियों में ईसाई और दूसरी स्त्रियों को मांसाहार की आदत थी | श्री कैलनबैक का और मेरा यह मत था कि इस स्थान में मांसाहार को प्रवेश न मिल सके तो ठीक | परन्तु प्रश्न यह था कि जिन लोगों को मांस खाने में जरा भी आपत्ति नहीं थी, जो अपने संकट के दिनों में यहाँ आने वाले थे, जिन्हें बचपन से ही मांसाहार की आदत पड़ी हुई थीं, उनसे कुछ समय के लिए भी मांसाहार छोड़ने की बात कैसे कहीं जाए ? और यदि न कही जाय तो भोजन-खर्च कितना बढ़ जाय ? फिर, जिन्हें गोमांस खाने की आदत हो, उन्हें क्या गोमांस भी दिया जाय ? आखिर कितने रसोई-घर अलग-अलग चलाये जाएँ ? ऐसी परिस्थिति में मेरा धर्म क्या हैं ? इन परिवारों को खर्च के पैसे देने का निमित्त बनकर भी मैं मांसाहार और गोमांसाहार का समर्थन करता हीं था | यदि मैं ऐसा नियम बना देता कि मांसाहारी को पैसे की मदद नहीं मिलेगी, तो मुझे सत्याग्रह की लड़ाई केवल शाकाहारियों की मदद से ही लड़नी पड़ती | यह भी कैसे संभव होता ? लड़ाई तो हिन्दुस्तानियों के सारे वर्गों की ओर से संगठित की गई थी और लड़ी जा रही थी | इन परिस्थितियों में मुझे अपना धर्म स्पष्ट रूप से समझ में आ गया | अगर ईसाई और मुसलमान मित्र गोमांस भी माँगे, तो मुझे उन्हें देना ही चाहिए | मैं उन्हें इस स्थान में आने से रोक ही नहीं सकता|

परन्तु ईश्वर सदा प्रेम का बेली रहता ही है | मैंने सरल भाव से ईसाई बहनों के सामने अपना यह संकट रख दिया | मुसलमान माता-पिताओं ने तो मुझे शुद्ध निरामिष भोजन तैयार करने वाला रसोई-घर चलाने की इजाजत दे दी थीं | अब ईसाई बहनों से ही मुझे बात करनी थी, जिनके पति या पुत्र जेल में थे | वे लोग निरामिष भोजन के बारेमें मेरे साथ सहमत थे | उनके साथ ऐसी बात करने के अनेक मौके मुझे मिले थे | लेकिन बहनों के साथ ऐसे निकट संपर्क मैं पहली बार हीं आया था | उनके सामने मकान की असुविधा की, पैसे की कमी की और अपनी भावनाओं की बात मैंने रखी | साथ ही यह कहकर मैंने उन्हें निर्भय भी बना दिया कि वे माँगेगी तो मैं गोमांस भी उन्हें दूंगा | बहनों ने प्रेमभाव से मांस न मँगाने की बात मान ली | रसोई का सारा कामकाज उन्हीं के हाथ में सौंप दिया गया हम मने से एक-दो पुरुष उनकी मदद में रहे | मैं स्वयं तो उनमें एक था हीं | मेरी उपस्थिति छोटे-मोटे झगड़ों को दूर रख सकती थीं | भोजन सादे से सादा बनाने का निर्णय किया गया | खाने के समय निश्चित कर दिये गये | रसोई-घर एक ही रखा गया | सब लोग एक ही पंक्ति में बैठकर भोजन करते थे | सबको अपने-अपने बरतन माँज-धोकर स्वयं साफ करने होते थे | रसोई-घर के सामान्य बरतन बारी बारी से मांजने की बात तय हुई थीं | मुझे कहना चाहिए कि टॉल्स्टॉय फार्म लम्बे समय तक चला, फिर भी बहनों या भाइयों ने कभी भी मांसाहार की माँग नहीं की | शराब, तम्बाकू वगैरा नशीली चीजें तो बिलकुल बंद थीं ही |

मैं पहले लिख चुका हूँ कि मकान बाँधने में भी जितना काम हाथ से हो सके उतना हाथ से ही करने का हमारा आग्रह था | स्थपति तो हमारे श्री कैलनबैक ही थे | वे एक यूरोपियन राज को ले आये | नारायणदास दामानिया नामक एक गुजराती सुतार ने पैसा लिए बिना इस काम में मदद की और कम दरों पर काम करने वाले दूसरे सुतार भी ला दिये | अकुशल श्रम का काम फार्म के हम निवासियों ने ही अपने हाथ से किया | हम में से जो लोग फुर्तीले शरीर वाले थे, उन्होंने तो कमाल कर दिया | सुतार का आधा काम तो विहारी नामक एक सुन्दर सत्याग्रही ने उठा लिया था | और सफाई रखने, शहर में जाने और वहाँ से सारा सामान खरीद कर लाने का काम सिंह के समान थंबी नायडू ने सँभाल लिया था |

टॉल्स्टॉय फार्म पर रहने वाले इस दल में एक भाई थे प्रागजी खंडुभाई देसाई | उन्होंने जीवन में कभी कष्ट भोगे ही नहीं थे | लेकिन यहाँ उन्हें कड़ी सरदी बरदाश्त करनी पड़ी, चिलचिलाती धूप सहन करनी पड़ी और मूसलधार बरसात की मार भी सहनी पड़ी | शुरू-शुरू में हमें तंबूओं में रहना पड़ा था | मकानों के खड़े होने में करीब दो महीने लगे होंगे | मकान टिन के बनाये गये थे, इसलिए उन्हें खड़ा करने में ज़्यादा देर नहीं लगी | लकड़ी भी आवश्यक माप की तैयार मिल सकती थीं, इसलिए केवल माप के अनुसार उसके टुकड़े करना हीं बाकी रह जाता था | खिड़की-दरवाजे अधिक नहीं रखने थे | इन्हीं सब कारणों से इतने कम समय में इतने सारे मकान तैयार हो सके | लेकिन मेहनत के इस काम ने प्रागजी की कड़ी परीक्षा ली | जेल की अपेक्षा फार्म का काम अधिक कठिन था | एक दिन तो थकान और धूप की वजह से प्रागजी बेहोश हो कर गिर पड़े | लेकिन वे हारने

वाले नहीं थे | उन्होंने यहाँ अपने शरीर को तालीम देकर पूरी तरह कास लिया और अंत में इतनी शक्ति प्राप्त कर ली कि मेहनत-मशक्कत में सबकी बराबरी में खड़े रह सकें |

ऐसे दूसरे साथी थे जोसेफ रॉयपेन | वे बैरिस्टर थे, लेकिन उन्हें बैरिस्टरी का घमंड नहीं था | वे बहुत कड़ा परिश्रम नहीं कर सकते थे | ट्रेन से सामान नीचे उतारना और उसे गाड़ी पर चढ़ाना उनके लिए कठिन था, परन्तु उन्होंने यथाशक्ति यह काम किया |

टॉल्स्टॉय फार्म में आकर निर्बल लोग बलवान बन गये और परिश्रम सबके लिए शक्तिदायी सिद्ध हुआ |

फार्म के हर निवासी को किसी न किसी काम से जोहानिसबर्ग जाना पड़ता था | बालक वहाँ सैर के लिए जाना चाहते थे | मुझे भी कामकाज के सिलसिले में जोहानिसबर्ग जाना पड़ता था | निर्णय यह किया गया था कि जो फार्म के सामाजिक काम से जाए, उसी को रेल से मुसाफिरी करने की इजाजत दी जाए और रेल की मुसाफिरी भी तीसरे दरजे में हीं की जाए | और जिसे सैर के लिए जाना हो वह चलकर जाए | उसके साथ खाने के लिए नाश्ता दे दिया जाए | शहर जाकर कोई खाने-पीने में एक पैसा भी खर्च न करे | ऐसे कड़े नियम न बनाये गये होते, तो जो पैसा बचाने के लिए हमने जंगल में रहना पसंद किया था, वह पैसा रेल-किराये में और शहर के बाजार में किये जाने वाले नाश्ते में उड़ जाता | घर का बना हुआ नाश्ता भी सादा हीं होता था | नाश्ते में घर के पिसे और बिना छने मोटे आटे की डबल-रोटी, उस पर मूँगफली का घर में बनाया हुआ मक्खन और घर में ही बना हुआ नारंगी के छिलकों का मुरब्बा होता था | आटा पीसने के लिए हाथ से चलने वाली लोहे की चक्की खरीदी गई थी | मूँगफली को भून कर पीसने से उसका मक्खन बन जाता था | उसकी क़ीमत दूध के मक्खन से चौगुनी सस्ती पड़ती थीं | नारंगी तो फार्म में ही खूब होती थीं | फार्म में हम गाय का दूध शायद ही कभी लेते थे; सामान्यत: डिब्बे के दूध का हीं उपयोग करते थे |

लेकिन हम फिर मुसाफिरी की बात पर आयें | जिन लोगों को जोहानिसबर्ग जाने का शौक होता, वे सप्ताह में एक या दो बार चलकर जाते थे और उसी दिन लौट आते था | मैं पहले कह चूका हूँ कि यह रास्ता २१ मील का था | पैदल जाने के इस नियम से हमारे सैकड़ों रूपये बच गए और चलकर जाने वालों को बड़ा लाभ हुआ | कुछ लोगों को चलने की नई आदत पड़ी | सामान्य नियम यह था कि इस तरह जोहानिसबर्ग जाने वाले रात में दो बजे उठ जाएँ और ढाई बजे निकल पड़े | सब कोई छह से सात घंटों के भीतर जोहानिसबर्ग पहुँच सकते थे | कम से कम समय लेने वाले लोग ४ घंटे १८ मिनट में पहुँच जाते थे |

पाठक यह न मान लें कि ये नियम फार्मवासियों पर भाररूप थे | सब सदस्य प्रेमपूर्वक उनका पालन करते थे | जबरन् कोई नियम लादकर मैं एक भी आदमी को फार्म में रख नहीं पाता | नौजवान मुसाफिरी में अथवा आश्रम में सौंपे गये सारे काम हँसते-हँसते और आनंद से किलकते हुए करते थे | मेहनत के काम करते समय उन्हें

उत्पात मचाने से रोकना कठिन पड़ता था | जितना काम वे स्वेच्छा से खुशी-खुशी करते थे उतना ही उनसे कराने का नियम रखा गया था | लेकिन इससे किसी दिन काम कम हुआ हो ऐसा मैंने नहीं देखा |

सफाई की कहानी समझने जैसी है | इतने लोग फार्म पर रहते थे, फिर भी कहीं कूड़ा-कचरा, मैला या जूठन किसी के देखने में नहीं आती थीं | सारा कूड़ा-करकट जो ज़मीन खोदकर रखी गई थी उसके भीतर गाड़ दिया जाता था | रास्तों पर पानी गिराने की मनाही थी | सारा पानी बरतनों में जमा किया जाता था और पेड़ों को पिला दिया जाता था | जूठन और सागभाजी के कचरे की खाद बनाई जाती थी | मैले के लिए रहने के मकान के पास एक चौकोन खड्डा डेढ़ फुट गहरा खोद रखा था, जिसमें सारा मैला गाड़ दिया जाता था | उसके ऊपर खड्डे से निकली हुई मिट्टी अच्छी तरह ढंक दी जाती थी | इसलिए दुर्गन्ध का नाम भी नहीं रह जाता था | न तो वहाँ मक्खियाँ भिनभिनाती थीं और न किसी को इस बात की कल्पना आती थीं कि वहाँ मैला गाड़ा गया हैं | साथ ही फार्म को अमूल्य खाद मिल जाती थीं | यदि हम मैंले का सदुपयोग करें, तो लाखों रुपयों की खाद प्राप्त कर सकते हैं और तरह-तरह के रोगों से भी बच सकते हैं | पाखाना फिरने की अपनी कुटेव की वजह से हम पवित्र नदियों के किनारों को बिगाड़ते हैं, मक्खियों की उत्पत्ति का एक साधन मुहैया करते हैं और जो मक्खियाँ हमारी भयंकर असावधानी के कारण खुले मैंले पर जाकर बैठती हैं उन्हीं मक्खियों को नहा-धोकर स्वच्छ होने के बाद हम अपने शरीर का स्पर्श करने देते हैं | एक छोटी-सी कुदाली और फावड़ा हमें बहुत बड़ी गंदगी से बचा सकता हैं | चलने के रास्तों पर मैला डालना, थूकना और नाक साफ करना ईश्वर के प्रति और मनुष्य के प्रति पाप हैं | इसमें दया का अभाव हैं – दूसरों की असुविधा का ख्याल रखने की, भावना का दुःखद अभाव हैं | जो आदमी जंगल में रहकर भी अपने मैले को ज़मीन में नहीं गाड़ता वह सजा के लायक हैं |

हमारा काम सत्याग्रही परिवारों को उद्यमशील रखना, पैसा बचाना और अंत में स्वावलम्बी बनना था | यह ध्येय सिद्ध कर लेने के बाद तो हम चाहें जितनी अवधि तक ट्रान्सवाल सरकार से लड़ सकते थे | जूतों पर हमें पैसे खर्च करने पड़ते थे | बंद जूतों से गरम आबहवा में नुकसान होता हैं | सारा पसीना पाँव चूसते हैं और नाजुक बनते हैं | हमारे देश के जैसी ट्रान्सवाल की आबहवा में मोजों की ज़रुरत तो हो हीं नहीं सकती | लेकिन काँटों, पत्थरों वगैरा से पैरों को बचाने के लिए किसी रक्षण की आवश्यकता को हमने स्वीकार किया था | इसलिए हमने चप्पल या सैंडल बनाने का धन्धा सीखने का निश्चय किया | दक्षिण अफ्रीका में पाइन टाउन के पास मेरियनहिल में ट्रेपिस्त नामक रोमन कैथलिक पादरियों का एक मठ हैं | वहाँ ऐसे उद्योग चलते हैं | वे जर्मन हैं | श्री कैलनबैक वहाँ जाकार चप्पल बनाने की कला सीख आये | फिर उन्होंने वह कला मुझे सिखाई और मैंने दूसरे साथियों को सिखाई | इस तरह अनेक नौजवान चप्पल बनाना सीख गये और हम अपने मित्रों को आश्रम में बने हुए चप्पल बेचने भी लगे | यह कहना तो मेरे लिए ज़रूरी नहीं होना चाहिए कि मेरे अनेक शिष्य इस कला में मुझसे आसानी से आगे बढ़ गये | दूसरा उद्योग हमने सुतारी का शुरू किया | एक गाँव जैसा बसाकर हम वहाँ रहे, इसलिए पाट

से लेकर पेटी तक की सारी छोटी-मोटी चीजों की हमें ज़रुरत पड़ती थीं; और ये सब चीजें हम अपने हाथ से ही बनाते थे | उपर्युक्त परोपकारी मिस्त्रियों ने तो इस काम में कुछ माह तक हमारी मदद की हीं थीं | श्री कैलनबैक इस विभाग के मुखिया थे | उनकी सुघड़ता और सावधानी का अनुभव हमें प्रत्येक क्षण होता था |

युवकों, बालकों और बालिकाओं के लिए एक शाला का होना अनिवार्य था | यह काम हमें सबसे कठिन लगा और इसमें पूर्णता तो हम अंत तक भी प्राप्त नहीं कर सके | पढ़ाने का खास बोझ श्री कैलनबैक और मुझ पर था | शाला दोपहर को हीं चलाई जा सकती थीं | हम दोनों सवेरे की शारीरिक श्रम से खूब थक जाते थे | विद्यार्थी भी सब थके हुए हीं रहते थे | इसलिए अकसर विद्यार्थी भी ऊंघने लगते थे और हम शिक्षक भी ऊंघने लगते थे | हम अपनी आँखों पर पानी छिड़कते थे, बालकों के साथ खेल खेलते थे और उनका तथा अपना आलस्य दूर करने का प्रयत्न करते थे | परंतु कभी-कभी हमारा प्रयत्न व्यर्थ जाता था | जितना आराम शरीर के लिए ज़रूरी होता था उतना तो वह लेकर ही रहता था | यह तो मैंने एक और छोटे से छोटे विघ्न की बात कहीं, क्योंकि ऊंघते-ऊंघते भी हमारे वर्ग तो चलते हीं थे | परन्तु समस्या यह थी कि तामिल, तेलगू और गुजराती तीन भाषाएं बोलने वाले विद्यार्थियों को क्या और कैसे सिखाया जाए ? मातृभाषा द्वारा बालकों को पढ़ाने का लोभ तो मेरे मन में था हीं | तामिल मैं थोड़ी-बहुत जानता था, परन्तु तेलगू का तो एक अक्षर भी नहीं जानता था | ऐसी स्थिति में एक शिक्षक भला क्या कर सकता था ? आश्रम में जो नौजवान थे उनमें से कुछ का उपयोग हमने शिक्षक के रूप में किया | लेकिन यह प्रयोग सफल हुआ, ऐसा नहीं कहा जा सकता | भाई प्रागजी का उपयोग तो इस कार्य में किया हीं जाता था | युवकों में कुछ बड़े उत्पाती और बहुत आलसी थे; अपनी पुस्तकों के साथ तो वे सदा युद्ध हीं करते थे | ऐसे विद्यार्थी शिक्षक की परवाह क्यों करने लगे ? इसके सिवा, हम दोनों पढ़ाई के काम में नियमित नहीं रह पाते थे | ज़रुरत होने पर मुझे या कैलनबैक को जोहानिसबर्ग जाना ही पड़ता था |

दूसरी कठिनाई धार्मिक शिक्षा की थी | मुसलमानों को कुरान सिखाने का लोभ तो मेरे मन में बना हीं रहता था | पारसियों को अवेस्ता सिखाने की इच्छा होती थीं | एक खोजा मुसलमान का बालक भी था | उसे खोजा पंथ की एक छोटी-सी पुस्तक पढ़ाने की जिम्मेदारी उसके पिता ने मुझ पर डाली थीं | मैंने इस्लाम और पारसी धर्म की पुस्तकें इकट्ठी कीं | हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्त अपनी समझ के अनुसार मैंने लिख डाले – यह मैं अब भूल गया हूँ कि यह काम केवल अपने बालकों के लिए मैंने किया था या आश्रमवासियों के लिए किया था | मेरे पास यदि वह चीज आज होती, तो मैं अपनी प्रगति या गति का माप निकालने के लिए उसे यहाँ छाप देता | परन्तु ऐसी अनेकों चीजें मैंने अपनी जिन्दगी में फेंक दी हैं या जला डाली हैं | ज्यों-ज्यों ऐसी चीजों का संग्रह करने की आवश्यकता मुझे कम मालूम होती गई और ज्यों-ज्यों मेरा कार्यक्षेत्र बढ़ता गया, त्यों-त्यों ऐसी चीजों का मैं नाश करता गया | इसके लिए मुझे कोई पछतावा नहीं होता | ऐसी चीजों का संग्रह मेरे लिए भाररूप और खर्चीला सिद्ध होता | उनकी रक्षा के साधन मुझे जुटाने पड़ते | यह मेरी अपरिग्रही आत्मा के लिए असह्य हो जाता |

परन्तु आश्रम में किया हुआ शिक्षा का यह प्रयोग व्यर्थ नहीं गया | इसके फलस्वरूप बालकों में कभी असहिष्णुता की भावना पैदा नहीं हुई | वे एक-दूसरे धर्म के प्रति और एक-दूसरे के रीति-रिवाजों के प्रति उदारता रखना सीखे | सब कोई सगे भाइयों की तरह रहना सीखे | एक-दूसरे की सेवा करना सीखे | सभ्यता सीखे | उद्यमी बने | और आज भी उन बालकों में से जिन जिनके कार्यों की थोड़ी भी जानकारी मुझे हैं, उनके बारेमें मैं यह कह सकता हूँ कि टॉल्स्टॉय फार्म में उन्होंने जो कुछ पाया यह बेकार नहीं गया | भले ही वह प्रयोग अधूरा था, फिर भी वह एक विचारपूर्ण और धार्मिक प्रयोग था | और टॉल्स्टॉय फार्म के जो अत्यन्त मीठे संस्मरण हैं, उनमें शिक्षण के प्रयोग के संस्मरण कम मीठे नहीं हैं |

परन्तु इन संस्मरणों के लिए एक नया प्रकरण लिखा जाना चाहिए |

११. टॉल्स्टॉय फार्म – ३

इस प्रकरण में मैं टॉल्स्टॉय फार्म के अनेक संस्मरण देना चाहता हूँ | अत: वे एक-दूसरे से असम्बद्ध मालूम होंगे | इसके लिए पाठक मुझे क्षमा करें |

शिक्षा देने के लिए विद्यार्थियों का जो वर्ग मुझे मिला था वैसा वर्ग शायद ही किसी शिक्षक के नसीब में आया होगा | करीब ७ वर्ष के बालक-बालिकाओं से लेकर २० वर्ष के युवक और १२-१३ वर्ष की बालिकायें उस वर्ग में थीं | कुछ लड़के तो ऐसे थे, जो जंगली माने जा सकते थे | वे अतिशय उत्पाती और दुष्ट थे |

ऐसे विद्यार्थियों के इस संघ को मैं क्या पढाऊँ और क्या सिखाऊँ ? सबके स्वभावों के अनुकूल मैं कैसे बनूँ ? और सबके साथ मैं किस भाषा में बातें करूँ ? ये प्रश्न मेरे सामने थे | तामिल और तेलगू लड़के या तो अपनी मातृभाषा समझते थे या अंग्रेजी समझते थे | थोड़ी डच भाषा भी वे जानते थे | परन्तु मैं उनसे अंग्रेजी में ही बात कर सकता था | मैंने विद्यार्थियों के दो विभाग कर दिये थे : गुजरातियों के साथ गुजराती में बोलना और बाकी के विद्यार्थियों के साथ अंग्रेजी में बोलना | मुख्यत: उन लोगों को कुछ रसप्रद कहानियाँ कहने की या पुस्तकों से पढ़ कर सुनाने की व्यवस्था मैंने की थी | अपने सामने मैंने इतना हीं उद्देश्य रखा था कि उन सबको एकसाथ बैठना सिखाया जाए और उनमें मित्रभाव तथा सेवाभाव का विकास किया जाए | इतिहास और भूगोल का थोड़ा सामान्य ज्ञान मैं उन्हें देता था और थोड़ा लिखना सिखाता था | कुछ को अंकगणित सिखाता था | इस तरह मैं अपनी गाड़ी चला लेता था | प्रार्थना के लिए कुछ भजन भी सिखाये जाते थे | उन्हें सीखने के लिए मैं तामिल बालकों को भी ललचाता था |

बालक और बालिकायें पूरी स्वतंत्रता से साथ-साथ उठते-बैठते थे | टॉल्स्टॉय फार्म में मेरा सहशिक्षा का यह प्रयोग अधिक से अधिक निर्भय था | जो स्वतंत्रता मैं दोनों को वहाँ दे सका और सिखा सका था, वह स्वतंत्रता बालक-बालिकाओं को देने अथवा सिखाने की हिम्मत आज मेरी नहीं हो सकती | मुझे सदा यह लगता रहा हैं कि उस समय मेरा मन आज से आर्थिक निर्दोष था | इसका कारण शायद मेरा अज्ञान हो सकता हैं | लेकिन उसके बाद मुझे बहुत कड़वे अनुभव हुए हैं, कभी-कभी मैंने इस प्रयोग से भारी नुकसान भी उठाया हैं | जिन विद्यार्थियों को मैं सर्वथा निर्दोष समझता था, वे दोषी सिद्ध हुए हैं | अपने भीतर भी मैंने गहराई में विकारों का दर्शन किया हैं | इसलिए मेरा मन इस विषय में कायर बन गया हैं |

मुझे अपने इस प्रयोग के लिए कोई पश्चात्ताप नहीं हैं | मेरी आत्मा इस बात की भी गवाही देती हैं कि इस प्रयोग के कारण कोई भी नुकसान नहीं हुआ | लेकिन जिस तरह दूध का जला छाछ को फूँककर पीता हैं, वही मेरे विषय में कहा जा सकता हैं |

मनुष्य श्रद्धा अथवा साहस दूसरे से चुरा नहीं सकता | 'संशयात्मा विनश्यति |' टॉल्स्टॉय फार्म में मेरी श्रद्धा और साहस पराकाष्टा को पहुँच गये थे | वहीं श्रद्धा और साहस पुन: प्रदान करने के लिए मैं ईश्वर से प्रार्थना कर रहा हूँ | परन्तु वह मेरी प्रार्थना सुने तब न ? उसके सामने तो मेरे जैसे असंख्य भिखारी खड़े हैं | सान्त्वना केवल इतनी ही हैं कि जैसे उसके पास असंख्य भिखारी पहुँचते हैं, वैसे ही उसके असंख्य कान भी हैं | इसलिए मेरी उस पर पूरी श्रद्धा हैं | मैं यह भी जानता हूँ कि जब मैं योग्य बन जाऊँगा तब वह मेरी प्रार्थना अवश्य हीं सुनेगा|

मेरा प्रयोग इस प्रकार था :

मैं उत्पाती माने जाने वाले लड़कों को और निर्दोष सयानी बालिकाओं को एकसाथ एक ही स्थान पर नहाने को भेजता था | बालकों को मैंने मर्यादा-धर्म अथवा आत्म-संयम के बारेमें अच्छी तरह समझा दिया था | वे सब मेरे सत्याग्रह से परिचित थे | उनके प्रति मेरा स्नेह मां के जैसा था | इसे मैं स्वयं तो जानता हीं था, लेकिन वे बालक भी ऐसा मानते थे | पाठक उस पानी के झरने की बात याद रखें | वह रसोई-घर से दूर था | वहाँ लड़कों और लड़कियों का संगम होने देना और फिर निर्दोषता की आशा रखना ! परन्तु मेरी आँखें उसी तरह उन बालाओं के पीछे घूमती रहती थीं जिस तरह किसी माँ की आँखें अपनी पुत्री के पीछे घूमती रहती हैं | नहाने का समय निश्चित था | सब लड़के और लड़कियाँ साथ में नहाने के लिए जाते थे, इसलिए समुह में जो एक प्रकार की सुरक्षितता होती हैं वह यहाँ भी थीं | कहीं एकांत तो उन्हें मिल ही नहीं सकता था | उसी समय मैं स्वयं भी सामान्यत : झरने पर पहुँच जाता था |

हम सब एक बरामदे में सोते थे | बालक और बालिकायें मेरे आसपास सोती थीं | किन्हीं दो बिस्तरों के बीच मुश्किल से तीन फुट का अंतर रहता था | बिस्तरों के क्रम में ज़रूर सावधानी रखी जाती थीं | परन्तु जिनका मन दूषित हो, उनके लिए सावधानी क्या कर सकती थीं ? आज मैं देखता हूँ कि उन लड़के-लड़कियों के विषय में मेरी लाज भगवान ने ही रखी | मैंने इस विश्वास से यह प्रयोग शुरू किया था कि लड़के और लड़कियाँ बिना किसी नुकसान के निर्दोष भाव से इस तरह साथ साथ रह सकते हैं | और उनके माता-पिता ने मुझ पर अपार विश्वास रखकर मुझे ऐसा प्रयोग करने दिया था |

एक दिन एक नौजवान लड़के ने दो लड़कियों का मजाक उड़ाया और यह खबर या तो वे लड़कियाँ हीं मेरे पास लाई या किसी बालक ने मुझे सुनाई | मैं काप उठा | मैंने इस मामले की चाँच की, बात सच थीं | मैंने उस नौजवान को समझाया, लेकिन इतना काफ़ी नहीं था | मैंने उन दोनों बालाओं के शरीर पर कोई ऐसा चिह्न देखना चाहा, जिससे प्रत्येक युवक यह समझ ले कि इन बालाओं पर कुदृष्टि डाली ही नहीं जा सकती, और बालायें भी यह समझ लें कि उनकी पवित्रता पर कोई आक्रमण करने का साहस कर ही नहीं सकता | विकारी रावण सीता का स्पर्श भी नहीं कर सका था | राम तो उनसे बहुत दूर थे | इन बालाओं को मैं ऐसा कौन-सा चिह्न दे सकता हूँ,

जिससे वे अपने को सुरक्षित समझें और दूसरे उन्हें देखकर निर्विकार रहें ? इस प्रश्न ने मुझे सारी रात सोने नहीं दिया | सुबह मैंने उन दोनों बालाओं को मनाने का प्रयत्न किया | उन्हें चौकाये बिना समझा-बुझाकर मैंने कहा कि वे अपने सुन्दर लंबे बाल काट डालने की मुझे इजाजत दें दें | टॉल्स्टॉय फार्म में हम एक-दूसरे की दाढ़ी बना देते थे और बाल भी काट देते थे | इसलिए कैचियां और बाल काटने की मशीनें हमारे पास थीं | पहले तो दोनों लड़कियों ने मेरी बात नहीं सुनी | बड़ी उमर की, स्त्रियों को मैंने अपनी बात समझा दी थी | वे मेरी बाल काटने के सूचना को बरदाश्त तो नहीं कर सकीं, परन्तु इसके पीछे मेरा जो उद्देश्य था उसे वे समझ सकीं थीं | इस काम में मुझे उनका समर्थन प्राप्त था | लड़कियाँ दोनों भव्य और सुन्दर थीं | दुःख की बात हैं कि उनमें से एक आज नहीं रही ! वह लड़की बड़ी तेजस्विनी थीं | दूसरी लड़की जीवित हैं | वह अपनी गृहस्थी चला रही हैं | अंत में दोनों बाल काटने की मेरी बात को समझ गईं | उसी क्षण जो हाथ यह प्रकारण लिख रहा हैं, उसीने उन बालाओं के बालों पर कैंची चला दी ! इसके बात वर्ग में मैंने अपने इस कार्य का विश्लेषण करके सबको समझाया | इसका परिणाम सुन्दर निकला | दुबारा मैंने लड़कियों के साथ मजाक किये जाने की बात नहीं सुनी | उन दो लड़कियों ने खोया कुछ नहीं; पाया कितना यह भगवान जाने | आशा हैं कि वे युवक आज भी इस घटना को याद करते होंगे और अपनी दृष्टि को शुद्ध रखते होंगे |

ऐसे प्रयोग अनुकरण के लिए नहीं लिखे जाते | जो शिक्षक इनका अनुकरण करेगा उसे भारी खतरा मोल लेना पड़ेगा | इस प्रयोग का उल्लेख मैंने अमुक स्थिति में मनुष्य कहाँ तक जा सकता हैं यह दिखाने के लिए और सत्याग्रह की लड़ाई की विशुद्धता सूचित करने के लिए किया हैं | इस विशुद्धता में ही सत्याग्रह की विजय का बल निहित था | ऐसे प्रयोग करने के लिए शिक्षक को विद्यार्थियों की माता और पिता दोनों बनना चाहिए; और प्राणों की बाजी लगाकर हीं ऐसे प्रयोग किये जा सकते हैं | ऐसे प्रयोगों के पीछे कठोर तपस्या का बल होना चाहिए |

मेरे इस कार्य का प्रभाव फार्मवासियों के संपूर्ण रहन-सहन पर पड़े बिना नहीं रहा | कम से कम खर्च में रहने का ध्येय होने के कारण हमने अपनी पोशाक में भी फेरबदल कर दिया | दक्षिण अफ्रीका के शहरों में हिन्दुस्तानी पुरुषों की पोशाक यूरोपियन ढंग की हीं होती थीं | सत्याग्रहियों की भी वहीं पोशाक थी | लेकिन टॉल्स्टॉय फार्म पर इतने कपड़ों की ज़रुरत नहीं थीं | हम सब मजदूर बन गये थे, इसलिए मजदूरों की पोशाक हीं हमने रखी | परन्तु उसका ढंग यूरोपियन था | अर्थात् मजदूरों के जैसे पतलून और कमीज | इसमें क़ैदियों के कपड़ों का अनुकरण किया गया था | मोटे आसमानी कपड़े के जो सस्ते पतलून और कमीज बाजार में तैयार मिलते थे, उन्हीं का उपयोग हम सब करते थे | स्त्रियों में अधिकतर सिलाई का सुन्दर काम कर सकती थीं | उन्होंने सिलाई का सारा काम अपने जिम्मे लें लिया था |

भोजन में सामान्य नियम भात, दाल, साग और रोटी खाने का और कभी कभी इनके साथ खीर खाने का था | सारा खाना एक हीं बरतन में परोसा जाता था | बरतन में थाली के बदले जेल की जैसी तसली होती थीं और लकड़ी के चम्मच हाथ से बना लिए जाते थे | भोजन दिन में तीन बार दिया जाता था | सुबह ६ बजे डबल-रोटी और गेहूँ की कॉफी, ११ बजे दाल-भात और साग और शाम को ५ | | बजे दलिया और दूध या डबल-रोटी और गेहूँ की कॉफी | रात को ९ बजते ही सबको नियम से सो जाना होता था | शाम के भोजन के बाद ७ या ७ | | बजे प्रार्थना होती थीं | प्रार्थना में भजन गाये जाते थे | कभी-कभी रामायण का पाठ होता था और कभी इस्लाम की पुस्तकों में से कुछ भाग पढ़े जाते थे | भजनों में अंग्रेजी, हिन्दी और गुजराती तीनों भाषाओं के भजन रहते थे | कभी तीनों भाषाओं के भजन गाये जाते थे तो कभी एक हीं भाषा के |

फार्म पर रहने वाले लोगों में से अनेक एकादशी का व्रत पालते थे | श्री पी. के. कोतवाल भी वहाँ आ पहुँचे थे, जिन्हे उपवासों का काफ़ी अनुभव था | उनकी देखादेखी हम में से कुछ लोगों ने चातुर्मास व्रत रखा था | उसी अरसे में मुसलामानों के रोज़े भी पड़ते थे | हमारे बीच मुसलमान नौजवान थे | उन्हें रोजे रखने का प्रोत्साहन देना हमें अपना धर्म मालूम हुआ | उनके लिए हमने सुबह के नाश्ते (सहरी) और रात के भोजन की सुविधा कर दी थीं | उनके लिए रात को खीर वगैरा चीजें भी बनाई जाती थीं | मांसाहार नहीं होता था और किसीने उसकी माँग भी नहीं की | मुसलमान मित्रों का साथ देने के लिए हम भी एक बार शाम को ही भोजन करते थे | हमारा साधारण नियम सूर्यास्त से पहले भोजन कर लेने का था | इसलिए फर्क इतना हीं पड़ता था कि जब दूसरे सूर्यास्त से पहले खाकर तैयार हो जाते थे तब मुसलमान नौजवान खाना शुरू करते थे | मुसलमान नौजवानों ने भी अपने रोज़ों के दिनों में इतने विवेक से काम लिया कि किसी को अधिक तकलीफ न होने दी | लेकिन ग़ैर-मुस्लिम बालकों ने खाने के संयम में अपने मुसलमान दोस्तों का साथ दिया, इसका आश्रम के सब लोगों पर सुन्दर प्रभाव पड़ा | मुझे एक भी प्रसंग ऐसा याद नहीं हैं जब हिन्दू और मुसलमान बालकों के बीच धर्म की वजह से कोई झगड़ा या मतभेद खड़ा हुआ हो | इसके विपरीत, मैं यह जानता हूँ कि सब अपने धर्म का चुस्ती से पालन करते हुए भी आपस में संपूर्ण आदर का व्यवहार करते थे और धार्मिक व्रतों आदि का पालन करने में एक-दूसरे की सहायता करते थे |

शहरी जीवन की सुविधाओं से दूर रहते हुए भी हमने बीमारी में काम आने वाली सामान्य डॉक्टरी सुविधायें और साधन भी आश्रम में नहीं रखे थे | उन दिनों जितनी श्रद्धा मुझे बालकों की निर्दोषता के विषय में थी उतनी ही श्रद्धा बीमारी में केवल कुदरती उपचार करने के विषय में थी | मैं मानता था कि सादा और सरल जीवन बिताने वालों की कोई बीमारी होगी हीं नहीं; और अगर हुई भी तो उसका उपचार मैं कर लूँगा | मेरी स्वास्थ्य-विषयक पुस्तिका मेरे प्रयोगों की और उस समय की मेरी श्रद्धा की नोटबुक है | मुझे यह अभिमान था कि मैं तो बीमार पड़ ही नहीं सकता | मेरा विश्वास था कि केवल पानी, मिट्टी या उपवास के प्रयोगों से और आहार के परिवर्तन में

सब प्रकार की बीमारियों का इलाज किया जा सकता हैं | फार्म में एक भी व्यक्ति की बीमारी के समय मैंने दवा या डॉक्टर का उपयोग नहीं किया था | वहाँ उत्तर भारत का एक ७० वर्ष का बूढ़ा था | उसे दमा और खाँसी का रोग था | ये रोग भी केवल आहार के परिवर्तन और पानी के प्रयोग से मिट गये थे | लेकिन अब मैं ऐसे प्रयोग करने की हिम्मत खो बैठा हूँ और मानता हूँ कि दो बार स्वयं बीमार पड़ने के बाद ऐसे प्रयोग करने का अधिकार भी मैं खो बैठा हूँ |

हमारा टॉल्स्टॉय फार्म चल रहा था उसी बीच स्व. गोखले दक्षिण अफ्रीका आये थे | उनकी यात्रा का वर्णन करने के लिए तो एक अलग प्रकरण चाहिए | लेकिन एक कुछ कड़वा और कुछ मीठा संस्मरण मैं यहीं दे दूँ | फार्म पर हम लोग कैसा जीवन जीते थे, इसकी थोड़ी कल्पना तो पाठकों को अब तक हो गई होगी | फार्म में खाट या पलंग जैसी कोई चीज नहीं थीं | लेकिन गोखलेजी के लिए एक पलंग हम माँग लाये थे | फार्म में ऐसा कोई कमरा नहीं था, जहाँ उन्हें पूर्ण एकांत मिल सके | बैठने के लिए शाला की बेंचों के सिवा दूसरी कोई चीज हमारे पास नहीं थीं | ऐसी परिस्थिति में भी नाजुक शरीर वाले गोखलेजी को फार्म पर लाने का प्रलोभन भला कैसे छोड़ा जाता ? और उनका मन भी टॉल्स्टॉय फार्म देखे बिना कैसे मानता ? मेरे मन में कल्पना यह थी कि गोखलेजी का शरीर एक रात की असुविधायें बरदाश्त कर लेगा और वे स्टेशन से टॉल्स्टॉय फार्म तक – करीब डेढ़ मील पैदल भी चल सकेंगे | मैंने पहले उनसे पूछ लिया था और उन्होंने अपने सरल स्वभाव के कारण बिना सोचे-विचारे मुझ पर भरोसा करके सारी व्यवस्था स्वीकार कर ली थी | भाग्य की बात कि उसी दिन वर्षा भी हो गई | एकाएक व्यवस्था में कोई परिवर्तन करना मेरे बश की बात नहीं थीं | इस प्रकार अपने अज्ञानमय प्रेम के कारण मैंने उस दिन गोखलेजी को जो कष्ट दिया उसे मैं जीवन में कभी भूल नहीं सका | इतने बड़े परिवर्तन को उनका शरीर बरदाश्त न कर सका | उन्हें सरदी लग गई | खाना खाने के लिए उन्हें रसोई-घर में नहीं ले जाया जा सकता था | हमने उन्हें श्री कैलनबैक के कमरे में ठहराया था | वहाँ तक खाना ले जाने में उसका ठंडा हो जाना स्वाभाविक था | मैं उनके लिए विशेष 'सूप' बनाता था; भाई कोतवाल खास आटे की डबल-रोटी उनके लिए तैयार करते थे | लेकिन प्रश्न यह था कि दोनों को गरम-गरम उनके पास कैसे पहुँचाया जाए ? हमने जैसे तैसे सारी व्यवस्था पूरी की | गोखलेजी ने एक शब्द भी मुझसे नहीं कहा | लेकिन उनके चेहरे से मैंने समझ लिया और अपनी मूर्खता का भी मुझे ज्ञान हो गया | जब उन्होंने जाना कि हम सब नीचे फर्श पर सोते हैं तो उन्होंने अपनी चारपाई हटवा कर फर्श पर ही बिस्तर लगवाया | वह रात मैंने पश्चात्ताप में बिताई | गोखलेजी की एक आदत थी, जिसे मैं बुरी आदत कहता था | वे नौकर से ही अपनी सेवा-चाकरी कराते थे | लेकिन इस यात्रा में उनके साथ कोई नौकर नहीं था | श्री कैलनबैक ने और मैंने उनसे बड़ी विनती की | वे हमें अपने पैर दबाने दें | लेकिन वे टस से मस न हुए | हमें पैरों को छूने तक नहीं दिया | उलटे आधे गुस्से में और आधे हँसी में बोले : "आप लोग सब ऐसा ही समझते मालूम होते हैं कि दुःख और असुविधायें भोगने के लिए एकमात्र आप ही पैदा

हुए हैं और मेरे जैसे लोग आपके हाथों सुख-सुविधायें पाने के लिए ही जन्मे हैं | इस अतिरेक की सजा आपको पूरी तरह भोगनी होगी | मैं आपको अपना स्पर्श भी नहीं करने दूँगा | आप सब तो शौच की क्रिया के लिए घर से दूर जाएँगे और मेरे लिए कमरे में कमोड रखेंगे – क्यों ? मैं चाहे जितनी मुसीबत भोग लूँगा, लेकिन आप लोगों का घमंड तो उतार ही दूँगा |" ये वचन हमें वज्र के समान लगे | कैलनबैक और मैं दोनों खिन हो गये | सान्त्वना इतनी ही थी कि ये वचन बोलते समय उनके मुख पर मुसकान फैली रही | अर्जुन ने कृष्ण को अनजाने कितनी ही दुःख दिया होगा, परन्तु कृष्ण ने क्या उसे याद रखा होगा ? गोखले ने हमारी सेवा-भावना को ही याद रखा, यद्यपि अपनी सेवा उन्होंने हमें जरा भी नहीं करने दी | मोम्बासा से उन्होंने जो प्रेमल पत्र मुझे लिखा था, वह मेरे हृदय पर अंकित हो गया हैं | उन्होंने हमारे फार्म पर आकर खूब दुःख उठाया, परन्तु जो सेवा हम उनकी कर सकते थे वह अंत तक उन्होंने हमें करने हीं नहीं दी | खाने-पीने की चीजें तो हमारे हाथ की बनी वे न खाते तो जाते कहाँ ?

दूसरे दिन सुबह न तो गोखले ने स्वयं आराम लिया, न हम लोगों को लेने दिया | उन्होंने अपने वे सब भाषण सुधारे, जिन्हें पुस्तक के रूप में हम प्रकाशित करने वाले थे | जब उन्हें कुछ लिखना होता तब इधर उधर घूमकर उस पर सोच लेने की, उनकी आदत भी | एक छोटासा पत्र उन्हें लिखना था | मैंने सोचा कि यह पत्र तो वे तुरन्त लिख डालेंगे | लेकिन ऐसा नहीं हुआ | जब मैंने इस बात की टीका की, तो मुझे उनका भाषण सुनने को मिला : "मेरी जीवन-पद्धति को तुम क्या जानो ? मैं छोटी से छोटी बात भी जल्दी में नहीं करता | उस पर मैं सोचता हूँ, उसका मध्यबिन्दु निर्धारित करता हूँ, विषय से सम्बन्ध रखने वाली भाषा का भी विचार करता हूँ और उसके बाद ही लिखता हूँ | यदि सब लोग ऐसा ही करें, तो कितना समय बचे ? और जनता भी आज जो अधूरे और अधप के विचार उसे मिल रहे हैं, उनके आक्रमण से बच जाए |"

जिस प्रकार गोखले की मुलाकात के वर्णन के बिना टॉल्स्टॉय फार्म के संस्मरण अधूरे माने जाएँगे, उसी प्रकार कैलनबैक की रहन-सहन का वर्णन किये बिना भी ये संस्मरण अधूरे ही कहे जाएँगे | इस शुद्ध और निर्मल पुरुष का परिचय मैं पहले करा चुका हूँ | कैलनबैक टॉल्स्टॉय फार्म पर हमारे लोगों के समाज में उनके जैसे ही बनकर रहे, यह अपने आप में एक आश्चर्यजनक बात थी | गोखले साधारण वस्तुओं से आकर्षित हो ऐसे पुरुष नहीं थे | परन्तु कैलनबैक के जीवन में जो महान परिवर्तन हुआ था उससे वे भी अत्यन्त आकर्षित हुए थे | कैलनबैक ने किसी दिन सरदी-गरमी बरदाश्त हीं नहीं की थीं; कभी जीवन में किसी प्रकार की असुविधा भी नहीं भोगी थीं | सच पूछा जाए तो स्वच्छन्दता को हीं उन्होंने अपने जीवन का एकमात्र धर्म बना लिया था | दुनिया का वैभव और विलास भोगने में उन्होंने कोई बात बाकी न रखी थीं | धन जो कुछ प्राप्त कर सकता था उसे अपने सुख के लिए प्राप्त करने में वे कभी पीछे न रहे |

ऐसे पुरुष का टॉल्स्टॉय फार्म में रहना और सोना-बैठना, खाना-पीना तथा फार्मवासियों के जीवन में पूरी तरह ओतप्रोत हो जाना – यह कोई साधारण बात नहीं थीं | हमारे लोगों को इस बात से आनंद के साथ आश्चर्य हुआ था; और कुछ गोरों ने श्री कैलनबैक को 'मूर्ख' या पागल मान लिया था | अन्य कुछ गोरों का उनकी त्याग करने की शक्ति को देखकर उनके प्रति आदर-भाव बढ़ा था | कैलनबैक ने अपने त्याग को कभी दुःखरूप नहीं माना | जितना आनंद उन्होंने अपने वैभव से प्राप्त किया था, उससे अधिक आनंद उन्होंने अपने त्याग से प्राप्त किया था | सादगी के सुख का वर्णन करते-करते वे उसमें लीन हो जाते थे और एक क्षण के लिए तो सुनने वाले को भी वह सुख भोगने की इच्छा हो आती थीं | छोटे-बड़े सबके साथ वे इतने प्रेम से घुलमिल जाते थे कि उनका थोड़ासा वियोग भी लोगों को खले बिना नहीं रहता था | कैलनबैक को फल के झाड़ों का इतना शौक था कि फार्म के माली का काम उन्होंने अपने ही हाथ में ले लिया था | रोज सुबह वे फार्म के बालक-बालिकाओं और बड़ों से फल-झाड़ों की देखभाल का काम कराते थे | लोगों से वे पूरी मेहनत कराते थे; फिर भी वे इतने हँसमुख थे और उनका स्वभाव इतना आनंदी था कि सबको उनके साथ काम करना अच्छा लगता था | जब कभी रात में दो बजे उठकर कोई मंडली टॉल्स्टॉय फार्म से जोहानिसबर्ग की यात्रा के लिए निकलती तब कैलनबैक उसमें ज़रूर होते थे |

उनके साथ मेरी धार्मिक चर्चायें हमेशा होती रहती थीं | मेरे पास बात करने के लिए अहिंसा, सत्य आदि यमों और व्रतों के सिवा दूसरा विषय तो क्या होता ? जब मैंने कहा कि सर्प आदि प्राणियों को मारने में पाप है तब पहले तो मेरे अन्य अनेक गोरे मित्रों की तरह श्री कैलनबैक को भी आघात लगा था | परन्तु अंत में तात्विक दृष्टि से मेरा यह सिद्धान्त उन्होंने मान लिया था | हम दोनों के सम्बन्ध के आरंभ में ही उन्होंने यह बात स्वीकार कर ली थी कि जिस वस्तु को हमारी बुद्धि मान ले, उसे आचरण में लाना उचित हैं और हमारा धर्म है | और इसीलिए वे अपने जीवन में किसी भी हिचकिचाहत के बिना एक क्षण में बड़े महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर सके थे | अब कैलनबैक ने सोचा कि सर्पादि प्राणियों को यदि मारना पाप हो, तो हमें उनसे मित्रता करनी और बढ़ानी चाहिए | सबसे पहले उन्होंने विभिन्न जातियों के सर्पो की पहचान करने के लिए सर्पो से सम्बन्धित पुस्तकें एकत्र की | उनमें उन्होंने देखा कि सभी सर्प जहरीले नहीं होते; और कुछ सर्प तो खेतों की फसलों की रक्षा करने वाले होते हैं | हम सबको उन्होंने साँपों की पहचान करना सिखाया और अंत में एक जबरदस्त अजगर को पाला, जो फार्म में ही उन्हें मिल गया था | उसे कैलनबैक हमेशा अपने हाथ से खिलाते थे | मैंने नरमी से कैलनबैक के साथ दलील की : "यह सब करने में तुम्हारी भावना तो शुद्ध मित्रता की हैं, लेकिन अजगर उसे समझ नहीं सकता | कारण यह हैं कि तुम्हारी इस प्रीति के साथ भय मिला हुआ हैं | अजगर को मुक्त रखकर उसके साथ लाड़-प्यार करने की तुम्हारी या मेरी किसी की हिम्मत नहीं हैं | और जिस चीज का हम अपने भीतर विकास करना चाहते हैं, वह इसी प्रकार की हिम्मत हैं | इसलिए इस साँप को पालने में मैं सद्भाव तो देखता हूँ, परन्तु इसमें अहिंसा

नहीं हैं | हमारा कार्य और व्यवहार तो ऐसा होना चाहिए, जिसे यह अजगर पहचान सके | प्राणीमात्र भय और प्रीति को समझ सकते हैं, यह हमारा सदा का अनुभव हैं | इसके सिवा, तुम इस अजगर को जहरीला तो मानते हीं नहीं | इसके तौर-तरीकों का और इसकी आदतों वगैरा का अध्ययन करने के लिए तुमने इसे क़ैद कर रखा हैं | यह एक तरह की मनमानी या स्वच्छन्दता हैं | मित्रता में इसके लिए भी कोई स्थान नहीं हो सकता |"

श्री कैलनबैक मेरी इस दलील को तो समझ गये | लेकिन उस अजगर को तुरन्त ही छोड़ देने की उनकी इच्छा नहीं हुई | मैंने किसी तरह का दबाव तो उन पर डाला हीं नहीं था | अजगर के व्यवहार में मैं भी रस ले रहा था और बालकों के आनंद का तो कोई पार ही नहीं था | उसे सताने या परेशान करने की हरएक की मनाही थीं | लेकिन वह क़ैदी स्वयं हीं अपनी मुक्ति का मार्ग खोज रहा था | या तो पिंजरे का दरवाजा भूल से खुला रह गया होगा या किसी तदबीर से अजगर ने स्वयं हीं उसे खोल लिया होगा – दो चार दिन के अंदर ही एक सवेरे जब कैलनबैक अपने क़ैदी मित्र से मिलने गये, तो उन्होंने देखा कि पिंजरा खाली पड़ा हैं | वे खुश हुए और मैं भी खुश हुआ | लेकिन इस प्रयोग से सांप हमारी बातचीत का एक सदा का विषय बन गया |

कैलनबैक ऑल्ब्रेस्ट नामक एक गरीब जर्मन को फार्म पर लाये थे | वह गरीब था और अपंग भी था | उसकी कूबड़ इतनी झुक गई थी कि वह लकड़ी के सहारे के बिना चल ही नहीं सकता था | उसकी हिम्मत का कोई पार न था | शिक्षित होने के कारण वह जीवन के सूक्ष्म प्रश्नों में बड़ी दिलचस्पी लेता था | टॉल्स्टॉय फार्म पर वह भी हिन्दुस्तानियों के जैसा ही बनकर सबके साथ घुलमिल कर रहता था | वह निर्भयता से साँपों के साथ खेलने लगा था | छोटे-छोटे साँपों को वह अपने हाथ में उठाकर ले आता था और हथेली पर खेलाता भी था | अगर फार्म लम्बे समय तक चला होता, तो ईश्वर जाने उस जर्मन के इन प्रयोगों का क्या परिणाम आता |

इन प्रयोगों के फलस्वरूप साँप के बारेमें हमारा डर कम तो हुआ था, लेकिन कोई ऐसा न मान लें कि फार्म पर रहने वालों में से किसी को सांप का डर रह ही नहीं गया था अथवा सांप को मारने की सबकी मनाही थीं | अमुक काम में हिंसा या पाप हैं, यह विश्वास रखना एक बात हैं, और उसके अनुसार आचरण करने की शक्ति होना दूसरी बात हैं | जिसके भीतर सर्प का भय हैं और जो स्वयं प्राणत्याग करने के लिए तैयार नहीं हैं, वह संकट खड़ा होने पर साँप को मारे बिना नहीं रहेगा | मुझे याद हैं कि फार्म पर ऐसा एक किस्सा हुआ भी था | पाठक यह तो समझ ही गये होंगे कि फार्म पर साँपों का उपद्रव काफ़ी था | हम लोग जब उस फार्म पर रहने गये तब वहाँ कोई रहते नहीं थे और कुछ समय से वह निर्जन स्थिति में ही था | एक दिन कैलनबैक के कमरे में ही एक साँप ऐसी जगह दिखाई दिया, जहाँ से उसे भगाना या पकड़ना असंभव जैसा लगा | फार्म के एक विद्यार्थी ने उसे देखा था | उसने मुझे बुलाया और पूछा की अब क्या किया जाए | उसने मुझे साँप के मारने की इजाजत माँगी | मेरी इजाजत के बिना वह सांप को मार सकता था, परन्तु सामान्यत: विद्यार्थी या अन्य लोग भी मुझसे पूछे बिना

ऐसा कदम नहीं उठाते थे | साँप को मारने की इजाजत देना मुझे अपना धर्म मालूम हुआ और मैंने इजाजत दी | यह लिखते समय भी मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैंने मारने की इजाजत देकर कोई बुरा काम किया था | साँप को हाथ से पकड़ने की या फार्मवासियों को अन्य किसी तरह साँप की ओर से निर्भय बनाने की शक्ति मुझ में नहीं थीं और आज भी मैं अपने भीतर उस शक्ति का विकास नहीं कर पाया हूँ |

इतना तो पाठक आसानी से समझ सकेंगे कि टॉल्स्टॉय फार्म में सत्याग्रहियों का ज्वार और भाटा आया ही करता था | कोई न कोई सत्याग्रही जेल जाने वाले या जेल से रिहा होकर लौटे हुए फार्म पर रहते ही थे | उनमें दो सत्याग्रही ऐसे भी आ पहुँचे थे, जिन्हें मजिस्ट्रेट ने जाती मुचल के पर छोड़ा था और जिन्हें दूसरे दिन सजा सुनने के लिए कोर्ट में हाजिर रहना था | वे लोग बातें करने में मशगुल थे | इतने में आखिरी ट्रेन जिसे उन्हें पकड़ना था, का समय पूरा होने को आ गया और यह प्रश्न खड़ा हो गया कि वे ट्रेन पकड़ सकेंगे या नहीं | दोनों ही सत्याग्रही नौजवान थे और कसरत की कला में कुशल थे | वे दोनों और उन्हें बिदा देने वाले हम कुछ लोग स्टेशन की ओर दौड़े | रास्ते में ही ट्रेन के आने की सीटी मैंने सुनी; और ट्रेन रवाना होने की सीटी हुई तब तक हम स्टेशन के अहाते में पहुँच गये | वे दोनों मित्र तो अपनी गति बढ़ाते ही चले गये | मैं पिछड़ गया | ट्रेन रवाना हुई | लेकिन उन नौजवानों को दौड़ते देखकर स्टेशन-मास्टर ने ट्रेन को रोक दिया और दोनों को बैठा दिया | मैंने स्टेशन पर पहुँच कर स्टेशन-मास्टर को धन्यवाद दिया | इस घटना का वर्णन करते हुए मैंने दो बातों पर प्रकाश डाला हैं | पहली, सत्याग्रहियों की जेल जाने और अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने की उत्कंठा; और दूसरी, स्थानीय अधिकारियों के साथ सत्याग्रहियों द्वारा बढ़ाये हुए मीठे सम्बन्ध | दोनों नौजवान यदि वह ट्रेन न पकड़ पाते, तो दूसरे दिन कोर्ट में हाजिर नहीं रह सकते थे | न तो दूसरे लोग उनके जामिन थे और न कोर्ट ने उनसे पैसे के रूप में ही जमानत ली थी | केवल उनकी भलमनसाहत पर हीं उन्हें छोड़ा गया था | सत्याग्रहियों की साख ऐसी जम गई थीं कि वे जेल जाने के लिए सदा आतुर रहते हैं | इसलिए कोर्ट के अधिकारी उनसे जमानत लेना ज़रूरी नहीं मानते थे | इस कारण से ट्रेन चूक जाने के भय से नौजवान सत्याग्रहियों को बड़ा दुःख हुआ था और इसीलिए वे वायु की गति से दौड़े थे | यह कहा जा सकता हैं कि सत्याग्रह के आरंभ में अधिकारियों की ओर से सत्याग्रहियों को थोड़ा परेशान किया जाता था | और यह भी कहा जा सकता हैं कि कहीं-कहीं जेल के अधिकारी भी अत्यन्त कठोर थे | परन्तु ज्यों-ज्यों लड़ाई आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों हमने देखा कि सब मिलाकर अधिकारी लोग कम कड़वे होते गये और कुछ तो मीठे भी बन गये | और जहाँ उनके साथ सत्याग्रहियों का लम्बे समय तक संपर्क बना रहता था वहाँ के अधिकारी उपर्युक्त स्टेशन-मास्टर की तरह सत्याग्रहियों की मदद भी करने लगे थे | कोई पाठक ऐसा ने माने कि सत्याग्रही अधिकारियों को किसी तरह की रिश्वत देकर उनसे सुविधायें प्राप्त करते थे | ऐसी अनुचित सुविधायें खरीदने की बात सत्याग्रहियों ने कभी सोची ही नहीं थीं | लेकिन सज्जनता से दी जाने वाली सुविधा में भोगने का उत्साह किसे न होगा ? और ऐसी सुविधायें सत्याग्रही अनेक

स्थानों पर प्राप्त कर सके थे | स्टेशन-मास्टर यदि प्रतिकूल हो तो नियमों की मर्यादा में रहते हुए भी सत्याग्रहियों को खूब परेशान कर सकता हैं | ऐसी परेशानियों के खिलाफ शिकायत भी नहीं हो सकती | और यदि स्टेशन-मास्टर उनके अनुकूल हो जाए, तो नियमों के भीतर रहते हुए भी अनेक सुविधायें दे सकता हैं | ऐसी सारी सुविधायें हम टॉल्स्टॉय फार्म के नजदीक के लॉले स्टेशन के स्टेशन-मास्टर से प्राप्त कर सके थे | और इसका कारण था सत्याग्रहियों की शिष्टता, उनका धैर्य और दुःख सहने की उनकी शक्ति |

एक अप्रस्तुत प्रसंग का उल्लेख यहीं कर देना अनुचित नहीं होगा | मुझे लगभग ३५ वर्ष से धार्मिक, आर्थिक और आरोग्य की दृष्टि से आहार में सुधार करने का और उसके प्रयोग करने का शौक रहा हैं | यह शौक आज भी कम नहीं हुआ है | इन प्रयोगों का प्रभाव मेरे आसपास के लोगों पर पड़ना स्वाभाविक हीं था | आहार के इन प्रयोगों के साथ दवाओं की मदद के बिना कुदरती – उदाहरण के लिए, पानी के और मिट्टी के – उपचारों से रोगियों के रोग मिटाने के प्रयोग भी मैं करता रहा हूँ | जिन दिनों मैं दक्षिण अफ्रीका में वकालत करता था उन दिनों मुवक्किलों के साथ मेरा पारिवारिक सम्बन्ध हो जाता था | इसलिए वे अपने सुख-दुःख में मुझे अपना साझेदार बनाते थे | कुछ मुवक्किल आरोग्य-विषयक मेरे प्रयोगों से परिचित होने के कारण उस विषय में भी मेरी मदद लेते थे | कभी-कभी ऐसी मदद लेनेवाले लोग टॉल्स्टॉय फार्म पर भी आ धमकते थे | इनमें से एक था लुटावन नाम का एक बूढ़ा मुवक्किल, जो पहले उत्तर हिन्दुस्तान से गिरमिटिया मजदूर बनकर दक्षिण अफ्रीका आया था | उसकी उमर ७० से ऊपर रही होगी | उसे बरसों से दमा और खाँसी का रोग था | वैद्यों की पुड़ियों का और डॉक्टरों की बोतलों का वह काफ़ी अनुभव ले चुका था | उस समय अपने कुदरती उपचारों पर मेरा अपार विश्वास था | इसलिए मैंने स्वीकार किया कि अगर वह मेरी सारी शर्तों का पालन करके फार्म पर रहने को तैयार हो, तो मैं उस पर अपने प्रयोग आजमाऊँगा | यह तो कैसे कहा जाए कि मैंने उसकी दवा करना स्वीकार किया ! उस बूढ़े ने मेरी सारी शर्तें कबूल कीं | लुटावन को तम्बाकू का बड़ा व्यसन था | लेकिन अनेक शर्तों में तम्बाकू छोड़ने की भी एक शर्त थीं | लुटावन को मैंने एक दिन का उपवास कराया | रोज १२ बजे धूप में क्यूने का कटिस्नान कराना शुरू किया | उस समय मौसम धूप में बैठने लायक था | खुराक में उसे थोड़ा भात, थोड़ा जैतून का तेल, शहद और शहद के साथ कभी-कभी खीर और मीठाई नारंगी अथवा अंगूर और भुने हुए गेहूँ की कॉफी दी जाती थीं | नमक और हर तरह के मसाले मैंने बिलकुल बन्द कर दिये थे | जिस मकान में मैं सोता था उसी मकान में अंदर के हिस्से में लुटावन का बिस्तर रहता था | बिस्तर के लिए हर आदमी को दो कम्बल दिये जाते थे : एक बिछाने के लिए और दूसरा ओढ़ने के लिए; और लकड़ी का तकिया होता था | एक हफ्ते का समय बीता | लुटावन के शरीर में तेज आया | दमा कम हुआ | खाँसी भी कम हुई | लेकिन दिन के बजाय रात में दमा और खाँसी उसे अधिक कष्ट देते थे | मुझे संदेह हुआ कि वह छिपे-छिपे तम्बाकू पीता होगा | मैंने उससे पूछा | लुटावन ने कहा : "मैं नहीं पीता |" एक दो दिन और गये | फिर भी जब फर्क न पड़ा तो मैंने

गुप्त रूप में उसकी परीक्षा करने का निश्चय किया | सभी लोग ज़मीन पर सोते थे और साँप वगैरा का डर तो था ही | इसलिए श्री कैलनबैक ने मुझे बिजली की एक चोरबत्ती (टोर्च) दी थी | वे खुद भी चोरबत्ती रखते थे | यह बत्ती अपने पास रखकर मैं सोता था | एक रात बिस्तर पर पड़े पड़े जागने का मैंने निश्चय किया | दरवाजे के बाहर बरामदे में मेरा बिस्तर रहता था | और दरवाजे के भीतर उसके पास ही लुटावन का बिस्तर रहता था | लुटावन को आधी रात में खाँसी आई | उसने दियासलाई जलाकर बीड़ी पीनी शुरू किया | इसलिए मैं धीरे से उसके बिस्तर के पास गया और मैंने चोरबत्ती का एक बटन दबाया | लुटावन घबराया | वह स्थिति को समझ गया | बीड़ी बुझाकर वह बैठ गया और उसने मेरे पाँव पकड़ लिए |" मैंने बड़ा गुनाह किया | अब मैं कभी तम्बाकू नहीं पिऊँगा | आपको मैंने धोखा दिया | मुझे आप माफ करें |" ऐसा कहते-कहते लुटावन का गला भर आया | मैंने उसे सान्त्वना दी और कहा कि बीड़ी न पीने में ही तुम्हारा भला हैं | मेरे हिसाब से तो तुम्हारी खाँसी मिट जानी चाहिए थीं | लेकिन जब नहीं मिटी तो मुझे शंका हुई कि तुम छिपे-छिपे बीड़ी पीते होगे | लुटावन की बीड़ी छूट गई | बीड़ी छूटने के साथ उसका दमा और खाँसी घटी और एक महीने के भीतर दोनों ही रोग दूर हो गये | लुटावन खूब तेजस्वी और ताकतवर बन गया और हमसे बिदा हुआ |

स्टेशन-मास्टर के पुत्र को – जो लगभग दो वर्ष का रहा होगा – टाइफॉयड हो गया था | वे भी मेरे कुदरती उपचारों के बारेमें जानते थे | इसलिए उन्होंने मेरी सलाह माँगी | उस बालक को पहले दिन तो मैंने कुछ भी खाने को नहीं दिया | दूसरे दिन से आधा केला – खूब मसला हुआ, उसमें एक चम्मच जैतून का तेल और मीठी नारंगी के रस की थोड़ी बूंदें देने लगा | दूसरी सारी खुराक उसकी मैंने बंद कर दी | रात में उसके पेट पर मिट्टी की पट्टी रखता था | उसका रोग भी दूर हो गया | हो सकता हैं कि उस बालक के बारेमें डॉक्टरों का निदान गलत हो और उसे टाइफॉयड न रहा हो |

ऐसे तो कितने ही प्रयोग मैंने टॉल्स्टॉय फार्म में किये | लेकिन किसी भी प्रयोग में असफलता मिली हो, ऐसा मुझे याद नहीं है | लेकिन आज वे ही उपचार करने की मेरी हिम्मत नहीं होगी | टाइफॉयड के रोगी को केला और जैतून का तेल देने में तो आज मैं काँप उठूँगा | १९१८ में हिन्दुस्तान में मुझे जो सख्त पेचिश हुई थी, उसका ही उपचार मैं नहीं कर सका था | और आज तक मैं यह समझ नहीं पाया हूँ कि जो उपचार दक्षिण अफ्रीका में सफल होते थे वे हीं उपचार हिन्दुस्तान में उस हद तक सफल नहीं होते, इसका कारण मुझमें आत्म-विश्वास की कमी होगी या यहाँ के वातावरण के साथ उन उपचारों का पूरा मेल नहीं बैठता होगा | इतना ही मैं जानता हूँ कि इस प्रकार के घरेलू उपचारों से और टॉल्स्टॉय फार्म पर अपनाई गई सादगी से कौम के अधिक नहीं तो दो-तीन लाख रूपये अवश्य बच गये, फार्मनिवासियों में पारिवारिक भावना उत्पन्न हुई, सत्याग्रहियों को शुद्ध आश्रयस्थान मिला, बेईमानी और दंभ के लिए कोई गुंजाइश न रही तथा खरे और खोटे अलग-अलग हो गये |

ऊपर के किस्सों में आहार के जिन प्रयोगों का उल्लेख हुआ हैं, वे आरोग्य की दृष्टि से हुए थे | परन्तु टॉल्स्टॉय फार्म पर ही मैंने अपने ऊपर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयोग किया था | वह शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से किया गया था |

शाकाहारियों के नाते हमें दूध लेने का अधिकार हैं या नहीं, इस प्रश्न पर मैंने बहुत सोचा था और उसके बारेमें खूब पढ़ा भी था | लेकिन फार्म में रहते रहते मेरे हाथ में कोई पुस्तक या अखबार आया था | उसमें मैंने पढ़ा था कि कलकत्ते में गायों और भैंसों के साथ क्रूर व्यवहार करके दूध की एक एक बूंद उनके थनों से निकाल ली जाती हैं | उसमें मैंने फूँके की निर्दय और भयंकर क्रिया का भी वर्णन पढ़ा था | एक बार मैं श्री कैलनबैक के साथ दूध लेने की आवश्यकता के विषय में चर्चा कर रहा था; उस समय मैंने फूंके की क्रिया की बात भी उनसे कही थी | दूध के त्याग के अन्य अनेक आध्यात्मिक लाभों की चर्चा भी मैंने की थी और यह भी कहा था कि दूध का त्याग किया जा सके तो अच्छा हो | श्री कैलनबैक अत्यन्त साहसी पुरुष थे, इसलिए वे दूध के त्याग का प्रयोग करने के लिए तुरन्त तैयार हो गये | उन्हें मेरी बातें बहुत पसंद आई | उसी दिन हम दोनों ने दूध छोड़ दिया और अंत में हम दोनों केवल सूर ने और ताजे फलों पर रहने लगे | पकाया हुआ भोजन करना भी हमने बन्द कर दिया | इस प्रयोग का अंत क्या हुआ इसका इतिहास देने का यह स्थान नहीं हैं; लेकिन इतना मैं ज़रूर कह दूँ कि केवल फलाहार पर मैं पाँच वर्ष तक रहा, परन्तु न तो मैंने उससे कमजोरी का अनुभव किया और न किसी तरह के रोग का अनुभव किया | इसके सिवा, उस अरसे में काम करने की मुझमें संपूर्ण शक्ति बनी रही – वह भी इस हद तक कि एक दिन में पैदल चलकर मैं ५५ मील की यात्रा कर सका था | ४० मील की पैदल यात्रा तो मेरे लिए मामूली बात थी | मेरा दृढ़ विश्वास हैं कि इस प्रयोग के आध्यात्मिक परिणाम बड़े सुन्दर आये थे | फलाहार के इस प्रयोग का मुझे कुछ हद तक त्याग करना पड़ा, इसका मुझे सदा ही दुःख रहा है | और यदि मैं राजनीतिक कार्यों की व्यस्तता से थोड़ा मुक्त हो सकूँ, तो इस उमर में आज भी मैं शरीर का खतरा मोल लेकर आध्यात्मिक परिणामों की जाँच करने के लिए दुबारा यह प्रयोग करूँ | डॉक्टरों और वैद्यों में पाया जाने वाला आध्यात्मिक दृष्टि का अभाव भी मेरे मार्ग में बाधक सिद्ध हुआ हैं |

अब इन मधुर और महत्त्वपूर्ण संस्मरणों का अन्त होना चाहिए | ऐसे कठिन प्रयोग आत्मशुद्धि की लड़ाई के सम्बन्ध में ही किये जा सकते हैं | सत्याग्रह के अंतिम युद्ध के लिए टॉल्स्टॉय फार्म आध्यात्मिक शुद्धि का और तपश्चर्या का स्थान सिद्ध हुआ | यदि ऐसा स्थान प्राप्त न होता या प्राप्त न किया गया होता, तो आठ वर्ष तक सत्याग्रह की लड़ाई चल सकी होती या नहीं, अधिक पैसा मिल सका होता या नहीं और अंत में जिन हजारों हिन्दुस्तानियों ने कौम की लड़ाई में भाग लिया उन्होंने भाग लिया होता या नहीं, इस विषय में मुझे पूरी शंका है | हमने टॉल्स्टॉय फार्म का ढिंढोरा पीटने का नियम नहीं रखा था, फिर भी जो फार्म दया का पात्र नहीं था उसने लोगों के दयाभाव को जाग्रत किया | लोगों को यह लगा कि जो काम करने के लिए मैं स्वयं तैयार नहीं हूँ और

जिसे वे स्वयं दुःखद और कठिन समझते हैं, वह काम फार्मवासी कर रहे हैं | १९१३ में फिर से बड़े पैमाने पर जो लड़ाई छिड़ी, उसके लिए लोगों का यह विश्वास बहुत बड़ी पूँजी सिद्ध हुआ | ऐसी पूँजी के लाभ का कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता | और लाभ कब मिलता हैं, यह भी कोई कह नहीं सकता | लेकिन मुझे तो इस विषय में कोई शंका हीं नहीं कि लाभ अवश्य मिलता हैं; और पाठकों को भी इस सम्बन्ध में कोई शंका नहीं रखनी चाहिए|

१२. गोखले की यात्रा – १

इस प्रकार टॉल्स्टॉय फार्म में सत्याग्रही अपना जीवन बिता रहे थे और अपने नसीब में जो कुछ भी लिखा हो उसके लिए तैयार हो रहे थे | लड़ाई कब पूरी होगी इसका उन्हें पता नहीं था और न उन्हें इसका कोई चिन्ता थीं | उनकी प्रतिज्ञा तो एक ही थीं खूनी कानून के सामने सिर न झुकाना और ऐसा करते हुए जो भी दुःख सहने पड़े उन्हें खुशी-खुशी सहन करना | योद्धा के लिए युद्ध ही विजय होती हैं, क्योंकि उसीमें वह सुख मानता हैं | और युद्ध करना उसके हाथ में होने से हार-जीत का और सुख-दुःख का आधार स्वयं उसी पर होता हैं | अथवा यह कहें कि दुःख और पराजय जैसी चीज उसके शब्दकोश में होती हीं नहीं | गीता के शब्दों में कहें तो सुख-दुःख या हार-जीत उसके लिए समान हैं |

कोई-कोई सत्याग्रही जेल में जाते रहते थे | ऐसा अवसर खड़ा न होता उस समय फार्म के बाहरी कार्यों को देखकर किसी को यह विश्वास नहीं हो सकता था कि वहाँ सत्याग्रही रहते हैं अथवा वे लड़ाई की तैयारी कर रहे हैं | इसके बावजूद जब कोई नास्तिक या शंकाशील मनुष्य फार्म में आ जाता तब यदि वह मित्र होता तो हम पर तरस खाता और टीकाकार होता तो हमारी निन्दा करता था | वह कहता : "आप लोग आलसी हो गये हैं, इसलिए इस जंगल में पड़े-पड़े रोटी खाते हैं | आप जेल से थक गये हैं, इसलिए शहर की जंजाल से छूटकर फलों के इस सुन्दर बाग में रहते हैं और नियमित जीवन बिताकर आनंद भोग रहे हैं |" ऐसे टीकाकारों को यह कैसे समझाया जाए कि सत्याग्रही कभी अनुचित रूप से नैतिक नियम का भंग करके जेल में जा हीं नहीं सकते | उन्हें कौन समझाये कि सत्याग्रही की शांति में, उसके संयम में ही लड़ाई की तैयारी समायी रहती हैं | उन्हें कौन यह समझाये कि सत्याग्रही मनुष्य की सहायता का विचार तक छोड़ देता हैं और केवल ईश्वर का ही आश्रय लेता हैं | परिणाम भी ऐसा हीं आया; ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुई या ईश्वर ने भेजी, जिनकी कल्पना भी किसी को नहीं हो सकती थी | ऐसी मदद भी आ पहुँची, जिसकी किसी को कल्पना नहीं थीं | और, अनसोची परीक्षा भी सत्याग्रहियों की हई तथा अंत में दुनिया समझ सके ऐसा बाह्य विजय भी उन्हें मिली |

मैं गोखले और दूसरे भारतीय नेताओं से विनती कर रहा था कि वे दक्षिण अफ्रीका में आकर हिन्दुस्तानियों की स्थिति का अध्ययन करें | लेकिन कोई आयेगा या नहीं, इसमें मुझे पूरी शंका थीं | श्री रिच किसी भी भारतीय नेता को दक्षिण अफ्रीका भेजने का प्रयत्न कर रहे थे | लेकिन जब सत्याग्रह की लड़ाई बिलकुल मंद पड़ गई हो तब वहाँ आने की हिम्मत भला कौन करता ? सन् १९११ में गोखले इंग्लैंड में थे | उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में चल रही हिन्दुस्तानियों की इस लड़ाई का अध्ययन तो किया हीं था | हिन्दुस्तान की केन्द्रीय धारासभा में उन्होंने इस प्रश्न की चर्चायें भी की थी और उसमें यह प्रस्ताव भी रखा था (२५ फरवरी, १९१०) कि गिरमिटियों को नेटाल भेजना बन्द कर दिया जाए, जो पास हुआ था | गोखले के साथ मेरा पत्र-व्यवहार चलता हीं था | वे भारत-मंत्री के साथ

इस विषय में विचार-विमर्श भी कर रहे थे और दक्षिण अफ्रीका जाकर संपूर्ण प्रश्न का अध्ययन करने की बात भी भारत-मंत्री से कह चुके थे | भारत-मंत्री ने उनकी यह बात पसंद की थी | गोखले ने मुझे लिखा कि मैं उनकी छह सप्ताह की यात्रा की योजना बना लूँ और दक्षिण अफ्रीका छोड़ने की अंतिम तारीख भी लिख भेजी | हमारे आनंद का तो पार ही न रहा | उस समय तक किसी भी भारतीय नेता ने दक्षिण अफ्रीका की यात्रा नहीं की थी | दक्षिण अफ्रीका की मुलाकात तो क्या, हिन्दुस्तान के बाहर किसी भी उपनिवेश की मुलाकात उन्होंने वहाँ बसे हिन्दुस्तानियों की स्थिति की जाँच करने के उद्देश्य से नहीं की थी | इसलिए हम सब ने गोखले जैसे महान नेता की मुलाकात का महत्त्व समझ लिया | हमने निश्चय किया कि गोखले का ऐसा सम्मान किया जाए जैसा किसी बादशाह का भी किसी दिन न हुआ हो | हमने यह भी निर्णय किया कि गोखले को दक्षिण अफ्रीका के सब मुख्य-मुख्य शहरों में ले जाया जाए | सत्याग्रही और दूसरे हिन्दुस्तानी सभी प्रसन्न मन से गोखले के स्वागत की तैयारियों में लग गये | उस स्वागत में सम्मिलित होने का निमंत्रण गोरों को भी दिया गया और लगभग हर जगह गोरे भी उसमें सम्मिलित हुए | हमने यह भी निर्णय किया कि जहाँ-जहाँ आम सभायें हों वहाँ के मेयर यदि हमारी विनती स्वीकार करें तो उन्हें ही सामान्यत: सभा का सभापति बनाया जाएँ और वहाँ के टाउन-हॉल का उपयोग संभव हो तो उसी में सभा की जाए | रेलवे विभाग की इजाजत लेकर हमने मुख्य स्टेशनों को भी सजाने-सँवारने की जिम्मेदारी अपने सिर पर ली और अधिकतर स्टेशनों को सजाने की इजाजत हमें मिल भी गई | सामान्यत: ऐसी इजाजत नहीं दी जाती थी | लेकिन स्वागत का हमारी भव्य तैयारियों का प्रभाव सत्ताधारियों पर पड़ा और उन्होंने हमारे इस कार्य के साथ यथासंभव सहानुभूति दिखाई | उदहारण के लिए, जोहानिसबर्ग के रेलवे स्टेशन को सजाने में हमने करीब १५ दिन का समय लिया होगा, क्योंकि वहाँ हमने एक सुन्दर चित्रों वाला द्वार बनाया था, जिसका नकशा श्री कैलनबैक द्वारा तैयार किया गया था |

दक्षिण अफ्रीका कैसा देश हैं, इसका अनुभव गोखले को इंग्लैंड में ही हो चुका था | भारत-मंत्री ने दक्षिण अफ्रीका की सरकार को गोखले की प्रतिष्ठा, साम्राज्य में उनका उच्च स्थान आदि तो बता दिया था; लेकिन जहाजी कंपनी के टिकट की या जहाज में उनके लिए एक कैबिन की सुविधा कराने की बात किसी को कैसे सूझती ? गोखले की तबीयत नाजुक रहती थी, इसलिए उन्हें एक आरामदेह कैबिन चाहिए थीं, एकान्त चाहिए था | लेकिन कंपनी का स्पष्ट उत्तर मिला कि ऐसी कोई कैबिन खाली नहीं हैं | मुझे ठीक स्मरण नहीं है कि इंडिया ऑफिस में स्वयं गोखले ने इस बारेमें खबर भेजी या उनके किसी मित्र ने | इंडिया ऑफिस की ओर से कंपनी के डायरेक्टर को पत्र मिला | उसके परिणाम-स्वरूप जहाँ कोई कैबिन नहीं थीं वहाँ गोखले के लिए एक अच्छी से अच्छी कैबिन तैयार हो गई ! इस प्रारंभिक कड़वाहट का परिणाम मीठा आया | जहाज के कैप्टन से भी गोखले का सुन्दर स्वागत करने की सिफ़ारिश की गई | इसलिए गोखले की समुद्री यात्रा के दिन आनंद और शांति में बीते | गोखले जितने गंभीर थे उतने ही आनंदी और विनोदी भी थे | वे जाहज के खेलकूद में काफ़ी भाग लेते थे और उसके

मुसाफिरो में अत्यन्त लोकप्रिय हो गये थे | यूनियन सरकार ने गोखले के समक्ष अपना मेहमान बनने का और सरकार की ओर से रेलवे का स्टेट सैलून स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा था | मेरे साथ सलाह-मशविरा करके उन्होंने स्टेट सैलून और प्रिटोरिया में सरकारी अतिथि-सत्कार स्वीकार करने का निश्चय किया था |

गोखले २२ अक्टूबर, १९१२ को केप टाउन बन्दरगाह पर उतरे | उनकी तबीयत मेरी आशा से कहीं अधिक नाजुक थीं | वे विशेष प्रकार का भोजन ही कर सकते थे और अधिक परिश्रम उठा सकने जैसी उनकी तबीयत नहीं थी | मैंने जो कार्यक्रम बनाया था वह उनके लिए असह्य था | यथासंभव परिवर्तन तो मैंने उसमें किये ही | यदि परिवर्तन संभव ही न होता तो वे तबीयत का खतरा उठाकर भी सारा कार्यक्रम वैसा ही रखने को तैयार थे | मैंने उनसे पूछे बिना इतना भारी कार्यक्रम बना डालने की जो मूर्खता की थी, उसके लिए बड़ा पश्चात्ताप हुआ | कुछ परिवर्तन मैंने ज़रूर किये, लेकिन बहुतसा कार्यक्रम तो जैसे का वैसा ही रखना पड़ा | मैं यह समझ नहीं सका कि गोखले को पूर्ण एकांत देने की आवश्यकता हैं | ऐसा एकान्त देने में मुझे बड़ी से बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा | लेकिन मुझे सत्य के ख़ातिर नम्रता से इतना तो कहना ही चाहिए कि बीमारों की और गुरुजनों की सेवा-शुश्रूषा का अभ्यास और शौक होने के कारण, अपनी मूर्खता का ज्ञान होने के बाद, मैं कार्यक्रम में ज़रूरी सुधार करके गोखले को पर्याप्त एकांत और शांति दे सका था | समूची यात्रा में उनके मंत्री का काम तो मैंने ही किया था | स्वयंसेवक ऐसे थे जो आधी रात को भी उत्तर दे सकें | इसलिए मैं नहीं मानता कि सेवकों के अभाव के कारण गोखले को कोई दुःख या असुविधा भोगनी पड़ी हो | इन स्वयंसेवकों में श्री कैलनबैक भी एक थे |

हमारे मन में इतना स्पष्ट था कि केप टाउन में अच्छी से अच्छी सभी होनी चाहिए | श्राइनर परिवार के बारेमें मैं प्रथम खंड में लिख चुका हूँ | उस परिवार के प्रमुख पुरुष श्री डब्ल्यू. पी. श्राइनर से मैंने सभा का सभापति बनने की प्रार्थना की, जिसे उन्होंने स्वीकार किया | विशाल सभा हुई | सभा में बहुत बड़ी संख्या में हिन्दुस्तानी और गोरे आये थे | श्री श्राइनर ने मधुर शब्दों में गोखले का स्वागत किया और दक्षिन अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की | गोखले का भाषण संक्षिप्त, परिपक्व, विचारों से पूर्ण, दृढ़ और विनयपूर्ण था | हिन्दुस्तानी उससे प्रसन्न हुए | अपने भाषण से गोखले ने गोरों का मन जीत लिया | अत: यह बात कही जा सकती हैं कि जिस दिन गोखले ने दक्षिण अफ्रीका की भूमि में प्रवेश किया उसी दिन उन्होंने उसके विविध प्रकार के लोगों के हृदयों में प्रवेश किया |

केप टाउन से गोखले को जोहानिसबर्ग जाना था | दो दिन की रेलयात्रा थी | सत्याग्रह की लड़ाई का कुरुक्षेत्र ट्रान्सवाल था | केप टाउन से जोहानिसबर्ग आते हुए ट्रान्सवाल की सीमा पर बड़ा स्टेशन क्लार्क्सडॉर्प पड़ता था | वहाँ हिन्दुस्तानियों की आबादी भी अच्छी संख्या में थी | क्लार्क्सडॉर्प और जोहानिसबर्ग पहुँचने से पहले मार्ग

में आने वाले ऐसे ही दूसरे शहरों – पोचेफस्ट्रूम और कुगर्सडॉर्प – में गोखले को रुकना और सभाओं में उपस्थित रहना था, इसलिए क्लार्क्सडॉर्प से स्पेशियल ट्रेन की गई थी | सभी शहरों में वहाँ के मेयर सभा के सभापति थे | किसी भी स्टेशन पर ट्रेन एक घंटे से ज़्यादा नहीं रुकी | हमारी ट्रेन ठीक समय पर जोहानिसबर्ग पहुँच गई; एक मिनट का भी फर्क नहीं पडा | स्टेशन पर खास तरह के गालीचे बिछाये गये थे | एक मंच भी खड़ा किया गया था | जोहानिसबर्ग के मेयर श्री एलिस और अन्य गोरे नागरिक भी उपस्थित थे | मेयर ने गोखले के निवास-काल में अपनी कार उनके उपयोग के लिए दे दी थीं | मानपत्र गोखले को स्टेशन पर ही दिया गया था | मानपत्र उन्हें हर स्थान पर भेंट किये गये थे | जोहानिसबर्ग का मानपत्र वहाँ की खान से निखले हुए सोने की हृदय के आकार वाली तख्ती पर खोदा गया था; यह तख्ती दक्षिण अफ्रीका की खास लकड़ी (रोडेशियन टिक) पर जड़ी हुई थी | लकड़ी पर हिन्दुस्तान के ताजमहल के तथा अन्य सुन्दर स्थानों के दृश्य बड़ी खूबी से खोदे गये थे | सबके साथ गोखले का परिचय कराना, मानपत्र पढ़ना और उसका उत्तर देना तथा दूसरे मानपत्र स्वीकार करना – यह सारी क्रिया २० मिनट के भीतर पूरी कर ली गई थी | मानपत्र इतना छोटा था कि उसके पढ़ने में पाँच मिनट से ज़्यादा समय नहीं लगा होगा | गोखले का उत्तर भी पाँच मिनट से अधिक का नहीं हीं रहा होगा | स्वयंसेवकों की व्यवस्था इतनी सुन्दर थी कि प्लेटफार्म पर आशा से अधिक लोग नहीं आये थे | शोरगुल का नामा भी न था | बाहर लोगों की भारी भीड़ जमा हो गई थी | लेकिन किसी को भी आने-जाने में कोई कठिनाई नहीं हुई |

गोखले के रहने की व्यवस्था श्री कैलनबैक की जोहानिसबर्ग से पाँच मील दूर एक पहाड़ी पर बनी सुन्दर कोठी में की गई थी | वहाँ का दृश्य इतना भव्य और सुन्दर था, वहाँ की शांति इतनी आनंददायक थी और वह कोठी सादी होते हुए भी इतनी कलापूर्ण थी कि गोखले को वह बहुत ही पसंद आई | सबसे मिलने की व्यवस्था शहर में की गई थी | इसके लिए एक खास ऑफिस किराये पर ले लिया था | उसमें एक कमरा गोखले के आराम के लिए खास तौर पर रखा गया था, दूसरा एक कमरा मुलाकातियों से मिलने के लिए था और तीसरा कमरा मुलाकातियों के बैठने के लिए था | जोहानिसबर्ग के कुछ प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित नागरिकों से निजी तौर पर मिलने के लिए भी हम गोखले को ले गये थे | वहाँ के प्रमुख गोरों की भी एक निजी सभा की गई थी, जिससे उन लोगों के दृष्टिबिन्दु का गोखले को पूरी कल्पना हो सके | इसके सिवा, जोहानिसबर्ग में उनके सम्मान में एक बड़ा भोजन-समारंभ भी रखा गया था | उसमें ४०० लोगों को निमंत्रित किया गया था | आमंत्रितों में लगभग १५० गोरे रहे होंगे | हिन्दुस्तानी लोग समारंभ में टिकट लेकर ही आ सकते थे | एक टिकट की क़ीमत एक गिन्नी रखी गई थीं | इन टिकटों की क़ीमत से ही भोजन-समारंभ का खर्च पूरा हुआ था | भोजन निरामिष था और मद्यपान-रहित था तथा स्वयंसेवकों ने ही तैयार किया था | इन सब बातों का यहाँ शब्दों में वर्णन करना कठिन हैं | दक्षिण अफ्रीका में हमारे हिन्दू और मुसलमान छुआछूत को नहीं जानते | वे एकसाथ बैठकर खाना खाते हैं | शाकाहारी हिन्दुस्तानी अपने शाकाहार की रक्षा करते हैं | हिन्दुस्तानियों में कुछ ईसाई भी थे | उनके साथ भी मेरा अन्य

हिन्दुस्तानियों जैसा ही गाढ़ परिचय था | ये ईसाई अधिकतर गिरमिटिया माता-पिता की सन्तान होते हैं; और उनमें से अनेक होटलों में खाना बनाने या भोजन परोसने का काम करते हैं | इन लोगों की मदद से ही इतने लोगों का खाना तैयार किया जा सका था | भोजन में लगभग १५ व्यंजन रहे होंगे | दक्षिण अफ्रीका के गोरों के लिए यह बिलकुल नया और आश्चर्य-पूर्ण अनुभव था | इतने अधिक हिन्दुस्तानियों के साथ एक पंक्ति में खाने बैठना, निरामिष भोजन करना और मद्यपान के बिना चला लेना – ये तीनों अनुभव उनमें से अधिकतर गोरों के लिए नये थे; और अंतिम दो अनुभव तो सभी के लिए नये थे |

इस सभारंभ में गोखले ने जो भाषण दिया वह दक्षिण अफ्रीका में उनका सबसे बड़ा और सबसे महत्त्वपूर्ण भाषण था | वे पूरे ४५ मिनट तक बोले | उस भाषण की तैयारी के लिए गोखले ने हमारी कड़ी परीक्षा ली थी | मुझसे उन्होंने कहा कि स्थानीय लोगों के दृष्टिबिन्दु की अवगणना न करना और यथाशक्ति उनके साथ अपने दृष्टिबिन्दु का मेल बैठाना – यह उनका जीवन भर का नियम रहा हैं | और इसलिए उन्होंने मुझसे यह जानना चाहा कि मैं अपनी दृष्टि से भाषण में उनसे क्या कहलवाना चाहता हूँ | उन्होंने कहा कि यह चीज मुझे उन्हें लिखकर देनी चाहिए और साथ में शर्त यह लगा दी कि मेरे लिखे हुए मसौदे में से एक भी वाक्य या विचार का वे अपने भाषण में उपयोग न करें तो भी मुझे दु:खी नहीं होना चाहिए | इसके सिवा, न तो मेरा मसौदा अत्यधिक लम्बा होना चाहिए और न अत्यधिक छोटा होना चाहिए; और फिर भी कोई महत्त्वपूर्ण बात उसमें छूटनी नहीं चाहिए | इन सब शर्तों का पालन करके मुझे गोखले के लिए नोट्स लिखने पड़ते थे | मैं यह कह दूँ कि मेरी भाषा का उन्होंने बिलकुल ही उपयोग नहीं किया | और यह आशा मैं रखता भी कैसे कि अंग्रेजी भाषा में पारंगत गोखले मेरी भाषा का अपने भाषण में कहीं भी उपयोग करेंगे ? मैं ऐसा भी नहीं कह सकता कि अपने भाषण में उन्होंने मेरे विचारों का उपयोग किया | परन्तु मेरे विचारों की उपयोगिता उन्होंने स्वीकार की, इससे मैंने अपने मन को समझा लिया कि उन्होंने मेरे विचारों का किसी न किसी रूप में उपयोग किया होगा | लेकिन उनकी विचारसरणी कुछ इस प्रकार की थीं कि उन्होंने उसमें कहाँ हमारे विचारों को स्थान दिया हैं अथवा दिया भी हैं या नहीं, इसका हमें पता हीं नहीं चल पाता था | गोखले के सभी भाषणों के समय मैं उपस्थित था, लेकिन ऐसा एक भी अवसर मुझे याद नहीं हैं जब मैंने यह चाहा हो कि अमुक विचार उन्होंने प्रकट न किया होता या अमुक विशेषण का प्रयोग उन्होंने न किया होता तो अच्छा रहता | उनके विचारों की स्पष्टता, दृढ़ता, विनय आदि का श्रेय उनके अत्यधिक परिश्रम और सत्यपरायणता को था |

जोहानिसबर्ग में केवल हिन्दुस्तानियों की सभा तो होनी ही चाहिए थी | मेरा आरंभ से ही सदा यह आग्रह रहा है कि या तो मैं मातृभाषा में बोलूँ या राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी में बोलूँ | इस आग्रह के कारण दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के साथ मेरा सम्बन्ध सरल और नजदीक का हो गया था | इसलिय मैं चाहता था कि हिन्दुस्तानियों के सामने गोखले भी हिन्दुस्तानी भाषा में बोलें तो ठीक हो | इस सम्बन्ध में गोखले के विचार मैं जानता था | टूटी-

फूटी हिन्दी से तो वे अपना काम चला हीं नहीं सकते थे | इसलिए या तो वे मराठी में बोलना पसन्द करते या अंग्रेजी में | दक्षिण अफ्रीका में मराठी में बोलना उन्हें बनावटी मालूम हुआ | और यदि मराठी में बोलते तो भी गुजरातियों और उत्तर भारत के श्रोताओं के लिए उसका हिन्दुस्तानी में अनुवाद करना ही पड़ता | तो फिर वे अंग्रेजी में ही क्यों न बोलें ? सौभाग्य से मेरे पास ऐसा एक विशेष तर्क था, जिससे वे मराठी में बोलना स्वीकार कर सकते थे | जोहानिसबर्ग में कोंकण के अनेक मुसलमान थे | थोड़े महाराष्ट्री हिन्दू तो थे हीं | उन सबकी गोखले का भाषण मराठी में सुनने की बड़ी इच्छा थी | उन्होंने मुझसे कह रखा था कि मैं गोखले से मराठी में बोलने की विनती करूँ | मैंने गोखले से कहा : "आप मराठी में बोलेंगे तो वे लोग प्रसन्न होंगे | आपकी मराठी का हिन्दुस्तानी अनुवाद मैं कर दूँगा |" मेरी बात सुनकर गोखले खिलखिला कर हँस पड़े | वे बोले : "तुम्हारे हिन्दुस्तानी के ज्ञान का तो मुझे अच्छा परिचय हो गया हैं | वह हिन्दुस्तानी तुम्हें ही मुबारक रहे | लेकिन अब तुम मेरी मराठी का हिन्दुस्तानी में अनुवाद करना चाहते हो ! बताओ तो भला, इतनी मराठी तुमने कहाँ सीख ली ?" मैं बोला : "जो बात आपने मेरी हिन्दुस्तानी के बारेमें कही वही मेरी मराठी के बारेमें समझिये | मराठी का एक शब्द भी मैं बोल नहीं सकता | लेकिन जिस विषय का मुझे ज्ञान हैं उस पर यदि आप मराठी में बोलेंगे, तो मैं उसका भावार्थ अवश्य ही समझ लूँगा | आप देखेंगे कि मैं लोगों के सामने उसका अनर्थ तो नहीं हीं करूँगा | मराठी अच्छी तरह जानने वाले दूसरे लोगों को मैं आपकी मराठी का अनुवाद करने का काम ज़रूर सौंप सकता हूँ | लेकिन इसे आप पसंद नहीं करेंगे | इसलिए मुझसे काम चला लीजिए और मराठी में ही बोलिये | कोंकणी और महाराष्ट्री भाइयों की तरह मुझे भी आपका मराठी भाषण सुनने की बड़ी अभिलाषा हैं |" " तुम सदा अपने ही मन की बात करोगे | यहाँ तुम्हारे आसरे पड़ा हूँ, इसलिए मराठी में बोले सिवा दूसरा कोई चारा नहीं हैं |" ऐसा कह कर उन्होंने मुझे खुश कर लिया | उसके बाद ऐसी सभाओं में ठेठ झाँझीबार तक वे मराठी में ही बोले; और मैं उनका विशेष रूप से नियुक्त किया हुआ अनुवादक बना रहा | यथासंभव मातृभाषा में ही बोलना और व्याकरण-शुद्ध अंग्रेजी की अपेक्षा व्याकरण-रहित टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में बोलना अधिक अच्छा हैं – यह बात मैं गोखले के गले उतार सका था या नहीं, मैं नहीं जानता | लेकिन इतना मैं अवश्य जानता हूँ कि दक्षिण अफ्रीका में तो केवल मुझे खुश करने के लिए ही वे मराठी में बोले थे | बोलने के बाद उसका जो परिणाम आया वह उन्हें भी अच्छा लगा, यह मैं देख सका था | जहाँ सिद्धान्त का प्रश्न न हो वहाँ सेवकों को खुश करना अच्छी बात हैं, यह गोखले ने दक्षिण अफ्रीका में अनेक अवसरों पर अपने व्यवहार से सिद्ध कर दिखया था |

१३. गोखले की यात्रा – २

जोहानिसबर्ग से हमें प्रिटोरिया जाना था | प्रिटोरिया में यूनियन सरकार की ओर से गोखले को सरकारी अतिथि बनने का निमंत्रण मिला था | उसके अनुसार गोखले को ट्रान्सवाल होटल में ठहरना था | वहाँ उन्हें यूनियन सरकार के मंत्रि-मंडल से मिलना था | उसमें जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी थे | जैसा मैं पहले बता चुका हूँ, मैंने कार्यक्रम इस प्रकार बनाया था कि प्रतिदिन के कार्यों की सूचना मैं गोखले को या तो उसी दिन सुबह करता था या वे पूछते तो पिछली रात को कर देता था | मंत्रि-मंडल से मिलने का कार्य बहुत बड़ी जिम्मेदारी का कार्य था | हम लोगों ने यह निश्चय कर लिया था कि मुझे गोखले के साथ नहीं जाना चाहिए, जाने का प्रस्ताव भी नहीं रखना चाहिए | मेरी उपस्थिति से मंत्रि-मंडल और गोखले के बीच किसी हद तक पर्दा-सा पड़ जाता; वह जिसे स्थानीय हिन्दुस्तानियों की और मेरी भी गलती मानता हो, उसे दिल खोलकर बता नहीं पाता | मंत्रि-मंडल अपनी भावी नीति के बारेमें गोखले से कुछ कहना चाहता तो वह भी मेरी उपस्थिति के कारण खुले मन से नहीं कह पाता | परन्तु इससे गोखले की जिम्मेदारी दुगुनी हो जाती थी | यदि गोखले से तथ्य की कोई गलती हो जाय या मंत्रि-मंडल कोई नया ही तथ्य गोखले के सामने प्रस्तुत करे और गोखले के पास उसका कोई उत्तर न हो या हिन्दुस्तानियों की ओर से किसी बात की स्वीकृति देना आवश्यक हो जाए, तब मेरी उपस्थिति के अभाव में अथवा दक्षिण अफ्रीका के किसी भी जिम्मेदार हिन्दुस्तानी नेता की उपस्थिति के अभाव में क्या किया जाए, यह एक समस्या हो गई | परन्तु गोखले ने ही यह समस्या तुरन्त हल कर दी | उन्होंने कहा कि मैं उनके लिए आदि से अंत तक हिन्दुस्तानियों की स्थिति का एक संक्षिप्त विवरण तैयार कर दूँ | हिन्दुस्तानी किस हद तक जाने को तैयार हैं, यह भी मैं उसमें लिख दूँ | उसके बाहर की कोई भी बात मुलाकात में उठेगी, तो वे अपना अज्ञान स्वीकार कर लेंगे | यह निर्णय गोखले ने किया और इस निर्णय के साथ ही वे निश्चिन्त हो गये | अब बात केवल ऐसा सार तैयार करने की और गोखले के उसे पढ़ लेने की रही | पढ़ने के लिए आवश्यक समय तो मैंने बचने हीं नहीं दिया था | मैं चाहे जितना छोटा सार तैयार करूँ, फिर भी चार उपनिवेशों के हिन्दुस्तानियों की स्थिति का अठारह वर्षों का इतिहास १० से २० पृष्ठों में लिखे बिना मैं कैसे दे सकता था ? इसके सिवा, वह सार पढ़ने के बाद उनके मन में अनेक सवालों का उठना स्वाभाविक था | परन्तु गोखले की स्मरण-शक्ति जितनी तेज थी उतनी ही अगाध उनमें परिश्रम करने की शक्ति भी थी | वे सारी रात जागे तथा पोलाक को और मुझे भी जगाया | उन्होंने एक-एक बात की पूरी जानकारी प्राप्त की; और वे सारी बातें अच्छी तरह समझ गये हैं या नहीं, इसका निश्चय भी उन्होंने हर प्रश्न पर अपने विचार मेरे सामने रखकर कर लिया | अंत में उन्हें संतोष हुआ | मैं स्वयं तो निर्भय था ही |

गोखले ने लगभग दो घंटे या उससे अधिक यूनियन सरकार के मंत्रि-मंडल के साथ बातचीत की | वहाँ से लौटकर उन्होंने मुझसे कहा : "तुम्हें एक वर्ष के भीतर हिन्दुस्तान लौट आना हैं | सारी बातों का निर्णय हो गया हैं | खूनी कानून रद हो जाएगा | इमिग्रेशन एक्ट का रंगभेद दूर हो जाएगा | तीन पौंड का कर रद हो जाएगा |" मैंने कहा : "मुझे पूरी शंका हैं | मंत्रि-मंडल को जितना मैं जानता हूँ उतना आप नहीं जानते | आपका यह आशावाद मुझे प्रिय हैं, क्योंकि मैं स्वयं भी आशावादी हूँ | लेकिन अनेक बार निराशा का अनुभव कर चुकने के कारण मैं इस विषय में आपके जितनी आशा नहीं रख सकता | किन्तु मुझे कोई भय नहीं हैं | आप मंत्रि-मंडल का वचन लाये हैं इतना मेरे लिए काफ़ी हैं | मेरा धर्म तो आवश्यकता हो तब सरकार से लड़ लेना हैं और हमारी लड़ाई न्याय की हैं यह सिद्ध कर देना हैं | इस सिद्धि में आपको दिया हुआ यह वचन हमारे लिए बड़ा लाभकारी होगा | और यदि लड़ना ही पड़ा तो भी लड़ने में यह वचन हमें दुगुना बल प्रदान करेगा | लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि अधिक हिन्दुस्तानियों के जेल में गये बिना मैं एक साल के भीतर हिन्दुस्तान लौट सकता हूँ |"

इस पर गोखले बोले : "मैं जो कुछ तुमसे कहता हूँ उसमें कोई फर्क पड़ने वाला हैं हीं नहीं | जनरल बोथा ने मुझे यह वचन दिया हैं कि खूनी कानून रद होगा और तीन पौंड का कर हटा दिया जाएगा | तुम्हें बारह महीने में हिन्दुस्तान आना हीं पड़ेगा | तुम्हारा एक भी बहाना मैं नहीं सुनूँगा |"

ट्रान्सवाल से गोखले डरबन, मैरित्सबर्ग आदि शहरों में गये | वहाँ भी वे अनेक गोरों से मिले | किम्बरली की हीरे की खदानें भी उन्होंने देखी | किम्बरली और डरबन में भी स्वागत-समितियों ने जोहानिसबर्ग के जैसे भोजन-समारंभो का आयोजन किया था | उनमें बहुतसे गोरे उपस्थित रहे थे | इस प्रकार हिन्दुस्तानियों और गोरों के हृदय जीतकर गोखले ने १७ नवम्बर, १९१२ को दक्षिण अफ्रीका का किनारा छोड़ा | मैं और कैलनबैक उनकी इच्छा से उन्हें झाँझीबार तक बिदा करने गये थे | जहाज में हमने उनके लिए अनुकूल आहार की व्यवस्था की थी | मार्ग में डेलागोआ बे, इन्हामबेन, झाँझीबार वगैरा बन्दरगाहों पर उनका खूब सम्मान किया गया था |

जहाज पर हमारे बीच केवल हिन्दुस्तान की अथवा उसके प्रति हमारे धर्म की ही बाते होती थीं | गोखले की हर बात और हर शब्द में उनकी कोमल भावना उनकी सत्य-परायणता और उनका स्वदेशाभिमान झलका उठता था | मैंने देखा कि जहाज पर वे जो खेल खेलते थे, उनमें भी खेल की अपेक्षा हिन्दुस्तान की सेवा का भाव ही अधिक होता था | खेलों में भी उनका ध्येय संपूर्णता प्राप्त करना ही होता था |

जहाज पर हमें शांति से बातें करने का काफ़ी समय मिलता था | उन बातों में गोखले ने मुझे हिन्दुस्तान के लिए तैयार किया था | उन्होंने हिन्दुस्तान के प्रत्येक नेता के चरित्र का विश्लेषण मेरे सामने कर दिया था | वह विश्लेषण इतना यथार्थ था कि उन नेताओं के बारेमें आगे चलकर मुझे जो अनुभव हुआ उसमें और गोखले के आलेखन में शायद ही कोई फर्क मैंने पाया |

गोखले की दक्षिण अफ्रीका की यात्रा में उनके साथ स्थापित हुए मेरे सम्बन्ध के विषय में ऐसे अनेकों पवित्र संस्मरण हैं, जिन्हें मैं यहाँ दे सकता हूँ; परन्तु सत्याग्रह के इतिहास के साथ उनका सम्बन्ध न होने से मुझे अनिच्छा से अपनी लेखनी को रोकना पड़ता हैं | झांझीबार में गोखले से हमारा जो वियोग हुआ, वह मेरे और कैलनबैक के लिए अत्यन्त दुःखदायी था | परंतु देहधारियों के निकट से निकट के सम्बन्धों का भी किसी दिन अंत होता ही हैं, ऐसा समझ कर कैलनबैक ने और मैंने सन्तोष माना और दोनों ने यह आशा रखी कि गोखले की भविष्य-वाणी सफल होगी और हम दोनों एक वर्ष के भीतर हिन्दुस्तान जा सकेंगे | परन्तु यह संभव न हुआ |

फिर भी गोखले की दक्षिण अफ्रीका की यात्रा ने हमें अधिक दृढ़ बनाया और जब कौम की लड़ाई पुन: तीव्र रूप में आरंभ हुई उस समय इस यात्रा का महत्त्व और उसकी आवश्यकता हमारी समझ में अधिक आई | यदि गोखले ने दक्षिण अफ्रीका की यात्रा न की होती और यूनियन सरकार के मंत्रि-मंडल से वे न मिले होते, तो तीन पौंड के कर को हम लड़ाई का विषय बना ही नहीं सकते थे | यदि खूनी कानून रद होने के कारण सत्याग्रह की लड़ाई बंद हो गई होती, तो तीन पौंड के कर के बारेमें हमें नया सत्याग्रह करना पड़ता और उसके फलस्वरूप अपार दुःख भोगना पड़ता | इतना ही नहीं, लोग इसके लिए तुरन्त तैयार हो सके होते या नहीं, इस विषय में भी शंका ही थी | तीन पौंड का कर रद कराना स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों का कर्तव्य था | उसे रद कराने के बारेमें अरजियाँ देना, प्रतिनिधि-मंडल भेजना आदि सारे वैधानिक उपाय किये जा चुके थे | ठेठ १८९५ से यह कर चुकाया जा रहा था | लेकिन घोर से घोर दुःख भी जब लम्बे समय तक सहना पड़ता हैं, तो लोग उसके आदि हो जाते हैं; और फिर उसका विरोध करने का धर्म उन्हें समझाना कठिन हो जाता हैं तथा उस दुःख की घोरता दुनिया को समझाना भी उतना हीं कठिन हो जाता हैं | गोखले को मंत्रि-मंडल ने जो वचन दिया था, उसने सत्याग्रहियों का मार्ग सरल बना दिया | अब या तो सरकार अपने वचन के अनुसार तीन पौंड का कर रद करे और अगर रद न करे तो सरकार का यह वचन – भंग ही लड़ाई का प्रबल कारण बन जाए – ऐसी स्थिति खड़ी हो गई | और हुआ भी ऐसा ही | सरकार ने न केवल एक वर्ष के भीतर तीन पौंड का कर रद नहीं किया, बल्कि स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा भी कर दी कि यह कर रद नहीं किया जा सकता |

इस प्रकार गोखले की यात्रा से तीन पौंड का कर सत्याग्रह द्वारा रद कराने में हमें सहायता मिली; इतनी हीं नहीं बल्कि अपनी इस यात्रा के कारण गोखले दक्षिण अफ्रीका के प्रश्न के विशिष्ट ज्ञाता के रूप में स्वीकार किये गये | दक्षिण अफ्रीका के बारेमें कहे जाने वाले उनके शब्दों का महत्त्व भी बढ़ गया और दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले हिन्दुस्तानियों के सम्बन्ध में व्यक्तिगत ज्ञान रखने के कारण इस बात को वे अधिक समझ सके, और हिन्दुस्तान को समझाने में भी अधिक समर्थ हुए, कि उनके बारेमें हिन्दुस्तान को क्या करना चाहिए | जब फिर से कौम की लड़ाई शुरू हुई तब हिन्दुस्तान से धन की वर्षा हुई तथा लॉर्ड हार्डिंग ने सत्याग्रहियों के प्रति अपनी

सहानुभूति दिखाकर उन्हें प्रोत्साहन दिया (दिसम्बर १९१३) | श्री एन्ड्रूज़ और श्री पियर्सन दक्षिण अफ्रीका आये | यह सब गोखले की यात्रा के बिना संभव नहीं होता |

सरकार ने अपना वचन कैसे भंग किया और उसके बाद क्या हुआ, यह अगले प्रकरण में दिया जाएगा |

१४. वचन-भंग

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की लड़ाई में इतनी अधिक सावधानी से काम लिया गया कि प्रचलित नीति के विरुद्ध एक भी कदम नहीं उठाया जाता था । इतना ही नहीं किन्तु यह बात भी ध्यान में रखी जाती थी कि अनुचित रीति से सरकार को सताया नहीं जा सकता । उदाहरण के लिए, खूनी कानून केवल ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों पर ही लागू होता था, इसलिए सत्याग्रह की लड़ाई में केवल ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों को ही भरती किया जाता था । नेटाल, केप कॉलोनी आदि से हिन्दुस्तानियों को भरती करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था; इसके विपरीत, वहाँ के हिन्दुस्तानियों की ओर से आये हुए प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया जाता था । और लड़ाई की मर्यादा भी खूनी कानून को रद कराने तक हीं निश्चित कर दी गई थीं । इस मर्यादा को न तो गोरे लोग समझ पाते थे और न हिन्दुस्तानी समझ पाते थे । लड़ाई के आरंभ-काल में हिन्दुस्तानी ऐसी माँग किया करते थे कि यदि लड़ाई शुरू करने के बाद खूनी कानून के सिवा दूसरे दुःखों को भी लड़ाई के हेतुओं में सम्मिलित किया जा सके, तो क्यों न किया जाय ? मैंने धैर्य के साथ उन लोगों को समझाया कि ऐसा करने में सत्य का भंग होता है; और जिस लड़ाई में सत्य का ही आग्रह हो वहाँ सत्य के भंग की बात कैसे सोची जा सकती हैं ? शुद्ध लड़ाई में लड़ते लड़ते योद्धाओं का बल बढ़ता दिखाई दे, तो भी आरंभ में निश्चित किये गये उद्देश्य के आगे वे कभी जा हीं नहीं सकते । इसके विपरीत, जिस उद्देश्य से लड़ाई आरंभ की गई हो उस उद्देश्य का लड़ने की शक्ति कुछ समय बाद क्षीण हो जाने पर भी त्याग नहीं किया जा सकता । इन दोनों सिद्धान्तों का दक्षिण अफ्रीका में संपूर्ण पालन किया गया था । लड़ाई के आरंभ में जिस बल के आधार पर लक्ष्य निश्चित किया गया था वह बल बाद में झूठा सिद्ध हुआ, यह हम देख चुके हैं; फिर भी बाकी रहे मुट्ठीभर सत्याग्रही अपनी लड़ाई को छोड़ नहीं सके । इस प्रकार लड़ना अपेक्षाकृत सरल था, परन्तु बल में वृद्धि होने पर भी लक्ष्य में वृद्धि न करना अधिक कठिन था और उसमें अधिक संयम की आवश्यकता थी । ऐसे प्रलोभन दक्षिण अफ्रीका में अनेक स्थानों पर हमारे सामने आये, परन्तु में निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि हमने एक भी अवसर पर उनका लाभ नहीं उठाया । इसीलिए मैंने अनेक बार कहा है कि सत्याग्रही के लिए एक ही निश्चय होता है । वह न तो उस निश्चय को घटा सकता है, न बढ़ा सकता है; उस निश्चय में न तो क्षय की गुंजाइश होती है और न वृद्धि की । मनुष्य अपने लिए जो मापदंड निश्चित करता है, उसी मापदंड से जगत भी उसका मूल्य आंकने लगता है । ऐसी सूक्ष्म नीति का सत्याग्रही दावा करते हैं यह सरकार ने जाना तब उसने सत्याग्रहियों को उनके रचे हुए मापदंड से ही आंकना शुरू कर दिया, यद्यपि नीति के ऐसे किसी भी सिद्धान्त से वह अपने को बंधी हुई नहीं मानती थीं । और दो-चार बार उसने सत्याग्रहियों पर नीति-भंग का आक्षेप भी लगाया था । खूनी कानून के बाद हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध जो नये कानून बनाये जाएँ उनका समावेश लड़ाई के लक्ष्य में किया जा सकता हैं, यह किसी बालक के भी समझ में आने जैसी बात हैं । फिर भी जब ट्रान्सवाल में नये प्रवेश करने वाले हिन्दुस्तानियों

पर नया अंकुश लगाया गया और उसे लड़ाई के लक्ष्य में सम्मिलित किया गया, तब सरकार ने कौम पर सत्याग्रह में नई बातें शामिल करने का आक्षेप लगाया । यह आक्षेप सर्वथा अनुचित था । यदि सरकार नये प्रवेश करने वाले हिन्दुस्तानियों पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाये, जो पहले नहीं थे, तो उन्हें भी लड़ाई में शरीक करने का अधिकार हमें होना चाहिए था । इसीलिए सोराबजी और दूसरे लोग ट्रान्सवाल में दाखिल हुए, यह हम देख चुके हैं । सरकार तो इस बात को बरदाश्त नहीं कर सकती थी, लेकिन निष्पक्ष लोगों को इस कदम का औचित्य समझाने में मुझे जरा भी कठिनाई नहीं हुई ।

गोखले के चले जाने पर ऐसा अवसर फिर खड़ा हुआ । गोखले की धारणा थी कि तीन पौंड का कर एक वरंके भीतर रद हो ही जाएगा; और उनके जाने के बाद यूनियन पार्लियामेंट की जो बैठक होगी उसमें इस कर को रद करने का कानून पेश होगा । इसके बदले जनरल स्मट्स ने पार्लियामेन्ट की उस बैठक में यह घोषणा की कि नेटाल के गोरे यह कर रद करने के लिए तैयार नहीं हैं, इसलिए दक्षिण अफ्रीका की सरकार तीन पौंड का कर रद करने का कानून पास करने में असमर्थ है । वस्तुतः ऐसा कुछ नहीं था । यूनियन पार्लियामेन्ट में चार उपनिवेशों के प्रतिनिधि थे, इसलिए केवल नेटाल के सदस्यों की बात उसमें नहीं चल सकती थी । इसके सिवा, मंत्रि-मंडल द्वारा प्रस्तुत किया हुआ बिल पार्लियामेन्ट अस्वीकार करे वहाँ तक जनरल स्मट्स को उसे ले जाना चाहिए था । परन्तु जनरल ने इसमें से कुछ नहीं किया । इसलिए हमें इस क्रूर कर को भी लड़ाई के कारणों में सम्मिलित करने का शुभ अवसर आसानी से मिल गया । इसके दो कारण हमारे पास थे: (१) लड़ाई चल रही हो उस बीच सरकार की ओर से दिया गया कोई वचन यदि सरकार भंग करे, तो उस वचन-भंग को चल रहे सत्याग्रह में सम्मिलित किया जा सकता हैं । (२) ऐसे वचन-भंग से हिन्दुस्तान के गोखले जैसे प्रतिनिधि का अपमान होता हैं और गोखले का अपमान समस्त हिन्दुस्तान का अपमान माना जायगा; और ऐसा अपमान सहन नहीं किया जा सकता । यदि केवल पहला ही कारण होता और सत्याग्रहियों में इतनी शक्ति न होती, तो तीन पौंड का कर रद कराने के लिए सत्याग्रह के शस्त्र का उपयोग करना वे छोड़ देते । लेकिन हिन्दुस्तान का अपमान हो यह बात किसी भी स्थिति में बरदाश्त नहीं की जा सकती थीं । इसलिए हमने माना कि तीन पौंड के कर को सत्याग्रह की लड़ाई में सम्मिलित करना सत्याग्रहियों का धर्म हैं । और जब तीन पौंड के कर को इस लड़ाई में स्थान मिल गया तब गिरमिटिया हिन्दुस्तानियों को भी सत्याग्रह में भाग लेने का अवसर मिला । पाठकों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि आज तक गिरमिटिया हिन्दुस्तानियों को लड़ाई से दूर हीं रखा गया था । इस तरह एक ओर लड़ाई की जिम्मेदारी का बोझ बढ़ा और दूसरी ओर लड़ने वाले सैनिकों की संख्या बढ़ने का भी अवसर दिखाई दिया ।

गिरमिटिया हिन्दुस्तानियों में आज तक सत्याग्रह की जरा भी चर्चा नहीं की गई थीं; तब फिर सत्याग्रह की तालीम तो उन्हें दी ही कैसे जाती ? वे निरक्षर होने के कारण *इंडियन ओपीनियन* या दूसरे अखबार पढ़ नहीं सकते थे ।

ऐसा होते हुए भी मैंने देखा कि गरीब गिरमिटिया लोग सत्याग्रह का निरीक्षण कर रहे थे, जो कुछ हो रहा था उसे समझ रहे थे और उनमें से कुछ लोगों को सत्याग्रह की लड़ाई में शामिल न हो पाने के कारण दुःख भी होता था । परन्तु जब यूनियन मंत्रि-मंडल ने अपना दिया हुआ वचन भंग कर दिया और तीन पौंड के कर को भी लड़ाई के हेतुओं में शरीक कर लिया गया, उस समय मैं बिलकुल नहीं जानता था कि उनमें से कौन-कौन लोग लड़ाई में भरती होंगे ।

सरकार के वचन-भंग की बात मैंने गोखले को लिखी । उन्हें अतिशय दुःख हुआ । मैंने उन्हें लिखा कि आप सर्वथा निर्भय रहें; हम मरण-पर्यन्त लड़ेंगे और तीन पौंड का कर रद कराएँगे । केवल इतना ही हुआ है कि एक वर्ष के भीतर मेरे भारत लौटने की बात टल गई हैं और बाद में मैं कब आ सकूँगा यह कहना असंभव हो गया हैं । लेकिन गोखले तो अंकशास्त्री थे । उन्होंने मुझसे सत्याग्रह के अधिक से अधिक और कम से कम सैनिकों के नाम माँगे । जहाँ तक इस समय मुझे याद हैं, मैंने उन्हें अधिक से अधिक ६५ या ६६ नाम भेजे थे और कम से कम १६ नाम भेजे थे । मैंने गोखले को यह भी लिखा था कि इतनी छोटी-सी संख्या के लिए मैं हिन्दुस्तान से पैसे की मदद की अपेक्षा नहीं रखूंगा । मैंने उनसे यह प्रार्थना भी की कि हमारे विषय में वे निश्चिन्त रहें और अपने शरीर पर अधिक जोर न डाले । मुझे अखबारों से और अन्य स्त्रोतों से यह पता चला था कि दक्षिण अफ्रीका से बम्बई लौटने के बाद गोखले पर यूनियन सरकार के साथ हुई बातचीत में कमजोरी वगैरा दिखाने के आक्षेप लगाये गये थे । इसलिए मैं चाहता था कि गोखले हमारे लिए धन भेजने की कोई भी हलचल हिन्दुस्तान में न करें । परन्तु गोखले का मुझे यह कड़ा उत्तर मिला: "जिस प्रकार आप लोग दक्षिण अफ्रीका में अपने धर्म को समझते हैं, उसी प्रकार हिन्दुस्तान में हम भी अपने धर्म को कुछ तो समझते ही होंगे । हमारे लिए क्या करना उचित हैं या अनुचित हैं, यह हम आपको नहीं कहने देंगे । मैं तो केवल वहाँ की स्थिति जानना चाहता था । हमारी ओर से क्या होना चाहिए, इस विषय में आपकी सलाह मैंने नहीं माँगी थी ।" गोखले के इन शब्दों का भेद मैं समझ गया । उसके बाद इस विषय में कभी एक शब्द न तो मैंने कहा और न उन्हें लिखा । उसी पत्र में गोखले ने मुझे सान्त्वना और चेतावनी भी दी थी । जब इस प्रकार सरकार ने वचन-भंग किया तब उन्हें भय लगा कि सत्याग्रह की लड़ाई लंबी चलेगी और इस बात की शंका हुई कि मुट्ठीभर सत्याग्रही कब तक सरकार से टक्कर ले सकेंगे । यहाँ दक्षिण अफ्रीका में हमने लड़ाई की तैयारियाँ शुरू कर दी । इस लड़ाई में शांति से बैठना तो संभव हीं नहीं था । हमने यह बात भी समझ ली थी कि सत्याग्रहियों को लम्बी जेल भोगनी पड़ेगी । हमने टॉल्स्टॉय फार्म बन्द करने का निर्णय किया । कुछ परिवार अपने पुरुष-वर्ग के जेल से छूटने के बाद अपने-अपने घर चले गये । जो बच गये उनमें मुख्यतः फिनिक्सवासी थे । इसलिए अब आगे फिनिक्स को सत्याग्रहियों का केन्द्र बनाने का निश्चय किया गया । फिनिक्स को केन्द्र बनाने का निश्चय इसलिए भी किया गया

कि तीन पौंड की लड़ाई में जो गिरमिटिया हिन्दुस्तानी भाग लेंगे, उनसे मिलना-जुलना भी नेटाल में रखे गये स्थान से अधिक सुविधाजनक होगा ।

लड़ाई छेड़ने की हमारी तैयारियाँ अभी चल ही रही थीं कि इतने में एक नया विघ्न खड़ा हो गया, जिसकी वजह से स्त्रियों को भी लड़ाई में भाग लेने का अवसर मिल गया । कुछ वीर स्त्रियों ने लड़ाई में भाग लेने की माँग भी की थी । और जब फेरी के परवाने दिखाये बिना फेरी लगाकर लोग जेल में जाने लगे तब फेरी वालों की स्त्रियों ने भी जेल में जाने की इच्छा प्रकट की थीं । परन्तु उस समय विदेश में स्त्रियों को जेल भेजना हम सबको अनुचित लगा । उस समय स्त्रियों को जेल भेजने का कोई कारण भी दिखाई नहीं दिया; और अपनी बात कहूँ तो उस समय स्त्रियों को जेल भेजने की मेरी हिम्मत भी नहीं थीं । साथ हीं हमें ऐसा भी लगा कि जो कानून मुख्यतः पुरुषों पर ही लागू होता हैं, उसे रद कराने में स्त्रियों की आहुति देना पुरुषों के लिए बदनामी की बात होगी । परन्तु अब एक घटना ऐसी घटी, जिससे विशेषतः स्त्रियों का अपमान होता था; और उस अपमान को दूर कराने में स्त्रियों की आहुति देना भी हमें गलत नहीं मालूम हुआ ।

१५. जब विवाह विवाह नहीं माना गया

दक्षिण अफ्रीका में एक ऐसी घटना घटी, जिसकी किसी भी हिन्दुस्तानी को कल्पना नहीं थी और जिसके द्वारा ईश्वर मानो अदृश्य रूप में हिन्दुस्तानियों की जीत की सामग्री तैयार कर रहा था तथा दक्षिण अफ्रीका के गोरों का अन्याय अधिक स्पष्ट रूप में प्रकट करना चाहता था । हिन्दुस्तान से अनेक विवाहित लोग दक्षिण अफ्रीका आये थे और कुछ ने वहीं विवाह किये थे । हिन्दुस्तान में सामान्य विवाहों को रजिस्टर कराने का कोई कानून नहीं हैं । धार्मिक विधि ही ऐसे विवाहों में पर्याप्त मानी जाती हैं । दक्षिण अफ्रीका में भी हिन्दुस्तानियों के लिए वही प्रथा ठीक मानी जानी चाहिए थी; और पिछले ४० वर्ष से हिन्दुस्तानी दक्षिण अफ्रीका में बसते आये थे, लेकिन कभी भी हिन्दुस्तान के अलग-अलग धर्मों के अनुसार हुए विवाह रद नहीं माने गये थे । परन्तु इस समय अदालत में एक मुकदमा ऐसा आया, जिसमें केप सुप्रीम कोर्ट के न्यायधीश श्री सर्ल ने १४ मार्च, १९१३ को यह निर्णय दिया कि दक्षिण अफ्रीका के कानून में ईसाई धर्म के अनुसार हुए विवाह के सिवा – विवाह-अधिकारी के ऑफिस में रजिस्टर कराये हुए विवाह के सिवा – दूसरे किसी विवाह के लिए स्थान नहीं हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दू, मुस्लिम, पारसी आदि धर्मों की विधि के अनुसार हुए विवाह न्यायाधीश के उपर्युक्त भयंकर निर्णय से दक्षिण अफ्रीका में रद माने गये और इसलिए उस कानून के अनुसार दक्षिण अफ्रीका में असंख्य विवाहित हिन्दुस्तानी स्त्रियों का दरजा अपने पतियों की धर्मपत्नी का न रहकर उपपत्नियों का हो गया तथा उन स्त्रियों की सन्तान को अपने पिता की विरासत पाने का भी अधिकार नहीं रह गया । इस स्थिति को न तो स्त्रियाँ सहन कर सकती थीं, न पुरुष सहन कर सकते थे । दक्षिण अफ्रीका में बसे हुए हिन्दुस्तानियों में इससे भारी खलबली मच गई । अपने स्वभाव के अनुसार मैंने सरकार से पूछा कि क्या वह न्यायाधीश के इस निर्णय को स्वीकार करेगी ? या न्यायाधीश द्वारा किया गया कानून का अर्थ सच्चा हो तो भी वह अनर्थ हैं, ऐसा समझ कर नया कानून पास करेगी और उसके द्वारा हिन्दू, मुसलमान आदि की धार्मिक विधियों के अनुसार हुए विवाहों को कानूनी मानेगी ? सरकार की वृत्ति उस समय मेरी बात सुनने की नहीं थी । उसका उत्तर 'नहीं' में आया ।

न्यायाधीश के इस निर्णय के विरुद्ध अपील की जाए या नहीं, इसकी चर्चा करनेके लिए सत्याग्रह मंडल की एक सभा हुई । चर्चा के अंत में सब ने यह फैसला किया कि ऐसे मामले में अपील हो हीं नहीं सकती । यदि अपील करनी हो तो सरकार करे । अथवा सरकार चाहे और वह अपने वकील (एटर्नी जनरल) द्वारा खुले रूप में हिन्दुस्तानियों का पक्ष ले, तो ही हिन्दुस्तानी अपील कर सकते हैं । ये शर्तें पूरी न हो तो अपील करने का अर्थ होगा एक प्रकार से हिन्दू, मुसलमान आदि विवाहों के रद होने की बात बरदाश्त कर लेना । इसके सिवा, ऐसी अपील करने के बाद भी यदि उसमें हार हो, तब तो सत्याग्रह करना अनिवार्य हो जाएगा । ऐसी स्थिति में इस तरह के असह्य अपमान के विरुद्ध अपील करने का प्रश्न ही नहीं रह जाता ।

अब समय ऐसा आ गया था जब शुभ मुहूर्त या शुभ तिथि की प्रतीक्षा की ही नहीं जा सकती थी । स्त्रियों का अपमान होने के बाद धैर्य कैसे रखा जाता ? कम या अधिक जितने भी सत्याग्रही मिलें उन्हीं के साथ हमने तीव्र सत्याग्रह करने का निश्चय किया । अब स्त्रियों को लड़ाई में भाग लेने से रोका नहीं जा सकता था । यही नहीं, हमने स्त्रियों को लड़ाई में भरती होने का निमंत्रण देने का निश्चय किया । सबसे पहले उन बहनों को निमंत्रण दिया, जो टॉल्स्टॉय फार्म में रह चुकी थीं । वे तो लड़ाई में शरीक होने के लिए अत्यन्त उत्सुक थीं । मैंने उन्हें सत्याग्रह की लड़ाई में भाग लेने के सारे खतरों से परिचित कराया । मैंने उन्हें समझाया कि लड़ाई में सम्मिलित होने के बाद उनके खाने-पीने, पोशाक, सोने-बैठने सब पर नियंत्रण लग जाएँगे, जिन्हें उनको बरदाश्त करना होगा । मैंने उन्हें यह चेतावनी भी दी कि जेल में उन्हें कड़ी मेहनत का काम सौंपा जा सकता हैं, उनसे कपड़े धुलवाये जा सकते हैं, जेल-अधिकारी उनका अपमान भी कर सकते हैं । लेकिन वे सब बहनें बहादुर थीं; वे मेरी बताई एक भी बात से भयभीत नहीं हुईं । एक तो गर्भवती थी; छह बहनों की गोद में छोटे बच्चे थे । ऐसी बहनों ने भी लड़ाई में भाग लेने का आग्रह किया । इनमें से किसी भी बहन को रोकने की शक्ति मुझ में नहीं थी । एक के सिवा बाकी सब बहनें तामिल थीं । उनके नाम नीचे दिये जाते हैं:

१. श्रीमती थंबी नायडू, २. श्रीमती एन. पिल्ले, ३. श्रीमती के. मुरगेसा पिलले, ४. श्रीमती ए. पी. नायडू, ५. श्रीमती पी. के. नायडू, ६. श्रीमती के. चिन्नस्वामी पिल्ले, ७. श्रीमती एन. एस. पिल्ले, ८. श्रीमती आर. ए. मुदलिंगम्, ९. श्रीमती भवानी दयाल, १०. कुमारी एम. पिलले, ११. कुमारी बी. एम. पिल्ले ।

कोई अपराध करके जेल जाना आसान है, लेकिन निर्दोष होते हुए जेल जाना कठिन हैं । क्योंकि अपराधी गिरफ्तार होना नहीं चाहता, इसलिए पुलिस उसकी पीठ पर खड़ी रहती हैं और उसे पकड़ती हैं । लेकिन स्वेच्छा से और निर्दोष रहकर जेल जाने के लिए तैयार रहने वाले को पुलिस लाचार हो जाने पर ही पकड़ती हैं । इन बहनों का प्रथम प्रयत्न निष्फल गया । उल्होंने ट्रान्सवाल के वेरीनिजिंग नामक स्थान में बिना परवाने के प्रवेश करके फेरी लगाई, लेकिन पुलिस ने उन्हें पकड़ने से इनकार कर दिया । उन्होंने फ्रीनिखन से ऑरेंजिया (ऑरेंज फ्री स्टेट) की सीमा में बिना इजाजत के प्रवेश किया, फिर भी किसीने उन्हें पकड़ा नहीं । अब इन बहनों के सामने सवाल यह खड़ा हुआ कि गिरफ्तार कैसे हों । जेल जाने के लिए तैयार हों ऐसे बहुतसे पुरुष नहीं थे । और जो पुरुष जेल जाने को तैयार थे, उनका गिरफ्तार होना आसान नहीं था ।

अब हमने अपना सोचा हुआ अंतिम कदम उठाने का निश्चय किया; और वह कदम बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुआ । मैंने सोचा था कि अंतिम समय में फिनिक्स में मेरे साथ रहे हुए सब लोगों की आहुति मैं दे दूँगा । वह सत्य-देवता के लिए मेरा अंतिम त्याग होता । फिनिक्स में रहे हुए लोग मेरे घनिष्ठ साथी और सगे-सम्बन्धी थे । मैं यह चाहता था कि *इंडियन ओपीनियन* चलाने के लिए जितने आदमी ज़रूरी हो उनके सिवा और १६ वर्ष के भीतर

के बालकों के सिवा बाकी सबको जेल भेज दिया जाए । इससे बड़ा त्याग करने के साधन मेरे पास नहीं थे । गोखले को पत्र लिखते समय जो अंतिम १६ सत्याग्रही मेरे ख्याल में थे, वे इन्हीं लोगों में से थे । सीमा का उल्लंघन करवा कर इस दल को बिना परवाने के ट्रान्सवाल में प्रवेश करने के अपराध में मुझे पकड़वा देना था । मुझे इस बात का भय था कि अगर पहले से इस कदम की बात जाहिर कर दी गई, तो सरकार इन लोगों को नहीं पकड़ेगी । इसलिए दो-चार मित्रों के सिवा अन्य किसी को मैंने यह बात नहीं बताई थी । सीमा पार करते समय पुलिस के अधिकारी हमेशा लोगों के नाम और पते पूछते थे । लेकिन इस बार की हमारी नई योजना में नाम और पते न बताने की बात भी शामिल थीं । पुलिस अधिकारी को नाम-पता न बताना एक अलग अपराध माना जाता था । नाम-पता न बताने का कारण यह था कि बताने पर यदि उनको यह पता चल जाता कि सत्याग्रही मेरे सगे-सम्बन्धी हैं, तो शायद पुलिस उन्हें न पकड़ती । जब फिनिक्स का दल ट्रान्सवाल में प्रवेश करे उसी समय वे बहनें – जिन्होंने ट्रान्सवाल में गिरफ्तार होने का विफल प्रयत्न किया था – नेटाल में प्रवेश करने वाली थीं । जिस प्रकार नेटाल से ट्रान्सवाल में बिना परवाने के प्रवेश करना अपराध था, उसी प्रकार ट्रान्सवाल से नेटाल में बिना परवाने के प्रवेश करना भी अपराध था । इस तरह यदि पुलिस गिरफ्तार करे तो इन बहनों को नेटाल में गिरफ्तार होना था; और यदि न करे तो उन्हें नेटाल की कोयले की खदानों के केन्द्र न्यूकैसल तक जाकर उनमें काम करने वाले गिरमिटिया मजदूरों को खदाने छोड़कर बाहर निकल जाने की वात समझानी थीं । इन बहनों की मातृभाषा तामिल थी; थोड़ी हिन्दुस्तानी भी उन्हें आती हीं थीं । और गिरमिटिया मजदूरों का अधिकतर भाग मद्रास प्रान्त के तामिल, तेलगू आदि लोगों का था । दूसरे हिन्दुस्तानी भी उन मजदूरों में काफ़ी संख्या में थे । यदि मजदूर इन बहनों की बात मानकर अपना काम छोड़ देते, तो मजदूरों के साथ उन्हें भी सरकार अवश्य हीं गिरफ्तार करती । और बहनों की गिरफ़्तारी से इन मजदूरों का उत्साह अधिक बढ़ने की पूरी संभावना थीं । इस तरह की व्यूह-रचना मन में तैयार करके मैंने ट्रान्सवाल की बहनों को अच्छी तरह समझा दी |

इसके बाद मैं फिनिक्स गया । फिनिक्स में सबके साथ बैठकर अपनी योजना के विषय में मैंने बातें कीं । सबसे पहले मैंने फिनिक्सवासी बहनों से सलाह की । मैं जानता था कि बहनों को जेल में भेजने का कदम बड़ा खतरनाक है । फिनिक्स में रहने वाली अनेक बहनें गुजराती थीं । इसलिए वे ट्रान्सवाल की उपर्युक्त बहनों जितनी तालीम पाई हुई या अनुभवी नहीं मानी जा सकती थीं । इसके सिवा, यह बात भी थीं कि गुजराती बहनों में से अधिकतर मेरी रिश्तेदार थीं । इसलिए वे केवल मेरी शरम की वजह से ही जेल जाने का विचार करतीं और फिर ऐन कसौटी के मौके पर घबरा कर या जेल में पहुँचने के बाद वहाँ के कष्टों से ऊब कर माफी माँग लेतीं, तो मुझे आघात लगता और सत्याग्रह की लड़ाई एकदम कमजोर पड़ जाती । मेरा यह निश्चय था कि अपनी पत्नी को तो मैं जेल जाने के लिए ललचाऊँगा ही नहीं । उससे ना भी नहीं कहा जा सकता था और अगर वह हाँ

कहती तो उस हाँ की कितनी क़ीमत की जाए यह कहना मेरे लिए कठिन था । मैं यह समझता था कि ऐसे खतरे के काम में पत्नी स्वयं जो कदम उठाये वही पुरुष को स्वीकार करना चाहिए; और यदि पत्नी कोई कदम न उठाये, तो पति को उससे जरा भी दुःखी नहीं होना चाहिए । इसलिए मैंने सोचा कि अपनी पत्नी के साथ इस सम्बन्ध में मैं कोई बात नहीं करूँगा । दूसरी बहनों से मैंने बात की । उन्होंने ट्रान्सवाल की बहनों की तरह बीड़ा उठा लिया और वे जेलयात्रा करने के लिए तैयार हो गईं । उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि हर तरह का दुःख सहन करके भी वे जेल की सजा पूरी करेंगी । इस सारी बातचीत का सार मेरी पत्नी ने भी जान लिया । उसने मुझसे कहा: "यह बात आप मुझे नहीं बताते, इसका मुझे दुःख है । मुझमें ऐसी क्या कमी है कि मैं जेल नहीं जा सकती ? आप इस बहनों को जिस रास्ते पर चलने की सलाह दे रहे हैं, उसी रास्ते पर मैं भी चलना चाहती हूँ ।" मैंने कहा: "मैं तुम्हें कभी दुःख पहुँचा ही नहीं सकता । इसमें अविश्वास की कोई बात नहीं है । मैं तो तुम्हारे जेल जाने से खुश ही होऊंगा । लेकिन मेरे चाहने से तुम जेल गई हो, ऐसा आभास भी मुझे पसंद नहीं होगा । ऐसे काम सबको अपनी हिम्मत से ही करने चाहिए । अगर मैं कहूँ तो मेरी बात रखने के लिए तुम आसानी से जेल जा सकती हो; लेकिन बाद में कोर्ट में खड़े होते ही तुम काँपने लगो और हार जाओ अथवा जेल के दुःखों से घबरा जाओ, तो उसमें में तुम्हारा दोष तो नहीं मानूँगा, परन्तु उससे मेरी स्थिति कैसी हो जाएगी ? उस हालत में मैं तुम्हें अपने साथ कैसे रख सकूँगा और जगत के सामने क्या मुँह लेकर खड़ा हो सकूँगा ? इसी भय से मैंने तुम्हें ललचाया नहीं ।" पत्नी ने उत्तर दिया: "में हार कर जेल से बाहर आ जाऊँ, तो मुझे अपने साथ न रखना । मेरे बच्चे भी दुःख सह सकते हैं, आप सब लोग भी सह सकते हैं, लेकिन अकेली मैं ही दुःख नहीं सह सकती – ऐसा आप मेरे बारेमें कैसे मान सकते हैं ? मैं इस लड़ाई में भाग लेकर हीं रहूँगी ।" मैंने कहा: "तो मैं भी तुम्हें इस लड़ाई में शामिल करके हीं रहूँगा । मेरी शर्तें तो तुम जानती हीं हो, मेरा स्वभाव भी तुम जानती हो । अभी भी सोचना हो तो दुबारा सोच लेना और गहरे विचार के बाद तुम्हें लगे कि लड़ाई में शरीक नहीं होना चाहिए, तो वैसा करने की तुम्हें पूरी छूट हैं । और तुम्हें जानना चाहिए कि निश्चय बदलने में अभी भी कोई शरम की बात नहीं हैं ।" उत्तर में उसने कहा: "मुझे कोई सोच-विचार करना हीं नहीं हैं । मेरा यह दृढ़ निश्चय हैं ।"

फिनिक्स के दूसरे निवासियों से भी मैंने कहा कि आप स्वतंत्र रूप से अपना निश्चय करें । सत्याग्रह की लड़ाई थोड़े समय तक चले या लम्बे समय तक, फिनिक्स आश्रम टिका रहे या मिट्टीमें मिल जाएँ, जेल जाने वाले सत्याग्रही जेल में बीमार पड़ें या स्वस्थ रहें, परन्तु कोई हार कर तो जेल से छूट हीं नहीं सकता – यह शर्त मैंने बार-बार और विविध प्रकार से उन लोगों को समझाई । सब तैयार हो गये । फिनिक्स से बाहर के सिर्फ रुस्तमजी जीवणजी घोरखोदु ही थे । उन्हें हम प्रेम से काकाजी कहते थे । उनसे मैं फिनिक्स की सारी चर्चायें गुप्त नहीं रख सकता था । और वे पीछे रहें ऐसे आदमी नहीं थे । एक बार वे जेल की सजा भोग चुके थे, लेकिन उनका आग्रह दुबारा जेल जाने का था । इस दल में शरीक होने वाले सत्याग्रहियों के नाम ये थे:

१. सौ. कस्तूरबाई मोहनदास गांधी, २. सौ. जयाकुंवर मणिलाल डॉक्टर, ३. सौ. काशी छगनलाल गांधी, ४. सौ. संतोक मगनलाल गांधी, ५. श्री पारसी रुस्तमजी जीवणजी घोरखोदु, ६. श्री छगनलाल खुशालचंद गांधी, ७. श्री रावजीभाई मणिभाई पटेल, ८. श्री मगनभाई हरिभाई पटेल, ९. श्री सोलोमन रॉयपेन, १०. भाई रामदास मोहनदास गांधी, ११. भाई राजु गोविन्दु, १२. भाई शिवपूजन बद्री, १३. भाई गोविन्द राजुलु, १४. कुप्पुस्वामी मुदलियार, १५. भाई गोकलदास हंसराज, १६. भाई रेवाशंकर रतनशी सोढा ।

इसके बाद क्या हुआ, यह अगले प्रकरण में दिया जायगा ।

१६. स्त्रियाँ जेल में

सत्याग्रहियों का यह दल सीमा लाँघ कर बग़ैर परवाने के ट्रान्सवाल में प्रवेश करने के अपराध में जेल जाने वाला था। पिछले प्रकरण में दिये गये नामों से पाठक देखेंगे कि उनमें कुछ नाम ऐसे हैं, जिन्हें प्रकट कर देने से उन नाम वालों को पुलिस शायद नहीं पकड़ती। मेरे बारेमें ऐसा ही हुआ था। दो-एक बार पकड़ने के बाद सीमा लांघते समय पुलिस ने मुझे पकड़ना छोड़ दिया था। इस दल के रवाना होने की सूचना किसी को दी नहीं गई थीं। तब फिर अखबारों को तो दी ही कैसे जाती ? इसके सिवा, इस दल से कहा गया था कि वे पुलिस को भी अपना नाम-पता न बतायें; पुलिस से इतना हीं कहें कि हम अदालत में अपने नाम बतायेंगे।

पुलिस के सामने ऐसे मामले अनेक बार आते थे। हिन्दुस्तानियों को गिरफ्तार होने की आदत पड़ जाने के बाद कई बार तो वे मनोरंजन की दृष्टि से पुलिस को परेशान करने के लिए भी अपने नाम उसे नहीं बताते थे। इसलिए पुलिस को फिनिक्स दल का व्यवहार विचित्र नहीं लगा। उसने इस दल को गिरफ्तार कर लिया। उस पर अदालत में मुकदमा चला। हर सत्याग्रही को तीन तीन महीने की सख्त क़ैद की सजा मिली (२३ सितम्बर, १९१३)

जो बहनें ट्रान्सवाल में गिरफ्तार होने के प्रयत्न में निराश हुई थीं, उन्होंने अब नेटाल में प्रवेश किया। उन्हें बग़ैर परवाने के नेटाल में प्रवेश करने के अपराध में पुलिस ने गिरफ्तार नहीं किया। यह निश्चय किया गया था कि पुलिस यदि उन्हें गिरफ्तार न करे, तो न्यूकैसल में छावनी डाल कर वे कोयले की खदानों के गिरमिटिया मजदूरों को अपना काम छोड़ने की बात समझायें। न्यूकैसल नेटाल में कोयले की खदानों का केन्द्र हैं। इन खदानों में मुख्यतः हिन्दुस्तानी मजदूर काम करते थे। बहनों ने अपना काम आरंभ कर दिया। उनका प्रभाव बिजली की तरह फैल गया। तीन पौंड के कर की करुण कहानी ने मजदूरों के हृदय को पिघला दिया। उन्होंने अपना काम छोड़ दिया। यह समाचार मुझे तार से दिया गया। मैं जितना प्रसन्न हुआ उतना ही घबराया भी। अब मैं क्या करूं ? मजदूरों की इस अद्भुत जागृति के लिए मैं तैयार नहीं था। मेरे पास धन नहीं था; और न मेरे पास इतने आदमी ही थे, जो इस काम की जिम्मेदारी सँभाल सकें। लेकिन मेरा कर्तव्य क्या हैं, यह मैं समझता था। मैंने तय किया कि मुझे न्यूकैसल जाना चाहिए। मैं तुरन्त रवाना हो गया।

अब सरकार इन बहादुर बहनों को कैसे छोड़ती ? उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया । उन्हें वही सजा मिली जो फिनिक्स के दल को मिली थी और उसी जेल में रखा गया जहाँ फिनिक्स वाले रखे गये थे (२१ अक्तूबर, १९१३) । इन घटनाओं से दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी जाग उठे। उनकी नींद टूटी। उनमें नई चेतना और नया उत्साह दिखाई दिया। परन्तु बहनों के बलिदान ने मातृभूमि हिन्दुस्तान को भी जगा दिया। सर फिरोजशा महेता आज तक तटस्थ रहे थे। १९०१ में उन्होंने मुझे उलाहना देकर दक्षिण अफ्रीका न जाने की बात समझाई थीं।

उनका मत था कि जब तक हिन्दुस्तान अपनी स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक प्रवासी भारतीयों के लिए कुछ नहीं किया जा सकता । दक्षिण अफ्रीका की सत्याग्रह की लड़ाई ने भी उनको बहुत कम प्रभावित किया था । परन्तु स्त्रियों की जेल ने उन पर जादूका-सा असर डाला । उन्होंने स्वयं बम्बई के टाउन-हॉल में दिये गये अपने भाषण में कहा कि स्त्रियों की जेल की सजा ने मेरी शांति भी भंग कर दी है । हिन्दुस्तान से अब शांत होकर बैठा हीं नहीं जा सकता ।

स्त्रियों की वीरता का वर्णन भला किन शब्दों में किया जाए ! सभी को नेटाल की राजधानी मेरित्सबर्ग के जेल में रखा गया था । वहाँ उन्हें काफ़ी कष्ट दिये गये । उनके भोजन के बारेमें जरा भी ध्यान नहीं रखा गया । मेहनत में उन्हें धोबी का काम सौंपा गया । सरकार ने लगभग सजा खतम होने तक बाहर से भोजन पहुँचाने पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा रखा था । एक बहन का एक विशेष प्रकार का भोजन करने का व्रत था । बड़ी कठिनाई के बाद जेल-अधिकारियों ने उसे विशेष भोजन की इजाजत दी, लेकिन जो भोजन दिया जाता था वह इतना खराब होता था कि खाया नहीं जाता था । जैतून के तेल की उस बहन को बड़ी ज़रूरत थीं । पहले तो वह नहीं दिया गया; कुछ दिन बाद दिया गया, लेकिन वह पुराना था और उतरा हुआ था । जब उस बहन ने अपने पैसे से यह तेल मँगाने की प्रार्थना की, तो उत्तर में कहा गया: "यह कोई होटल नहीं हैं । जो भोजन दिया जाएँ वहीं तुम्हें खाना होगा ।" वह बहन जब जेल से बाहर निकली तब हाड़-पिंजर मात्र रह गई थीं । बड़े प्रयत्न से हीं वह बची ।

दूसरी एक बहन जानलेवा बुखार लेकर जेल से रिहा हुई । उसके इस बुखार ने उसे जेल से रिहा होंने के कुछ ही दिन बाद भगवान के पास पहुँचा दिया (२२ फरवरी, १९१४) । उसे मैं कैसे भुला सकता हूँ ? उसका नाम वालियाम्मा था । वह १६ वर्ष की बाला थीं । मैं उसे मिलने गया तब वह रोग-शय्या पर पड़ी थीं । वह कद में ऊँची थी, इसीलिए उसका लकड़ी जैसा कृश शरीर भयंकर दिखाई देता था ।

मैंने पूछा, "वालियाम्मा, जेल जाने का तुम्हें पश्चात्ताप तो नहीं हैं ?"

"पश्चात्ताप क्यों होगा? मुझे फिर से पकड़ा जाए तो मैं फिर जेल जाने को तैयार हूँ ।"

"लेकिन इसका परिणाम तुम्हारी मौत में आये तो?" मैंने पूछा ।

"भले आये । देश के ख़ातिर मरना कौन पसंद न करेगा?"

हमारी इस बातचीत के बाद कुछ हीं दिनों में वालियाम्मा मर गई । उसके शरीर का नाश हो गया, परन्तु वह बाला अपना नाम अमर कर गई । वालियाम्मा की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए जगह-जगह शोकसभायें हुईं और कौम ने इस पवित्र बाला के स्मरणार्थ 'वालियाम्मा हॉल' बनाने का निर्णय किया । यह हॉल बनाने का धर्म अभी तक कौम ने पूरा नहीं किया हैं । उसमें अनेक विघ्न पैदा हो गये । कौम में फूट फैल गई । मुख्य

कार्यकर्ता एक के बाद एक चल बसे । लेकिन पत्थर और चूने का हॉल बनाया जाए या न बनाया जाए, वालियाम्मा की सेवा का कभी नाश नहीं होगा । इस सेवा का हॉल तो वह अपने हीं हाथों से बना कर गई हैं । उसकी मूर्ति आज भी अनेक लोगों के हृदय-मंदिर में बिराज रही हैं । और जब तक इस दुनिया में भारतवर्ष का नाम जीवित रहेगा तब तक दक्षिण अफ्रीका के इतिहास में वालियाम्मा भी जीवित रहेगी ।

इन बहनों का बलिदान विशुद्ध था । वे बेचारी कानून की बारीकियाँ नहीं जानती थीं । उनमें से कई बहनों को देश की कोई कल्पना नहीं थीं । उनका देशप्रेम केवल श्रद्धा पर निर्भर था । उनमें से कुछ बहनें निरक्षर थीं; इसलिए अखबार पढ़ना तो वे जान हीं कैसे सकती थीं? परन्तु इतना वे जानती थीं कि कौम के स्वाभिमान-रूपी वस्त्र का हरण हो रहा हैं । उनकी जेलयात्रा उनका आर्तनाद थीं; शुद्ध यज्ञ थीं । हृदय की ऐसी प्रार्थना ईश्वर सुनता है । यज्ञ की शुद्धता में हीं यज्ञ की सफलता निहित हैं । ईश्वर भावना का भूखा है । भक्ति से अर्थात् निःस्वार्थ बुद्धि से अर्पण किया गया पत्र, पुष्प या जल भी ईइवर प्रेम से स्वीकार करता है और उसका करोड़ गुना फल देता है । भोला सुदामा शुद्ध भावना से मुट्ठीभर चावलों की भेंट लेकर श्रीकृष्ण के पास गया था, लेकिन उससे सुदामा का वर्षों का अभाव और भूख मिट गई । अनेक लोगों के जेल जाने से कोई फल न भी निकले, परन्तु एक ही शुद्ध आत्मा द्वारा भक्तिपूर्वक किया हुआ त्याग कभी असफल नहीं होता । कौन जानता है कि दक्षिण अफ्रीका में किस-किसका यज्ञ फलदायी सिद्ध हुआ है? परन्तु इतना तो हम जानते ही हैं कि वालियाम्मा का यज्ञ अवश्य फलदायी सिद्ध हुआ है । यही बात अन्य बहनों के यज्ञ के बारेमें भी कही जा सकती हैं ।

स्वदेश-यज्ञ में और जगत-यज्ञ में असंख्य आत्माओं ने अपनी आहुति दी हैं, आज भी असंख्य आत्मायें अपनी आहुति दे रही हैं और भविष्य में भी देंगी । यही यथार्थ है, क्योंकि कोई नहीं जानता कि शुद्ध कौन है । परन्तु सत्याग्रही इतना तो समझते ही हैं कि यदि एक भी सत्याग्रही उनमें शुद्ध हो, तो उसका यज्ञ फल उत्पन्न करने के लिए काफ़ी होता है । पृथ्वी सत्य के बल पर टिकी हुई है । असत् - असत्य - का अर्थ है : 'नहीं'; सत् - सत्य - का अर्थ है: 'है' । असत् का जब कोई अस्तित्व ही नहीं हैं, तो उसकी सफलता कैसे हो सकती हैं? और जो 'है' उसका नाश कौन कर सकता हैं? इतने में सत्याग्रह का संपूर्ण शास्त्र समा जाता हैं ।

१७. मजदूरों का प्रवाह

न्यूकैसल के पास की कोयले की खदानों के हिन्दुस्तानी मजदूरों पर बहनों के इस त्याग का अद्भुत असर पड़ा । उन्होंने अपने औजार छोड़ दिये और उनका प्रवाह शहर की ओर बहने लगा । इसका पता चलते हीं मैंने फिनिक्स छोड़ा और मैं न्यूकैसल जा पहुँचा ।

ऐसे मजदूरों के अपने मकान नहीं होते । खदानों के मालिक ही उनके लिए घर बनाते हैं और मालिक हीं उनके रास्तों पर बत्तियाँ लगाते हैं । मालिक हीं उन्हें पानी भी देते हैं । इसलिए मजदूर हर तरह से मालिकों के अधीन रहते हैं । और, जैसा कि तुलसीदास ने कहा हैं :

'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।'

ये हड़ताली मेरे पास तरह-तरह की शिकायतें लाने लगे । कोई कहते कि मालिक रास्तों की बत्तियाँ बंद कर देते हैं, कोई कहते कि मालिक हमारा पानी बंद कर देते हैं । तीसरे कहते कि मालिक हड़तालियों की गृहस्थी का सामान कोठरियों से बाहर फेंक देते हैं । सैयद इब्राहीम नामक एक पठान ने मेरे पास आकर अपनी पीठ दिखाई और बोला: "यह देखो । मुझे कैसा मारा है ! मैंने आपके लिए उन बदमाशों को छोड़ दिया हैं । आपका यही हुक्म हैं । मैं पठान हूँ; और पठान कभी मार खाता नहीं हैं, मार मारता हैं ।"

मैंने उत्तर में कहा: "भाई, तुमने बहुत ही अच्छा काम किया है । इसी को मैं सच्ची बहादुरी कहता हूँ । तुम्हारे जैसे लोगों के बल पर ही हम जीतेंगे ।"

मैंने इस तरह उसे बधाई तो दी, लेकिन मन में सोचा कि अगर ऐसा व्यवहार अनेक मजदूरों के साथ हुआ तो हड़ताल चलेगी नहीं । मार की बात को छोड़ दें, तो मालिकों की शिकायत भी क्या की जाए? हड़ताल करने वाले मजदूरों की बत्ती, पानी वगैरा की सुविधायें मालिक काट दें, तो उनकी शिकायत के लिए अधिक कारण नहीं रहता । लेकिन कारण हो या न हो, मजदूर ऐसी स्थिति में कैसे टिक सकते हैं? मुझे कोई उपाय सोचना चाहिए । अथवा लोग केवल थक कर काम पर लौट जाएँ, इसकी अपेक्षा अधिक अच्छा यही होगा कि वे अपनी हार कबूल करके वापिस काम पर जाएँ । लेकिन ऐसी सलाह मेरे मुँह से मजदूर कभी नहीं सुनेंगे । एकमात्र मार्ग यहीं रह जाता था कि मजदूर मालिकों की कोठरियां छोड़ दें - अर्थात् वे 'हिजरत' करें ।

मजदूर कोई पाँच-पचीस नहीं थे, बल्कि सैकड़ों थे; और उनके हजारों होने में भी कोई देर नहीं लगती । उन सबके लिए मकान मैं कहाँ से लाऊँ ? खाना कहाँ से लाऊँ ? हिन्दुस्तान से मैं पैसा मँगाना नहीं चाहता था । वहाँ से पैसे की जो वर्षा आगे चलकर हुई थीं, वह अभी आरंभ नहीं हुई थीं । दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी व्यापारी इतने भयभीत हो गये थे कि वे खुले तौर पर मेरी कोई मदद करने को तैयार नहीं थे । उनके व्यापारिक

सम्बन्ध खदानों के मालिकों और अन्य गोरों के साथ थे, इसलिए वे खुले तौर पर मुझसे कैसे मिलते ? मैं जब न्यूकैसल जाता तब इन व्यापारियों के यहीं ठहरा करता था । लेकिन इस बार मैंने स्वयं हीं उनका रास्ता सरल कर दिया । मैंने दूसरी जगह ठहरने का निश्चय किया ।

मैं पहले बता चुका हूँ कि जो बहनें ट्रान्सवाल से आई थीं वे भारत के द्राविड़ प्रदेश की थीं । उनका पड़ाव एक ईसाई द्राविड़ परिवार में था । वह परिवार मध्यम वर्ग का था । उसके पास ज़मीन का एक छोटासा टुकड़ा था और दो-तीन कमरों वाला एक मकान था । मैंने इसी परिवार के साथ ठहरने का निश्चय किया । परिवार के मुखिया का नाम श्री डी. लाज़रस था । गरीब को किसका भय हो सकता है? सब लोग मूल गिरमिटिया परिवार के थे, इसलिए उन्हें या उनके सगे-संबंधियों को तीन पौंड का कर देना पड़ता था । गिरमिटिया हिन्दुस्तानियों के दुःखों से वे अच्छी तरह परिचित थे, इसलिए इस परिवार के लोगों की उन लोगों के साथ पूरी सहानुभूति थीं । इस परिवार ने मेरा हार्दिक स्वागत किया । मेरा स्वागत कभी भी मित्रों के लिए सरल नहीं रहा । परन्तु इस बार तो मेरा स्वागत करने का अर्थ था आर्थिक नाश का स्वागत करना; इसके फलस्वरूप शायद परिवार के लोगों को जेल का भी स्वागत करना पड़ता । ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए धनी व्यापारी थोड़े ही तैयार हो सकते थे? मैं अपनी और उनकी मर्यादाओं को समझता था, इसलिए मैंने उन्हें ऐसी विषम स्थिति में नहीं डाला । बेचारे लाज़रस थोड़ी तनखाह खोनी पड़े तो खो सकते थे । उन्हें जेल में ले जाएँ तो वे जेल भी जा सकते थे । लेकिन वे अपने में भी गरीब गिरमिटिया मजदूरों का दुःख चुपचाप कैसे बरदाश्त कर सकते थे? अपने ही परिवार में ठहरी हुई बहनों को उन्होंने गिरमिटिया लोगों की मदद करने के कारण जेल जाते देखा था । भाई लाज़रस ने सोचा कि गिरमिटियों के प्रति भी उनका कुछ कर्तव्य हैं, इसलिए उन्होंने मुझे अपने यहाँ ठहराया । मुझे ठहराया तो सही, परन्तु अपना सब कुछ उन्होंने दे दिया । उनके घर मैं गया उसके बाद वह घर धर्मशाला बन गया । हर तरह के सैकड़ों आदमी उनके यहाँ आते और जाते थे । उनके घर के आसपास की ज़मीन लोगों से खचाखच भरी रहती थी । उनके रसोई-घर में चौबीसों घंटे खाना बनता रहता था । उनकी पत्नी ने रसोई-घर में दिन-रात जीतोड़ परिश्रम किया । तिस पर भी दोनों पति-पत्नी के चेहरों पर हास्य खेलता रहता था । उनके चेहरों पर मैंने कभी भी नाराजी नहीं देखी ।

लेकिन लाज़रस सैकड़ों मजदूरों को खाना नहीं खिला सकते थे । मजदूरों से मैंने कह दिया कि उन्हें अपनी हड़ताल को स्थायी मानकर मालिकों के दिये हुए झोंपड़े छोड़ देने चाहिए । जो सामान बेचने जैसा हो उसे बेच डालना चाहिए । बाकी का सामान अपनी कोठरियों में रहने देना चाहिए । मालिक उसे नहीं छुएंगे । लेकिन अगर अधिक बदला लेनेके लिए मालिक उनका सामान बाहर फेंक दें, तो यह खतरा उठाने के लिए भी उन्हें तैयार रहना चाहिए । जब वे मेरे पास आये तब अपने साथ पहनने के कपड़ों और ओढ़ने के कम्बल के सिवा और कुछ न लायें । जब तक हड़ताल चलेगी और जब तक वे जेल से बाहर रहेंगे तब तक मैं उनके साथ ही

रहूँगा और उनके साथ ही खाऊं-पिऊंगा । इस शर्त पर अगर वे अपने झोंपड़ों को छोड़कर बाहर आयेंगे, तो ही वे हड़ताल पर टिक सकेंगे और तो ही कौम की जीत होगी । ऐसा करने की हिम्मत जिसमें न हो उसे जाकर अपने काम पर लग जाना चाहिए । जो लोग फिर से अपने काम पर लग जाएँ, उनका कोई अपमान न करे; कोई उन्हें परेशान न करे । मुझे याद नहीं आता कि किसी भी मजदूर ने मेरी इन शर्तों को मानने से इनकार किया हो । मैंने कहा उसी दिन से हिजरतियों का – गृहत्यागियों का प्रवाह आरंभ हो गया । सब मजदूर अपने बाल-बच्चों को साथ लेकर और सिरों पर कपड़ों की गठरियाँ रख कर मेरे पास आने लगे । मेरे पास मकान के नाते केवल ज़मीन थीं । सौभाग्य से वह मौसम न तो वर्षा का था, न जाड़े का था ।

भोजन के बारे में मेरा विश्वास था कि हमारा व्यापारी-वर्ग हमारे खान-पान की व्यवस्था करने में पीछे नहीं रहेगा । न्यूकैसल के हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने रसोई बनाने के लिए बरतन दिये और दाल-चावल की बोरियाँ भेजीं । दूसरे शहरों से भी दाल, चावल, सागभाजी, मसालों वगैरा की वर्षा होने लगी । मैं आशा करता था उससे अधिक मात्रा में ये वस्तुएँ मेरे पास आने लगीं । सब लोग जेल जाने को तैयार नहीं थे, परन्तु सबकी सहानुभूति तो कौम की लड़ाई के साथ थी ही । सब लोग कौम की लड़ाई में यथाशक्ति मदद करने को तैयार थे । जो लोग पैसे या खाद्य-वस्तुओं की मदद नहीं कर सकते थे, उन्होंने स्वयंसेवक के रूप में अपनी सेवायें देकर मदद की । इन सैकड़ों अनजान और अशिक्षित मजदूरों और उनके परिवार के लोगों को सँभालने के लिए जाने-पहचाने तथा समझदार स्वयंसेवकों की ज़रूरत थीं । ऐसे स्वयंसेवक हमें मिल गये । उन्होंने हमारी अमूल्य सहायता की । उनमें से कई गिरफ्तार भी किये गये । इस प्रकार सभी लोगों ने यथाशक्ति हमारी सहायता की और हमारे रास्ते को सरल बनाया ।

लोगों की भारी भीड़ जम गई । इतने अधिक और निरन्तर बढ़ते रहने वाले मजदूरों को एक ही स्थान पर बग़ैर काम-धन्धे के रखना यदि असंभव नहीं तो भयंकर काम अवश्य था । उनकी शौचादि की आदतें तो अच्छी थीं ही नहीं । इस संघ में कुछ आदमी अपराध करके जेल की सजा भोगे हुए भी थे । कुछ तो हत्या का अपराध करनेवाले भी थे; कुछ चोरी के अपराध में जेल भोगकर बाहर आये थे । कुछ व्यभिचार के लिए जेल काट कर आये थे । हड़ताल करनेवाले मजदूरों में नैतिकता की दृष्टि से मैं कोई भेद नहीं कर सकता था । भेद करने जाता तो भी कौन अपना दोष स्वीकार करने लगा ? मैं किसी का काजी बनता तो विवेकहीन कहलाता । मेरा कार्य केवल हड़ताल का संचालन करना था । उसमें दूसरे सुधारों को नहीं मिलाया जा सकता था । छावनी में नैतिक नियमों का पालन हो, यह देखना मेरा काम था । उसमें आने वाले लोग भूतकाल में कैसे थे, इसकी जाँच करना मेरा धर्म नहीं था । ऐसे पचरंगी लोगों का समुदाय एक स्थान पर स्थिर होकर बिना किसी काम के रहे, तो उनके बीच अपराध हुए बिना रह ही नहीं सकते थे । जितने दिन हम लोग वहाँ रहे उतने शांति से बीते, यही एक चमत्कार था । सब कोई ऐसी शांति से रहे, मानो सब ने अपना आपद्-धर्म समझ लिया हो ।

मुझे अपनी समस्या का हल मिल गया । इस समूह को मुझे ट्रान्सवाल ले जाना चाहिए और जिस प्रकार फिनिक्स के १६ सत्याग्रही गिरफ्तार हो गये उसी प्रकार इस समूह को भी जैल में बैठा देना चाहिए । इन लोगों को थोड़ी थोड़ी संख्या में बाँट कर हर टुकड़ी से सीमा पार करानी चाहिए – यह विचार ज्यों हीं मन में उठा त्यों हीं मैंने उसे छोड़ दिया । उस पर अमल किया जाता तो समय बहुत चला जाता और सामुदायिक जेलयात्रा का जो असर पड़ता वह थोड़े-थोड़े मजदूरों के जेल जाने से नहीं पड़ता ।

मेरे पास लगभग पाँच हजार आदमी एकत्र हो गये थे । इतने लोगों को ट्रेन से ले जाना संभव नहीं था । इतने पैसे मैं कहाँ से लाता? और ट्रेन से ले जाने में उन सबकी परीक्षा नहीं हो सकती थी । न्यूकैसल से ट्रान्सवाल की सीमा ३६ मील दूर थी । नेटाल का सरहदी गाँव चार्ल्सटाउन और ट्रान्सवाल का वॉक्सरस्ट था । अंत में मैंने पैदल यात्रा करने का निश्चय किया । मजदूरों के साथ मैंने चर्चा की । उनके साथ उनकी पत्नियाँ और बालक भी थे । कुछ लोगों ने आनाकानी की । लेकिन हृदय को कड़ा बनाने के सिवा मेरे पास दूसरा इलाज हीं नहीं था । मैंने उनसे कह दिया कि जिन्हें वापस खदानों पर जाना हो वे जा सकते हैं । छेकिन कोई वापस जाने को तैयार नहीं थे । जो लोग अपंग थे उन्हें ट्रेन से भेजने का हमने निर्णय किया । बाकी सब लोगों ने पैदल चार्ल्सटाउन जाने की तैयारी बताई । यह मंजिल दो दिन में तय करनी थीं । ऐसा करने से अंत में सब लोग खुश हो गये । मजदूरों ने यह भी समझा कि इस कदम से बेचारे लाज़रस और उनके परिवार को थोड़ी राहत मिलेगी । न्यूकैसल के गोरों के मन में महामारी फैलने का डर पैठ गया था और वे महामारी को रोकने के लिए अनेक प्रकार के उपाय करना चाहते थे । लेकिन हमारे चार्ल्सटाउन की दिशा में कूच करने से वे भयमुक्त हो गये और उनके उपायों के भय से हम लोग भी मुक्त हो गये ।

इस कूचकी हमारी तैयारियाँ चल रही थीं उसी बीच खदान मालिकों से मिलने का निमंत्रण मेरे पास आया । मैं डरबन गया । लेकिन इस किस्से के लिए नया प्रकरण ज़रूरी होगा |

१८. मालिकों से मुलाकात और उसके बाद

खदान-मालिकों के निमंत्रण पर मैं उनसे मिलने डरबन गया । मैंने देखा कि मालिकों पर मजदूरों की हड़ताल का कुछ असर हुआ है । लेकिन उनके साथ होने वाली बातचीत से कोई लाभ होगा, ऐसा मुझे विश्वास नहीं था । लेकिन सत्याग्रही की नम्रता की कोई सीमा नहीं होती । वह समझौते का एक भी मौका हाथ से जाने नहीं देता; और इस कारण से कोई उसे कायर माने, तो वह अपने को कायर मानने देता है । जिसके हृदय में विश्वास है और विश्वास से उत्पन्न होने वाला बल है, वह दूसरों की अवगणना की परवाह नहीं करता । वह अपने आंतरिक बल पर निर्भर करता है । इसलिए वह सबके प्रति नम्र बना रहता है और जगत के मत को शिक्षित बना कर उसे अपने कार्य की ओर आकर्षित करता है ।

इसलिए मुझे मालिकों का निमंत्रण स्वागत के योग्य मालूम हुआ । मैं उनके पास गया । मैंने देखा कि वहाँ के वातावरण में गरमी थी । मुझसे सारी परिस्थिति समझने के बजाय मालिकों के प्रतिनिधि ने मुझसे जिरह शुरू कर दी । उसे मैंने समुचित उत्तर दिये ।

मैंने उससे कहा: "इस हड़ताल का अंत करना आपके हाथ में है ।"

मालिकों की ओर से उत्तर दिया गया: "हम कोई अधिकारी नहीं हैं ।"

मैंने कहा: "आप अधिकारी नहीं हैं, फिर भी आप बहुत-कुछ कर सकते हैं । आप मजदूरों का केस उनकी ओर से लड़ सकते हैं । यदि आप सरकार से तीन पौंड का कर रद करने की माँग करें, तो मैं नहीं मानता कि वह रद करने से इनकार करेगी । आप दूसरे गोरों के मत को तैयार कर सकते हैं ।"

"लेकिन सरकार के लगाये हुए उस करके साथ मजदूरों की हड़ताल का क्या सम्बन्ध है? अगर खदान-मालिक मजदूरों को कष्ट देते हों, तो आप बाकायदा उनके खिलाफ अरजी करें ।"

"मैं मजदूरों के हाथ में हड़ताल के सिवा अन्य कोई उपाय नहीं देखता । तीन पौंड का कर भी मालिकों के ख़ातिर उन पर लगाया गया है । मालिक मजदूरों की मेहनत तो चाहते हैं, लेकिन उनकी स्वतंत्रता नहीं चाहते । इसलिए वह कर दूर कराने के लिए यदि मजदूर हड़ताल करते हैं, तो उसमें मुझे कहीं भी अनीति अर्थात् मालिकों के प्रति अन्याय नहीं दिखाई देता ।"

"तब क्या आप मजदूरों को काम पर जाने की सलाह नहीं देंगे?"

"मैं लाचार हूँ; ऐसा मैं नहीं कर सकता ।"

"इसका परिणाम आप जानते हैं?"

"मैं सावधान हूँ । अपनी जिम्मेदारी का मुझे पूरा भान है ।"

"हाँ, इसमें आपका तो क्या बिगड़ने वाला हैं? लेकिन हड़ताल से जो नुकसान इन बहकाये हुए मजदूरों को होगा, उसकी भरपाई आप कर देंगे?"

"मजदूरों ने सोच-समझ कर और अपने नुकसान को ध्यान में रखकर यह हड़ताल की हैं । स्वाभिमान की हानि से अधिक बड़े नुकसान की मैं कल्पना नहीं कर सकता । मजदूर इस बुनियादी बात को समझ गये हैं, यही मेरे लिए गहरे संतोष की बात हैं ।

मालिकों के प्रतिनिधि से मेरी इस प्रकार बातें हुईं । सारी बातचीत इस समय मुझे याद नहीं आती । बातचीत के जो मुद्दे मुझे याद रहे हैं, उन्हें मैंने संक्षेप में यहाँ दे दिया है । मालिकों को अपना केस कमजोर लगा, यह तो मैं देख सका था; क्योंकि उनका विचार-विमर्श सरकार के साथ पहले से ही चल रहा था ।

डरबन जाते और वहाँ से लौटते हुए मैंने देखा कि ट्रेन के गार्डों पर और अन्य लोगों पर इस हड़ताल का और हड़तालियों की शांति का बहुत अच्छा असर पड़ा था । मैं तो तीसरे दर्ज में ही यात्रा करता था । परन्तु वहाँ भी गार्ड वगैरा रेलवे-अधिकारी मुझे घेर लेते थे और रस तथा आग्रह के साथ मुझसे सारी बातें पूछते और सब हड़ताल की विजय चाहते थे । मेरे लिए वे अनेक प्रकार की छोटी-मोटी सुविधायें कर देते थे । उनके साथ मैं निर्मल सम्बन्ध रखता था । एक भी सुविधा के लिए मैं उन्हें लालच नहीं देता था । वे स्वेच्छा से मेरे प्रति सौजन्य दिखाते, तो मुझे प्रसन्नता होती थी; परन्तु सौजन्य को खरीदने का मैंने कभी प्रयत्न ही नहीं किया । गरीब, अनपढ़, बेसमझ मजदूर इतनी दृढ़ता दिखा सकते हैं, यह उन्हें आश्चर्यजनक लगता था । और, दृढ़ता तथा बहादुरी तो ऐसे गुण हैं, जिनका प्रभाव विरोधियों पर भी पड़े बिना नहीं रहता ।

मैं न्यूकैसल लौटा । मजदूरों का प्रवाह अभी भी चारों दिशाओं से निरन्तर बहता चला आ रहा था । मैंने हड़तालियों को सारी स्थिति बारीकी से समझा दी । यह भी कहा कि उन्हें वापस काम पर जाना हो तो जा सकते हैं । मालिकों की धमकियों की बात भी मैंने उन सबसे कह सुनाई । भविष्य के खतरों का चित्र भी उनके सामने रख दिया । मैंने उनसे कहा कि लड़ाई कब पूरी होगी, यह बता सकना कठिन है । जेल के दुःखों का वर्णन भी उनके सामने कर दिया । लेकिन सब अपनी बात पर डटे रहे । उन्होंने निर्भयता से मुझे उत्तर दिया: "जब तक आप लड़ने को तैयार रहेंगे तब तक हम कभी हारने वाले नहीं हैं । हम दुःखों को समझते हैं, इसलिए आप हमारी चिन्ता न करें।"

अब तो हमारे लिए सिर्फ कूच करना ही बाकी था । एक दिन शाम को मैंने उन लोगों से कह दिया कि कल प्रातःकाल हमें अपना कूच आरम्भ करना है (२८ अक्तूबर, १९१३) । रास्ते पर चलने के नियम मैंने उनके सामने पढ़ सुनाये । पाँच-छह हजार आदमियों के समुदाय को सँभालना कोई खेल नहीं था । उनकी निश्चित संख्या तो

मेरे पास थी ही नहीं । न मेरे पास उनके नाम और पते ही थे । जितने आदमी मेरे साथ रहना चाहते थे उतनों ही से मुझे संतोष था । प्रत्येक हड़ताली को डेढ़ पौंड डबल-रोटी और ढाई तोला शक्कर के सिवा अन्य कोई भोजन देने की शक्ति मुझ में नहीं थीं । मैंने उनसे कहा था कि रास्ते में अगर कोई हिन्दुस्तानी व्यापारी कुछ देगा, तो उसे हम स्वीकार करेंगे । लेकिन कुछ नहीं मिला तो सबको डबल-रोटी और शक्कर से ही संतोष करना होगा। बोअर-युद्ध और जूलू-विद्रोह के समय जो अनुभव मुझे प्राप्त हुए थे, वे इस समय मेरे लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए । एक शर्त यह भी थी कि साथ में कोई ज़रूरत से ज़्यादा कपड़े न रखें । रास्ते में किसी की कोई चीज नहीं ली जा सकती । अधिकारी या कोई अंग्रेज रास्तेमें मिले और वे गाली दें अथवा मार मारें, तो वह भी सहन कर लिया जाएँ । पुलिस गिरफ्तार करे तो गिरफ्तार हो जाना चाहिए; मैं गिरफ्तार हो जाऊँ तो भी कूच उन्हें जारी रखना चाहिए – आदि-आदि बातें मैंने हड़तालियों को समझाई । मेरी गिरफ़्तारी के बाद एक के बाद एक कौन व्यक्तित नेता के रूप में नियुक्त होंगे, उनके नाम भी मैंने सबको बता दिये ।

सब लोग मेरी सूचनाओं को समझ गये । हमारा काफिला सहीसलामत चार्ल्सटाउन पहूँच गया । चार्ल्सटाउन में हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने खूब मदद दी । उन्होंने अपने मकानों का उपयोग हमें करने दिया । मस्जिद के मैदान में खाना बनाने की इजाजत दी । कूच के समय जो खाना दिया जाता था, वह स्थायी छावनी में नहीं रहता था । इसलिए वहाँ रसोई बनाने के लिए बरतनों की ज़रूरत पड़ती थी । ये बरतन भी व्यापारी हमें खुशी से देते थे । चावल वगैरा तो मेरे पास बड़ी मात्रा में जमा हो गये थे । उसमें भी व्यापारियों ने अपना हिस्सा दिया था ।

चार्ल्सटाउन एक छोटासा गाँव था । उसकी आबादी उस समय मुश्किल से १००० आदमियों की थी । उसमें इन कई हजार हड़तालियों का समावेश करना कठिन था । सिफ स्त्रियों और बच्चों को ही हमने मकानों में ठहराया । बाकी के सब लोगों ने मैदान में ही पड़ाव डाला ।

चार्ल्सटाउन के हमारे मधुर संस्मरण अनेक हैं; कुछ संस्मरण कड़वे भी हैं । मधुर संस्मरणों में मुख्यतः चार्ल्सटाउन के स्वास्थ्य-विभाग से और उस विभाग के अधिकारी डॉ. ब्रिस्को से सम्बन्ध रखते हैं । वे चार्ल्सटाउन की आबादी इतनी बढ़ी हुई देख कर घबरा गये । लेकिन कोई सख्त कदम उठाने के बजाय वे मुझसे मिले और कुछ सूचनायें देकर मेरी मदद करने के लिए भी कहा । यूरोप के लोग तीन बातों की सावधानी रखते हैं, जब कि हम हिन्दुस्तानी नहीं रखते । वे हैं: १. पानी की स्वच्छता, २. रास्तों की सफाई और ३. पाखानों की सफाई । डॉ. ब्रिसको ने मुझसे कहा कि मैं किसी को रास्तों पर पानी न फेंकने दूँ, जहाँ-तहाँ लोगों को पेशाब न करने दूँ और हर कहीं कूड़ा-कचरा न डालने दूँ । वे बतायें उसी जगह मैं लोगों को रखूँ और उसकी सफाई की जिम्मेदारी अपने सिर ले लूँ । ये सब बातें मैंने उनका उपकार मान कर स्वीकार कीं । इससे मैंने पूर्ण शांति का अनुभव किया ।

हमारे लोगों से इन नियमों का पालन कराना बड़ा कठिन काम था । लेकिन यात्रियों और मेरे साथियों ने इस काम को सरल बना दिया । मेरा यह सदा का अनुभव है कि जो सेवक सेवा करता है वह अगर लोगों पर हुक्म न चलाये तो बहुत काम हो सकता है । सेवक स्वयं शरीर-श्रम करे, तो दूसरे लोग भी शरीर-श्रम करेंगे । इसका काफ़ी अनुभव हमें इस छावनी में मिला । मेरे साथी और मैं झाड़ू लगाने, मैला उठाने और ऐसे ही दूसरे कामों में जरा भी नहीं हिचकिचाते थे । इसलिए दूसरे लोग भी बड़े उत्साह से ये काम करते थे । यदि हम ये काम न करते, तो किसे हुक्म देते ? यदि सब कोई सरदार बनकर दूसरों को हुक्म दें, तो अंत में कोई काम पूरा ही न हो । परन्तु जहाँ सरदार खुद सेवक बन जाता है वहाँ दूसरे लोग सरदारी का दावा कर ही कैसे सकते हैं ?

साथियों में से कैलनबैक पहले ही चार्ल्सटाउन पहूँच गये थे । कुमारी श्लेसिन भी हाजिर हो गई थी । उस युवती की मेहनत, सावधानी और ईमानदारी की जितनी प्रशंसा करूं उतनी थोड़ी है । हिन्दुस्तानी साथियों में स्व. पी. के. नायडू और क्रिस्टोफर के नाम मुझे इस समय याद आते हैं । दूसरे लोग भी थे । इन स बने कड़ी मेहनत करके इस काम में बहुत बड़ी मदद की । भोजन में सबको चावल और दाल दिये जाते थे । सागभाजी खूब मिल जाती थी । परंतु उसे अलग से पकाने की गुंजाइश नहीं थी, इसलिए उसे दाल में मिला दिया जाता था । अलग से सागभाजी पकाने का न तो हमारे पास समय था, न इतने बरतन थे । रसोई-घर चौबीसों घंटे चलता था, क्योंकि भूखे-प्यासे आदमी किसी भी समय चले आते थे । न्यूकैसल में तो किसी को रहना ही नहीं था । रास्ता सब कोई जानते थे । इसलिए खदान से निकल कर मजदूर सीधे चार्ल्सटाउन पहूँच जाते थे ।

जब में लोगों के धैर्य और सहनशीलता का विचार करता हूँ तब मेरे सामने ईश्वर की महिमा मूर्तिमन्त हो उठती है । रसोई बनाने वालों का मुखिया मैं था । कभी दाल में पानी अधिक गिर जाता, तो कभी दाल कच्ची रह जाती । कभी साग अच्छी तरह न सीजता, तो कभी भात भी कच्चा रह जाता । ऐसा भोजन हँसते मुँह खाने वाले लोग मैंने दुनिया में बहुत नहीं देखे हैं । इसके विपरीत, दक्षिण अफ्रीका के जेलों में मुझे ऐसा भी अनुभव हुआ कि अच्छे शिक्षित माने जाने वाले लोग भी भोजन मात्रा में थोड़ा कम मिलता, देरसे मिलता या कच्चा मिलता, तो आपे से बाहर हो जाते थे ।

खाना बनाने के बजाय खाना परोसने का काम अधिक कठिन था । और यह काम केवल मेरे ही हाथ में रहता था । कच्चे-पके खाने का हिसाब तो मुझे ही लोगों को देना होता था । खाना कम हो और खाने वाले बढ़ जाएँ तब सबको कम खाना देकर सन्तुष्ट करने का काम भी मुझे ही करना होता था । जब मैं बहनों को कम खाना देता तो वे एक क्षण के लिए मेरे सामने उलाहने की नजर से देखती और फिर मेरी स्थिति को समझ कर हँसती हँसती चल देती थीं । उन दृश्यों को मैं जीवन में कभी भूल नहीं सकूँगा । मैं उनसे कहता: "क्या करूँ? मैं लाचार हो गया हूँ । मेरे पास बना हुआ खाना कम है और खाने वाले लोग ज़्यादा हैं । इसलिए मुझे सबके हिस्से में

जितना आ सकता है उतना ही देना होगा ।" इतने से वे स्थिति को समझ लेती थीं और 'संतोषम्' कहकर हँसती हुई चली जाती थीं ।

ये तो सब मधुर संस्मरण हुए । कड़वे संस्मरण ये हैं कि लोगों को घड़ी भर की भी फुरसत मिलती तो वे आपस में लड़ने-झगड़ने लूग जाते थे । इससे बुरी बात तो यह है कि छावनी में व्यभिचार के भी उदाहरण मिल जाते थे । स्त्रियों और पुरुषोंको एकसाथ रखना ही पड़ता था, क्योंकि भीड़ का पार नहीं था । व्यभिचारी को लज्जा तो होती ही कैसे ? ऐसी घटनायें घटते ही मैं मौके पर जा पहुँचा । व्यभिचारी शरमिन्दा हुए । उन्हें अलग-अलग रख दिया गया । लेकिन मेरे जानने में न आये हों ऐसे व्यभिचार के किस्से कितने हुए होंगे, यह कौन कह सकता है ? इस बात की अधिक चर्चा करना व्यर्थ है । इतनी चर्चा भी मैंने यह दिखाने के लिए ही की हैं कि छावनी में सभी कुछ ठीक से नहीं चल रहा था और ऐसे किस्से होने पर भी किसीने मेरे साथ उद्धतता का व्यवहार नहीं किया । जंगली जैसे, नीति और अनीति के भेद को बहुत न जानने वाले लोग भी अच्छे वातावरण में कैसे सीधे और सही मार्ग पर चलते हैं, यह मैंने इस प्रकार के अनेक अवसरों पर अनुभव किया है । और इस सत्य को जानना अधिक आवश्यक और लाभदायी है ।

१९. ट्रान्सवाल में प्रवेश - १

अब हम १९१३ के नवम्बर महीने के आरंभ में आ पहूँचे हैं । हम आगे कूच करें इससे पहले मैं दो घटनाओं का उल्लेख कर दूँ । न्यूकैसल में तामिल बहनें जब जेल गईं तो डरबन की बाई फातिमा मेहताब से नहीं रहा गया । इसलिए वह भी अपनी माँ हनीफा बाई और सात वर्ष के बच्चे के साथ जेल जाने के लिए वॉक्सरस्ट की दिशा में रवाना हो गई ! मां और लड़की तो गिरफ्तार कर ली गई, परन्तु बच्चे को गिरफ्तार करने से सरकार ने साफ इनकार कर दिया । बाई फातिमा की अंगुलियों की छाप लेने की पुलिस ने कोशिश की, परन्तु वह निडर रही और उसने अपनी अंगुलियों की छाप नहीं दी ।

इस समय मजदूरों की हड़ताल पूरे जोर पर थी । उसमें पुरुष और स्त्रियाँ दोनों आते थे । स्त्रियों में दो मातायें अपने शिशुओं के साथ थीं । एक शिशु को कूच में सरदी लग गई और वह मृत्यु की शरण में चला गया । दूसरा शिशु माता की गोद से एक नाले में गिर गया, जब वह उसे पार कर रही थी । बच्चा प्रवाह के साथ खिंचकर डूब गया और मर गया । लेकिन मातायें निराश न हुईं । दोनों ने अपना कूच जारी रखा | एक माता ने कहा: "हम मरे हुए शिशु का शोक क्यों मनायें ? क्या वह वापस आयेगा ? जिन्दों की सेवा करना ही हमारा धर्म है ।" गरीबों में ऐसी शांत बहादुरी के, ऐसी ईश्वर-श्रद्धा के और ऐसे ज्ञान के उदाहरण मैंने अनेक बार देखे हैं ।

ऐसी ही दृढ़ता से स्त्रियाँ और पुरुष चार्ल्सटाउन में अपने कठिन धर्म का पालन कर रहे थे । लेकिन हम चार्ल्सटाउन में शांति के लिए नहीं आये थे । जिसे शांति की अभिलाषा हो उसे अपने अंतर में ही शांति की खोज करनी थी । बाहर तो जिस ओर भी कोई देखता – और उसे देखना आता तो – उसी ओर मानो 'यहाँ शांति नहीं मिलती' की तख्तियाँ लगी हुई दिखाई पड़ती थी । परन्तु ऐसी ही अशांति के बीच मीराबाई जैसी भक्तिन हाथ में जहर का प्याला रख कर उसे मुँह से लगाते हुए हँसती है । और सुकरात अपनी अंधेरी कोठरी में बैठा हुआ जहर का प्याला हाथ में रखकर अपने मित्रों को गूढ़ ज्ञान देता है और हमें सिखाता है: "जिसे शांति चाहिए उसे अपने हृदय के भीतर उसकी खोज करनी चाहिए ।"

ऐसी शांति में सत्याग्रहियों का दल छावनी डालकर कल प्रात:काल क्या होगा इसकी चिन्ता किये बिना चार्ल्सटाउन में पड़ा था ।

मैंने ट्रान्सवाल सरकार को पत्र लिखा था कि हम ट्रान्सवाल में बसने के उद्देश्य से प्रवेश नहीं करना चाहते । हमारा यह प्रवेश सरकार के वचनभंग के विरुद्ध उठाई जाने वाली हमारी प्रभावशाली आवाज है; और हमारे स्वाभिमान के भंग से हमें जो दुःख हो रहा है उसकी शुद्ध निशानी है । यदि आप हमें यहीं – चार्ल्सटाउन में ही – पकड़ लेंगे, तो हम सब निश्चिन्त हो जायेंगे । यदि आप ऐसा न करे और हमारे दल में से कोई छिपे तौर पर ट्रान्सवाल में दाखिल हो जाए, तो उसके लिए हम जिम्मेदार नहीं रहेंगे । हमारी इस लड़ाई में गुप्त कुछ है

ही नहीं । किसी को अपना व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं साधना है । हम में से कोई आदमी छिपे तौर पर ट्रान्सवाल में प्रवेश करे, यह हमें पसंद नहीं है । लेकिन जहाँ हजारों अपरिचित और अनजाने लोगों से काम लेना हैं और जहाँ प्रेम के सिवा दूसरा कोई बंधन नहीं हैं, वहाँ किसी के काम के लिए हम जिम्मेदार नहीं हो सकते । इसके सिवा, आप यह भी जान लें कि अगर आप तीन पौंड का कर रद कर देंगे, तो गिरमिटिया मजदूर फिर से काम पर लग जाएँगे और हड़ताल बंद हो जाएगी । हमारे दूसरे दुःखों को दूर कराने के लिए हम इन मजदूरों को सत्याग्रह में शरीक नहीं करेंगे ।

इसलिए हमारी स्थिति बिलकुल अनिश्चित थी; यह कहना कठिन था कि सरकार हमें कब गिरफ्तार करेगी । लेकिन ऐसी स्थिति में सरकार के उत्तर की प्रतीक्षा अधिक दिन तक नहीं की जा सकती थी, एक या दो डाक की हीं प्रतीक्षा की जा सकती थीं । इसलिए हमने निश्चय किया कि सरकार गिरफ्तार न करे, तो तुरन्त चार्ल्सटाउन छोड़कर ट्रान्सवाल में प्रवेश करना चाहिए । अगर सरकार रास्ते में गिरफ्तार न करे, तो काफिले को प्रतिदिन २० से २४ मील की यात्रा आठ दिन तक करनी थी । आठ दिन में हमारा इरादा टॉल्स्टॉय फार्म पहुँचने का था । हमने सोचा था कि लड़ाई पूरी होने तक सब सत्याग्रही वहीं रहेंगे और फार्म पर काम करके अपनी जीविका उत्पन्न करेंगे । श्री कैलनबैक ने सारी ज़रूरी व्यवस्था कर रखी थी । हमारा विचार था कि फार्म पर मिट्टी के मकान खड़े किये जाएँ और यह काम हड़तालियों के काफिले से ही करवाया जाय । जब तक ये मकान खड़े न हो जाएँ तब तक छोटे तम्बू खड़े करके बूढ़ों, कमजोरों और अपंगों को उनमें रखा जाए और जो लोग शरीर से मजबूत हों वे बाहर खुले में पड़ाव डालकर रहें । इसमें एकमात्र कठिनाई यह थीं कि अब वर्षाऋतु शुरू होने वाली थी, इसलिए वर्षा के समय आसरे का होना सबके लिए ज़रूरी था । लेकिन इस समस्या का सामना करने की श्री कैलनबैक में हिम्मत थी ।

काफिले के कूच की दूसरी तैयारियाँ भी हमने कीं । चार्ल्सटाउन के भले अंग्रेज डॉक्टर ब्रिस्को नें हमारे लिए दवाइयों की एक छोटी-सी पेटी तैयार कर दी और अपने कुछ ऐसे औजार भी दे दिये, जिनका उपयोग मेरे जैसा सामान्य आदमी कर सके । यह पेटी हमें स्वयं ही उठाकर ले जानी थी । काफिले के साथ कोई गाड़ी वगैरा नहीं थीं । इस पर से पाठक यह समझ लेंगे कि उस पेटी में कम से कम दवाइयां थीं । वे इतनी भी नहीं थीं कि एकसाथ सौ आदमियों को दी जा सकें । इसका कारण यह था कि हमें प्रतिदिन किसी गाँव के पास अपना पड़ाव डालना था, इसलिए कम पड़ने वाली दवाइयाँ हम वहाँ से प्राप्त कर सकते थे । और अपने साथ हम एक भी रोगी या अपंग व्यक्ति को नहीं रखते थे; उसे तो रास्ते के गांवों में हीं छोड़ देने का प्रबंध हमने कर लिया था ।

खुराक में डबल-रोटी और शक्कर के सिवा दूसरा कुछ नहीं था । परन्तु डबल-रोटी आठ दिन के कूच में मुहैया कैसे की जाय? फिर रोटी रोज़ काफिले के लोगों में बाँटना ज़रूरी था । इसका एकमात्र उपाय यह था कि हर

मंजिल पर हमें डबल-रोटी पहुँचाने की जिम्मेदारी कोई ले । लेकिन यह काम कौन करे? हिन्दुस्तानी भठियारे तो वहाँ कोई थे हीं नहीं । फिर, हर गाँव में भी भठियारे नहीं थे । गांवों में डबल-रोटी शहरों से जाती थी । यह डबल-रोटी हमें तभी मिल सकती थी जब कोई भठियारा हमें मुहैया करे और रेलवे निश्चित स्टेशन पर उसे पहुँचा दे । वॉक्सरस्ट (चार्ल्सटाउन के नजदीक ट्रान्सवाल का सरहदी केन्द्र) चार्ल्सटाउन से लगभग दुगुना बड़ा था । वहाँ गोरे भठियारे की एक बड़ी दुकान थी । उसने प्रत्येक स्थान पर डबल-रोटी पहुँचाने का करार हमारे साथ किया । हमारी विषम स्थिति से लाभ उठाकर उसने बाजार-भाव से अधिक दाम लेने की कोशिश नहीं की और डबल-रोटी भी सुन्दर आटे की बनाकर हमें दी । उसने समय से रेल पर डबल-रोटी भेजी और रेल-कर्मचारियों ने (ये भी गोरे ही थे) ईमानदारी से डबल-रोटी हम तक पहुँचाई । यही नहीं, उन लोगों ने डबल-रोटी हम तक पहुँचाने में पूरी सावधानी बरती और हमारे लिए कुछ खास सुविधायें कर दीं । वे जानते थे कि हमारी किसी से दुश्मनी नहीं थी, हमें किसीको नुकसान नहीं पहुँचाना था । हमें तो दुःख सहन करके न्याय प्राप्त करना था । इस कारण से हमारे आस पास का समग्र वातावरण शुद्ध हो गया और शुद्ध बना रहा । मनुष्य-जाति का प्रेमभाव प्रकट हुआ । सब लोगों ने यह अनुभव किया कि हम सब ईसाई, यहूदी, हिन्दू, मुसलमान आदि भाई भाई हैं ।

जब हमारे कूच की सारी तैयारियाँ हो गईं तब मैंने फिर एक बार सरकार के साथ समझौते का प्रयत्न किया । पत्र और तार तो मैंने भेजे ही थे । अब मैंने यह निर्णय किया कि सरकार को टेलिफोन भी किया जाए, भले वह मेरा अपमान ही क्यों न करे । चार्ल्सटाउन से प्रिटोरिया के लिए टेलिफोन की व्यवस्था थी । मैंने जनरल स्मट्स को टेलिफोन किया । उनके मंत्री से मैंने कहा: "आप जनरल स्मट्स से कहिए कि मेरी कूच की सारी तैयारियाँ हो गई हैं; वॉक्सरस्ट के गोरे उत्तेजित हो गये हैं । वे शायद हमारे प्राणों को भी नुकसान पहुँचायें । ऐसी धमकी उन लोगों ने हमें दी ही है । में मानता हूँ कि ऐसा परिणाम आये, यह जनरल भी नहीं चाहेंगे । वे तीन पौंड का कर रद करने का वचन दें, तो मैं कूच नहीं करूँगा । मैं कानून का भंग केवल उसका भंग करने के लिए ही नहीं करूँगा । लेकिन उसका भंग करने के लिए मैं लाचार हो गया हूँ । जनरल क्या मेरी इतनी बात नहीं मानेंगे ?" आधे मिनट में मुझे इसका उत्तर मिल गया: "जनरल स्मट्स आपके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते । आप जो चाहें सो करें ।" और टेलिफोन बन्द हो गया ।

मैंने इसी उत्तर की आशा रखी थीं । केवल अशिष्टता की आशा नहीं रखी थी । जनरल स्मट्स से मैंने शिष्ट और सभ्य उत्तर की अपेक्षा रखी थी, क्योंकि सत्याग्रह के संगठन के बाद जनरल स्मट्स के साथ मेरा राजनीतिक सम्बन्ध छह वर्ष पुराना हो चुका था । लेकिन उनकी शिष्टता से मैं फूलने वाला नहीं था । उसी तरह उनके इस अशिष्ट उत्तर से मैं ढीला भी नहीं पड़ा । अपने कर्तव्य की सीधी रेखा मुझे अपने सामने स्पष्ट दिखाई देती थीं । दूसरे दिन (६ नवम्बर, १९१३) निश्चित समय पर (प्रातः साढ़े छह बजे) हमने प्रार्थना की और ईश्वर के नाम पर अपना कूच आरंभ किया । हमारे इस काफिले में २०३७ पुरुष, १२७ स्त्रियाँ और ५७ बालक थे ।

२०. ट्रान्सवाल में प्रवेश – २

इस प्रकार संघ कहिए, काफिला कहिये अथवा यात्री-समुदाय कहिए, बिलकुल नियत किये हुए समय पर चार्ल्सटाउन से रवाना हो गया। चाल्सेटाउन से एक मील दूर वॉक्सरस्ट का छोटासा नाला पड़ता था। उस नाले को पार किया कि वॉक्सरस्ट में या कहिये ट्रान्सवाल में प्रवेश किया ऐसा माना जाता था। उस नाले के छोर पर घुड़सवार पुलिस पहरे पर खड़ी थीं। सबसे पहले मैं उसके पास गया। जाते समय काफिले के लोगों से मैं कह गया था कि मैं आने का संकेत करूँ तब वे सीमा में प्रवेश करें। लेकिन मैं पुलिस से बात कर ही रहा था कि लोग तेजी से आगे बढ़े और उन्होंने नाला पार कर दिया। वे ट्रान्सवाल की सीमा में पहूँच गये। घुड़-सवारों ने उन्हें घेर लिया। परन्तु यह काफिला इस तरह पुलिस के रोके रुकने वाला नहीं था। पुलिस का इरादा हमें पकड़ने का तो था हीं नहीं। मैंने सब लोगों को शांत किया और कतारों में व्यवस्थित होकर चलने की बात समझाई। पाँच-सात मिनट में हीं सब कुछ ठीक हो गया और हमारा कूच ट्रान्सवाल में आरंभ हुआ।

वॉक्सरस्ट के गोरों ने दो दिन पहले ही एक सभा की थी और उसमें अनेक तरह की धमकियाँ हमें दी थीं। कुछ लोगों ने कहा था कि यदि हिन्दुस्तानी ट्रान्सवाल में प्रवेश करेंगे, तो हम उन पर गोलियाँ बरसायेंगे। उस सभा में श्री कैलनबैक गोरों को समझाने गये थे। लेकिन कोई उनकी बात सुनने को तैयार नहीं थे। कुछ गोरे तो उन्हें मारने के लिए खड़े हुए। श्री कैलनबैक स्वयं एक पहलवान हैं। उन्होंने सैन्डो से कसरत की तालीम ली थी। उन्हें डराना कठिन था। एक गोरे ने तो उन्हें द्वन्द्वयुद्ध का निमंत्रण दिया। श्री कैलनबैक ने कहा: "मैंने शांति का धरम स्वीकार किया है। इसलिए मैं तुमसे युद्ध नहीं कर सकता। जिसे भी मुझ पर प्रहार करना हो वह खुशी से कर सकता है। परन्तु मैं इस सभा में बोल कर ही रहूँगा। आपने सब गोरों को इस सभामें आनेका निमंत्रण दिया है। मैं आपको यह सुनाने आया हूँ कि सभी गोरे आपकी तरह निर्दोष मनुष्यों को मारने के लिए तैयार नहीं हैं। कम से कम एक गोरा तो ऐसा है, जो आपको यह सुनाना चाहता है कि आप हिन्दुस्तानियों पर जो आक्षेप लगाते हैं वे झूठे हैं। आप जैसा सोचते हैं वैसा हिन्दुस्तानी कुछ नहीं करना चाहते। उन्हें न तो आपका राज्य चाहिए, न वे आपसे लड़ना चाहते हैं और न वे आपके देश को हिन्दुस्तानियों से भर देना चाहते हैं। वे केवल शुद्ध न्याय चाहते हैं। जो हिन्दुस्तानी ट्रान्सवाल में प्रवेश करना चाहते हैं वे बसने के लिए नहीं, परन्तु उन पर जो तीन पौंड का अन्यायपूर्ण कर लगाया गया है उसके विरुद्ध अपनी प्रभावशाली पुकार सुनाने के लिए यहाँ प्रवेश करना चाहते हैं। वे लोग बहादुर हैं। वे उपद्रव नहीं करेंगे। वे आपसे लड़ेंगे नहीं। लेकिन आपकी गोलियाँ सहकर भी वे ट्रान्सवाल में प्रवेश तो करेंगे ही। वे लोग ऐसे नहीं हैं कि आपकी गोलियाँ या भालों के डर से पीछे हट जाएँ। वे खुद दुःख सहकर आपके हृदयों को पिघलाना चाहते हैं। मेरा विश्वास है कि वे आपके हृदयोंको अवश्य ही पिघला देंगे। बस, इतना ही कहने के लिए मैं यहाँ आया हूँ। इतनी बात कह कर मैंने आप सबकी

सेवा ही की है । आप सावधान हो जाइए और अन्याय से बचिए ।" इतना कहकर श्री कैलनबैक चुप हो गये । सभा में आये हुए लोग कुछ लज्जित हुए । वह द्वन्द्वयुद्ध का निमंत्रण देने वाला पहलवान तो कैलनबैक का मित्र ही बन गया ।

लेकिन इस सभा के बारे में हमने सुन लिया था, इसलिए वॉक्सरस्ट के गोरे अगर कोई तूफान करते तो उसके लिए हम तैयार थे । सरकार ने इतनी अधिक पुलिस सीमा पर इकट्ठी की, उसका अर्थ शायद यह भी हो कि ज़रूरत पड़ने पर वह गोरों को मर्यादा का उल्लंघन करने से रोके । अब जो भी हो, हमारा जुलूस तो शांति से आगे बढ़ गया । मुझे याद नहीं आता कि किसी गोरे ने हमारे साथ जरा भी शरारत की हो । वे सब यह अनोखा दृश्य देखने के लिए बाहर निकल आये । उनमें से कुछ लोगों की आंखों में मित्रता का भाव भी दिखाई देता था।

पहले दिन हमारा पड़ाव वॉक्सरस्ट से करीब आठ मील दूर के एक स्टेशन पामफोर्ड पर था । वहाँ हम शाम के कोई ५-६ बजे पहूँचे होंगे । लोगों ने डबल-रोटी और शक्कर खाई और सब खुली हवा में मैदान में लेट गये । कोई भजन गाते थे, तो कोई बातें करते थे । रास्ते में कुछ स्त्रियाँ थक गईं । अपने बच्चों को गो दमें लेकर चलने की हिम्मत तो उन्होंने की थी, लेकिन आगे चलना उनकी शक्ति से बाहर था । इसलिए मेरी चेतावनी के अनुसार मैंने उन्हें एक भले हिन्दुस्तानी की दुकान में छोड़ दिया और उससे कहा कि हम टॉल्स्टॉय फार्म पर पहूँच जाएँ तो इन बहनों को वहाँ पहुँचा देना और यदि गिरफ्तार हो जाएँ तो इन्हें इनके घर भेज देना । हिन्दुस्तानी व्यापारी ने मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली ।

रात बढ़ती गई त्यों-त्यों शोरगुल शांत होता गया । मैं भी सोने की तैयारी में ही था कि मुझे किसी के जूतों की खट-खट सुनाई दी । मैंने एक गोरे को हाथ में लालटेन लिये आते देखा । मैं सावधान हो गया । सब कुछ समझ गया । मुझे तैयारी तो कुछ करनी ही नहीं थीं । पुलिस-अधिकारी ने मुझसे कहा:

"आपके लिए मेरे पास वारंट है । मुझे आपको गिरफ्तार करना है ।"

"कब?" मैंने पूछा ।

"इसी समय ।" उत्तर मिला ।

"आप मुझे कहाँ ले जाएँगे?"

"इस समय तो पास के रेलवे स्टेशन पर; और जब गाड़ी आयेगी तब उस पर बैठाकर वॉक्सरस्ट ।"

मैं बोला: "तो मैं किसी को जगाये बिना आपके साथ आता हूँ । लेकिन मेरे एक साथी को थोड़ी सूचनायें दे दूँ ।

"जरूर दे दें ।"

पास ही सोये हुए पी. के. नायड़ को मैंने जगाया । उन्हें अपनी गिरफ़्तारी की बात बताई और कहा कि सुबह होने से पहले वे लोगों को न जगायें । सबेरा होने पर नियमानुसार कूच करने की सूचना उन्हें कर दी । साथ ही यह भी कहा कि कूच सूर्योदय से पहले आरंभ हो । जहाँ विश्राम करने और खुराक बांटने का समय हो जाय वहाँ लोगों से मेरी गिरफ़्तारी की बात कहीं जाए । इस बीच जो कोई पूछे उसे यह बात कहते जाएँ । काफिले को पुलिस पकड़े तो वह गिरफ्तार हो जाए; और न पकड़े तो निश्चित कार्यक्रम के अनुसार अपना कूच जारी रखे । नायडू को कोई डर तो था ही नहीं । वे गिरफ्तार कर लिये जाएँ तो क्या किया जाए, यह भी मैंने उनसे कह दिया।

श्री कैलनबैक तो वॉक्सरस्ट में मौजूद थे ही ।

मैं पुलिस अधिकारी के साथ गया । सबेरा हुआ । हम दोनों वॉक्सरस्ट की ट्रेन में बैठे । वॉक्सरस्ट की अदालतमें मुझ पर मुकदमा चला । पब्लिक प्रॉसिक्यूटर ने स्वयं माँग की कि केस १४ नवम्बर, १९१३ तक मुलतवी रखा जाए, क्योंकि उसके पास सबूत तैयार नहीं था । केस मुलतवी रहा । मैंने जमानत पर छूटने की अरजी दी और कारण में बताया कि मेरे साथ १२२ स्त्रियाँ, ५० बालकों तथा २००० पुरुषों से अधिक लोग हैं । मुकदमे की तारीख लगने तक मैं उन्हें निश्चित स्थान पर रखकर वापिस आ सकता हूँ और मुकदमे के समय हाजिर हो सकता हूँ । सरकारी वकील ने जमानत की मेरी अरजी का विरोध किया, लेकिन मजिस्ट्रेट लाचार था । मुझ पर जो आरोप लगाया गया था वह ऐसा नहीं था, जिसमें जमानत पर छुटकारा पाने की बात भी मजिस्ट्रे की सत्ता पर निर्भर हो । इसलिए मजिस्ट्रेट ने मुझे ५० पौंड की जमानत पर छोड़ दिया । श्री कैलनवैक ने मेरे लिए मोटर तैयार ही रखी थीं । उसमें बैठाकर उन्होंने मुझे अपने काफिले के पास पहुँचा दिया । *दि ट्रान्सवाल लीडर* का विशेष संवाददाता हमारे साथ आना चाहता था । हमने उसे कार में बैठने की इजाजत दे दी । उसने कार की इस यात्रा का, मेरे मुकदमे का और काफिले के साथ हुए मेरे मिलाप का सुन्दर चित्रण अपने अखबार में उस समय किया था । लोगों ने मेरा हार्दिक स्वागत किया । उनके उत्साह और जोश का कोई पार न रहा । इसके बाद कैलनबैक तुरंत वॉक्सरस्ट लौट गये । उनके जिम्मे चार्ल्सटाउन में रुके हुए और नये आने वाले हिन्दुस्तानियों की देखभाल करने का काम था ।

हमने अपना कूच जारी रखा । परन्तु मुझे स्वतन्त्र रखना सरकार को अनुकूल नहीं लगा । इसलिए उसने दूसरे दिन स्टैन्डरटन में दूसरी बार मुझे गिरफ्तार कर लिया । स्टैन्डरटन तुलना में बड़ा गाँव था । वहाँ मुझे विचित्र तरीके से पकड़ा गया । मैं काफिले के लोगों को डबल-रोटी बाँट रहा था । वहाँ के हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने मुरब्बे के डिब्बे भेंट किये थे, इसलिए बँटवारे के काम में ज़्यादा देर लगती थीं । मजिस्ट्रेट मेरे पास आकर खड़े हो गये । उन्होंने खुराक बाँटने का काम मुझे पूरा कर लेने दिया । उसके बाद उन्होंने मुझे एक ओर बुलाया ।

मैं उन्हें पहचानता था । इसलिए मैं समझा कि वे मुझसे कोई बात करना चाहते होंगे । लेकिन उन्होंने हँस कर मुझसे कहा:

"आप मेरे क़ैदी हैं ।"

मैंने कहा: "मेरा दरजा बढ़ गया है । पुलिस के बदले मजिस्ट्रेट स्वयं पकड़ने आये हैं । लेकिन आप मुझ पर इसी समय मुकदमा चलाएँगे न?"

वे बोले: "मेरे साथ ही आप चलिये । कोर्ट बैठी ही है ।"

काफिले के लोगों को कूच जारी रखने की सलाह देकर मैं उनसे अलग हुआ । कोर्ट में पहूँचते ही मैंने देखा कि मेरे कुछ साथी भी गिरफ्तार कर लिए गये हैं । वे पाँच थे: पी. के. नायडू, बिहारीलाल महाराज, रामनारायण सिंह, रघु नारसु और रहीमखाँ ।

मुझे तुरन्त कोर्ट के सामने खड़ा किया गया । मैंने वॉक्सरस्ट में जमानत पर छूटने के जो कारण बताये थे वे ही कारण यहाँ भी बताते हुए जमानत पर छूटने की अरजी दी । यहाँ भी सरकारी वकील ने मेरी अरजी का विरोध किया । लेकिन यहाँ भी मजिस्ट्रेट ने २१ नवम्बर, १९१३ तक मुकदमा मुलतवी कर दिया और मुझे ५० पौंड के जाती मुचलके पर छोड़ दिया । हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने मेरे लिए इक्का तैयार ही रखा था । उसमें बैठाकर मुझे काफिले के पास पहुँचा दिया, जो अभी तीन मील का फासला भी तय नहीं कर पाया था । अब काफिले के लोगों ने और मैंने भी सोचा कि शायद टॉल्स्टॉय फार्म तक सब पहूँच जाएँगे । परन्तु हमारी यह धारणा गलत निकली । फिर भी काफिले के लोग मेरी गिरफ़्तारी के आदि हो गये, यह कोई मामूली परिणाम नहीं था । मेरे पाँच साथी तो जेल में हीं रहे ।

२१. सभी लोग जेल में

हम कूच करते-करते अब जोहानिसबर्ग के निकट आ पहूँचे थे । पाठकों को याद होगा कि संपूर्ण यात्रा को हमने आठ दिन की आठ मंजिलों में बाँट दिया था । अभी तक हम निश्चित की हुई मंजिलें पूरी करते चले आ रहे थे । इसलिए अब हमारे सामने कुल चार मंजिलें तय करना बाकी था । परन्तु ज्यों-ज्यों हमारा उत्साह बढ़ता जा रहा था त्यों-त्यों सरकार की जागृति भी बढ़ती जा रही थी । सरकार हमें अपनी मंजिल पूरी कर लेने देती और उसके बाद हमें पकड़ती, तब तो वह उसकी कमजोरी और अकुशलता मानी जाती । इसलिए यदि उसे हमें पकड़ना हो, तो मंजिल पूरी होने के पहले ही पकड़ना चाहिए ।

सरकार ने देखा कि मेरी गिरफ़्तारी के बाद भी काफिला न तो निराश हुआ, न डरा और न उसने कोई उपद्रव मचाया । वह उपद्रव करता तो सरकार को उसे बन्दूक का निशाना बनाने का पूरा मौका मिलता । जनरल स्मट्स के लिए तो हमारी दृढ़ता और उसके साथ हमारी शांति हीं बड़े दुःख की बात तो गई । ऐसा उन्होंने कहा भी था । किसी शांत मनुष्य को आखिर कब तक सताया जा सकता है ? स्वेच्छा से मरे हुए किसी मनुष्य को आप कैसे मार सकते हैं? और मृत्यु का स्वागत करने वाले को मारने में किसी का रस हो हीं नहीं सकता । इसीलिए शत्रु को जिन्दा पकड़ने में गौरव समझा जाता है । अगर चूहा बिल्ली से डरकर भागे नहीं, तो बिल्ली को दूसरा शिकार खोजना हीं पड़े । अगर सब मेमने सिंह की बगल में आकर बैठ जाएँ, तो सिंह को मेमने खाना छोड़ देना पड़े । सिंह यदि सामना न करे, तो क्या पुरुष-सिंह उसका शिकार करेगा ?

हमारी शांति और हमारे निश्चय में हमारी विजय छिपी ही हुई थीं ।

गोखले ने समुद्री तार द्वारा यह इच्छा प्रकट की थी कि श्री पोलाक हिन्दुस्तान आकर भारत सरकार और साम्राज्य सरकार के सामने दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की स्थिति रखने में उनकी सहायता करें । पोलाक का स्वभाव ऐसा था कि वे जहाँ भी जाते वहाँ उपयोगी बन जाते थे । जो काम वे हाथ में लेते उसमें वे तन्मय हो जाते थे । इसलिए उन्हें हिन्दुस्तान भेजने की तैयारी चल रही थी । मैंने उन्हें लिख भेजा था कि वे हिन्दुस्तान जा सकते हैं । लेकिन मुझसे मिले बिना और पूरी हिदायतें लिए बिना जाने की उनकी इच्छा नहीं थीं । इसलिए हमारे कूच के दौरान ही मुझसे मिल जाने की उन्होंने माँग की । मैंने तार किया कि गिरफ़्तारी का खतरा उठाकर आप आना चाहें तो आ सकते हूँ । लेकिन लड़वैये तो आवश्यक खतरे उठाने में कभी हिचकिचाते हीं नहीं । सरकार यदि सबको गिरफ्तार कर लेती तो भी कोई परवाह नहीं थीं, क्योंकि गिरफ्तार होने की हीं तो यह लड़ाई थीं । सरकार गिरफ्तार न करे तब तक गिरफ्तार होने की सीधी और नीतिमय कोशिशें इस लड़ाई में सबको करनी थीं । इसलिए श्री पोलाक ने गिरफ़्तारी का खतरा उठाकर भी मेरे पास आना पसंद किया ।

हम हेडलबर्ग के आसपास पहूँच चुके थे । वहाँ पोलाक पास के एक स्टेशन पर ट्रेन से उतर कर पैदल चलते हुए हमसे मिलने आये । हमारी बातें चल रही थीं; लगभग पूरी होने को आई थीं । उस समय दोपहर के करीब ३ बजे होंगे । हम दोनों काफिले के आगे चल रहे थे । दूसरे साथी भी हमारी बातें सुन रहे थे । शाम को श्री पोलाक को डरबन जाने वाली गाड़ी पकड़नी थीं । परन्तु जब रामचन्द्रजी जैसे को भी राज-तिलक के ही समय वनवास मिला, तो पोलाक भला किस गिनती में थे? हम बातें कर रहे थे, इतने में एक घोड़ागाड़ी हमारे सामने आकर खड़ी हो गई । उसमें एशियाई विभाग के अधिकारी श्री चमनी और पुलिस का एक अधिकारी था । दोनों नीचे उतरे । मुझे जरा दूर ले जाकर उनमें से एकने कहा: "में आपको गिरफ्तार करता हूँ ।" इस प्रकार मुझे चार दिन में तीन बार गिरफ्तार किया गया ।

मैंने पूछा: "काफिले का क्या होगा?"

"सब हो जायगा ।"

में कुछ न बोला । पुलिस अधिकारी ने मुझे केवल अपनी गिरफ़्तारी की ही खबर लोगों को सुनाने दी । मैंने पोलाक से कह दिया कि वे काफिले के साथ जाएँ । जब मैं लोगों को शांति रखने आदि की बात समझाने लगा, तो अधिकारी महोदय ने कहा:

"अब आप क़ैदी हैं । आप कोई भाषण नहीं दे सकते ।"

अपनी मर्यादा को मैं समझ गया । लेकिन समझने की कोई ज़रूरत नहीं थी, क्योंकि मेरा बोलना बन्द करने के साथ ही अधिकारी ने कोचवान को गाड़ी तेज हांकने का हुक्म दिया । एक क्षण में काफिला मेरी आँखों से ओझल हो गया ।

अधिकारी जानता था कि कुछ देर के लिए तो वहाँ मेरा ही राज्य था, क्योंकि वह हमारी अहिंसा पर विश्वास रखकर ही उस निर्जन मैदान में दो हजार सत्याग्रहियों के बीच अकेला खड़ा था । वह जानता था कि उसने समन भेज कर मुझे गिरफ्तार किया होता, तो भी मैं उसके अधीन हो जाता । ऐसी स्थिति में मुझे इस बात का स्मरण कराना अनावश्यक था कि मैं क़ैदी हूँ । मैं काफिले के लोगों से जो कुछ कहने वाला था, वह सत्ताधारियों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होता । लेकिन वे अपना रूप दिखाये बिना कैसे रहते ? इसके साथ मुझे यह भी कहना चाहिए कि अन्य अनेक सरकारी अधिकारी हमारी क़ैद को समझते थे । वे जानते थे कि यह क़ैद या जेल हमारे लिए अंकुशरूप या दुःखरूप नहीं है, बल्कि हमारी दृष्टि में वह मुक्ति का द्वार है । इसलिए वे लोग हमें सब तरह की छूट देते थे । इतना ही नहीं, हमें गिरफ्तार करते समय उन्हें सुविधा हो और उनका समय बचे, इसके लिए वे हमारी मदद माँगते थे और मदद मिलने पर हमारा उपकार मानते थे | पाठकों को इन प्रकरणों में दोनों प्रकार के अधिकारियों के नमूने देखने को मिल जाएँगे ।

दोनों अधिकारी मुझे एक स्थान से दूसरे स्थान पर घुमाकर अंत में हेडलबर्ग के थाने में ले गये । रात मेरी वहीं बीती ।

काफिले को लेकर पोलाक आगे बढ़े । सब ग्रेलिंग्सटैड पहूँचे । वहाँ हिन्दुस्तानी व्यापारी काफ़ी संख्या में थे । रास्ते में उसे सेठ अहमद मुहम्मद काछलिया और सेठ आमद भायात मिले । क्या होने वाला है, इसका पता उन्हें चल गया था । मेरे साथ आये हुए पूरे काफिले को भी गिरफ्तार करने की व्यवस्था हो चुकी थी । इसलिए पोलाक सोचते थे कि काफिले के गिरफ्तार हो जाने के बाद वे एक दिन देर से भी डरबन पहूँच कर हिन्दुस्तान जाने वाला जहाज पकड़ सकेंगे । लेकिन ईश्वर ने कुछ और ही सोच रखा था ।

१० नवम्बर, १९१३ को काफिला सवेरे ९ बजे बेलफोर पहुँचा । वहाँ तीन स्पेशियल ट्रेनें स्टेशन पर काफिले के लोगों को क़ैद करके नेटाल पहुँचा देने के लिए खड़ी थीं । लेकिन लोगों ने कुछ जिद पकड़ ली । वे बोले : "गांधी को बुलाइये । वे कहेंगे तो हम गिरफ्तार हो जाएँगे और ट्रेन में बैठ जाएँगे ।" लेकिन उनकी यह जिद गलत थी । वे जिद न छोड़ते तो हमारी बाजी बिगड़ जाती और सत्याग्रहियों का तेज घट जाता । जेल जाने में गांधी का क्या काम था? क्या सैनिक अपने सेनापति का चुनाव कर सकते हैं? अथवा एक ही सेनापति का हुक्म मानने की जिद पकड़ सकते हैं? श्री चमनी ने काफिले के लोगों को समझाने में श्री पोलाक और काछलिया सेठ की मदद ली । दोनों बड़ी कठिनाई से काफिले को समझा सके कि कूच करने वाले यात्रियों की मुराद ही जेल जाने की हैं । इसलिए जब सरकार पकड़ने को तैयार हुई है तो उन्हें उसके निमंत्रण का स्वागत करना चाहिए । ऐसा करने में ही हमारी सज्जनता और लड़ाई की विजय समायी हुई हैं । मेरी दूसरी कोई इच्छा हो हीं नहीं सकती, यह लोगों को समझ लेना चाहिए । अंत में सब लोग समझ गये और शांति से ट्रेन में बैठ गये ।

दूसरी ओर मुझे फिर कोर्ट में मजिस्ट्रेट के सामने खड़ा किया गया । ऊपर की बातों का मुझे कोई पता नहीं था । मैंने एक बार फिर मुकदमे की मुद्दत बढ़ाने और जमानत पर छूटने की माँग की । पहले दो कोर्टों ने मुझे ऐसी मुद्दत दी थीं, यह भी मैंने कहा; और यह भी बताया कि अब हमारी बहुत थोड़ी मंजिल बाकी हैं । इसलिए या तो सरकार काफिले को गिरफ्तार करे अथवा मुझे उसे टॉल्स्टॉय फार्म पर छोड़ आने की इजाजत दे । कोर्ट ने मेरी अरजी मंजूर नहीं की, लेकिन मेरी माँग को सरकार तक तुरन्त पहुँचा देना स्वीकार किया । इस बार मुझे डंडी ले जाने वाले थे । मुझ पर गिरमिटिया मजदूरों को नेटाल की खदानें छोड़ने के लिए ललचाने के अभियोग में मुख्य मुकदमा वहीं चलने वाला था । इसलिए उसी दिन मुझे ट्रेन से डंडी ले जाया गया ।

इधर श्री पोलाक को बेलफोर में गिरफ्तार नहीं किया गया; बल्कि अधिकारियों ने उनकी मदद के लिए उनका आभार भी माना । श्री चमनी ने तो यह भी कहा था कि सरकार पोलाक को गिरफ्तार करने का इरादा ही नहीं रखती । लेकिन ये तो श्री चमनी के अपने विचार थे अथवा उस समय वे सरकार के विचारों कों जिस हद तक

जानते थे उस हद तक सरकार के विचार थे । लेकिन सरकार के विचार तो बार-बार बदलते रहते थे । अंत में उसने यह निर्णय किया कि पोलाक को हिन्दुस्तान किसी भी हालत में न जाने दिया जाए और पोलाक तथा कैलनबैक को, जो हिन्दुस्तानियों के लिए बड़े ही उत्साह से काम कर रहे थे, गिरफ्तार कर लिया जाए । इसलिए पोलाक को चार्ल्सटाउन में गिरफ्तार किया गया । कैलनबैक भी गिरफ्तार कर लिए गये । दोनों को वॉक्सरस्ट की जेल में रखा गया ।

मुझ पर ११ नवम्बर, १९१३ को डंडी में मुकदमा चला और ९ माह की सख्त क़ैद की सजा मिली । अभी निषिद्ध लोगों को ट्रान्सवाल के भीतर प्रवेश करने में मदद देने के अभियोग में मुझ पर वॉक्सरस्ट में मुकदमा चलना बाकी था । इसलिए डंडी से मुझे १३ नवम्बर को वॉक्सरस्ट ले जाया गया । वहाँ मैंने श्री कैलनबैक और श्री पोलाक को देखा । हम तीनों वॉक्सरस्ट की जेल में मिले, इससे हमें अपार आनन्द हुआ ।

१४ नवम्बर को वॉक्सरस्ट की कोर्ट में मुझ पर मुकदमा चला । इस मुकदमे की खूबी यह थी कि कोर्ट के सामने मेरे खिलाफ गवाही देने वाले साक्षी मुझीको लाने थे । पुलिस ऐसे साक्षी प्राप्त तो कर सकती थी, परन्तु कठिनाई से । इसलिए पुलिस ने इस काम में मेरी मदद ली । दक्षिण अफ्रीका की अदालतें केवल क़ैदी के अपराधी होना स्वीकार कर लेने से ही उसे सजा नहीं देतीं ।

मेरे विषय में तो यह व्यवस्था हो गई, लेकिन श्री कैलनबैक और श्री पोलाक के विरुद्ध कौन गवाही दे ? और उनके विरुद्ध गवाही न मिले, तो उन्हें सजा देना असंभव था । इन दोनों के विरुद्ध तुरन्त गवाही मिलना कठिन था । श्री कैलनबैक को तो अपना अपराध स्वीकार करना था, क्योंकि उनका इरादा काफिले के साथ रहने का था । लेकिन श्री पोलाक का इरादा हिन्दुस्तान जाने का था । इस बार वे जान-बूझ कर जेल नहीं जाना चाहते थे । इसलिए हम तीनों ने मिल कर यह निर्णय किया कि यदि हमसे पूछा जाय कि जिस अपराध का अभियोग पोलाक पर लगाया गया है वह उन्होंने किया है या नहीं, तो हम उत्तर में न तो 'हाँ' कहें और न 'ना' कहें ।

इन दोनों के विरुद्ध में साक्षी बना । हमें मुकदमे को लम्बाना नहीं था, इसलिए तीनों का मुकदमा एक एक दिन में पूरा हो इसके लिए हमने कोर्ट की पूरी मदद की; और एक-एक दिन में ही हमारे मुकदमे पूरे भी हो गये । हम तीनों को तीन-तीन माह की क़ैद की सजा मिली । हमने सोचा कि कम से कम तीन महीने तो हम वॉक्सरस्ट जेल में साथ रह सकेंगे । लेकिन सरकार को ऐसा होने देने में अपना लाभ नहीं दीखा ।

इस बीच कुछ दिन तो हम वॉक्सरस्ट जेल में सुख से रहे । वहाँ प्रतिदिन नये-नये क़ैदी आते थे और बाहर के समाचार हमें सुनाते थे । इन सत्याग्रही क़ैदियों में हरबतसिंग नाम का एक बूढ़ा था । उसकी उमर लगभग ७५ वर्ष की थी । वह खदानों में नौकरी भी नहीं करता था । वह अपनी गिरमिट वर्षों पहले पूरी कर चुका था, इसलिए

वह हड़ताली नहीं था । मेरी गिरफ़्तारी के बाद हिन्दुस्तानियों का जोश खूब बढ़ गया था और अनेक लोग नेटाल से ट्रान्सवाल की सीमा में प्रवेश करके गिरफ्तार हो जाते थे । हरबतसिंग ऐसा ही एक उत्साही सत्याग्रही था ।

मैंने हरबतसिंग से जेलमें पूछा: "आप जेल में क्यों आये? आप जैसे बूढ़ों को मैंने जेल में आने का निमंत्रण नहीं दिया है ।"

हरबतसिंग ने जवाब दिया: "में कैसे रह सकता था, जब आप, आपकी धर्मपत्नी और आपके लड़के भी हम लोगों के लिए जेल चले गये ?"

लेकिन आपसे जेल का दुःख बरदाश्त नहीं हो सकेगा । आप जेल से बाहर चले जाएँ । आपके छूटने की तजवीज मैं करूं?"

"मैं हरगिज जेल नहीं छोडूँगा । मुझे एक दिन तो मरना ही है । ऐसा दिन कहाँ कि मेरी मौत यहाँ हो जाएँ!"

इस दृढ़ता को मैं कैसे विचलित करूं? मेरे विचलित करने से भी वह विचलित होने वाली नहीं थीं । मेरा सिर इस निरक्षर ज्ञानी के सामने झुक गया । हरबतसिंग की जैसी भावना थीं वसा हीं हुआ । उसकी मृत्यु ५ जनवरी, १९१४ को जेल में हीं हुई । उसका शब वॉक्सरस्ट से डरबन मँगाया गया । सैकड़ों हिन्दुस्तानियों की उपस्थिति में सम्मान के साथ हरबतसिंग का अग्नि-संस्कार किया गया । हमारी सत्याग्रह की लड़ाई में ऐसे हरबतसिंग एक नहीं बल्कि अनेक थे । परन्तु जेल में मरने का सौभाग्य केवल हरबतसिंग को हीं मिला । इसीलिए दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास में उसका सम्मानपूर्वक उल्लेख किया गया है ।

इस प्रकार आकर्षित होकर लोग जेल में आयें, यह सरकार को पसंद नहीं था । और, जेल से छूटने वाले लोग मेरे सन्देश बाहर के लोगों के पास ले जाएँ, यह भी उसे पसंद नहीं था । इसलिए सरकार ने मुझे, कैलनबैक को और पोलाक को एक-दूसरे से अलग कर देने का, किसी को भी वॉक्सरस्ट में न रखने का और मुझे ऐसे किसी जेल में ले जाने का निर्णय किया – जहाँ कोई हिन्दुस्तानी आकर मुझे देख हीं न सके । इसलिए मुझे ऑरेंजिया की राजधानी ब्लूमफोन्टीन की जेल में भेज दिया गया । ऑरेंजिया में ५० से ज़्यादा हिन्दुस्तानी नहीं होंगे । वे सब होटलों में 'वेटर' की नौकरी करते थे । ऐसे प्रदेश के जेल में हिन्दुस्तानी क़ैदी हो ही नहीं सकते थे । उस जेल में अकेला मैं ही हिन्दुस्तानी क़ैदी था । दूसरे सब क़ैदी गोरे थे या हबशी थे । पर इस एकाकीपन से मैं दुःखी नहीं था । मैंने उसमें सुख का अनुभव किया । मुझे न तो कुछ सुनना था और न कुछ देखना था । इसकी भी मुझे खुशी थी कि यहाँ मुझे नया अनुभव मिलेगा । इसके सिवा, मुझे अध्ययन करने का तो वर्षों से – कहिए कि १८९३ के बाद – समय ही नहीं मिला था । यह जानकर भी मुझे खुशी हुई कि अब मुझे अध्ययन के लिए एक वर्ष का समय मिलेगा ।

ब्लूमफोन्टीन की जेल में मुझे जो एकांत मिला, उसका कोई पार ही नहीं था । असुविधायें वहाँ काफ़ी थीं, लेकिन सब बरदाश्त होने जैसी थीं । उनका वर्णन पढ़ने में मैं पाठकों का समय नहीं ले सकसा । परन्तु इतना कह देना ज़रूरी हैं कि वहाँ के डॉक्टर मेरे मित्र बन गये थे । जेलर केवल अपने अधिकारों को ही समझता था और डॉक्टर क़ैदियों के अधिकारों की रक्षा करता था । उन दिनों मैं शुद्ध फलाहार करता था । न तो में दूध पीता था, न घी खाता था । कोई अनाज भी मैं नहीं खाता था । मैं आहार में केले, टमाटर, कच्ची मूंगफली, नीबू और जैतून का तेल लेता था । इनमें से एक भी चीज सड़ी हुई आ जाती तो मुझे भूखों मरना पड़ता । इसलिए डॉक्टर मेरे आहार की वस्तुओं के बारेमें बड़ी सावधानी रखते थे । उन्होंने मेरे आहार में बादाम, अखरोट तथा ब्राज़ील नट और जोड़ दिये थे । वे स्वयं सारे फलों की जाँच करते थे । जेल में मुझे जो कोठरी दी गई थी, उसमें हवा बहुत कम आती थी । डॉक्टर ने कोठरी का दरवाजा खुला रखवाने की खूब कोशिश की, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली । जेलर ने धमकी दी कि अगर मेरा दरवाजा खुला रखा जाएगा, तो वह इस्तीफा दे देगा । जेलर बुरा आदमी नहीं था । लेकिन उसका स्वभाव एक ही साँचे में ढल गया था । उसे कैसे बदला जाए ? उपद्रवी क़ैदियों से उसका वास्ता पड़ा था । उसका यह भय सच्चा था कि अगर वह मेरे जैसे भले क़ैदी का पक्ष लेने जाए, तो दूसरे क़ैदी उसके सिर पर सवार हो जाएँगे । जेलर के दृष्टिकोण को मैं अच्छी तरह समझ सकता था । इसलिए मेरे कारण से डॉक्टर और जेलर के बीच जो झगड़ा होता था, उसमें मेरी सहानुभूति सदा जेलर के प्रति रहती थी । जेलर अनुभवी और सीधे मार्ग पर चलने वाला आदमी था और अपने मार्ग को साफ देख सकता था ।

श्री कैलनबैक को वॉक्सरस्ट से प्रिटोरिया की जेल में और श्री पोलाक को जरमिस्टन की जेल में ले जाया गया ।

परन्तु सरकार की ये सारी तजवीजें बेकार थीं । जब आसमान टूट पड़े तो पैबंद कहाँ कहाँ लगाया जाए ? नेटाल के गिरमिटिया हिन्दुस्तानी अब पूरी तरह जाग गये थे। उन्हें संसार की कोई भी सत्ता आगे बढ़ने से रोक नहीं सकती थी ।

२२. कसौटी

सोने की परख करने वाला जौहरी सोने को हमेशा कसौटी पर घिसता है । फिर अधिक परीक्षा करने के लिए सोने को भट्ठी में डालता है, उसे टीपता है, उसमें मैल हो तो उसे साफ कर देता है और अंत में उसका कुंदन बना देता है । ऐसी ही कसौटी दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों की हुई; वे टीपे गये, भट्ठी में डालकर तपाये गये और जब कसौटी पर खरे उतरे तभी उनकी क़ीमत आंकी गई ।

काफिले के यात्रियों को सरकार विशेष ट्रेनों में बैठाकर कोई सैर कराने के लिए नहीं, परन्तु आग में तपाने के लिए ही ले गई थी । रास्ते में उनके खाने-पीने की कोई व्यवस्था नहीं की गई थीं । नेटार पहूँचते ही उन पर मुकदमा चला और उन्हें सीधे जेल भेज दिया गया । इतना तो हमने सोचा ही था । इतना हम चाहते भी थे । परन्तु हजारों को जेल में रखने का अर्थ होता खर्च को बढ़ाना और हिन्दुस्तानियों की मनचाही बात करना । और कोयले की खदानों का काम तो बन्द रहता ही । ऐसी स्थिति लम्बे समय तक बनी रहती, तो सरकार के लिए तीन पौंड का कर रद करना अनिवार्य हो जाता । इसलिए यूनियन सरकार ने नई युक्ति खोज निकाली । जिन-जिन स्थानों से काम छोड़कर गिरमिटिया मजदूर भागे थे, उन स्थानों को ही सरकार ने एक नया कानून रचकर जेल बना दिया; और खदानों के यूरोपियन नौकरों को उन जेलों के वार्डर नियुक्त कर दिया । ऐसा करके मजदूरों ने जिस काम को स्वेच्छा से छोड़ा था वह काम सरकार ने उनसे जबरदस्ती करवाया ; और खदानें फिर से चालू हो गईं । गुलामी और नौकरी दोनों में फर्क यह है कि नौकर अगर नौकरी छोड़ता है, तो उस पर सिर्फ दीवानी दावा ही किया जा सकता है; लेकिन गुलाम नौकरी छोड़ता है, तो उसे जबरन् नौकरी पर वापस लाया जा सकता है । इसलिए अब ये मजदूर संपूर्ण गुलाम बन गये ।

लेकिन इतना करना काफ़ी नहीं था । मजदूर तो बहादुर थे । उन्होंने खदानों में काम करने से साफ इनकार कर दिया । इसके फलस्वरूप उन्हें कोड़ों की मार सहनी पड़ी । जो उद्धत आदमी एक क्षण में अधिकारी बन गये थे, उन्होंने इन मजदूरों को लातें मारी, गालियाँ दीं और दूसरे भी अनेक अत्याचार उन पर किये – जिनका लिखित रूप में कहीं उल्लेख तक नहीं हुआ है । ये सब अन्याय और अत्याचार गरीब मजदूरों ने धीरज रखकर सहन किये । इन सारे अत्याचारों के सम्बन्ध में गोखले को हिन्दुस्तान तार किये गये । अगर किसी दिन उन्हें ब्योरेवार तार न मिलता, तो वे स्वयं पूछते थे । इन तारों का प्रचार गोखले रोगशय्या पर पड़े- पड़े भी करते थे, क्योंकि उन दिनों वे सख्त बीमार थे । अपनी बीमारी के बावजूद वे दक्षिण अफ्रीका के काम की देखभाल स्वयं करनेका आग्रह रखते थे; और उस काम को करते समय न तो उन्होंने रात देखी, न दिन देखा । उसका परिणाम यह हुआ कि समूचा हिन्दुस्तान भड़क उठा और दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न हिन्दुस्तान का प्रमुख प्रश्न बन गया ।

यही वह अवसर था जब (दिसम्बर १९१३) वाइसरॉय लॉर्ड हार्डिंग ने अपना मद्रास का प्रसिद्ध भाषण किया था, जिसने दक्षिण अफ्रीका में और इंग्लैंड में खलबली मचा दी थी । वाइसरॉय दूसरे उपनिवेशों की अथवा ब्रिटिश साम्राज्य के अंगभूत देशों की सार्वजनिक रूप में टीका नहीं कर सकते थे; परन्तु लॉर्ड हार्डिंग ने न केवल यूनियन सरकार की कड़ी टीका की, बल्कि दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रहियों का पूरा बचाव भी किया और उनके द्वारा किये जाने वाले सविनय कानून-भंग का समर्थन किया । लॉर्ड हार्डिंग के इस साहस की इंग्लैंड में थोड़ी कड़वी टीका हुई, परन्तु उन्होंने अपने कार्य के लिए पश्चात्ताप प्रकट करने के बजाय उसका औचित्य घोषित किया । उनकी इस दृढ़ता का बड़ा अच्छा असर हुआ ।

इन पकड़े हुए, दुःखी और बहादुर मजदूरों को छोड़कर हम एक क्षण के लिए खदानों के बाहर नेंटाल के दूसरे भागों पर नजर डालें ।

कोयले की खदानें नेटाल के उत्तरी विभाग में थीं । लेकिन मजदूरों की बड़ी से बड़ी संख्या नेटाल के नैऋत्य और वायव्य कोण में थी । वायव्य कोण में फिनिक्स, वेरूलम, टोंगाट इत्यादि स्थान हैं | नैऋत्य कोण में इसिपिंगो, अमज़िंटो इत्यादि स्थान हैं । वायव्य कोण के हिन्दुस्तानी मजदूरों के संपर्क में मैं काफ़ी आया था । उनमें से अनेक मजदूर मेरे साथ बोअर-युद्ध में भी काम कर चुके थे । नैऋत्य के मजदूरों के संपर्क में मैं इतना नहीं आया था । इस भाग में मेरे साथी भी बहुत थोड़े थे । फिर भी खदानों के मजदूरों की हड़ताल और उनकी गिरफ़्तारी के समाचार इन भागों में बिजली की तरह फैल गये थे । दोनों ही कोणों में हजारों मजदूर एकाएक अपना काम छोड़कर बाहर आ गये । कुछने अपना माल-सामान भी बेच डाला – ऐसा समझ कर कि लड़ाई लम्बी चलेगी और दूसरे कोई उन्हें खाना नहीं दे सकेंगे । मैंने जेल जाते समय अपने साथियों को सावधान कर दिया था कि वे अधिक मजदूरों को हड़ताल करने से रोकें । मुझे आशा थी कि खदान-मजदूरों की मदद से लड़ाई जीती जा सकेगी । यह स्पष्ट था कि यदि सारे हिन्दुस्तानी मजदूर, अर्थात् लगभग ६० हजार आदमी, हड़ताल कर देते, तो उनका भरण-पोषण करना कठिन हो जाता । इतने सब मजदूरों को कूच पर ले जाने के साधन ही हमारे पास नहीं थे; और न हमारे पास इतने लोगों पर नियंत्रण रखने के लिए ज़रूरी मुखिया थे, न इतने लोगों को खिलाने के लिए ज़रूरी पैसा था । इसके सिवा, इतने ज़्यादा लोगों को एकत्र करने के बाद उपद्रव या दंगा-फसाद को रोकना असंभव हो जाता ।

लेकिन आने वाली बाढ़ को कौन रोक सकता है? मजदूरों ने सब जगह स्वेच्छा से अपना काम छोड़ दिया । उन-उन स्थानों पर मजदूरों की देखभाल के लिए स्वयंसेवक भी अपने-आप तैनात हो गये ।

अब यूनियन सरकार ने बन्दूक की नीति अपनाई । मजदूरों को जबरन् हड़ताल करने से रोका गया । हड़तालियों के पीछे घुड़सवार दौड़ाये गये और उन्हें अपने काम के स्थानों पर भेजा गया । मजदूर जरा भी उपद्रव करते,

तो उन पर गोलीबार किया जाता था । उनमें से कुछ लोगों ने फिर से काम पर जाने का विरोध किया । कुछ ने पत्थर भी फेंके । पुलिस ने गोलीबार किया । कई लोग घायल हुए । दो चार मर भी गये । लेकिन मजदूरों का जोश ठंडा न पड़ा । स्वयंसेवकों ने बड़ी कठिनाई से वेरूलम के पास मजदूरों की हड़ताल को रोका । फिर भी सारे मजदूर काम पर तो नहीं ही गये । कुछ मजदूर डर के मारे छिप गये और वापस नहीं गये ।

यहाँ एक घटना का उल्लेख करने जैसा है । वेरूलम में बहुत से मजदूर काम छोड़कर बाहर निकल आये थे । अधिकारियों के सारे प्रयत्नों के बावजूद वे काम पर नहीं जा रहे थे । जनरल ल्युकिन उस स्थान पर अपने सैनिकों के साथ हाजिर था । वह अपने सैनिकों को मजदूरों पर गोलीबार करने का हुक्म देने के लिए बिलकुल तैयार था । स्व. पारसी रुस्तमजी का छोटा लड़का बहादुर सोराबजी – जिसकी उमर मुश्किल से १८ वर्ष की रही होगी - डरबन से वहाँ आ पहुँचा था । वह जनरल के घोड़े की लगाम पकड़ कर बोल उठा: "आप गोली चलाने का हुक्म नहीं दे सकते । मैं अपने लोगों को शांति से काम पर लगाने की जिम्मेदारी अपने सिर लेता हूँ ।" जनरल ल्युकिन इस नौजवान की बहादुरी पर मुग्ध हो गया । उसने सोराबजी को अपना प्रेमबल आजमाने की छूट दी । सोराबजी ने मजदूरों को समझाया । मजदूर उसकी बात समझ गये और अपने काम पर लौट गये । इस प्रकार एक नौजवान की समय-सूचकता, निर्भयता और प्रेम से अनेक मजदूरों की हत्या टल गई ।

पाठकों को यह समझना चाहिए कि सरकार ने हड़तालियों पर जो गोलीबार किया और उनके साथ जो बुरा व्यवहार किया, वह बिलकुल ग़ैर-कानूनी था । न्यूकैसल की खदानों के मजदूरों के साथ सरकार ने जो व्यवहार किया था, वह ऊपर से कानूनी दिखाई देता था । उन मजदूरों को हड़ताल करने के लिए नहीं, परन्तु बग़ैर परवाने के ट्रान्सवाल की सीमा में प्रवेश करने के लिए गिरफ्तार किया गया था । नेटाल के नैऋत्य और वायव्य कोणों में हड़ताल ही अपराध मानी गई - लेकिन कानून के बल पर नहीं, बल्कि सरकार की सत्ता के बल पर । अंत में तो सरकार की सत्ता ही कानून का रूप ले लेती है । ब्रिटिश कानून में एक कहावत है कि 'राजा कभी कोई गलत काम करता ही नहीं ।' अंतिम विश्लेषण में सत्ता की अनुकलता या सुविधा ही कानूद बन जाती है । यह दोष सभी सरकारों पर एकसा लागू होता है । सच पूछा जाय तो इस तरह कानून को भूलना हमेशा दोष ही नहीं होता । कभी-कभी कानून को पकड़ रखना ही दोष बन जाता है । जब कोई सत्ता लोक-संग्रह करती है और उस सत्ता पर लगे हुए नियंत्रण उसका नाश करने वाले बन जाते हैं, तब उन नियंत्रणों का अनादर करना उसका धर्म हो जाता है और ऐसा करने में विवेक है । परन्तु ऐसे अवसर बिरले ही होते है । जब सत्ता बार-बार निरंकुश व्यवहार करती है तब वह लोकोपकारी रह ही नहीं सकती । दक्षिण अफ्रीका में सत्ता के निरंकुश बनने का कोई कारण नहीं था । मजदूर हड़ताल के अधिकार का अनादि काल से उपभोग करते आये हैं । सरकार के पास यह जानने के पर्याप्त कारण थे कि हड़तालियों को कोई उपद्रव नहीं करना था । मजदूरों की इस हड़ताल का बड़े से बड़ा परिणाम केवल तीन पौंड का कर रद होने में आता । शांतिप्रिय लोगों के विरुद्ध शांत

उपाय हीं उचित माने जा सकते हैं । इसके सिवा, दक्षिण अफ्रीका की सत्ता लोकोपकारी नहीं थीं । उस सत्ता का अस्तित्व गोरों के उपकार के लिए था । सामान्यतः वह हिन्दुस्तानियों के खिलाफ थी । इसलिए ऐसी एकपक्षी सत्ता की निरंकुशता किसी भी हालत में उचित अथवा क्षंतव्य नहीं मानी जा सकती ।

इसलिए मेरी राय में यहाँ सत्ता का निरा दुरुपयोग हुआ । लेकिन जिस कार्य की सिद्धि के लिए सत्ता का ऐसा दुरुपयोग किया जाता है, वह कार्य कभी सिद्ध नहीं होता । कभी-कभी क्षणिक सिद्धि प्राप्त होती देखी जाती हैं, परन्तु स्थायी सिद्धि ऐसे दुरुपयोग से कभी प्राप्त नहीं होती । दक्षिण अफ्रीका में तो इन मजदूरों पर गोली चलाने के बाद छह महीने में ही तीन पौंड का वह कर सरकार को रद करना पड़ा, जिसकी रक्षा के लिए यह अत्याचार किया गया था । इस प्रकार दुःख अनेक बार सुख के लिए होता है । दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों के इन दुःखों की आवाज सब जगह पहूँच गई । मेरा यह विश्वास है कि जैसे किसी यंत्र में उसके हर पुर्जे का अपना स्थान होता है वैसे ही हर आन्दोलन में उसकी हर क्रिया का अपना स्थान होता है; और जिस प्रकार जंग, मैल वगैरा से यंत्र की गति रुकती है उसी प्रकार कुछ बातों से आंदोलन की गति भी रुकती है । हम केवल ईश्वरीय इच्छा के निमित्त मात्र होते हैं, इसलिए हम सदा यह नहीं जानते कि कौनसी वस्तु हमारे लिए प्रतिकूल है और कौनसी अनुकूल है । इसका अर्थ यह हुआ कि हमें केवल साधनों को जानने का ही अधिकार है । साधन यदि पवित्र हों तो हम परिणाम के विषय में निर्भय और निश्चिन्त रह सकते हैं ।

सत्याग्रह की इस लड़ाई में मैंने देखा कि जैसे-जैसे लड़ने वालों का दुःख बढ़ता गया वैसे-वैसे लड़ाई का अंत निकट आता गया; और जैसे जैसे दुःखियों की निर्दोषता अधिक स्पष्ट होती गई वैसे-वैसे भी लड़ाई का अंत निकट आता गया । इसके सिवा, मैंने इस युद्ध में यह भी देखा कि ऐसे निर्दोष, निःशस्त्र और अहिंसक युद्ध में संकट के समय आवश्यक साधन अनायास जुट जाते हैं । ऐसे अनेक स्वयंसेवकों ने, जिन्हें मैं आज तक नहीं जानता, खुद होकर इस लड़ाई में हमारी मदद की थीं । ऐसे सेवक बहुधा निःस्वार्थ होते हैं । अनिच्छा से भी वे अदृश्य रूप में अपनी सेवायें दे देते हैं । न तो उनकी सेवा की ओर कोई ध्यान देता, न उनकी सेवा के लिए कोई उन्हें प्रमाणपत्र देता । उनके ऐसे अमूल्य कार्य ईश्वर के बहीखाते में लिखे जाते हैं, इतना भी कुछ सेवक नहीं जानते ।

दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी अपनी इस अग्नि-परीक्षा में पास हुए । उन्होंने अग्नि में प्रवेश किया और उसमें से वे संपूर्ण रूप में शुद्ध होकर बाहर निकले । इस लड़ाई के अन्त का आरंभ कैसे हुआ, इसकी चर्चा हम अगले प्रकरण में करेंगे ।

२३. अन्त का आरंभ

पाठक देख चुके हैं कि हिन्दुस्तानी कौम जितने शांत बल का उपयोग कर सकती थी उतने का और जितने की उससे आशा रखी जा सकती थी उससे कहीं अधिक शांत वल का उसने उपयोग किया । पाठक यह भी देख चुके हैं कि इस शांत बल का उपयोग करने वाले लोगों का अधिकांश ऐसे गरीब और दबे-कुचले आदमियों का था, जिनसे ऐसी कोई आशा रखी हीं नहीं जा सकती । पाठकों को यह भी याद होगा कि फिनिक्स के दो या तीन जिम्मेदार कार्यकर्ताओं के सिवा बाकी सब जेल में थे । फिनिक्स के बाहर के कार्यकर्ताओं में स्व. सेठ अहमद मुहम्मद काछलिया थे, जो जेल से बाहर थे । फिनिक्स-निवासियों में श्री वेस्ट, कुमारी वेस्ट और मगनलाल गांधी जेल से बाहर थे । काछलिया सेठ सामान्य देखरेख रखते थे । कुमारी श्लेसिन ट्रान्सवाल का सारा हिसाब-किताब रखती थी और सीमा पार करने वाले लोगों की देखभाल करती थी । श्री वेस्ट पर *इंडियन ओपीनियन* का अंग्रेजी विभाग चलाने की और गोखले के साथ तार-व्यवहार चलाने की जिम्मेदारी थी । जब परिस्थिति क्षण-क्षण में नये रूप लेती हो, उस समय पत्र-व्यवहार की ज़रूरत तो पड़ती ही कैसे ? तार ही पत्रों जैसे लम्बे-लम्बे भेजने पड़ते थे । यह नाजुक जिम्मेदारी का काम श्री वेस्ट को करना पड़ता था ।

अब फिनिक्स न्यूकैसल के समान नेटाल के वायव्य कोण के हड़ताली मजदूरों का केन्द्र बन गया । सैकड़ों मजदूर वहाँ आकर सलाह लेने लगे या आश्रय ग्रहण करने लगे । ऐसी स्थिति में सरकार की नजर फिनिक्स की ओर मुड़े बिना कैसे रहती? आसपास रहनेवाले गोरों की आंखें भी लाल हो गईं | फिनिक्स में रहना कुछ हद तक खतरनाक बन गया । फिर भी वहाँ के बच्चे तक हिम्मत और बहादुरी के साथ खतरे से भरे हुए काम करते थे । इस बीच वेस्ट गिरफ्तार हो गये । सच पूछा जाय तो वेस्ट को गिरफ्तार करने का कोई भी कारण नहीं था । हमारे बीच यह तय हो चुका था कि वेस्ट और मगनलाल गांधी गिरफ्तार होने का एक भी प्रयत्न न करें; बल्कि यथासंभव गिरफ्तार होने के अवसरों से दूर रहें । इसलिए वेस्ट ने गिरफ्तार होने का कोई कारण पैदा नहीं होने दिया था । लेकिन सरकार सत्याग्रहियों की सुविधा का ख्याल थोड़े ही रखने वाली थी? अथवा किसी को गिरफ्तार करने का मौका भी उसे थोड़े ही खोजने जाना था? सत्ताधारी की कोई कार्य करने की इच्छा ही उसके लिए अवसर बन जाती है । वेस्ट के गिरफ्तार होने का तार गोखले को मिला कि तुरन्त उन्होंने हिन्दुस्ता नसे होशियार और योग्य आदमियों को दक्षिण अफ्रीका भेजने का कदम उठाया । जब लाहौर में दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रहियों की मदद के लिए सभा हुई तो उसमें एन्ड्रूज़ ने अपने पास के सारे पैसे सत्याग्रहियों के लिए दे दिये थे । और तभी से गोखले की दृष्टि उन पर लगी हुई थी । इसलिए वेस्ट की गिरफ़्तारी के समाचार सुनते ही गोखले ने तार द्वारा एन्ड्रूज़ से पूछा: "आप तुरन्त ही दक्षिण अफ्रीका जाने को तैयार हैं?" एन्ड्रूज़ ने उत्तर में 'हाँ' लिखा ।

उसी क्षण एन्ड्रूज़ के परम प्रिय मित्र पियर्सन भी उनके साथ जाने को तैयार हो गये । दोनों पहले जहाज से दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुए ।

परन्तु सत्याग्रह की लड़ाई अब पूरी होने को आई थीं । हजारों निर्दोष मनुष्यों को जेल में बंद रखने की शक्ति दक्षिण अफ्रीका की सरकार में नहीं थी । भारतके वाइसरॉय भी इस बात को सहन करने वाले नहीं थे । सारी दुनिया देख रही थी कि जनरल स्मट्स अब क्या करते हैं । दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने वही किया जो ऐसे समय सामान्यतः दूसरी सरकारें करती हैं । जाँच तो इस मामले में कुछ करनी ही नहीं थी । हिन्दुस्तानियों के साथ जो अन्याय हुआ था, वह तो सारे संसार में प्रसिद्ध हो चका था । उस अन्याय को दूर करने की आवश्यकता को हर कोई समझ सकता था । जनरल स्मट्स भी देख सकते थे कि हिन्दुस्तनी कौम के साथ अन्याय हुआ है और वह अन्याय दूर होना चाहिए । लेकिन उनकी स्थिति साँप-छछूंदर जैसी थी । उन्हें न्याय करना चाहिए था । परन्तु न्याय करने की शक्ति वे खो बैठे थे, क्योंकि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के गोरों को यह समझाया था कि मैं न तो तीन पौंड का कर रद करूँगा और न दूसरे कोई सुधार करूँगा । लेकिन अब तीन पौंड का कर रद करने के लिए और दूसरे सुधार करने के लिए वे मजबूर हो गये थे । प्रजामत से डर कर चलने वाले राज्य एक कमीशन नियुक्त करके ऐसी विषम स्थिति से बाहर निकल जाते हैं । यह कमीशन नाम की जाँच करता है, क्योंकि ऐसे कमीशन की जाँच का परिणाम पहले से ही जाना हुआ रहता है । और कमीशन जो सिफ़ारिशें करता है उन पर अनिवार्य रूप में अमल करने की सामान्य प्रथा होती है । इसलिए ऐसे कमीशन की सिफ़ारिशों का आश्रय लेकर राज्य वही न्याय करते हैं, जिनके लिए वे पहले इनकार कर चुके होते हैं । जनरल स्मट्स के इस कमीशन में तीन सदस्य नियुक्त किये गये थे । हिन्दुस्तानी कौम ने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक इस कमीशन के सम्बन्ध में उसकी बताई हुई शर्तें पूरी नहीं की जाएगी तब तक वह कमीशन का बहिष्कार करेगी । उनमें से पहली शर्त यह थीं कि सब सत्याग्रहियों को जेल से मुक्त कर दिया जाए । दूसरी शर्ते यह थीं कि कमीशन में कम से कम एक सदस्य हिन्दुस्तानी कौम की ओर से होना चाहिए । पहली शर्ते को कुछ अंश में स्वयं कमीशन ने ही स्वीकार कर लिया था और सरकार से सिफारिश की थी कि उसका काम सरल बनाने के लिए श्री कैलनबैक को, श्री पोलाक को और मुझे बिना शर्त के छोड़ दिया जाए । सरकार ने उसकी यह सलाह मान ली और हम तीनों को एकसाथ (१८ दिसम्बर, १९१३) छोड़ दिया । हमने मुश्किल से छह सप्ताह की क़ैद भोगी होगी ।

दूसरी ओर, वेस्ट को सरकार ने पकड़ा ज़रूर, परन्तु उन पर मुकदमा दायर किया जा सके ऐसा कोई दोष उनका था नहीं । इसलिए उन्हें भी सरकार ने छोड़ दिया । ये घटनायें एन्ड्रूज़ और पियर्सन के दक्षिण अफ्रीका पहुँचने से पहले हो चुकी थीं, इसलिए मैं ही दोनों मित्रों को डरबन जाकर जहाज से उतार लाया था । इन घटनाओं का पता न होने से दोनों को मुझे जहाज पर देखकर आनंद और आश्चर्य हुआ था । इन दोनों से मेरी यह पहली ही मुलाकात थी ।

हम तीनों को जेल से छूटने पर निराशा ही हुई । बाहर की घटनाओं की हमें कोई जानकारी नहीं थीं । कमीशन की नियुक्ति के समाचार से हमें आश्चर्य हुआ, लेकिन हमने देखा कि हम कमीशन की कोई सहायता करने में असमर्थ थे । ऐसा हमें ज़रूर लगा कि कमीशन में हिन्दुस्तानियों की ओर से एक सदस्य अवश्य होना चाहिए । इसलिए हम तीनों डरबन पहूँचे । वहाँ से २१ दिसम्बर, १९१३ को हमने जनरल स्मट्स को एक पत्र लिखा, जिसका सार इस प्रकार है:

"हम कमीशन का स्वागत करते हैं । परन्तु उसमें दो सदस्यों की – श्री एसलन और श्री वाइली की – नियुक्ति जिस तरह हुई हैं, उसका हम कड़ा विरोध करते हैं । व्यक्तिगत रूप में हमारा उनसे कोई विरोध नहीं है । वे प्रसिद्ध और सुयोग्य नागरिक हैं । परन्तु उन दोनों ने अनेक बार हिन्दुस्तानियों के प्रति अपनी नाराजी जाहिर की हैं, इसलिए उनसे अनजाने हिन्दुस्तानियों के साथ अन्याय हो जाने की संभावना हैं । मनुष्य एकाएक अपने स्वभाव को नहीं बदल सकता । इसलिए ये दोनों सज्जन अपना स्वभाव बदल डालेंगे, ऐसा मानना कुदरत के नियम के खिलाफ है । फिर भी हम यह नहीं चाहते कि उन्हें कमीशन से अलग कर दिया जाए । हम तो इतना हीं सुझाना चाहते हैं कि कमीशन में कोई तटस्थ सदस्य बढ़ाये जाएँ; इस उद्देश्य से हम सर जेम्स रोज़इनिज़ और ऑनरेबल डब्ल्यू. पी. श्राइनर के नाम सुझाते हैं । ये दोनों पुरुष जाने-पहचाने हैं और अपनी न्यायवृत्ति के लिए विख्यात हैं । हमारी दूसरी प्रार्थना यह हैं कि सारे सत्याग्रही क़ैदियों को छोड़ दिया जाए । यदि ऐसा न किया गया तो हमारे लिए जेल से बाहर रहना कठिन हो जाएगा । अब उन लोगों को जेल में बंद रखने का कोई कारण नहीं रह जाता । इसके सिवा, यदि हमें कमीशन के सामने गवाही देनी ही हैं, तो हमें खदानों में और अन्यत्र जहाँ-जहाँ गिरमिटिया मजदूर काम करते हैं वहाँ जाने की आजादी मिलनी चाहिए । यदि सरकार हमारी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेगी, तो हमें दुःख के साथ फिर से जेल में पहुँचने के उपाय खोजने होंगे |"

जनरल स्मट्स ने कमीशन के सदस्य बढ़ाने से इनकार कर दिया और कहा कि कमीशन की नियुक्ति किसी पक्ष के लिए नहीं की गई हैं । कमीशन केवल सरकार के संतोष के लिए ही हैं । २४ दिसम्बर को प्राप्त हुए इस उत्तर के बाद हमारे पास एक ही इलाज रह गया था । हमने जेल जाने की तैयारी करके यह घोषणा कर दी कि १ जनवरी, १९१४ के दिन डरबन से जेल जाने वाले हिन्दुस्तानियों का एक कूच आरंभ होगा ।

परन्तु जनरल स्मट्स के उत्तर में एक वाक्य था, जिसके आधार पर मैंने उन्हें दूसरा पत्र लिखा । वह वाक्य था: "हमने निष्पक्ष और अदालती कमीशन की नियुक्ति की है । और उसकी नियुक्ति करते समय जैसे हमने हिन्दुस्तानियों के साथ कोई सलाह-मशविरा नहीं किया उसी तरह खदान-मालिकों या शक्कर वालों के साथ भी नहीं किया था ।" मैंने निजी तौर पर जनरल को लिखा कि यदि सरकार हिन्दुस्तानियों के साथ न्याय ही करना चाहती हो, तो मुझे आपसे मिलने और आपके सामने कुछ तथ्य प्रस्तुत करने की इजाजत दीजिए । इसके उत्तर

में जनरल स्मट्स ने मुलाकात की मेरी विनती स्वीकार की । इसके फलस्वरूप हमारे कूच का कार्यक्रम कुछ दिन के लिए मुलतवी रहा ।

हिन्दुस्तान में गोखले ने जब सुना कि एक नया कूच आरंभ करने का कार्यक्रम हम लोग बना रहे हैं तब उन्होंने मुझे एक लम्बा तार भेजा । उसमें उन्होंने लिखा कि हमारे इस नये कदम से लॉर्ड हार्डिंग की स्थिति और उनकी अपनी स्थिति बड़ी अटपटी हो जाएगी; उन्होंने हमें दूसरा कूच रोकने की और कमीशन के सामने गवाही देकर उसकी मदद करने की जोरदार सलाह दी ।

इससे हम धर्म-संकट में फँस गये । यदि कमीशन के सदस्यों में वृद्धि न की जाए, तो कौम उसका बहिष्कार करने की प्रतिज्ञा ले चुकी थी । लॉर्ड हार्डिंग नाराज हो जाए और गोखले दुखी हो, तो भी ली हुई प्रतिज्ञा कैसे तोड़ी जाए ? श्री एन्ड्रूज़ ने सुझाया कि हम गोखले की भावनाओं का और उनकी नाजुक तबीयत का तथा हमारे इस निश्चय से गोखले को लगने वाले आघात का विचार करें । मैं तो यह सब जानता ही था । कौम के नेताओं के साथ सलाह-मशविरा करके अंत में हमने यह निर्णय किया कि यदि कमीशन के सदस्य बढ़ाये न जाएँ, तो बड़े से बड़ा खतरा उठा कर भी कमीशन का बहिष्कार तो हमें करना ही चाहिए । इसलिए हमने करीब १०० पौंड खर्च करके गोखले को एक लम्बा तार किया । उसमें एन्ड्रूज़ हमारे साथ सहमत थे । उस तार का सार इस प्रकार था:

“आपकी वेदना को हम समझते हैं । चाहे जैसा त्याग करके भी हम आपकी सलाह मानना चाहेंगे । लॉर्ड हार्डिंग ने हमारी अमूल्य सहायता की है । हम यह भी चाहते हैं कि उनकी सहायता हमें अंत तक मिलती रहे । लेकिन हम चाहते हैं कि आप हमारी स्थिति को समझें । इसमें हजारों आदमियों की प्रतिज्ञा का प्रशन समाया हुआ है । हमारी प्रतिज्ञा शुद्ध है । हमारी संपूर्ण लड़ाई की रचना प्रतिज्ञाओं की बुनियाद पर की गई है । यदि प्रतिज्ञा का बन्धन न होता, तो आज हम में से अनेक लोग नीचे गिर गये होते । हजारों लोगों की प्रतिज्ञा पर एक बार पानी फिर जाएँ, तो फिर नैतिक बन्धन जैसी कोई भी चीज न रह जाय । प्रतिज्ञा लेते समय कौम के लोगों ने पूरा-पूरा विचार किया था । उसमें किसी प्रकार की अनीति तो है ही नहीं । बहिष्कार की प्रतिज्ञा लेने का कौम को पूरा अधिकार है । में चाहता हूँ कि आप भी हमें ऐसी सलाह दें कि इस प्रकार की प्रतिज्ञा किसी के भी लिए तोड़ी नहीं जानी चाहिए और बड़े से बड़ा खतरा उठा कर भी उसका पालन किया जाना चाहिए । कृपया यह तार लॉर्ड हार्डिंग को भी दिखा दीजिए । हम चाहते हैं कि आपकी स्थिति अटपटी न बने । यह लड़ाई हमने ईश्वर को साक्षी रखकर और उसकी सहायता पर आधार रखकर आरंभ की है । बुजुर्गों की, बड़े लोगों की सहायता हम माँगते हैं, और चाहते हैं; और जब उनकी सहायता मिलती है तो हम खुश होते हैं । लेकिन उनकी सहायता मिले या न

मिले, प्रतिज्ञा का बंधन किसी भी हालत में टूटना नहीं चाहिए, ऐसा हमारा नम्र मत है । अपनी प्रतिज्ञा के पालन में हम आपका समर्थन और आशीर्वाद चाहते हैं ।"

यह तार गोखले के पास पहुँचा तो उनकी तबीयत पर इसका बुरा असर पड़ा । लेकिन हमें मिलने वाली उनकी मदद पर इसका बुरा असर नहीं पड़ा । अथवा कोई असर हुआ हो तो यह कि उनकी मदद का जोर और ज़्यादा बढ़ गया । उन्होंने लॉर्ड हार्डिंग को इस विषय में तार किया, परन्तु हमारा त्याग नहीं किया । उलटे उन्होंने हमारी दृष्टि का लॉर्ड हार्डिंग के सामने बचाव किया । लॉर्ड हाडिंग भी अपनी बात पर अडिग रहे ।

मैं एन्ड्रूज़ के साथ प्रिटोरिया गया । इसी समय यूनियन रेलवे में गोरे कर्मचारियों की बहुत बड़ी हड़ताल हुई । उस हड़ताल से यूनियन सरकार की स्थिति नाजुक हो गई । मुझसे कहा गया कि ऐसे समय में हिन्दुस्तानियों का कूच आरंभ कर दूँ । पर मैंने घोषित किया कि मैं हड़ताली गोरों की इस तरह मदद नहीं कर सकता । हमारा उद्देश्य सरकार को परेशान करना नहीं है । हमारी लड़ाई गोरों की लड़ाई से अलग है और भिन्न प्रकार की है । हमें कूच करना भी होगा तो हम दूसरे समय करेंगे, जब रेलवे का उपद्रव शांत हो जायगा । हमारे इस निश्चय का गहरा प्रभाव हुआ । इसकी सूचना रायटर ने तार से इंग्लैंड भेजी । लॉर्ड एम्प्टहिल ने हमें इंग्लैंड से धन्यवाद का तार भेजा । दक्षिण अफ्रीका के अंग्रेज मित्रों ने भी हमें धन्यवाद दिया । जनरल स्मट्स के एक सचिव ने मुझसे विनोद में कहा: "मुझे आपके लोग बिलकुल अच्छे नहीं लगते । मैं उनकी जरा भी मदद नहीं करना चाहता । लेकिन हम उनका क्या करें ? आप लोग संकट की स्थिति में हमारी सहायता करते हैं । आपको कैसे मारा जाए? मैं तो बहुत बार चाहता हूँ कि आप भी इन अंग्रेज हड़तालियों की तरह हुल्लड़ करें । वैसी स्थिति में तो हम तुरन्त आप लोगों को सीधा कर सकते हैं । लेकिन आप तो दुश्मनों को भी दुःखी नहीं करना चाहते । आप स्वयं ही दुःख सहन करके जीतना चाहते हैं । आप शिष्टता की मर्यादा कभी छोड़ते नहीं, इससे हम आपके सामने लाचार हो जाते हैं ।"

इसी प्रकार के उद्गार जनरल स्मट्स ने भी प्रकट किये थे ।

पाठकों को जानना चाहिए कि सत्याग्रहियों के सौजन्य और विनय का यह पहला ही उदाहरण नहीं था । जब वायव्य कोण के मजदूरों ने हड़ताल की उस समय कुछ कटा हुआ गन्ना यदि उचित स्थान पर – मिल में पहुँचाया न जाता, तो गोरे मालिकों को बड़ा नुकसान उठाना पड़ता । इसलिए उस गन्ने को यथास्थान पहुँचाने के लिए १२०० हिन्दुस्तानी मजदूर फिर से काम पर लग गये और काम पूरा होने के बाद ही अपने साथियों के साथ हड़ताल में शरीक हुए । इसके सिवा, डरबन म्युनिसिपैलिटी के गिरमिटिया लोगों ने हड़ताल की तब उसमें भी जो लोग भंगी का और अस्पताल का काम करते थे, उन्हें वापस काम पर भेज दिया गया और वे खुशी से वापस गये थे । भंगियों की और अस्पताल के मजदूरों की सेवायें न मिलतीं, तो शहर में रोग फैल जाता और बीमारों

की सार-सँभाल का काम रुक जाता । सत्याग्रही ऐसे परिणाम की कभी इच्छा नहीं कर सकता । इसलिए ऐसे नौकरों को हमने हड़ताल से मुक्त रखा था । सत्याग्रही जो भी कदम उठाये उसमें उसे विरोधी की स्थिति का विचार तो करना ही चाहिए ।

हिन्दुस्तानियोंके सौजन्य के ऐसे अनेक उदाहरणों का जो अदृश्य प्रभाव चारों ओर पड़ता ही रहता था, उसे में देख सकता था । इस प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती रहती थी और समझौते के लिए अनुकूल हवा बनती रहती थी ।

२४. प्राथमिक समझौता

इस प्रकार समझौते के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हो रहा था । मैं और श्री एन्ड्रूज़ प्रिटोरिया पहूँचे उसी अरसे में सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन, जिन्हें लॉर्ड हार्डिंग ने एक विशेष जहाज में दक्षिण अफ्रीका भेजा था, वहाँ पहुँचने वाले थे । परन्तु जनरल स्मट्स ने जो दिन तय किया था उसी दिन हमें प्रिटोरिया पहूँचना था, इसलिए सर बेंजामिन की राह देखे बिना ही हम रवाना हो गये थे । उनकी राह देखने का कोई कारण भी नहीं था । कौम की लड़ाई का अंतिम परिणाम तो हमारी शक्ति के अनुसार ही आने वाला था ।

हम दोनों प्रिटोरिया गये । परन्तु जनरल स्मट्स से अकेले मुझे मिलना था । वे महोदय रेलवे के गोरे मजदूरों की हड़ताल के काम में उलझे हुए थे । वह हड़ताल इतनी भयंकर थी कि यूनियन सरकार ने फ़ौजी कानून (मार्शल लॉ) घोषित कर दिया था । गोरे कर्मचारियों का ध्येय केवल वेतन बढ़वाना ही नहीं था, उन्हें तो राज्य की सत्ता अपने हाथ में लेनी थी । जनरल स्मट्स के साथ मेरी पहली मुलाकात बहुत थोड़े समय की हुई । लेकिन उस मुलाकात में मैंने देख लिया कि पहले अर्थात् हमारे महान कूच के समय उनकी जो स्थिति थी वह आज नहीं रह गई है । पाठकों को स्मरण होगा कि उस समय जनरल स्मट्स ने मुझसे बात करने से भी इनकार कर दिया था । सत्याग्रह की धमकी तो जैसे इस समय थी वैसे उस समय भी थी; फिर भी उस समय उन्होंने मुझसे समझौते की बातचीत करने से इनकार कर दिया था । परन्तु आज वे मुझसे बातचीत करने को तैयार थे ।

हिन्दुस्तानी कौम की माँग तो यह थी कि कमीशन में हिन्दुस्तानियों का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी सदस्य की नियुक्ति होनी चाहिए । लेकिन इस विषय में जनरल स्मट्स दृढ़ थे । उन्होंने कहा: "कमीशन में यह वृद्धि हो ही नहीं सकती, क्योंकि उससे सरकार का महत्त्व घटेगा और मैं जो सुधार करना चाहता हूँ उन्हें कर नहीं सकूँगा । आपको यह जानना चाहिए कि श्री एसलन हमारे आदमी हैं; सुधारों के बारेमें वे सरकार के विरुद्ध नहीं जाएँगे, बल्कि सरका रके अनुकूल रहेंगे । कर्नल वाइली नेटाल के एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं; इसके सिवा वे आप लोगोंके विरुद्ध भी माने जाएँगे । इसलिए यदि वे भी तीन पौंड का कर रद करने में सहमत हो जाएँ, तो हमारा काम सरल हो जाएगा । हमारे अपने कष्ट इतने अधिक हैं कि हमें एक क्षण की फ़ुरसत नहीं मिलती । इसलिए हम चाहते हैं कि आपका प्रश्न निबट जाए । आपकी जो माँगे हैं उन्हें स्वीकार करने का हमने निर्णय कर लिया है । परन्तु कमीशन की सम्मति के बिना हम उन्हें पुरा नहीं कर सकते । आपकी स्थिति को भी मैं समझ सकता हूँ । आपने इस बात की सौगन्ध खा ली है कि जब तक हम कमीशन में आपकी ओर से किसी सदस्य की नियुक्ति नहीं करेंगे तब तक आप कमीशन के सामने गवाही नहीं देंगे । आप न चाहें तो गवाही न दें । परन्तु जो लोग देने आयें उन्हें आप रोकें नहीं और कमीशन का काम चले तब तक सत्याग्रह स्थगित रखें । मेरा विश्वास है कि ऐसा करने से आपको लाभ ही होगा और मुझे शांति मिलेगी । हड़ताल करने वाले हिन्दुस्तानी मजदूरों पर जुल्म ढाये

जाने की बात आप लोग कहते हैं । लेकिन यह बात आप सिद्ध नहीं कर सकेंगे, क्योंकि कमीशन के सामने आप गवाही नहीं देंगे । लेकिन यह तो स्वयं आपके सोचने की बात है ।"

ये उद्गार जनरल स्मट्स ने प्रकट किये । मेरा मन तो सब मिला कर उनकी कही हुई बातों के अनुकूल था । हड़तालियों पर सिपाहियों और वार्डरों ने जो जुल्म ढाये थे, उनकी शिकायत हमने खूब की थीं । परन्तु कमीशन का बहिष्कार करने के कारण उसे सिद्ध करने का सुयोग हमें नहीं मिल सकता था । यह एक धर्म-संकट था | हमारे बीच इस विषय में मतभेद था । एक पक्ष यह मानता था कि हिन्दुस्तानियों की ओर से सिपाहियों और वार्डरों पर लगाये गये आरोप सिद्ध किये ही जाने चाहिए । और इसलिए इस पक्ष का सुझाव था कि अगर कमीशन के सामने गवाही न दी जा सके, तो जिन लोगों को कौम अपराधी मानती है उनके विरुद्ध शिकायतें ऐसे रूप में प्रकट की जाएँ, जिससे अभियुक्त चाहें तो 'लाइबल' का – मानहानि का – दावा कोर्ट में कर सकें । लेकिन मैं इस पक्ष के खिलाफ था । कमीशन का निर्णय सरकार के विरुद्ध हो, इसकी बहुत कम संभावना थी । मानहानि का दावा कर सकने जैसी हकीकतें जाहिर करने से कौम को बड़ी झंझटों में फँसना पड़ता और उसका परिणाम केवल शिकायतें सिद्ध करने के संतोष के सिवा दूसरा कुछ नहीं होता । एक वकील के नाते मैं मानहानि वाली बातों को सिद्ध करने की कठिनाइयों को जानता था । लेकिन सबसे वजनदार दलील मेरे पास यह थी कि सत्याग्रहियों को दुःख सहन करना है । सत्याग्रह आरंभ करने से पहले सत्याग्रही यह जानते थे कि उन्हें मृत्यु-पर्यन्त दुःख सहने पड़ेंगे और ये सब दुःख सहने के लिए वे तैयार भी हैं । तो फिर जो दुःख उन्हें सहन करने पड़ें उन्हें सिद्ध करने में कोई विशेषता नहीं है । बदला लेने की वृत्ति तो सत्याग्रही में होनी ही नहीं चाहिए । इसलिए सही मार्ग यही होगा कि जहाँ अपने दुःख साबित करने में असामान्य कठिनाइयाँ आयें वहाँ सत्याग्रही को शांत रहना चाहिए । सत्याग्रही को लड़ाई तो मूल वस्तु के लिए ही करनी चाहिए । और मूल वस्तु ये काले कानून हैं । जब उनके रद होने की या उनमें आवश्यक परिवर्तन होने की पूरी संभावना हो तब सत्याग्रही दूसरी झंझटों में नहीं पड़ेगा । इसके सिवा, सत्याग्रही का मौन कानून के विरुद्ध लड़ी जाने वाली लड़ाई में समझौते के समय उसका सहायक ही सिद्ध होता है । इन दलीलों से मैं विरोधी पक्ष के बड़े भाग को अपनी बात समझा सका था । इसलिए हमने दुःखों की शिकायतें कानून की सहायता से सिद्ध करने का विचार छोड़ देने का निर्णय किया ।

२५. पत्रों का आदान-प्रदान

प्राथमिक समझौते के लिए जनरल स्मट्स और मेरे बीच पत्र-व्यवहार हुआ था । मेरे २१ जनवरी, १९१४ के पत्र का आशय इस प्रकार था:

"अपनी प्रतिज्ञा के कारण हम आपके बताये अनुसार कमीशन के सामने गवाही देकर उसकी सहायता नहीं कर सकेंगे । हमारी इस प्रतिज्ञा को आप समझ सकते हैं और आप उसका सम्मान भी करते हैं । आप कौम के साथ सलाह-मशविरा करने के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं, इसलिए गवाही देने के सिवा दूसरे तरीके से कमीशन की सहायता करने की और कम से कम कमीशन के कार्य में बाधक न बनने की सलाह तो मैं अपने देशबन्धुओं को दे सकता हूँ । इसके सिवा, कमीशन का कार्य चले उस बीच और नये कानून पास हों उस बीच सरकार की स्थिति को विषम न बनाने की दृष्टि से मैं कौम को सत्याग्रह स्थगित रखने की सलाह भी दे सकता हूँ । साथ ही वाइसरॉय के भेजें हुए सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन की सहायता करने की सलाह भी मैं अपने देशबन्धुओं को दूँगा ।

"जेल में और हड़ताल के दिनों में हमें जो दुःख उठाने पड़े और हम पर जो अत्याचार किये गये, उनके सम्बन्ध में मुझे यह कहना चाहिए कि अपनी प्रतिज्ञा के कारण हम उन दुःखों और अत्याचारों को सिद्ध नहीं कर सकेंगे । सत्याग्रहियों के नाते हम यथासंभव अपने दुःखों और कष्टों की शिकायत नहीं करते और उनका बदला नहीं माँगते । परन्तु इस विषय में हमारे मौन का यह अर्थ न किया जाना चाहिए कि हमारे पास उन्हें सिद्ध करने की कोई सामग्री ही नहीं है । मैं चाहता हूँ कि आप हमारी स्थिति को भी समझें । इसके सिवा, जब हम सत्याग्रह स्थगित रखते हैं तो जो सत्याग्रही इस समय लड़ाई के सिलसिले में जेल में बंद हैं वे रिहा कर दिये जाने चाहिए । मैं यहाँ यह भी बता देना ज़रूरी समझता हूँ कि हमारी माँगे क्या क्या हैं:

१. तीन पौंड का कर रद कर दिया जाए ।

२. जो विवाह हिन्दू, मुस्लिम वगैरा धार्मिक विधि के अनुसार हुए हों, वे कानून से जायज माने जाएँ |

३. शिक्षित हिन्दुस्तानियों को इस देश में प्रवेश करने दिया जाए ।

४. ऑरेंज फ्री स्टेट के विषय में जो करार हुए हैं, उनमें सुधार किया जाए ।

५. वर्तमान कानूनों का अमल इस प्रकार होने का आश्वासन दिया जाए कि उनसे हिन्दुस्तानियों के मौजूदा अधिकारों को कोई नुकसान न पहूँचे ।

"अगर इन माँगों के बारेमें आपकी ओर से सन्तोषकारक उत्तर मिला, तो मैं कौम को सत्याग्रह स्थगित रखने की सलाह दूँगा ।"

इस पत्रका जनरल स्मट्स ने उसी दिन जो उत्तर दिया, उसका आशय यह था:

"सरकार को इस बात का दुःख है कि आप कमीशन के सामने गवाही नहीं दे सकते । लेकिन वह आपकी स्थिति को समझ सकती है । आप सत्याग्रहियों के दुःखों की बात छोड़ देने का जो इरादा बताते हैं, उसके पीछे रहा हेतु भी सरकार समझती है । सरकार इस बात से साफ इनकार करती है कि सत्याग्रहियों के साथ कोई क्रूर व्यवहार किया गया था । लेकिन यदि आप इस विषय में कमीशन के सामने कोई सबूत पेश न करें, तो सरकार के लिए कुछ करने को नहीं रह जाता । और सत्याग्रही क़ैदियों को छोड़ने के बारेमें तो आपका पत्र मिलने से पहले ही सरकार ने आवश्यक आदेश भेज दिये हैं । हिन्दुस्तानी कौम के दुःखों के बारेमें आपने पत्रके अंत में जो लिखा है, उसके सम्बन्ध में सरकार कमीशन की रिपोर्ट मिलने तक कोई कदम नहीं उठायेगी ।"

हमारे इन दोनों पत्रों का आदान-प्रदान हुआ उसके पूर्व मैं और श्री एन्ड्रूज़ जनरल स्मट्स से कई बार मिल चुके थे । इस बीच सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन भी प्रिटोरिया पहूँच गये थे । यद्यपि सर बेंजामिन लोकप्रिय अधिकारी माने जाते थे और गोखले का सिफ़ारिशी पत्र भी अपने साथ लाये थे, फिर भी मैंने देखा कि वे सामान्य अंग्रेज अधिकारियों की कमजोरियों से सर्वथा मुक्त नहीं थे । उन्होंने आते ही कौम में फूट डालना और सत्याग्रहियों को डराना शुरू कर दिया । प्रिटोरिया में उनके साथ हुई मेरी पहली मुलाकात में मुझ पर उनकी अच्छी छाप नहीं पड़ी । सत्याग्रहियों को डराने के बारेमें मुझे कुछ तार मिले थे, जिनके सम्बन्ध में मैंने सर बेंजामिन से बात भी की थी । मुझे तो सबके साथ एक ही रीति से अर्थात् स्पष्टता और निखालिसपन से ही काम लेना था, इसलिए हम दोनों मित्र बन गये । परन्तु मैंने अनेक बार यह अनुभव किया है कि डरने वाले को अधिकारी डराते ही हैं और सीधे तथा निडर व्यक्ति के साथ वे सीधे रहते हैं ।

इस प्रकार सरकार के साथ हमारा प्राथमिक समझौता हुआ और सत्याग्रह अंतिम बार के लिए स्थगित रहा । इससे अनेक अंग्रेज मित्र प्रसन्न हुए और उन्होंने अंतिम समझौते में हमारी सहायता करने का विश्वास भी दिलाया । कौम से इस समझौते को स्वीकार कराने का काम कुछ मुश्किल था । कोई ऐसा नहीं चाहता था कि कौम के लोगों में उत्पन्न हुआ उत्साह टूट जाए । इसके सिवा, जनरल स्मट्स का विश्वास तो कोई रखते ही क्यों? कुछ लोगों ने मुझे १९०८ के समझौते की याद दिलाई और कहा: "एक बार जनरल स्मट्स ने कौम को धोखा दिया है । उन्होंने अनेक बार आप पर सत्याग्रह में नई बातें सम्मिलित करने के आक्षेप लगाये, कौम पर अनेक अत्याचार किये; इतने पर भी आप जनरल को नहीं समझे, यह कितने दुःख की बात है? वह आदमी फिर आपको धोखा देगा । और फिर आप सत्याग्रह की बात करेंगे । उस समय आपका विश्वास कौन करेगा? लोग इस तरह बार-बार जेल में जाएँ और बार-बार नुकसान उठायें, यह कैसे चल सकता है? जनरल स्मट्स जैसे आदमी के साथ

तो एक ही समझौता हो सकता है । कौम जो माँगे वही उनसे लिया जाए; उनसे वचन नहीं लिया जा सकता । जो आदमी वचन देकर उसे तोड़ दे, उसका अधिक विश्वास कैसे किया जाए?"

मैं जानता ही था कि ऐसी दलीलें कुछ स्थानों पर की जाएँगी । इसलिए मुझे इनसे आश्चर्य नहीं हुआ । चाहे जितनी बार धोखा किया जाए, फिर भी जब तक किसी के वचन पर विश्वास न रखने का स्पष्ट कारण न हो तब तक सत्याग्रही विश्वास रखता ही है । जिस सत्याग्रही ने दुःख को सुख मान लिया है वह जहाँ अविश्वास का कोई कारण न हो वहाँ केवल दुःख के भयसे त्रस्त होकर विरोधी पर अविश्वास नहीं करेगा; परन्तु अपनी शक्ति पर विश्वास रखकर विरोधी पक्ष द्वारा दिये जाने वाले धोखे के बारेमें निश्चिन्त रहेगा और चाहे जितनी बार धोखा खाने के बाद भी विरोधी पर विश्वास रखेगा तथा यह मानेगा कि ऐसा करने से सत्य का बल बढ़ेगा और विजय अधिक निकट आयेगी । इसलिए जगह-जगह सभायें करके मैं समझौते को स्वीकार करने की बात अंत में कौम के लोगों को समझा सका और वे भी सत्याग्रह के रहस्य को अधिक समझने लगे । इस बार के समझौते में श्री एन्ड्रूज़ मध्यस्थ और साक्षी थे । साथ ही वाइसरॉय के प्रतिनिधि के रूप में सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन भी हाजिर थे । इस कारण इस समझौते के भंग का कम से कम भय था । यदि मैंने समझौता न करने की जिद पकड़ ली होती, तो वह कौम का दोष माना जाता; और छह महीने बाद कौम को जो विजय मिली, उसके मिलने में अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित होते । सत्याग्रही किसी समय अपनी ओर किसी को अंगुली उठाने का भी मौका नहीं देता – ऐसे ही अनुभव से 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' वचन लिखा गया होगा । अविश्वास भी डरपौकपन की निशानी है । सत्याग्रह में निर्भयता निहित ही है । निर्भभ को डर किस बात का ? और जहाँ विरोधी के विरोध पर विजय पानी है, विरोधी का नाश नहीं करना है, वहाँ अविश्वास कैसा ?

इसलिए कौम ने समझौता स्वीकार कर लिया उसके बाद केवल यूनियन पार्लियामेन्ट की बेठक की राह देखना ही बाकी रहा । इस बीच कमीशन अपने काये में लगा था । कमीशन के सामने हिन्दुस्तानियों की ओर से बहुत ही कम साक्षी गये थे । इस घटना से इस बात का सचोट प्रमाण मिला कि उस समय सत्याग्रहियों का कौम पर कितना अधिक प्रभाव था । सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन ने अनेक हिन्दुस्तानियों को कमीशन के सामने गवाही देने के लिए समझाया, किन्तु लड़ाई का बहुत ज़्यादा विरोध करने वाले कुछ लोगों के सिवा सब कोई अडिग रहे । कमीशन के इस बहिष्कार का जरा भी बुरा असर नहीं हुआ । इससे कमीशन का काम कम हो गया और उसकी रिपोर्ट तुरन्त प्रकाशित हो गई । रिपोर्ट में कमीशन के संदस्यों ने कौम की ओर से कोई मदद न मिलने की कड़ी टीका की । उन्होंने सिपाहियों के बुरे बरताव का आक्षेप उड़ा दिया, परन्तु कौम की जो-जो माँगे थीं उन सबको पूरा करने की सरकार से सिफ़ारिश की । उदाहरणके लिए, तीन पौंड का कर अवश्य ही रद कर दिया जाना चाहिए । विवाह के बारेमें हिन्दुस्तानियों की माँग स्वीकार की जानी चाहिए । दूसरी भी कुछ छोटी छोटी सुविधायें देने और यह सब जल्दी ही करने की कमीशन ने सिफ़ारिश की । इस प्रकार कमीशन की रिपोर्ट जनरल स्मट्स

के कथानानुसार कौम के लिए अनुकूल सिद्ध हुई । श्री एन्ड्रूज़ इंग्लैंड के लिए रवाना हुए ।सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन भारत के लिए रवाना हो गये । हमें यह विश्वास दिलाया गया था कि कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार आवश्यक कानून बनाया जाएगा । वह कानून क्या था और कैसे बनाया गया, इसकी चर्चा अगले प्रकरण में की जाएगी ।

२६. लड़ाई का अन्त

कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होने के कुछ ही समय बाद जिस कानून के द्वारा समझौता होने वाला था, उसका मसौदा यूनियन गजट में प्रकाशित हुआ । इस मसौदे के प्रकाशित होते ही मुझे केप टाउन जाना पड़ा । यूनियन पार्लियामेन्ट की बैठक वहीं होने वाली थी, वहीं होती है । उस बिल में नौ घारायें थीं । वह सारा बिल *नवजीवन* के दो कालम में छप सकता है । उसके एक भाग का सम्बन्ध हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुषों के विवाहों से था । उसका आशय यह था कि जो विवाह हिन्दुस्तान में कानूनी माने जाएँ, वे दक्षिण अफ्रीका में भी कानूनी माने जाने चाहिए । परन्तु एक से अधिक पत्नियाँ एक ही समय में किसी की कानूनी पत्नियाँ नहीं मानी जा सकतीं । बिल का दूसरा भाग तीन पौंड के उस कर को रद करता था, जो गिरमिट पूरी होने के बाद स्वतंत्र हिन्दुस्तानी के रूप में दक्षिण अफ्रीका में बसना चाहने वाले प्रत्येक गिरमिटिया मजदूर को प्रतिवर्ष देना पड़ता था । बिल के तीसरे भाग में उन प्रमाणपत्रों के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया था, जो दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को मिलते थे । अर्थात् उस भाग में यह बताया गया था कि जिन हिन्दुस्तानियों के पास ऐसे प्रमाणपत्र हों, उनका दक्षिण अफ्रीका में रहने का अधिकार किस हद तक सिद्ध होता है । इस बिल पर यूनियन पार्लियामेन्ट में लम्बी और मीठी चर्चा हुई ।

दूसरी जिन बातों के लिए कानून बनाना ज़रूरी नहीं था, उन सबकी स्पष्टता जनरल स्मट्स और मेरे बीच हुए पत्र-व्यवहार में की गई थी । उसमें निम्न-लिखित बातों की स्पष्टता की गई थी: केप कॉलोनी में शिक्षित हिन्दुस्तानियों के प्रवेश-अधिकार की रक्षा करना, खास इजाजत पाये हुए शिक्षित हिन्दुस्तानियों को दक्षिण अफ्रीका में प्रवेश करने देना, पिछले तीन वर्षों में (१९१४ से पहले) दक्षिण अफ्रीका में प्रवेश कर चुके शिक्षित हिन्दुस्तानियों का दरजा तय करना और जिन हिन्दुस्तानियों ने एक से अधिक स्त्रियों से विवाह किया हो उन्हें अपनी दूसरी पत्नियों को दक्षिण अफ्रीका में लाने की इजाजत देना | इन सब प्रश्नों से सम्बन्ध रखने वाले जनरल स्मट्स के पत्र में एक और बात भी जोड़ी गई थी : "मौजूदा कानूनों के बारेमें यूनियन सरकार ने हमेशा यह चाहा है और आज भी वह चाहती है कि इन कानूनों का अमल न्यायपूर्ण ढंग से और आज जो अधिकार भोगे जा रहे हैं उनकी रक्षा करके हीं हो।" यह पत्र ३० जून, १९१४ को मुझे लिखा गया था । उसी दिन मैंने जनरल स्मट्स को जो पत्र लिखा, उसका आशय इस प्रकार था:

"आज की तारीख का आपका पत्र मुझे मिला है । आपने धैर्य और सौजन्य के साथ मेरी बातें सुनीं, इसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ । हिन्दुस्तानियों को राहत देने वाले कानून (इंडियन्स रिलीफ बिल) से और हमारे बीच के इस पत्र-व्यवहार से सत्याग्रह की लड़ाई का अंत होता है । यह लड़ाई सितम्बर १९०६ में आरम्भ हुई थी | इससे

हिन्दुस्तानी कौम को बड़ा दुःख और पैसे का भारी नुकसान उठाना पड़ा है, और सरकार को भी इसकी वजह से चिन्तातुर रहना पड़ा है ।

"आप जानते हैं कि मेरे कुछ हिन्दुस्तानी भाइयों की माँग बहुत अधिक थी । अलग-अलग प्रान्तों में व्यापार के परवाने के कानूनों में – उदाहरण के लिए, ट्रान्सवाल का गोल्ड लॉ, ट्रान्सवाल टाउनशिप्स एक्ट तथा १८८५ का ट्रान्सवाल का कानून नं. ३ – ऐसे कोई परिवर्तन नहीं हुए, जिनसे हिन्दुस्तानियों को वहाँ निवास के संपूर्ण अधिकार प्राप्त हों, व्यापार करने की छूट मिले और ज़मीन की मालिकी का अधिकार मिले । इससे उन्हें असंतोष हुआ है । कुछ हिन्दुस्तानियों को तो इसलिए असंतोष हुआ है कि उन्हें एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाने की संपूर्ण स्वतंत्रता नहीं मिली है। कुछ को इसलिए असंतोष हुआ है कि हिन्दुस्तानियों को राहत देने वाले कानून में विवाह-सम्बन्धी जो छूट दी गई है उससे अधिक छूट दी जानी चाहिए थी । उन्होंने मुझसे यह माँग की है कि ऊपर की सारी बातों को सत्याग्रह की लड़ाई में सम्मिलित कर दिया जाए । परन्तु मैंने उनकी यह माँग स्वीकार नहीं की । इसलिए यद्यपि ये बातें सत्याग्रह की लड़ा ईमें सम्मिलित नहीं की गईं, फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि भविष्य में किसी दिन सरकार को इन बातों पर अधिक सहानुभूति से सोच-विचार कर हिन्दुस्तानियों को ये राहतें देनी होंगी । जब तक यहाँ बसने वाली हिन्दुस्तानी कौम को नागरिकों के संपूर्ण अधिकार नहीं दिये जाएँगे, तब तक उसे संपूर्ण संतोष होने की आशा नहीं रखी जा सकती ।

"अपने देशबन्धुओं से मैंने कहा है कि आपको धीरज रखना होगा और प्रत्येक उचित साधन की सहायता से लोकमत को ऐसा शिक्षित करना होगा कि भविष्य की सरकार हमारे इस पत्र-व्यवहार में बताई गई शर्तों से अधिक आगे जा सके । मैं आशा करता हूँ कि जब दक्षिण अफ्रीका के गोरे यह समझेंगे कि हिन्दुस्तान से गिरमिटिया मजदूरों का आना अब बंद हो गया है और 'इमिग्रेशन एक्ट' से स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों का भी दक्षिण अफ्रीका में आना लगभग रुक गया है और जब वे यह समझेंगे कि यहाँ के राजकाज में किसी तरह का हस्तक्षेप करने की हिन्दुस्तानियों की कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं है, तब वे यह समझ जाएँगे कि मेरे बताये हुए अधिकार हिन्दुस्तानियों को देने ही चाहिए और उसी में न्याय समाया हुआ है । इस बीच इस प्रशन को हल करने में पिछले कुछ माह से सरकार ने जो उदार भावना प्रकट की है वही उदार भावना, आपके पत्र में बताये मुताबिक, आज के कानूनों के अमल में बनी रही, तो मेरा विश्वास है कि संपूर्ण यूनियन में हिन्दुस्तानी कौम कुछ हद तक शांति का उपभोग करते हुए रह सकेगी और सरकार के लिए परेशानी का कारण नहीं बनेगी ।"

उपसंहार

इस प्रकार आठ वर्ष के अंत में सत्याग्रह की यह महान लड़ाई पूरी हुई और यह माना गया कि संपूर्ण दक्षिण अफ्रीका में बसे हुए हिन्दुस्तानियों को शान्ति मिली । १८ जुलाई, १९१४ को दुःख और हर्ष के साथ मैं इंग्लैंड में गोखले से मिलकर वहाँ से हिन्दुस्तान जाने के लिए दक्षिण अफ्रीका से रवाना हो गया । जिस दक्षिण अफ्रीका में मैंने २१ वर्ष निवास किया और असंख्य कड़वे और मीठे अनुभव प्राप्त किये तथा जहाँ मैं अपने जीवन के लक्ष्य को समझ सका, उस देश को छोड़ना मुझे बहुत कठिन मालूम हुआ और मैं दुःखी हुआ । हर्ष मुझे यह सोचकर हुआ कि अनेक वर्षों के बाद हिन्दुस्तान जाकर मुझे गोखले के नेतृत्व में देश की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होगा ।

सत्याग्रह की लड़ाई के इतने सुन्दर अंत के साथ दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की वर्तमान स्थिति की तुलना करने पर एक क्षण के लिए ऐसा प्रशन मन में उठता है कि उन्होंने इतने बड़े-बड़े दुःख किस लिए भोगे? अथवा मानव-जाति की समस्यायें हल करने में सत्याग्रह के शस्त्र की उत्तमता कहाँ सिद्ध हुई ? इस प्रश्न के उत्तर का हमें यहाँ विचार करना चाहिए । सृष्टि का ऐसा एक नियम है कि जो वस्तु जिस साधन से प्राप्त होती है, उसकी रक्षा भी उसी साधन से की जा सकती है । हिंसा से प्राप्त हुई वस्तु की रक्षा हिंसा ही कर सकती है; सत्य से प्राप्त हुई वस्तु की रक्षा सत्य के द्वारा ही की जा सकती है । इसलिए दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुसस्तानी यदि आज भी सत्याग्रह के शस्त्र का उपयोग कर सकें, तो वे वहाँ सुरक्षित बन सकते हैं । सत्याग्रह में यह विशेषता तो नहीं है कि सत्य से प्राप्त हुई वस्तु की रक्षा सत्य का त्याग करने पर भी हो सके । यदि ऐसा परिणाम संभव हो, तो भी वह वांछनीय नहीं माना जा सकता । इसलिए यदि दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की स्थिति आज कमजोर पड़ गई है, तो हमें समझ लेना चाहिए कि इसका कारण उनके बीच सत्याग्रहियों का अभाव है । मेरा यह कथन दक्षिण अफ्रीका के वर्तमान हिन्दुस्तानियों के दोष का सूचक नहीं, परन्तु वहाँ की वस्तुस्थिति का द्योतक है । व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समुदाय जो गुण उनके भीतर नहीं हैं, उन्हें बाहर से कैसे ला सकते हैं? वहाँ के सत्याग्रही सेवक एक के बाद एक भगवानके पास चले गये । सोराबजी, काछलिया, थंबी नायडू, पारसी रुस्तमजी इत्यादि का स्वर्गवास हो जाने से वहाँ के हिन्दुस्तानियों में अब बहुत कम अनुभवी सत्याग्रही बच रहे हैं; जो सत्याग्रही जीवित हैं, वे आज भी वहाँ की सरकार से लड़ रहे हैं । और इस विषय में मुझे कोई शंका नहीं कि वे लोग समय आने पर – यदि उनमें सत्य का आग्रह हुआ तो – हिन्दुस्तानी कौम की रक्षा कर लेंगे ।

अंत में ये प्रकरण पढ़ने वाले पाठक इतना तो समझ ही गये होंगे कि यदि सत्याग्रह की यह महान लड़ाई न लड़ी गई होती और अनेक हिन्दुस्तानियों ने जो बड़े बड़े दुःख सहन किये वे न किये होते, तो आज दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों का नाम-निशान न रह जाता । इतना ही नहीं, दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों को जो विजय

मिली, उसकी वजह से ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे उपनिवेशों में बसे हुए हिन्दुस्तानी भी कम या ज़्यादा मात्रा में बच गये । दूसरे कुछ हिन्दुस्तानी यदि न बच सके, तो इसमें दोष सत्याग्रह का नहीं है; बल्कि इससे यह सिद्ध होता है कि उन उपनिवेशों में बसे हुए हिन्दुस्तानियों में सत्याग्रह का अभाव है और हिन्दुस्तान में उनकी रक्षा करने की शक्ति नहीं है । सत्याग्रह एक अमूल्य शस्त्र है, उसमें निराशा या पराजय के लिए कोई स्थान ही नहीं है – ऐसा यदि कुछ अंशों में भी इस इतिहास से सिद्ध हो सका हो, तो मैं स्वयं को कृतार्थ हुआ मानूँगा ।

परिशिष्ट - १

सत्याग्रह की लड़ाई के इतिहास की मुख्य तारोखें और घटनायें

[*गांधीजी अप्रैल १८९३ में २४ वर्ष की आयु में हिन्दुस्तान से रवाना होकर मई में डरबन पहूँचे थे।*]

१९०६

४ अगस्त - श्री डंकन ने ट्रान्सवाल लेजिस्लेटिव कौंसिल में एशियाटिक एमेन्डमेन्ट एक्ट प्रस्तुत करने का प्रस्ताव रखा ।

११ सितम्बर - जोहानिसबर्ग के एम्पायर थियेटर में हिन्दुस्तानियों की सार्वजनिक सभा हुई । सभा में उपस्थित प्रत्येक हिन्दुस्तानी नें खूनी कानून पास होने पर उसके सामने सिर न झुकाकर जेल जाने की सौगंध खाई । हिन्दुस्तानियों का एक प्रतिनिधि-मंडल इंग्लैंड भेजने का निर्णय किया गया ।

१२ सितम्बर - खूनी कानून ट्रान्सवाल की धारासभा में पास हुआ ।

१ अक्तूबर - हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडल जोहानिसबर्ग से रवाना हुआ ।

८ नवम्बर - प्रतिनिधि-मंडल उपनिवेश-मंत्री लॉर्ड एल्गिन से मिला ।

२९ नवम्बर - लंदन में साउथ अफ्रीका ब्रिटिश इंडियन कमेटी की स्थापना हुई । सर लेपेल ग्रिफिन उसके प्रथम अध्यक्ष और श्री रिच उसके मंत्री नियुक्त किये गये ।

१ दिसम्बर - प्रतिनिधि-मंडल इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुआ ।

३ दिसम्बर - खूनी कानून को ब्रिटिश सम्राट् ने अस्वीकार किया ।

१९०७

२२ मार्च - साम्राज्य सरकार द्वारा अस्वीकृत खूनी कानून को ट्रान्सवाल की नई पार्लियामेन्ट ने २४ घंटे में पास कर दिया ।

२ मई - खूनी कानून को ब्रिटिश सम्राट् की स्वीकृति प्राप्त हुई ।

१ जुलाई - खूनी कानून का अमल शुरू हुआ और उसके अनुसार पहले प्रिटोरिया में परवाना देने के लिए रजिस्ट्रेशन ऑफिस खोला गया। उस दिन से यह ऑफिस चार माह तक गाँव-गाँव घूमा । लेकिन लगभग सर्वत्र हिन्दुस्तानियों द्वारा उसका बहिष्कार हुआ । ८००० की आबादी में करीब

५०० आदमियों ने नाम दर्ज करा कर परवाने लिए । इस अवधि के बाद लोगों की गिरफ्तारियाँ शुरू हो गईं ।

१८ सितम्बर - माननीय गोखलेजी की ओर से एसोसियेशन को तार मिला : "आपकी लड़ाईका मैं अच्छी तरह निरीक्षण कर रहा हूँ । चिन्तातुर होकर उसमें मन एकाग्र कर रहा हूँ । हार्दिक सहानुभूति प्रकट करता हूँ । लड़ाई की प्रशंसा करता हूँ । दृढ़ता से ईश्वर की इच्छा पर आधार रखिये ।"

२५ अक्तूबर - खूनी कानून के विरुद्ध ट्रान्सवाल के सात या आठ हजार हिन्दुस्तानियों में से ४५२२ आदमियों के हस्ताक्षरों वाली एक बड़ी अरजी एसोसियेशन की ओ रसे सरकार को भेजी गई ।

३ नवम्बर - रजिस्ट्रेशन की अरजियाँ लेना बंद कर दिया गया ।

११ नवम्बर - पहले-पहल सत्याग्रहियों की गिरफ़्तारी शुरू हुई ।

२७ दिसम्बर - गांधीजी को कोर्ट में हाजिर रहने की चेतावनी मिली ।

२८ दिसम्बर - जोहानिसबर्ग में श्री जॉर्डन ने गांधीजी को ४८ घंटे में ट्रान्सवाल छोड़ देने का हुक्म दिया ।

१९०८

१० जनवरी - जोहानिसबर्ग में श्री जॉर्डन ने गांधीजी को दो माह की सादी क़ैद की सजा दी ।

३० जनवरी - सत्याग्रही क़ैदियों को जेल से रिहा किया गया । ट्रान्सवाल सरकार ने हिन्दुस्तानियों के सामने स्वेच्छा से परवाने लेने का प्रस्ताव रखा और ऐसा हो तो खूनी कानून रद करने का वचन दिया ।

१० फरवरी - गांधीजी, श्री थंबी नायडू और अन्य कुछ साथी एशियाटिक ऑफिस की ओर जा रहे थे । इतने में गांधीजी पर हमला हुआ ।

२४ जून - सरकारने खूनी कानून रद करने से इनकार किया, इसलिए सत्याग्रह की लड़ाई शुरू हुई । श्री सोराबजी ने सबसे पहले नेटाल से ट्रान्सवाल में प्रवेश किया और २० जुलाई को वॉक्सरस्ट के मजिस्ट्रेट ने उन्हें एक माह की जेल की सजा दी ।

१२ जुलाई - लगभग २००० ऐच्छिक परवाने जोहानिसबर्ग की सार्वजनिक सभा में जलाये गये ।

२२ जुलाई - लॉर्ड सेलबोर्न को साम्राज्य सरकार का तार मिला कि रोडेशिया में पास हुए कठोर एशियाटिक कानून को ब्रिटिश सम्राट् की स्वीकृति नहीं दी जा सकती ।

२२ अगस्त - ऐच्छिक परवानों को कानूनी मानने वाला और दूसरे हिन्दुस्तानियों को परवाने देने वाला कानून ट्रान्सवाल पार्लियामेन्ट के दोनों सदनों में पास हुआ ।

३० अगस्त - प्रिटोरिया की सार्वजनिक सभा में दूसरे २०० ऐच्छिक परवाने जलाये गये ।

७ अक्तूबर[१] - गांधीजी वॉक्सरस्ट में गिरफ्तार हुए | एक सप्ताह बाद उन पर जो मुकदमा चला, उसमें उन्हें दो महीने की सख्त क़ैद की सजा मिली ।

९ नवम्बर - आज से पाँच दिन में २२७ हिन्दुस्तानी जेल गये । उनमें अनेक हिन्दू और मुसलमान व्यापारी थे । इस संख्या में ६४ जोहानिसबर्ग के, ९७ जर्मिस्टन के और ६० प्रिटोरिया के हिन्दुस्तानी थे ।

१४ नवम्बर - इस सप्ताह में २२७ हिन्दुस्तानी जेल गये । उनमें ६४ जोहानिसबर्ग के, ९७ जर्मिस्टन के, ६० प्रिटोरिया के और ६ अन्य स्थानों के थे ।

१७ नवम्बर - ५३ तामिल हिन्दुस्तानी फेरी ऊगाते हुए पकड़े गये । उन्हें ७ दिन की जेल की सजा मिली ।

२२ नवम्बर - कलकत्ते में श्री अब्दुल जबर के सभापतित्व में सत्याग्रहियों के प्रति सहानुभूति दिखाने के लिए एक बड़ी सभा हुई ।

१३ दिसम्बर - गांधीजी दो महीने की दूसरी बार की क़ैद पूरी करके छूटे |

१९०९

९ जनवरी - डरबन में *मक्युरी* पत्र के प्रतिनिधि ने गांधीजी से मुलाकात की । उसमें गांधीजी ने बताया कि ट्रान्सवाल में लगभग २००० हिन्दुस्तानी जेल हो आये हैं ।

१५ जनवरी - गांधीजी नेटाल से वॉक्सरस्ट जाते हुए तीसरी बार पकड़े गये । कुछ सप्ताह बाद उन पर मुकदमा चला, जिसमें उन्हें तीन माह की क़ैद की सजा मिली । उसी दिन हमीदिया सोसायटी के उपाध्यक्ष श्री उमरजी साले, जिनकी आयु ६५ वर्ष की थी, तथा श्री डेविड अर्नेस्ट वगैरा प्रसिद्ध हिन्दुस्तानियों को तीन-तीन मास की सजा हुई ।

२९ जनवरी - क्रूगर्सडॉर्प में खोलवड कान्फरेन्स हुई । उसने किसी भी तरह के परवाने न लेने, दुकानें बंद करके फेरी लगाने और जेल जाने का निर्णय किया ।

६ फरवरी - ट्रान्सवाल की श्री हॉस्किन की कमेटी ने हिन्दुस्तानियों को राहत देने के बारेमें *लंदन टाइम्स* को पत्र लिखा ।

१० फरवरी - रोडेशिया का सरकारी कानून साम्राज्य सरकार ने अस्वीकार कर दिया ।

१२ फरवरी - पारसी रुस्तमजी और अन्य कुछ हिन्दुस्तानियों को छह-छह मास की क़ैद की सजा मिली ।

६ मार्च - गोरों ने बॉक्सबर्ग, नॉरवुड, ब्लूमफोन्टीन, बार्बरटन तथा क्रूगर्सडॉर्प में लोकेशन स्थापित करने का आन्दोलन आरंभ किया ।

१० मार्च - डेलागोआ बे के मार्ग से सत्याग्रही क़ैदियों को ट्रान्सवाल से निर्वासित करके हिन्दुस्तान भेजना शुरू हुआ ।

१२ मार्च - प्रिटोरिया में श्रीमती पिल्ले के केस में गांधीजी को हथकड़ी पहना कर कोर्ट में ले जाया गया।

५ अप्रैल - १४ सितम्बर से १७ मार्च तक लिखे गये दस्तावेजों की ब्ल्यू बुक साम्राज्य सरकार ने प्रकाशित की ।

३० अप्रैल - श्री काछलिया और अन्य १८ सत्याग्रही जेल की सजा पूरी करके बाहर आये ।

४ मई - सत्याग्रही क़ैदियों को जेल में घी देना शुरू किया गया ।

२४ मई - गांधीजी को तीसरी बार तीन महीने की क़ैद की सजा हुई ।

७ जून - जर्मिस्टन में गोरों की लिटररी एण्ड डिबेटिंग सोसायटी में गांधीजी ने 'सत्याग्रह की नीति' के बारेमें उल्लेखनीय भाषण दिया ।

१६ जून - जोहानिसबर्ग की सार्वजनिक सभा में श्री ए. एम. काछलिया, श्री हाजी हबीब, श्री वी. ए. चेट्टियार और गांधीजी को इंग्लैंड भेजने का तथा श्री एम. ए. कामा, श्री एन. जी. नायडू, श्री ई. एस. कुवाडिया और श्री एच. एस. पोलाक को हिन्दुस्तान भेजने का निर्णय किया गया । इस प्रतिनिधि-मंडल के प्रस्थान करने से पहले ही श्री काछलिया, श्री कुवाडिया, श्री कामा और श्री चेट्टियार को गिरफ्तार कर लिया गया।

४ जुलाई - जोहानिसबर्ग की जेल से छूटने के बाद जेल में भोगी हुई मुसीबतों और कष्टों के कारण नागप्पन की मृत्यु हो गई ।

१६ जुलाई - मुजफरी स्टीमर में १४ हिन्दुस्तानियों को देश-निकाला दे दिया गया ।

१ सितम्बर - बम्बई के शरीफ ने दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई की चर्चा करने के लिए एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया था, लेकिन बम्बई सरकार ने वह सभा नहीं होने दी । यह सभा फिर १३ दिन बाद हुई ।

१६ सितम्बर - इंग्लैंड में ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडल ने लॉर्ड क्रू से भेंट की ।

१३ नवम्बर - इंग्लैंड गया हुआ हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडल 'किल्डोनन कैसल' नामक जहाज में दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुआ ।

१ दिसम्बर - हिन्दुस्तान में श्री रतन टाटा ने दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की सहायता के लिए २५ हजार रुपये का दान घोषित किया ।

१९१०

२५ फरवरी - हिन्दुस्तान की केन्द्रीय धारासभा में गोखलेजी का गिरमिट-प्रथा बन्द करने का प्रस्ताव पास हुआ ।

१ जून - दक्षिण अफ्रीका का यूनियन बना उसी दिन श्री सोराबजी शापुरजी अडाजणिया सातवीं बार गिरफ्तार हुए ।

४ जून - श्री कैलनबैक ने लॉले में अपना फार्म सत्याग्रहियों के रहने के लिए दिया ।

१३ जून - छब्बीस सत्याग्रही हिन्दुस्तान से 'प्रसिडेन्ट' स्टीमर में वापस दक्षिण अफ्रीका आये ।

२६ जुलाई - पुर्तगाली सरकार की मदद से हिन्दुस्तानियों को देश-निकाला दे दिया गया । इस कदम के खिलाफ लॉर्ड एम्प्टहिल ने लॉर्ड सभा में जोरदार चर्चा की ।

३० जुलाई - आज तक जो हिन्दुस्तानी बालक बालिग होने पर नाम दर्ज करवाकर परवाने ले सकते थे, उन्हें १९०८ का कानून पास होने के बाद बालिग होने पर भी नाम दर्ज करवा कर परवाना देने से इनकार कर दिया गया ।

२२ अगस्त - छोटाभाई के लड़के का प्रसिद्ध टेस्ट केस जोहानिसबगे की कोर्ट में शुरू हुआ । उसमें छोटाभाई अंत में जीत गये ।

२८ सितम्बर - श्री पोलाक देश-निकाले की सजा पाये हुए ८५ हिन्दुस्तानी सत्याग्रहियों के साथ डरबन आये।

१६ अक्तूबर - स्वर्गीय नारायण स्वामी 'गर्टरूड वुरमन' नामक जहाज में हिन्दुस्तान से लौटते हुए डेलागोआ बे में मर गये ।

१९११

२५ फरवरी - यूनियन सरकार के गजट में इमिग्रेशन रेस्ट्रिकशन बिल प्रकाशित हुआ ।

२५ अप्रैल - वह बिल पार्लियामेन्ट के चालू अधिवेशन में स्थगित रखा गया ।

२० मई - शर्तों के साथ सरकार से समझौता हुआ और सत्याग्रह की लड़ाई दूसरी बार मुल्तवी रही ।

[इसके बाद लगभग दो वर्ष तक कुछ शांति रही । १९१३ में फिर से चौंकाने वाली घटनायें हुईं । उनका ब्योरा नीचे दिया जाता है:]

१९१३

२२ मार्च - हिन्दुस्तानियों के धर्म पर आक्रमण किया गया । जस्टिस सर्ल ने एक फैसला ऐसा दिया, जिसमें मुसलमानी शरीअत के अनुसार विवाहित बाई मरियम का उसके पति के साथ हुआ विवाह ग़ैर-कानूनी ठहराया गया ।

३ अप्रैल - नया इमिग्रेशन बिल यूनियन गजट में प्रकाशित हुआ ।

३ मई - जोहानिसबर्ग की एक सार्वजनिक सभा में सत्याग्रह आरंभ करने का निर्णय हुआ । उसी सप्ताह में हिन्दुस्तानी स्त्रियों की ओर से भी ऐसा निर्णय गृह-विभाग के मंत्री के पास भेजा गया।

२४ मई - गांधीजी और गृह-विभाग के मंत्री श्री फिशर के बीच ३० अप्रैल से जो पत्र-व्यवहार चला था वह प्रकाशित हुआ ।

७ जून - ऊपर के पत्र-व्यवहार का बाकी का भाग प्रकाशित हुआ ।

२१ जून - इमिग्रेशन एक्ट को ब्रिटिश सम्राट् की स्वीकृति मिली ।

१५ जुलाई - नये कानून की धारायें यूनियन गजट में प्रकाशित हुईं ।

१ अगस्त - नये कानून के अनुसार तीनों उपनिवेशों में अपील बोर्ड रचे गये । इन बोर्डों में इमिग्रेशन अधिकारी भी एक एक सदस्य थे ।

१३ सितम्बर - सत्याग्रह का आरंभ | सरकार और गांधीजी के बीच हुआ सारे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की चर्चा करने वाला पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ ।

२२ सितम्बर से

१५ अक्तूबर - नेटाल तथा ट्रान्सवाल के अनेक सत्याग्रही स्त्री-पुरुष फेरी लगाकर अथवा सीमा लाँघ कर गिरफ्तार हुए और जेल गये ।

१६ अक्तूबर - तीन पौंड के कर के विरुद्ध न्यूकैसल से मजदूरों की हड़ताल शुरू हुई और सब जगह फैल गई ।

६ नवम्बर - गांधीजी ने हड़तालियों के साथ ट्रान्सवाल में प्रवेश किया ।

११ नवम्बर - गांधीजी को डंडी में ९ महीने की क़ैद की सजा मिली ।

२८ नवम्बर - भारत के वाइसरॉय का भाषण ।

११ दिसम्बर - कमीशन नियुक्त किया गया ।

१९ दिसम्बर - गांधीजी, श्री कैलनबैक और श्री पोलाक जेल से रिहा किये गये ।

१९१४

१६ फरवरी - समझौते के अनुसार यूनियन की जेलों से सारे सत्याग्रही क़ैदी छोड़ दिये गये ।

१८ मार्च - कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई ।

३ जून - इंडियन्स रिलीफ बिल प्रकाशित हुआ ।

३० जून - सरकार से अंतिम समझौता हुआ ।

२० जुलाई - ४५ वर्ष की आयु में गांधीजी ने कस्तूरबा और कैलनबैक के साथ इंग्लैंड जाने के लिए दक्षिण अफ्रीका सदा के लिए छोड़ा ।

परिशिष्ट - २

पूर्ति

[इस पुस्तक के पृ. ३१७-१८ पर छठे प्रसंग के संदर्भ में श्री रावजीभाई म. पटेल अपनी पुस्तक 'गांधीजी की साधना' में (पृ. १८०-८३ पर, १९५९) बहनों को जेल में भेजने के निर्णय के बारेमें इस प्रकार लिखते हैं:]

इसके सिवा, इस अंतिम लड़ाई में दो प्रचंड शक्तियाँ और जुड़ गईं आज तक किसी स्त्री की इच्छा हो तो भी उसे लड़ाई में शरीक होने से रोक दिया जाता था । परन्तु इस अंतिम लड़ाई में हिन्दुस्तानी स्त्रियों के सत्रीत्व पर जो आक्रमण हुआ था, उसका विरोध करना ज़रूरी था । उसमें हिन्दुस्तानी स्त्रियों के स्वाभिमान की रक्षा का प्रश्न था । इसीलिए यह निर्णय किया गया कि इस लड़ाई में स्त्रियों को भी सम्मिलित होना चाहिए । इसी प्रकार गिरमिटिया मजदूरों को भी आज तक सत्याग्रह की लड़ाई में सम्मिलित होने की सलाह या प्रेरणा नहीं दी गई थीं; परन्तु तीन पौंड के कर की लड़ाई में भाग लेना उनका भी फ़र्ज़ हो गया । इसलिए हजारों गिरमिटिया मजदूर भी इस लड़ाई में भाग लेने की स्थिति में आ गये । इन दो बलों की इस अंतिम लड़ाई में वृद्धि हुई ।

लेकिन इन बलों का सर्जन करके उनका संग्रह करने की शक्ति होना भी आवश्यक था । गांधीजी को यह विश्वास तो था ही कि अनेक हिन्दुस्तानी बहनें जेल जाने को तैयार हो जाएँगी । परन्तु स्वयं मरे बिना स्वर्ग कौन जा सकता है? गांधीजी को लगा कि कस्तूरबा अगर इस लड़ाई में सम्मिलित होने को तैयार हो जाय और जेल में जाए, तो सारी बाजी सुधर जाए । लेकिन बा को तैयार कैसे किया जाए ? उन्हें आदेश देकर जबरन् तैयार करने में कोई सार नहीं है । बाद में इस प्रकार खड़े किये गये बल पर विश्वास कैसे रखा जाए ? कस्तूरबा में ऐसी शक्ति तो है ही कि एक बार वह किसी बात को समझ ले तो फिर उससे सदा चिपटी रहे । लेकिन प्रश्न यह है कि यह बात बा को समझा कर इसके विषय में उसके भीतर दृढ़ता कैसे उत्पन्न की जाए ? गांधीजी इस बारेमें सोचा करते थे; और मौका मिलने पर उन्होंने बा को समझाने और दृढ़ बनाने का कार्य सफलता से पूरा किया ।

एक दिन सदा के नियम के अनुसार पाखाने साफ करने के बाद नहा-धोकर में करीब ९ ॥ बजे रसोई-घर में गया । गांधीजी भी उसी समय शाला से पढ़ाकर आये । कस्तूरबा तो वहाँ मौजूद थीं हीं । उन्होंने 'भाखरी' का आटा सान कर रख दिया था । वे भाखरियाँ बेलने लगीं और मैं उन्हें सेंकने लगा । गांधीजी दूसरा फुटकर काम कर रहे थे । अपना काम करते-करते गांधीजी ने एकाएक कस्तूरबा से पूछा :

"तुम्हें कुछ पता चला?"

"क्या?" जिज्ञासा से कस्तूरबा ने पूछा ।

गांधीजीने हँसते हुए उत्तर दिया: "आज तक तुम मेरी विवाहिता स्त्री थीं; लेकिन अब तुम मेरी विवाहिता स्त्री नहीं रहीं ।"

कस्तूरबा ने कुछ भौंहें चढ़ाकर कहा : "यह और किस ने कह दिया ? आप तो रोज ही नयी नयी समस्यायें ढूंढ़ निकालते हैं !"

गांधीजी हँसते हँसते बोले: "में कहाँ ढूंढ निकालता हूँ ? वह जनरल स्मट्स कहता है कि ईसाई विवाहों की तरह हमारा विवाह कोर्ट में दर्ज नहीं किया गया है, इसलिए वह ग़ैर-कानूनी माना जाएगा; तुम मेरी विवाहिता पत्नी नहीं किन्तु उपपत्नी (रखेली) मानी जाओगी ।"

कस्तूरबा ने क्रोध में आकर कहा : "अपना सिर कहा जनरल स्मट्स ने ! उस निठल्ले को ऐसी बातें कहाँ से सूझ जाती हैं?"

गांधीजीने कहा: "लेकिन अब तुम बहनें क्या करोगी ?"

"हम भला क्या कर सकती हैं?" कस्तूरबा ने पूछा ।

"हम पुरुष जैसे सरकार से लड़ते हैं वैसे तुम भी लड़ो । अगर तुम्हें सच्ची विवाहिता पत्नी बनना हो और उपपत्नी न बनना हो और अपनी इज्जत तुम लोगों को प्यारी हो, तो तुम भी हमारी तरह सरकार से लड़ो ।"

"आप लोग तो जेल जाते हैं!"

"तो तुम भी अपनी इज्जत के ख़ातिर जेल जाने को तैयार हो जाओ ।"

गांधीजी का यह वाक्य सुनकर कस्तूरबा आश्चर्य से बोलीं: "क्या कहते हैं? में जेल में जाऊँ ! स्त्री से कहीं जेल में जाया जाता है?"

"क्यों भला? स्त्रियों से जेल में क्यों नहीं जाया जा सकता? पुरुष जो सुख-दुःख भोगते हैं, उन्हें स्त्रियाँ क्यों नहीं भोग सकतीं ? राम के पीछे सीता गई थीं । हरिश्चन्द्र के पीछे तारामती गई थीं । नल के पीछे दमयंती गई थीं । और, सब ने जंगल में अपार दुःख सहन किये थे ।"

गांधीजी का विवेचन सुनकर कस्तूरबा बोल उठीं: "वे तो सब देवताओं जैसे थे ! उनके कदमों पर चलने की शक्ति हमारे पास कहाँ है?"

गांधीजी ने गंभीरता से कहा: "इसमें क्या हुआ? हम भी उनके जैसा व्यवहार करें, तो उनके जैसे बन सकते हैं । हम भी देवता बन सकते हैं । रामके कुल का मैं हूँ और सीता के कुल की तुम हो । मैं राम बन सकता हूँ और तुम सीता बन सकती हो । सीता धर्म के लिए राम के पीछे न गई होती और राज-महल में बैठी रहती, तो उसे

कोई सीता माता नहीं कहता । तारामती यदि हरिश्चन्द्र के सत्यव्रत के लिए बिकी न होती, तो हरिश्चन्द्र के सत्यव्रत में दोष रह जाता । हरिश्चन्द्र को कोई सत्यवादी न कहता और तारामती को कोई सती भी नहीं कहता । दमयंती नल के पीछे जाकर जंगल के दुःख सहने में शामिल न हुई होती, तो उसे भी कोई सती नहीं कहता । उसी तरह अगर तुम्हें अपनी इज्जत बचानी हो, मेरी विवाहिता पत्नी कहलाना हो और उपपत्नी कहलाने के कलंक से मुक्त होना हो, तो तुम सरकार से लड़ो और जेल जाने के लिए तैयार हो जाओ ।"

कस्तूरबा चुप रहीं । मैं देख रहा था कि बा इसका क्या उत्तर देती हैं । दोनों की बातचीत सुनने में मुझे आनंद आ रहा था । इतने में कस्तूरबा बोल उठीं: "तो आपको मुझे जेल भेजना है, यही बात है न? अब इतना ही बाकी रहा है । ठीक है, में जाऊँगी । लेकिन जेल का भोजन मुझे माफिक आयेगा?"

"मैं नहीं कहता कि तुम जेल जाओ । तुम्हें अपनी इज्जत के ख़ातिर जेल जाने की उमंग हो तो जाओ । और जेल का भोजन माफिक न आये तो वहाँ फलाहार करना ।"

"जेल में सरकार फलाहार देगी?"

फलाहार पाने का उपाय बताते हुए गांधीजी ने कहा: "सरकार फलाहार न दे तब तक उपवास करना ।"

कस्तूरबा ने हँसकर कहा: "अच्छा, यह तो आपने मुझे मरने का ही रास्ता बताया है ! मुझे लूगता है कि जेल जाऊँगी तो मैं जरूर मर जाऊँगी ।"

गांधीजी सिर हिलाते हुए खिलखिला उठे और बोले: "हाँ, हाँ, मैं भी यही चाहता हूँ । तुम जेल में अगर मर जाओगी, तो मैं तुम्हें जगदम्बा के समान पूजूँगा ।"

"अच्छा, तब तो मैं जेल जाने को तैयार हूँ ।" कस्तूरबा ने दृढ़ता से अपना निश्चय प्रकट किया ।

गांधीजी खूब हँसे । उन्हें बड़ा आनन्द हुआ । कस्तूरबा किसी काम से जरा बाहर गईं तो मौका देख कर गांधीजी ने मुझसे कहा: "बा की यही खूबी है कि वह मन से या बेमन से मेरी इच्छा का अनुसरण करती हैं ।"

* * *